प्राक्कथन

प्रबन्ध परिमल का पहला संस्करण विद्यार्थियो के हाथ में रखते हुए मुझे सन्तोष और प्रसन्नता का अनुभव होता है। पिछले २३ वर्षों से निरन्तर हिन्दी पढ़ाते-पढ़ाते मैंने कई बार यह अनुभव किया कि पाठ्य-पुस्तकों के अध्ययन के बाद निबन्ध, व्याकरण, साहित्य का इतिहास, शैली, मुहावरे, पत्र लेखन, अलकार, छन्द, रस, अपठित-लेखन एव कवि परिचय आदि ऐसी बहुत-सी बातें रह जाती हैं जिनकी नितान्त आवश्यकता रहती हैं। यद्यपि इन विषयों पर अलग-अलग पुस्तकों की कमी नहीं हैं तथापि इन सब के लिये एक भी पुस्तक उपलब्ध नहीं है और विद्यार्थियों के लिये उन सबको प्राप्त कर लेना सरल नहीं होता है। अतः एक ही पुस्तक में सब आवश्यक बातें उपलब्ध करवाने की दृष्टि से जब मैं इस पुस्तक की रचना कर रहा था तो मुझे इस प्रकार की एक पुस्तक देखने को मिली और उसकी लोकप्रियता देखकर इस बात से बड़ा सन्तोष हुआ कि मेरा प्रयत्न भी उसी दिशा में है जिसे विद्यार्थी चाहते हैं।

यद्यपि प्रस्तुत पुस्तक मैंने हाई स्कूल और हायर सेकेण्डरी स्कूल के हिन्दी विषय के पाठ्यक्रम को ध्यान मे रखकर ही लिखी है तथापि इस बात का भी प्रयत्न किया है कि प्रथमा, मध्यमा, कोविद, विद्याविनोदिनी, प्री-यूनिवर्सिटी आदि परीक्षाओं के विद्यार्थी भी इससे लाभ उठा सकें। पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिए अधिक बातों का समावेश करना होता है और सभी बातों को एक ही पुस्तक मे कह देना कठिन होता है, क्योंकि यदि सब बातों पर विस्तार से प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाता है तो पुस्तक का आकार बढ़ जाता है और उसके साथ मूल्य बढ़ता है तथा बालकों के लिए उसे खरीदना कठिन हो जाता है और यदि सब बातें संक्षेप में कहने का प्रयत्न किया जाता है तो पुस्तक का अपना उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। अतः उपर्युक्त परीक्षाओं के पाठ्यक्रम को ध्यान

में रखकर मैंने एक ओर पुस्तक को क्षति न पहुँचने देते हुए, दूसरी ओर सब बातों को यथासंभव थोड़े शब्दों में कहने का प्रयत्न किया है ताकि पुस्तक का आकार न बढ़ने पाए और विद्यार्थी उसका पूरा-पूरा लाभ उठा सकें। मुझे प्रसन्नता है कि हमारे प्रकाशक महोदय ने भी कम मूल्य रखकर इस दिशा में पूरा सहयोग दिया है।

इस पुस्तक को तैयार करते समय मैंने उसे परीक्षोपयोगी और ज्ञान-वर्द्धक बनाने के लिए जहाँ परीक्षोपयोगी निबन्धों, पत्रों, अन्तः कथाओं, मुहावरों तथा रसों, अलंकारों और छन्दों का समावेश किया है वहाँ इस बात का भी ध्यान रखा है कि हिन्दी भाषा और उसकी रचना का अभ्यास करने वाले व्यक्तियों को भी उसका पूरा पूरा लाभ मिले। इस दृष्टि से जहाँ पुस्तक में राजस्थान, अजमेर और मध्य भारत बोर्ड में जाने वाले निबन्धों तथा रसों, छन्दों, अलंकारों आदि को दिया है साथ ही ऐसी सामग्री को भी स्थान दिया गया है जो उसे कुञ्जिओं और गाइड्स की श्रेणी से काफी ऊपर उठा देती है। इस पुस्तक व्याकरण, अपठित साहित्य के स्वरूप, शैली, साहित्य के इतिहास कवियों एवं लेखकों के परिचय आदि का समावेश करते समय इसी का ध्यान रखा गया है। यदि अध्यापक और विद्यार्थी दोनों ही इसे समझें तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूँगा।

इस पुस्तक के लेखन में मुझे अनेक पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं से सहायता लेनी पड़ी है। अतः मैं उन सब लेखकों और प्रकाशकों का हृदय से आभारी हूँ।

—बाबूराव जोशी

प्राक्कथन
(द्वितीय संस्करण)

पाठकों के हाथ में "प्रबन्ध परिमल" का दूसरा संस्करण देते हुए मुझको बहुत ही प्रसन्नता अनुभव हो रही है। प्रथम संस्करण मे रही हुई प्रेस की भूलों को वर्तमान सस्करण मे दूर करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया गया है। यह पुस्तक विद्यार्थी वर्ग मे विशेष रूप से लोकप्रिय हुई है।

मैं अपने उन सभी स्नेहियों और मित्रों का अनुगृहीत हूँ जिन्होंने पुस्तक की समय-समय पर प्रशसा कर मुझको प्रोत्साहित किया है।

— बाबूराव जोशी

तृतीय संस्करण का प्राक्कथन

'प्रबन्ध परिमल' का तीसरा सस्करण अपने विद्यार्थियो और अध्यापक मित्रों के हाथ मे रखते हुए मुझे अतीव हर्ष और उल्लास का अनुभव हो रहा है। तीन वर्ष के इस अल्प समय मे ही तीन सस्करण निकल जाना निश्चय ही पुस्तक की लोकप्रियता का द्योतक है। इस अर्से मे मुझे मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तरप्रदेश के अनेक मित्रो, हितैषियों एव बन्धुओं से इसके सबंध मे अनेक प्रशसा पत्र, सम्मितियाँ एव सुझाव मिलते रहे हैं। उनके सुझावो और सम्मितियों के आधार पर ही पुस्तक को इस नये रूप मे प्रकाशित किया जा रहा है। चारो ओर से पुस्तक मे जो गहरी रुचि ली गई उसके लिए मैं सभी मित्रो, हितैषियों और अध्यापक बन्धुओ का हृदय से आभारी हूँ।

इस तीसरे सस्करण में दस नये विषयों पर लिखे गये निबन्ध जोडे गये हैं। उच्चतर माध्यमिक परीक्षा के पाठ्यक्रम में शब्दशक्ति भी रखी गई है। अत. उस पर भी अध्याय लिखकर जोड़ दिया गया है। इसके अतिरिक्त इस सस्करण मे यत्रतत्र छूटी हुई त्रुटियाँ को भी ठीक कर दिया गया है। आशा है यह पुस्तक अब अपने नवीन रूप मे अधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

जोशी सदन, सोनकच्छ,
जिला देवास, मध्यप्रदेश

—बाबूराव जोशी

विषय-सूची

——

भाषा और व्याकरण

पुरातत्व-वेत्ताओ तथा वैज्ञानिको की यह बात सही मालूम होती है कि सृष्टि के आरम्भ मे मनुष्य असभ्य होगा। उसे न ठीक तरह काम करना आता होगा, न बोलना—बात करना। जैसे-जैसे उसके आचरण मे संस्कार होता गया होगा वैसे-वैसे ही वह सभ्यता की दिशा मे अग्रसर होता गया होगा। हमारी आज की सभ्यता हजारो-लाखो वर्षों के प्रयत्नो का परिणाम है। यदि एक भाषा का ही प्रश्न ले तो उसके विकास मे सैकडो वर्ष लग गये होंगे। प्रारम्भ मे मनुष्य मूक वातावरण मे घूमता रहता होगा। अपने विचार अभिव्यक्त करने के लिये सबसे पहिले उसने संकेतों का आश्रय लिया होगा और कभी सिर हिलाकर, कभी हाथ हिलाकर और कभी अलग-अलग मुद्राएँ बनाकर अपने मन की बात दूसरो को बताने का प्रयत्न किया होगा तथा इसी प्रकार के इशारों के द्वारा दूसरो के मन की बात स्वयं जानने का प्रयत्न भी किया होगा। जब संकेतो से पूरा काम चलते न देखा गया होगा तब ध्वनि का आश्रय लिया गया होगा और एक लम्बे अर्से तक उनका प्रयोग करने के बाद उनमे सार्थकता आ पाई होगी। भाषा को अपना सही स्वरूप प्राप्त कराने के लिये मानव को जड और चेतन प्रकृति की प्राकृतिक बोलियों का अनुकरण करना पडा होगा, प्राकृतिक क्रियाओं से उत्पन्न होने वाली स्वभाविक ध्वनियो को सुनना और समझना पडा होगा तथा उन सबके द्वारा बने हुए ध्वनि-संकेतो को अपनाकर अपना मार्ग प्रशस्त बनाना पडा होगा। सक्षेप मे, यही भाषा के जन्म की कहानी होगी।

भाषा के जन्म की यह कहानी केवल कल्पना नही है। वह तथ्यो पर आधारित है। अपनी सामाजिक उपयोगिता एवं सांकेतिक आधार के कारण यह एक सामाजिक और सांकेतिक सस्था ही बन गई है। वह एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा मानव अपने मन के भाव और विचार दूसरो के सामने भली-भांति प्रकट कर सकता है तथा दूसरो के भाव और विचार स्वयं समझ सकता है। भाषा विचार-विनिमय एवं भाव-प्रकाशन का साधन है। यह हमारे सामाजिक व्यवहार का माध्यम है। साहित्याचार्यों के मतानुसार

—'वह व्यक्त ध्वनि-संकेत है, जिसके द्वारा हम किसी वस्तु के विषय में पर विचार-विनिमय कर सकते हैं।'

भाषा सभ्यता की देन है। अतः सभ्यता के विकास के साथ-साथ वह परिमार्जित एवं परिष्कृत बनती रहती है। जैसे-जैसे समाज का बौद्धिक और मानसिक विकास होता है वैसे-वैसे भाषा भी शक्तिशाली और समृद्ध होती जाती है। इस प्रकार भाषा हमारे पूर्वजों की अनेक पीढ़ियों के परिश्रम का फल है और उनसे विरासत या उत्तरदायित्व के रूप में हमें प्राप्त हुई है। समाज में रहकर, लोगों के सम्पर्क में आकर तथा उनका अनुकरण करके ही हम भाषा सीख पाते हैं।

भाषा का कोई एक निश्चित स्वरूप नहीं होता। भिन्न-भिन्न देशों और भिन्न-भिन्न प्रान्तों में हमें अलग-अलग प्रकार की भाषा दिखाई देती है। कोई देश भाव-प्रकाशन के लिये किसी एक प्रकार की ध्वनि का उपयोग करता है और कोई अन्य देश किसी अन्य प्रकार की ध्वनि का उपयोग करता है तो कोई अन्य देश किसी अन्य प्रकार की ध्वनि का। इस प्रकार भिन्न भिन्न देशों और प्रान्तों में भिन्न-भिन्न ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक भाषा ने ध्वनि के लिये कुछ वर्ण मान लिये हैं। ये वर्ण उस भाषा की ध्वनि के सर्वस्वीकृत चित्र ही तो हैं। प्रत्येक भाषा के वर्ण अलग-अलग होते हैं और जिस रूप में उन वर्णों को अंकित किया जाता है उसे लिपि कहा जाता है। हमारे देश में बंगाली, गुजराती, गुरमुखी, मराठी, तेलगू, तामिल, कन्नड़ आदि बहुत सी भाषाएं हैं किन्तु हि... हमारी राष्ट्र-भाषा है। हमारे देश के अधिकांश लोग उसी के द्वारा ... विचारों को प्रकट करते हैं। हिन्दी भाषा के वर्ण देवनागरी लिपि में ... होते हैं। अतः हमारे देश की प्रमुख भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी ...

भाषा तीन प्रकार की होती है—कथित, लिखित एवं सांकेतिक। कथित भाषा ध्वनियों से बनी हुई है, उसका प्रयोग केवल बोलने में होता है। उसमें ध्वनि की प्रधानता होती है। किन्तु दूरस्थ ... प्रति अपने विचार प्रकट करना कठिन होता है। ध्वनि वहाँ तक ... पाती है। अतः उसके लिये लिखित भाषा का प्रयोग किया ... भाषा पढ़ने-लिखने के काम में आती है। उसका निर्मा...

मेल से होता है। अपने दूर के मित्र और सगे-सम्बन्धियो से लिखित भाषा के द्वारा ही हम अपना सम्पर्क साधे रहते हैं। लेखो और पुस्तकों के रूप मे इस लिखित भाषा की सहायता से ही हमारे पूर्वज ज्ञान और अनुभव की एक बहुत बडी विरासत हमारे लिये छोड गये हैं। प्रारम्भ मे केवल कथित भाषा का प्रचार हुआ होगा और पीछे से जब विचारो को स्थायी रूप देने के लिये लिपि का श्रीगणेश हुआ होगा तब लिखित भाषा चल निकली होगी। साकेतिक भाषा यद्यपि भाषा का प्रारम्भिक रूप था तथापि आज-कल भी अनेक प्रकार से उसका प्रयोग किया जाता है। झण्डी, उँगली, सीटी, बत्ती आदि के संकेतो द्वारा युद्धस्थल मे और उसके बाहर भी उसका प्रयोग किया जाता है।

सभी भाषाओ मे ध्वनियो के अपने-अपने अलग चिह्न मान लिये जाते हैं। ये माने हुए चिह्न अक्षर कहलाते हैं। अक्षरों के मेल से शब्द बनते हैं और शब्दो के मेल से वाक्य। भाषा इन वाक्यो का मेल है। शब्द सार्थक ध्वनियो का समूह होता है। प्रत्येक शब्द भिन्न-भिन्न विचार और अर्थ को प्रकट करता है। जो शब्द जितना ज्यादा उपयोगी होता है उतना ही बारबार प्रयुक्त होना है और जो शब्द जितना कम उपयोगी होता है उतना ही कम प्रयुक्त होना है। हम ऊपर कह चुके हैं कि वाक्य शब्दो के मेल से बनता है। किन्तु किसी भी वाक्य मे शब्दो का पारस्परिक सम्बन्ध होता है और उस सम्बन्ध को बताने के लिये शब्दो का कुछ निश्चित क्रम भी होता है। वाक्य मे दूसरे शब्दो के साथ अपना सम्बन्ध बताने के लिये शब्द कभी नये-नये रूप बदलता है और कभी तो तीन या अधिक शब्द मिलकर एक नये शब्द को जन्म दे देते हैं। शब्द के शुद्धस्वरूप, वाक्यो मे उनके प्रयोग के नियम तथा नये-नये शब्दो के निर्माण से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नो का विवेचन जिस शास्त्र मे किया जाता है उसे 'व्याकरण' कहते हैं। व्याकरण के अध्ययन से शुद्ध भाषा पढने-लिखने और बोलने का ज्ञान होता है। कथित भाषा की अपेक्षा लिखित भाषा का प्रयोग करने मे अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। अत. व्याकरण के नियम लिखित भाषा के ही आधार पर निश्चित किये जाते हैं। यह बात न भूलना चाहिए कि व्याकरण भाषा के नये नियम नही गढता, वह तो हमें

मों को समझाता है जो शिष्ट-जनों द्वारा स्वीकृत हैं। व्याकरण का ध्ययन भाषा के शुद्ध प्रयोगों का ज्ञान कराता है ताकि हम बोलने और लखने में त्रुटियाँ न करें।

अपनी कोई भी बात कहने के लिये हमें वाक्य का प्रयोग करना पड़ता है। वाक्य भाषा का मुख्य अंग है। वाक्य शब्दों से बनता है और शब्द वर्ण से। अतः वाक्य, शब्द और वर्ण के विचार से व्याकरण के तीन विभाग होते हैं—वर्ण-विचार, शब्द-विचार और वाक्य-विचार। -जिसमें अक्षरों या वर्णों के उच्चारण, आकार, भेद, संयोग आदि के नियम होते हैं उसे वर्ण-विचार कहते हैं और जिसमें शब्दों की व्युत्पत्ति, भेद, व्यवस्था आदि के नियम होते हैं उसे शब्द-विचार कहते हैं। जिसमें शब्दों के द्वारा वाक्य-निर्माण के नियम, वाक्यों के पारस्परिक सम्बन्ध, विश्लेषण आदि के नियम बताये जाते हैं उसे वाक्य-विचार कहते हैं।

अभ्यास

१. भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई होगी ?
२. भाषा किसे कहते हैं ? उसका विकास कैसे हुआ होगा ?
३. लिपि से आप क्या समझते हैं। हमारी लिपि का नाम क्या है ?
४. भाषा कितनी प्रकार की होती है ?
५. 'कथित, लिखित और सांकेतिक भाषाओं का अपना-अपना महत्
   इस कथन की पुष्टि कीजिये।
६. व्याकरण किसे कहते हैं, उसका क्या महत्त्व है ?
७. व्याकरण के कितने विभाग हैं ?

वर्ण-विचार

इस अध्याय मे हम वर्णों के आकार, भेद, उच्चारण और उनके परस्पर-संयोग के नियमो का अध्ययन करेंगे।

वर्ण उस मूल ध्वनि को कहते हैं जो विभाजित न हो सके। जैसे: अ, ई, ट्, स्, उ, घ्, क् आदि। प्रत्येक भाषा मे इस प्रकार के अनेक वर्ण होते हैं। वर्णों के समुदाय को ही 'वर्ण-माला' कहा जाता है। वर्ण दो प्रकार के होते हैं—(१) स्वर और (२) व्यञ्जन।

स्वर—उन वर्णों को कहते हैं जिनका उच्चारण बिना किसी अन्य वर्ण की सहायता के हो सके। जैसे: अ, इ, उ। हिन्दी भाषा मे केवल ११ स्वर हैं—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ। संस्कृत वर्ण-माला मे ॠ, ऌ, ॡ, ये तीन स्वर और होते हैं, किन्तु हिन्दी मे इनका प्रयोग नही होता है। हिन्दी मे 'ऋ' का प्रयोग होता है, किन्तु वह भी उन्ही शब्दो मे जो संस्कृत से तत्सम् रूप मे आये हैं। जैसे: ऋतु, ऋजु, नृत्य, मृत्यु, ऋण आदि।

स्वर दो प्रकार के होते हैं—मूल स्वर और दीर्घ स्वर। ऊपर जो ११ स्वर बताये गये हैं उन मे अ, इ, उ, ऋ, मूल स्वर हैं। इनके उच्चारण मे एक मात्रा का समय लगता है। अतः इन्हे एक-मात्रिक भी कहते हैं। किन्तु आ, ई, ऊ, ए, ओ, औ, ॠ, आदि के उच्चारण मे दो मात्रा का समय लगता है अतः इन्हे द्विमात्रिक या दीर्घ स्वर कहते हैं। दीर्घ स्वरो मे आ, ई, ऊ, को छोड़ कर जो चार स्वर ए, ऐ, ओ औ, शेष रहते हैं वे भिन्न भिन्न स्वरों के मेल से बनते हैं। अतः उन्हे संयुक्त स्वर भी कहते हैं। जैसे:

अ + इ या ई = ए	अ + उ या ऊ = ओ
अ + ए = ऐ	अ + ओ = औ

व्यञ्जनो के मिलने से स्वर का जो रूप हो जाता है वह उस स्वर की मात्रा कहलाता है। 'अ' की कोई मात्रा नही होती। शेष स्वरो की मात्राएँ इस प्रकार होती हैं:

अ,	आ,	इ,	ई,	उ,	ऊ,	ए,	ऐ,	ओ,	औ
×	ा	ि	ी	ु	ू	े	ै	ो	ौ

र के अनुनासिक। प्रत्येक वर्ग का प्रथम और तृतीय वर्ण अल्पप्राण तथा द्वितीय और चतुर्थ क्रमशः प्रथम और तृतीय के महाप्राण—उनके उच्चारण की ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई देती है। अल्पप्राण वर्णों की अपेक्षा महाप्राण वर्णों में प्राण-वायु का उपयोग अधिक श्रमपूर्वक करना पड़ता है। उदाहरणार्थ क, क् + ह = ख, ग, ग् + ह = घ आदि।

स्वरों को वर्णमाला में इसलिये प्रथम स्थान दिया गया है कि उनके उच्चारण में वागिन्द्रिय खुली रहती है और मुँह को विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार व्यञ्जनों में भी पहिले स्पर्श वर्णों को स्थान दिया गया है फिर अन्तस्थ और बाद में ऊष्म वर्णों को। कारण यह है कि स्पर्श वर्णों के उच्चारण में वागिन्द्रिय का कहीं न कहीं स्पर्श होता है किन्तु अन्तस्थ वर्णों के उच्चारण में वागिन्द्रिय कुछ-कुछ खुली रहती है। ऊष्म वर्णों के उच्चारण में एक प्रकार का घर्षण होता है। इस प्रकार हिन्दी की वर्ण-माला की वैज्ञानिकता एवं क्रम-बद्धता स्पष्ट है। यदि अंग्रेजी, उर्दू या अन्य किसी भाषा की वर्णमाला से हम अपनी वर्णमाला की तुलना करें तो यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जायगी।

अभ्यास

१—वर्ण किसे कहते हैं?

२—स्वर और व्यञ्जन में क्या अन्तर है?

३—स्वर कितने हैं और व्यञ्जन कितने हैं?

४—वर्णों के उच्चारण-स्थान से क्या समझते हो? सब वर्णों के उच्चारण स्थान अलग-अलग बताओ।

५—निम्नलिखित वर्णों के उच्चारण के स्थान बताओ।
ओ, ख, प, ठ, ग, घ, ध, ञ, म, न, ए, ऊ, श, र, ज
ण, और, ल।

६—सिद्ध कीजिये कि हिन्दी वर्णमाला वैज्ञानिक और व्यवस्थित है।

—

सन्धि

दो अक्षरों या वर्णों के पास-पास आने से या यों कहिये कि उनके मेल से जो विकार होता है उसे सन्धि कहते हैं। यह विकार उच्चारण की सुगमता के कारण होता है। सीधेसादे शब्दों में कहें तो अक्षरों के मेल को सन्धि कहते हैं। सन्धि में दो अक्षरों का मेल होता है और इस मेल के परिणाम स्वरूप विकार होता है अर्थात् उनके स्थान पर एक भिन्न वर्ण आ जाता है। उदाहरणार्थ, धर्मार्थ=धर्म+अर्थ यहाँ अ+अ मिलकर 'आ' हो गया है। दिगम्बर=दिक्+अम्बर यहाँ क्+अ मिलकर 'ग' हो गया है। भानूदय=भानु+उदय—यहाँ उ+उ मिलकर 'ऊ' हो गया है।

यह न भूलना चाहिये कि दो अक्षरों के मेल से संयुक्ताक्षर भी बनते हैं। जब दो या तीन व्यञ्जन मिलते हैं और उनके बीच स्वर नहीं होता, तो उनके मेल को सन्धि नहीं कहा जाता। 'मत्स्य', 'महात्मा' इसी प्रकार के संयुक्ताक्षर हैं। सन्धि और संयुक्ताक्षर में केवल यही अन्तर है कि सन्धि में दो अक्षरों के मेल से एक भिन्न अक्षर बनता है जब कि संयुक्ताक्षर में ऐसा नहीं होता।

सन्धि तीन प्रकार की होती है . (१) स्वर-सन्धि, (२) व्यञ्जन-सन्धि और (३) विसर्ग-सन्धि।

(१) स्वर-सन्धि—दो स्वरों के पास आ जाने पर उनके मेल से जो परिवर्तन होता है उसे स्वर-सन्धि कहते हैं। जैसे : रामानुज=राम+अनुज। महाशय=महा+आशय।

(२) व्यञ्जन-सन्धि—जब एक व्यञ्जन दूसरे व्यञ्जन अथवा स्वर से मिले और उनके मिलने से जो परिवर्तन हो उसे व्यञ्जन-सन्धि कहते हैं। जैसे : सज्जन=सत्+जन। वाङ्मय=वाक्+मय।

(३) विसर्ग-सन्धि—जब विसर्ग के साथ स्वर अथवा व्यञ्जन का मेल हो और उसके मिलने से जो परिवर्तन हो उसे विसर्ग-सन्धि कहते हैं। जैसे : अधोगति=अधः+गति। निर्गुण=निः+गुण।

जलोर्मि	=	जल + उर्मि	(अ + ऊ = ओ)
गङ्गोदक	=	गङ्गा + उदक	(आ + उ = ओ)
महोर्मि	=	महा + उर्मि	(आ + उ = ओ)
देवर्षि	=	देव + ऋषि	(अ + ऋ = अर्)
महर्षि	=	महा + ऋषि	(आ + ऋ = अर्)

(३) वृद्धि सन्धि—जब 'अ' या 'आ' के बाद 'ए' या 'ऐ' हो तो दोनों के मेल से 'ऐ' हो जाता है तथा जब 'अ' या 'आ' के आगे 'ओ' या 'औ' हो तो उसके मेल से 'औ' हो जाता है, तो उसे वृद्धि सन्धि कहा जाता है। जैसे :

एकैक	=	एक + एक	(अ + ए = ऐ)
मतैक्य	=	मत + ऐक्य	(अ + ऐ = ऐ)
सदैव	=	सदा + एव	(आ + ए = ऐ)
महैश्वर्य	=	महा + ऐश्वर्य	(आ + ऐ = ऐ)
जलौघ	=	जल + ओघ	(अ + ओ = औ)
वनौषधि	=	वन + औषधि	(अ + औ = औ)
महौज	=	महा + ओज	(आ + ओ = औ)
महौदार्य	=	महा + औदार्य	(आ + औ = औ)

(४) यण सन्धि—जब ह्रस्व या दीर्घ 'इ', 'उ', 'ऋ' के बाद कोई असवर्ण स्वर आता है (विजातीय) क्रमशः 'य्' 'व्' और 'र्' हो जाते हैं, तो उस विकार-परिवर्तन को यण् सन्धि कहते है। जैसे :

यद्यपि	=	यदि + अपि	(इ + अ = य)
इत्यादि	=	इति + आदि	(इ + आ = या)
प्रत्युपकार	=	प्रति + उपकार	(इ + उ = यु)
प्रत्येक	=	प्रति + एक	(इ + ए = ये)
देव्यर्पण	=	देवी + अर्पण	(ई + अ = य)
देव्यागण	=	देवी + आगण	(ई + आ = या)
नद्यर्पण	=	नदी + अर्पण	(ई + अ = य)
सख्युचित	=	सखी + उचित	(ई + उ = यु)
नद्यूर्मि	=	नदी + ऊर्मि	(ई + ऊ = यू)

अजन्त = अज् + अन्त
अब्ज = अप् + ज

दूसरा नियम—यदि किसी वर्ग के प्रथम अक्षर के बाद कोई अनुनासिक वर्ण आये तो प्रथम वर्ण के स्थान पर उसी का अनुनासिक वर्ण हो जाता है। जैसे :

वाङ्मय = वाक् + मय
षण्मास = षट् + मास
जगन्नाथ = जगत् + नाथ
चिन्मात्र = चित् + मात्र
अम्मय = अप् + मय

तीसरा नियम—यदि 'छ' से पहिले कोई स्वर हो तो 'छ' के स्थान पर 'च्छ' हो जाता है। जैसे :

आच्छादन = आ + छादन
परिच्छेद = परि + छेद

चौथा नियम—यदि त्, द् के आगे 'श्' हो तो 'त्' या 'द्' के स्थान पर 'च्' और 'श्' के स्थान पर 'छ्' हो जाता है। यदि 'त्' या 'द्' के आगे 'ह्' हो तो 'त्' या 'द्' के स्थान पर 'द्' तथा ह् के स्थान पर 'ध्' हो जाता है। जैसे :

सच्छास्त्र = सत् + शास्त्र
उच्छ्वास = उत् + श्वास
तद्धित = तत् + हित
उद्धार = उत् + हार

पाँचवाँ नियम—यदि 'त्' या 'द्' के आगे 'च्' या 'छ्' हो तो 'त्' या 'द्' के स्थान पर 'च्' हो जाता है। यदि 'त्' या 'द्' के आगे 'ज्' 'झ' हो तो 'ज्' हो जाता है और यदि 'ट्' या 'ड्' हो तो 'ड्' और ल् हो तो 'ल्' हो जाता है। जैसे :

उच्चारण = उत् + चारण
शरच्चन्द्र = शरत् +
सच्छात्र = सत् +

नौवाँ नियम—यदि किसी स्वर के आगे 'अ' 'आ' को छोड़ कर ऐसा शब्द हो जिसका पहिला अक्षर 'स' हो तो 'स' के स्थान पर 'ष' हो जाता है। जैसे .

विषम	=	वि	+	सम
निषिद्ध	=	नि	+	सिद्ध
अभिषेक	=	अभि	+	सेक
सुषुमा	=	सु	+	समा
सुषुप्त	=	सु	+	सुप्त
अनुष्ठान	=	अनु	+	स्थान

दसवाँ नियम—यदि यौगिक शब्दों में प्रथम शब्द के अन्त में 'न' हो तो उसका लोप हो जाता है। जैसे

राजाज्ञा	=	राजन्	+	आज्ञा
प्राणीमात्र	=	प्राणीन्	+	मात्र

विसर्ग सन्धि

व्यञ्जन सन्धि की तरह विसर्ग सन्धि के भी कुछ नियम हैं, जो इस प्रकार हैं

पहिला नियम—यदि विसर्ग के पहिले 'अ' हो और बाद में क, ख, प, फ, में से कोई वर्ण हो तो विसर्ग में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। जैसे

मनःकामना	=	मनः	+	कामना
अन्तःकरण	=	अन्तः	+	करण
प्रातःकाल	=	प्रातः	+	काल
पयःपान	=	पयः	+	पान
पयःफेन	=	पयः	+	फेन
अधःपतन	=	अधः	+	पतन
तेजःपुञ्ज	=	तेजः	+	पुञ्ज

दूसरा नियम—यदि विसर्ग के पहिले 'इ' या 'उ' हो और बाद में 'क', 'ख', 'प', 'फ' हो तो विसर्ग का लोप होकर 'ष्' हो जाता है। जैसे :

निस्तेज	=	निः	+	तेज
दुस्तर	=	दुः	+	तर

पाँचवाँ नियम—यदि विसर्ग के बाद 'श', 'ष', 'स' में से कोई वर्ण आवे तो विसर्ग ज्यों का त्यों रहता है, जैसे :

दुःशासन	=	दुः	+	शासन
निःशेष	=	निः	+	शेष
पुरःसर	=	पुरः	+	सर
निःसन्देह	=	निः	+	सन्देह

छठा नियम—यदि विसर्ग के पहले 'अ', 'आ' को छोड़ कर कोई अन्य स्वर हो तथा आगे कोई घोष वर्ण हो तो विसर्ग के स्थान पर 'र्' हो जाता है। जैसे :

निराशा	=	निः	+	आशा
निरीक्षण	=	निः	+	ईक्षण
निरुत्तर	=	निः	+	उत्तर
निर्गुण	=	निः	+	गुण
निर्घोष	=	निः	+	घोष
निर्जन	=	निः	+	जन
निर्झर	=	निः	+	झर
निर्दय	=	निः	+	दय
बहिर्मुख	=	बहिः	+	मुख
दुराशा	=	दुः	+	आशा
प्रादुर्भाव	=	प्रादुः	+	भाव
दुर्लभ	=	दुः	+	लभ

सातवाँ नियम—यदि विसर्ग के आगे 'र' हो तो विसर्ग का लोप करके पूर्व स्वर दीर्घ कर दिया जाता है, जैसे :

नीरस	=	निः	+	रस
नीरोग	=	निः	+	रोग
अन्तर्राष्ट्रीय	=	अन्तः	+	राष्ट्रीय

शब्द विचार

अक्षरों से शब्द बनते हैं। शब्द वह ध्वनि है जो कानों से सुनाई पड़ती है। शब्द दो प्रकार के होते हैं—(१) सार्थक और (२) निरर्थक। सार्थक शब्द उन शब्दों को कहते हैं जिनसे किसी अर्थ का बोध होता है; और निरर्थक शब्द उन शब्दों को कहते हैं जिनसे किसी अर्थ का बोध नहीं होता।

सार्थक शब्दों का वर्गीकरण चार प्रकार से किया जाता है :

(१) उत्पत्ति के अनुसार (२) व्युत्पत्ति के अनुसार
(३) अर्थ के अनुसार और (४) परिवर्तन के अनुसार

[१] उत्पत्ति के अनुसार शब्दों के भेद

हमारी हिन्दी भाषा का मूल स्रोत संस्कृत है। उसे इस वर्तमान रूप में आते-आते अनेक प्रभावों से प्रभावित होना पड़ा है। हमारे देश में मुसलमानों और यूरोप-निवासियों के आगमन के कारण फारसी, अरबी, अंग्रेजी, फ्रेंच, पोर्तुगीज, डच तथा इसी प्रकार की अन्य भाषाओं के शब्द भी आये हैं और अब ये सब हमारी हिन्दी भाषा का ही अंग बन गये हैं। अतः हिन्दी भाषा में प्रमुखतः पाँच प्रकार के शब्द ही पाये जाते हैं—(अ) तत्सम, (आ) तद्भव, (इ) देशज, (ई) अनुकरण-वाचक, एवं (उ) विदेशी।

(अ) तत्सम वे शब्द हैं जो मूल संस्कृत से आये हैं और बिना किसी विकार के ज्यों के त्यों हिन्दी भाषा के अङ्ग बन गये हैं, जैसे : श्री, चन्द्र, अग्नि, वरुण, सूर्य, ज्ञान, छिद्र आदि।

(आ) तद्भव वे शब्द हैं जो मूलतः संस्कृत के ही हैं, किन्तु अब विकृत रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे : सूरज (सूर्य), चाँद (चन्द्र), काठ (काष्ठ), गाँव (ग्राम), आग (अग्नि) आदि।

(इ) देशज वे शब्द हैं जो संस्कृत भाषा से न तो तत्सम रूप में आये हैं न तद्भव रूप में, किन्तु हिन्दी भाषा में विद्यमान हैं और हमको

उत्पत्ति का ठीक-ठीक पता नहीं है। जैसे : लोटा, कटोरा, जूता, ..., टहनी आदि।

(ई) अनुकरण-वाचक शब्द उन शब्दों को कहते हैं जिनका निर्माण पशु-...ओं की बोली या पदार्थों के अनुकरण के आधार पर हुआ है, जैसे : ...कूं, म्याऊ-म्याऊ आदि।

(उ) विदेशी वे शब्द हैं जो विदेशियों के सम्पर्क से हमारी भाषा में ...गये हैं। ये न संस्कृत के तत्सम व तद्भव शब्द हैं न देशज। ये विदेशी ...भाषाओं के शब्द हैं और हिन्दी में घुल-मिलकर हमारी भाषा के ही अङ्ग वन गये हैं। जैसे : अंग्रेजी के टिकट, कार्ड, पार्सल, मेल, स्टेशन पेन्सिल आदि; पुर्तगाल के पादरी, गिर्जा, अस्पताल आदि। अरवों के कागज, वुखार, जरूरत, गरीव आदि, और फ़ारसी के सिक्का, गुलाव, लगाम गवाह आदि।

२. व्युत्पत्ति के अनुसार शब्दों के भेद

व्युत्पत्ति के अनुसार शब्दों के तीन भेद होते हैं—(अ) रूढ़ि, (आ) ...गिक (इ) योगरूढ़ि।

(अ) रूढ़ि शब्द वे हैं जो किसी से वने हुए प्रतीत नहीं होते। यदि ल... करके भी उनका अर्थ निकालने का प्रयत्न किया जाता है तो उससे भी उनका कोई अर्थ नहीं निकलता है, जैसे : कुत्ता, विल्ली, हाथी, कौआ आदि।

(आ) योगिक उन शब्दों को कहते हैं जिनका निर्माण किन्हीं दो या दो से अधिक शब्दों के योग से हुआ है। यदि हम उनके खण्ड करें तो सरलता से अर्थ निकलता है, जैसे : स्वानुभव, राजपथ, स्वाभिमान सज्जन आदि।

(इ) योगरूढ़ि उन शब्दों कहते हैं जो योगिक शब्दों की त... यद्यपि दो या दो से अधिक शब्दों से वने हुए होते हैं तथापि उनका अ... विशेष अर्थ होता है, जैसे : दशानन, पञ्चानन, पवनसुत, यशोदान... जानकीवल्लभ आदि।

अभ्यास

१—शब्द किसे कहते हैं ?

२—उत्पत्ति के अनुसार शब्दों के कितने भेद हैं ? प्रत्येक को उदाहरण देकर समझाइये ।

३—व्युत्पत्ति के अनुसार शब्दों के कितने भेद होते हैं ? योगरूढ़ि शब्दों के पाँच उदाहरण दीजिये ।

४—परिवर्त्तन के अनुसार शब्दों के कितने भेद होते हैं, बताइये ।

५—विकारी और अविकारी शब्दों का भेद समझाइये ।



विकारी-शब्द

शब्दों के उस समूह को जो कहने वाले का आशय पूरी तरह प्रकट कर देता है वाक्य कहते हैं। वाक्य में प्रयोग के अनुसार साधारणतः शब्द तीन प्रकार के होते हैं—संज्ञा, क्रिया, और अव्यय।

संज्ञा

किसी मनुष्य, स्थान, वस्तु या गुण के नाम को संज्ञा कहते हैं। संज्ञा के तीन भेद होते हैं—(१) व्यक्ति-वाचक (२) जाति-वाचक (३) भाव-वाचक।

(१) व्यक्ति-वाचक संज्ञा—जिस संज्ञा से एक जाति की एक वस्तु अथवा व्यक्ति का बोध हो उसे व्यक्ति-वाचक संज्ञा कहते हैं, जैसे : मोहन, हिमालय, गङ्गा, बम्बई, कैलाश आदि।

(२) जाति-वाचक संज्ञा—जिस संज्ञा से एक जाति की एक से अधिक वस्तुओं का बोध हो उसे जाति-वाचक संज्ञा कहते हैं, जैसे : नदी, पशु, पक्षी, मनुष्य, वैश्य आदि।

(३) भाव-वाचक संज्ञा—जिस संज्ञा से किसी वस्तु या पदार्थ में स्थिति, गुण, दोष आदि का बोध हो उसे भाव वाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे : गहराई, मिठास, ऊँचाई, विनयशीलता, सुन्दरता आदि।

लिंग

जिस रूप से वस्तु की जाति का बोध होता है। उसे लिंग कहते हैं। लिंग दो प्रकार के होते हैं (१) पुल्लिंग और (२) स्त्रीलिंग।

(१) पुल्लिंग—पुरुषजाति के बोधक शब्द को पुल्लिंग कहते हैं, जैसे : लड़का, बैल, बकरा, हाथी, शेर आदि।

(२) स्त्रीलिंग—स्त्रीजाति के बोधक शब्द को स्त्रीलिंग कहते हैं, जैसे : लड़की, गाय, बकरी, हथिनी, शेरनी आदि।

वस्तुतः जिन जीवधारियों का जोड़ा होता है और नर व मादा का [illegible] प्रयोग भाषा में होता है उनका लिङ्ग-भेद यथार्थ है और [illegible] जानना भी सरल पड़ता है किन्तु दूसरी वस्तुओं का लिङ्ग-भेद [illegible] होता है और प्रयोग से ही जाना जाता है।

वचन

संज्ञा या दूसरे विकारी शब्दों के रूप से संख्या का बोध होता है उसे 'वचन' कहते हैं। वचन दो प्रकार के होते हैं (१) एक-वचन और (२) बहु-वचन।

(१) एक-वचन—जिस शब्द से एक वस्तु का बोध होता है उसे एक-वचन कहते हैं जैसे : पुस्तक, पक्षी, पेटी, नदी आदि।

(२) बहु-वचन—जिस शब्द से एक से अधिक वस्तुओं का बोध होता है उसे बहु-वचन कहते हैं। जैसे : पुस्तकें, पक्षियाँ, पेटियाँ, नदियाँ आदि।

कुछ ऐसे भी शब्द हैं जिनका रूप दोनों वचनों में एक ही रहता है जैसे :

एक-वचन	बहु-वचन
वह बालक आ रहा है।	वे बालक आ रहे हैं।

आदर के लिए भी बहु-वचन का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ [illegible] आदि [illegible] रहे हैं, महारानी जा रही हैं, सन्त तुलसीदास कहते हैं।

कारक

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उसका सम्बन्ध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ—विशेषतः क्रिया के साथ—प्रकट होता है, उसे कारक कहते हैं। जैसे : सरकार ने उत्तर प्रदेश में नदियों से एक बड़ा बाँध बनवाया। इस वाक्य में 'सरकार ने', 'उत्तर प्रदेश में', 'नदियों से', 'बाँध' आदि संज्ञाओं के रूपान्तरों के द्वारा उनका सम्बन्ध क्रिया के साथ सूचित

होता है। कारक आठ हैं–कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण और सम्बोधन।

(१) कर्त्ता—क्रिया के करने वाले को कर्त्ता कारक कहते हैं।

(२) कर्म—जिस वस्तु पर क्रिया के व्यापार का फल पड़ता है, उसे सूचित करने वाले संज्ञा के रूप को कर्म कारक कहते हैं।

(३) करण—जिस साधन से क्रिया होती है उसे सूचित करने वाले रूप को करण कारक कहते हैं।

(४) सम्प्रदान—जिसको कुछ दिया जाता है या जिसके लिए कोई क्रिया की जाती है उसे सूचित करने वाले रूप को सम्प्रदान कारक कहते हैं।

(५) अपादान—जिस वस्तु का किसी से पृथक् होना पाया जाता है उसे अपादान कारक कहते हैं।

(६) सम्बन्ध—जिस वस्तु का लगाव किसी दूसरी वस्तु से प्रकट होता है वह सम्बन्ध कारक होता है।

(७) अधिकरण—क्रिया का आधार अर्थात् समय, स्थान आदि सूचित करने के लिए जो रूप काम में लिया जाता है उसे अधिकरण कारक कहते हैं।

(८) सम्बोधन—संज्ञा के जिस रूप से किसी को पुकारना सूचित होता है उसे सम्बोधन कारक कहते हैं।

संस्कृत भाषा में सम्बोधन कारक को छोड़ कर सभी कारकों को विभक्तियों के नाम से पुकारा जाता है। प्रत्येक कारक की विभक्ति और चिह्न निम्न प्रकार हैं

कारक	विभक्तियाँ	चिह्न
कर्त्ता	प्रथमा	ने
कर्म	द्वितीया	को
करण	तृतीया	से
सम्प्रदान	चतुर्थी	के लिए, को
अपादान	पञ्चमी	से (सम्बन्ध-विच्छेद)
सम्बन्ध	षष्ठी	का,की,के,रा,री,रे,ना,नी,ने,
अधिकरण	सप्तमी	में, पै, पर
सम्बोधन	अष्टमी	हे, हो

अभ्यास

१—संज्ञा किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद हैं ?
२—लिङ्ग कितने प्रकार के होते हैं ?
३—वचन से आप क्या समझते हैं ? ऐसे तीन शब्द बताओ जिनका रूप दोनों वचनों में एक ही रहता है।
४—कारक कितने हैं ? उनकी विभक्तियां चिह्न सहित बताओ।
५—सर्वनाम कितने प्रकार के होते हैं ? अनिश्चय-वाचक और सम्बन्ध वाचक सर्वनाम को सोदाहरण समझाइये।
६—विशेषण और विशेष्य से आप क्या समझते हैं ?
७—परिमाण वाचक और संज्ञा-वाचक विशेषण की परिभाषा लिखिये।
८—क्रिया कितने प्रकार की होती हैं ?
९—क्या अकर्मक और सकर्मक क्रिया के अतिरिक्त भी क्रिया के कोई अन्य भेद होते हैं ? यदि हां तो कितने ?
१०—वाच्य किसे कहते हैं ? वाच्य परिवर्तन से आप क्या समझते हैं ?
११—काल किसे कहते हैं ? भूतकाल के भेदों का सविस्तार वर्णन कीजिये।

---

(१) अधिक-वाचक	अधिक, अत्यन्त, बहुत, बड़ा।
(२) न्यूनता-वाचक	कम, थोड़ा, अल्प।
(३) पर्याप्ति वाचक	ठीक, बस, पर्याप्त।
(४) तुलना-वाचक	जितना, उतना।
(५) श्रेणी-वाचक	थोड़ा, एक-एक करके।

१. सम्बन्ध-वाचक अव्यय—

जो अविकारी शब्द संज्ञा या सर्वनाम के शब्दों से पहिले और पीछे उनका सम्बन्ध किसी अन्य शब्द से कराये वे सम्बन्ध-बोधक अव्यय कहे जाते हैं। जैसे : तुल्य, समान, मध्य, भीतर, निकट, योग्य, सामने आदि।

२. समुच्चय-बोधक अव्यय—

जो अविकारी शब्द दो शब्दों अथवा दो वाक्यों को मिलाते हैं उन्हें समुच्चय-बोधक अव्यय कहते हैं। जैसे : और, तथा, एवं आदि। समुच्चय-बोधक दो प्रकार के होते हैं—(१) संयोजक (२) विभाजक।

(१) संयोजक—वे अव्यय जो दो शब्दों को मिलाते हैं संयोजक अव्यय कहे जाते हैं। जैसे : तो, भी, जो, तथापि, तथा, यदि, तथा आदि।

(२) विभाजक—जो अविकारी शब्द दो शब्दों या वाक्यों को जोड़ते हुए भी भाव को भिन्न ही रखें उन्हें विभाजक अव्यय कहते हैं। जैसे : अथवा, पर, लेकिन, अपितु, वरना, या, वा, बल्कि आदि।

३. विस्मयबोधक अव्यय—

जो अविकारी शब्द विस्मय, आश्चर्य, हर्ष, घृणा, शोक आदि प्रकट करें उन्हें विस्मयादि बोधक अव्यय कहते हैं। जैसे : अरे !, ओ हो !, हे !, धिक् !

अभ्यास

१—अविकारी शब्दों से आप क्या समझते हैं ?

२—क्रिया-विशेषण के कितने भेद हैं ? उनके नाम बताओ।

३—रीति-वाचक क्रिया-विशेषण के भेद उदाहरण सहित बताइये।

४—निम्नलिखित वाक्यों में से क्रिया-विशेषण पहिचान कर कि ये किस प्रकार के क्रिया-विशेषण हैं ?

तद्भव और तत्सम शब्द

तद्भव	तत्सम
अकाज	अकार्य्य
अच्छत	अक्षत
अंगूठा	अंगुष्ठ
अगाड़ी	अग्राड़ी
अच्छर	अक्षर
अजान	अज्ञान
अटारी	अट्टालिका
अठारह	अष्टादश
अनत	अन्यत्र
अनमना	उन्मन
अपूत	अपुत्र
अमिय	अमृत
अमोल	अमूल्य
रपन	अर्पण
असीस	आशिष
अस्तुति	स्तुति
अहीर	आभीर
आक	अर्क
आँख	अक्षि
आग	अग्नि
आँगन	अङ्गण
आँचर	अञ्चल
आज	अद्य
आँसू	अश्रु
आठ	अष्ट

तद्भव	तत्सम
आयस	आदेश
आरज	आर्य
आलस	आलस्य
इमली	अम्लीका
ईख	ईक्षु
उँगली	अंगुलि
उछाह	उत्सव
उपास	उपवास
ऊँचा	उच्च
उल्लू	उलूक
उसास	उच्छ्वास
ओठ	ओष्ठ
औगुण	अवगुण
औतार	अवतार
फागुन	फाल्गुण
कछुआ	कच्छप
कड़वा	कटु
कञ्चन	काञ्चन
कतरनी	कर्तरी
कपूर	कर्पूर
कबूतर	कपोत
कंध	स्कन्ध
कपूत	कुपुत्र
करम	कर्म

तद्भव और तत्सम शब्द

तद्भव	तत्सम
अकाज	अकार्य्य
अच्छत	अक्षत
अंगूठा	अंगुष्ठ
अगाड़ी	अग्राड़ी
अच्छर	अक्षर
अजान	अज्ञान
अटारी	अट्टालिका
अठारह	अष्टादश
अनत	अन्यत्र
अनमना	उन्मन
अपूत	अपुत्र
अमिय	अमृत
अमोल	अमूल्य
	अर्पण
	आशिष
स्तुति	स्तुति
अहीर	आभीर
आक	अर्क
आंख	अक्षि
आग	अग्नि
आंगन	अङ्गण
आंचर	अञ्चल
आज	अद्य
आंसू	अश्रु
आठ	अष्ट

तद्भव	तत्सम
आयस	आदेश
आरज	आर्य
आलस	आलस्य
इमली	अम्लीका।
ईख	ईक्षु
उंगली	अंगुलि
उछाह	उत्सव
उपास	उपवास
ऊंचा	उच्च
उल्लू	उलूक
उसास	उच्छ्वास
ओठ	ओष्ठ
औगुण	अवगुण
औतार	अवतार
कङ्गन	कङ्कण
कछुआ	कच्छप
कड़वा	कटु
कञ्चन	काञ्चन
कतरनी	कर्तरी
कपूर	कर्पूर
कबूतर	कपोत
कंध	स्कन्ध
कपूत	कुपुत्र
करम	कर्म

द्भव	तत्सम
चोंच	चञ्चु
चोकोर	चतुष्कोण
चोखट	चतुष्काष्ठ
चौदह	चतुर्दश
चौथा	चतुर्थ
चौपाया	चतुष्पद
चौबे	चतुर्वेदी
चौमासा	चतुर्मास
छः	षट्
छकड़ा	शकट
छत्री	क्षत्रिय
छाता	छत्र
छमा	क्षमा
छिन	क्षण
छीन	क्षीण
द	छिद्र
ती	यति
जथा	यथा
जनेऊ	यज्ञोपवीत
जन्त्र	यन्त्र
जम	यम
जसोदा	यशोदा
जाचक	याचक
जामिनी	यामिनी
जांघ	जङ्घा
जीभ	जिह्वा
जुग	युग
जुगत	युक्ति

तद्भव	तत्सम
जूआ	द्यूत
जेठ	ज्येष्ठ
जोति	ज्योति
जोतिष	ज्योतिष
जोधा	योद्धा
जौ	यव
जोबन	यौवन
टकसाल	टङ्कशाला
डङ्क	दंश
तम्बोली	ताम्बूली
ताम्बा	ताम्र
तासु	तस्य
तिगुन	त्रिगुण
तीखा	तीक्ष्ण
तीरथ	तीर्थ
तेरस	त्रयोदशी
तिरसूल	त्रिशूल
थन	स्तन
थल	स्थल
थान	स्थान
दतौन	दन्तधाव
दही	दधि
दाद	दद्रु
दिया	दीप
दिवाली	दीपाव
दीठ	दृष्टि
दुबला	दुर्ब

तद्भव	तत्सम	तद्भव	तत्सम
दूजा	द्वितीय	परग	स्पर्श
दूध	दुग्ध	पसीना	प्रस्वेद
दूब	दूर्वा	पन्द्रह	पंचदश
धतूरा	धत्तूर	पलङ्ग	पर्यङ्क
धीरज	धैर्य	पहर	प्रहर
धेवता	दौहित्र	पांत	पंक्ति
धोती	धौत्र	पात	पत्र
नखत	नक्षत्र	पांचवां	पंचम
नाई	नापित	पांव	पाद
नाक	नासिका	पास	पार्श्व
नाच	नृत्य	पाटी	पट्टिका
नारियल	नारिकेलि	पापड़	पर्पट
निवाह	निर्वाह	पाहन	पाषाण
नींद	निद्रा	पिय	प्रिय
नीबू	निम्बूक	पितर	पितृ
निठुर	निष्ठुर	पीपल	पिप्पल
नीम	निम्ब	पूछ	पुच्छ
नेवला	नकुल	पूरा	पूर्ण
नौमी	नवमी	पोथी	पुस्तिका
नौ	नव	पौन	पवन
पकवान	पक्वान्न	प्यास	पिपासा
पचास	पंचाशत्	प्रगट	प्रकट
पतोहू	पुत्रवधू	फन्दा	पाश
पत्थर	प्रस्तर	फटिक	स्फटिक
पन	प्रण	फरसा	परशु
पनही	पनाही	फुर्ती	स्फूर्ति
परख	परीक्षा	फुनगा	पुङ्ख

तद्भव	तत्सम
फोड़ा	स्फोटक
बकरा	बर्कर
बचन	वचन
बच्चा	वत्स
बछड़ा	वत्स
बहरा	बधिर
बड़	वट
बरात	वरयात्रा
बहिन	भगिनी
बहनोई	भगिनीपति
बहिरा	बधिर
बहू	वधू
बांस	वंस
बांसुरी	वंशी
बिगाड़	विग्रह
बिघन	विघ्न
बिजली	विद्युत्
बिथा	व्यथा
बिदिया	वेला
बींट	विष्ठा
बैगन	वार्तिकी
बैन	वाणी
ब्याह	विवाह
भंवर	भ्रमर
भतीजा	भ्रातृज
भरम	भ्रम
भानजा	भागिनेय
	भाद्र

तद्भव	तत्सम
भाभी	भ्रातृवधू
भावज	भ्रातृजाया
भीख	भिक्षा
भीतर	अभ्यन्तर
भूखा	बुभुक्षु
भौंह	भ्रू
मकड़ी	मर्कट
मक्खी	मक्षिका
मग	मार्ग
मगर	मकर
मच्छ	मत्स्य
मच्छर	मशक
मछली	मत्स्य
मनिहार	मणिकार
मरघट	मृतघट्ट
मशहरी	मशकह
मसान	श्मशा
मामा	मातु
मारग	मार्ग
मावस	अम
मिर्च	मा
मीत	मि
मोगरी	
रतालु	
राजपूत	
रात	
रीछ	

तद्भव	तत्सम	तद्भव	तत्सम
लंगूर	लाँगूल	सुहाग	सौभाग्य
लच्छन	लक्षण	सूअर	शूकर
लछमी	लक्ष्मी	सूआ	शुक
लहसन	लहशुन	सूँड़	शुण्ड
लीपना	लेपन	सूत	सूत्र
लुहार	लौहकार	सूना	शून्य
लौंग	लवङ्ग	सूर	शूर
लोढ़ा	लोष्ट	सेंध	सन्धि
लोमड़ी	लोमशा	सेमल	शाल्मली
शीशम	शिंशपा	सोना	स्वर्ण
सतसई	सप्तशति	हथनी	हस्तिनी
सनीचर	शनिश्चर	हल्दी	हरिद्रा
सबेरा	सुवेला	हिरण	हरिण
सरवर	सरोवर	हींग	हिंगु
सरसों	सर्षप	हीरा	हीरक
सलाई	शलाका	हुलास	उल्लास
ससुर	श्वशुर	होंठ	ओष्ठ
साँप	सर्प	होतव	भवितव्य
साखी	साक्षी	होली	होलिका
साग	शाक	हिय	हृदय
साठी	साटी	हाथ	हस्त
साली	श्याली	हरख	हर्ष
साला	श्याला	हत्यारा	हत्याकार
सास	श्वश्रू	हाँडी	हण्डी
सिंगार	शृङ्गार	हाँक	हुङ्कार
सींग	शृङ्ग	हँसी	हास्य
सीख	शिक्षा	हिंडोला	हिन्दोला
सीढ़ी	श्रेणी	हाट	हट्ट
सुनार	स्वर्णकार	हाथी	हस्ती
सुमिरन	स्मरण	हुलसन	उल्लसन
ससुराल	श्वशुरालय	हरा	हरित

पर्यायवाची, विपरीतार्थक एवं अनेकार्थक शब्द

१—पर्यायवाची शब्द

भाषा में एक ही अर्थ को बतलाने वाले प्रायः कई शब्द होते हैं। यहाँ इसी प्रकार के कुछ शब्द दिये जा रहे हैं :

अग्नि—अनल, कृशानु, पावक, वह्नि, ज्वाला, वैश्वानर, दहन, हुताशन।

अनादर—अपमान, परिभव, निरादर, तिरस्कार, अवहेलना, अवज्ञा।

अमृत—सुधा, अमी, पीयूष, सुरभोग, सोम।

अरण्य—वन, विपिन, कानन, जङ्गल, अटवी।

अन्धकार—तम, तिमिर, अन्धेरा, तमिस्र, ध्वान्त।

आकाश—अन्तरिक्ष नभ, अम्बर, व्योम, गगन, तारापथ, अनन्त।

आम—रसाल, आम्र, सहकार, मधुदूत, पिकबन्धु, कोपी,

आँख—नयन, नेत्र, दृग, लोचन, चक्षु, विलोचन, अक्षि, दृग।

आनन्द—हर्ष, आह्लाद, प्रसन्नता, सुख, मोद, प्रमोद।

इच्छा—आकांक्षा, स्पृहा, लिप्सा, मनोरथ, लालसा, कामना, अभिलाषा।

इन्द्र—सुरेश, पुरन्दर, शक्र, वासव, सुरपति, पर्वतारि, देवेन्द्र, मघवा।

कमल—नलिन, शतदल, अरविन्द, राजीव, कोकनद, सरोज, अम्बुज, वारिज, जलज, तामरस, पङ्कज, सारङ्ग, शतपत्र, उत्पल।

कल्पवृक्ष—सुरतरु, पारिजात, कल्पत, कल्पद्रुम, मन्दार, देववृक्ष।

कामदेव—मदन, अनंग, कंदर्प, मार, मन्मथ, मनसिज, पुष्पशर, मीनकेतु, काम, स्मर, प्रद्युम्न, मनोभव, पंचशर, रतिपति।

किरण—रश्मि, कर, अंशु, मरीचि, मयूख, दीधित।

कोकिल—पिक, वसन्त-दूत, कोयल, काकलीक, परभृत, वनप्रिय।

खल—अधम, पामर, नीच, दुष्ट, दुर्जन, कुटिल, धूर्त, लंठ।

गणेश—गणनायक, विनायक, विघ्नराज, एकदन्त, गजानन, लम्बोदर, वक्रतुण्ड, द्वैमातुर, शूर्पकर्ण, गणाधिप।

गङ्गा—भागीरथी, सुरसरि, त्रिपथगा, जाह्नवी, मंदाकिनी, देवापगा।

गाय—गौ, धेनु, सुरभि, गोरु, उस्रा, अघन्या।

घर—आगार, अयन, निकेतन, भवन, धाम, सदन, गृह, सद्म, निलय।
घोड़ा—तुरंग, तुरग, वाजि, अश्व, हय, घच्ची, घोटक, सैन्धव।
चन्द्रमा—निशापति, तारापति, शशि, इन्दु, सोम, विधु, सुधांशु, कलानिधि, क्षपाकर, रजनीश, मयंक, शशांक, द्विजराज।
चाँदनी—चन्द्रिका, कौमुदी, ज्योत्स्ना, हिमकर, चन्द्रमरीची, अमृत द्रव।
चाँदी—रजत, जातरूप, रवम, कलधौत, रौप्य, रूपा।
जल—पय, नीर, अम्बु, वारि, सलिल, उदक, तोय, जीवन, अप्।
जीभ—रसना, जिह्वा, रसज्ञा, रसिका।
झण्डी—ध्वजा, पताका, वैजयन्ती, कदलिका।
डरावना—भीषण, भीष्म, भयंकर, कराल, विकराल, भीम।
ढाक—पलाश, टेसू, केसू, किंशुक, रक्त पुष्पक, सुपर्णी।
तरकश—तूण, तूणीर निषंग, उपासङ्ग, तूणी, इषुधि।
तलवार—करवाल, खड्ग, असि, कृपाण, किरवान, चन्द्रहास।
तालाब—सर, सरोवर, तड़ाग, पुष्कर, ताल, कासार, जलाशय, सरसी
दाँत—दशन, रदन, दन्त, मुखखुर, द्विज।
दिन—दिवस, वासर, दिवा, वार, अहन्।
दुर्गा—भवानी, गौरी, गिरिजा, शिवा, उमा, चण्डी, पार्वती।
दूध—दुग्ध, क्षीर, पय।
देवता—देव, अमर, अमर्त्य, सुर, विबुध, वसु, वृन्दारक।
धन—वित्त, सम्पत्ति, अर्थ, द्रव्य, सम्पदा, दौलत, लक्ष्मी।
धनुष—चाप, शरासन, कोदण्ड, सायक।
नदी—सरिता, तटनी, तरंगिनी, निम्नगा, अपगा, सरि।
नाव—तरी, पोत, जलयान, नौका, नौ, तरिणी।
पक्षी—खग, विहंग, शकुनि, शकुन्त, पतंग, अण्डज।
पंडित—बुध, विद्वान्, सुधी, कोविद, प्राज्ञ, मनीषी।
पत्थर—अश्म, पाषाण, शिला, उपल, प्रस्तर, पाहन।
पर्वत—पहाड़, गिरि, धरणीधर, शैल, अद्रि, नग, महीधर, भूधर, अचल
पवन—वायु, समीर, वात, अनिल, पवमान, बयार, समीरण, मारुत।
प्रत्यञ्चा—शिञ्जिनी, मौर्वी, गुण, ज्या, गोदा, पनच।

पर्यायवाची, विपरीतार्थक एवं अनेकार्थक शब्द

१—पर्यायवाची शब्द

भाषा में एक ही अर्थ को बतलाने वाले प्रायः कई शब्द होते हैं। यहाँ इसी प्रकार के कुछ शब्द दिये जा रहे हैं :

अग्नि—अनल, कृशानु, पावक, वह्नि, ज्वाला, वैश्वानर, दहन, हुताशन।

अनादर—अपमान, परिभव, निरादर, तिरस्कार, अवहेलना, अवज्ञा।

अमृत—सुधा, अमी, पीयूष, सुरभोग, सोम।

अरण्य—वन, विपिन, कानन, जङ्गल, अटवी।

अन्धकार—तम, तिमिर, अन्धेरा, तमिस्र, ध्वान्त।

आकाश—अन्तरिक्ष नभ, अम्बर, व्योम, गगन, तारापथ, अनन्त।

आम—रसाल, आम्र, सहकार, मधुदूत, पिकबन्धु, कोषी,

आंख—नयन, नेत्र, दृग, लोचन, चक्षु, विलोचन, अक्षि, दृग।

आनन्द—हर्ष, आह्लाद, प्रसन्नता, सुख, मोद, प्रमोद।

इच्छा—आकांक्षा, स्पृहा, लिप्सा, मनोरथ, लालसा, कामना, अभिलाषा।

द्र—सुरेश, पुरन्दर, शक्र, वासव, सुरपति, पर्वतारि, देवेन्द्र, मघवा।

ल—नलिन, शतदल, अरविन्द, राजीव, कोकनद, सरोज, अम्बुज, वारिज, जलज, तामरस, पङ्कज, सारङ्ग, शतपत्र, उत्पल।

कल्पवृक्ष—सुरतरु, पारिजात, कल्पतरु, कल्पद्रुम, मन्दार, देववृक्ष।

कामदेव—मदन, अनंग, कंदर्प, मार, मन्मथ, मनसिज, पुष्पशर, मीनकेतु, काम, स्मर, प्रद्युम्न, मनोभव, पंचशर, रतिपति।

किरण—रश्मि, कर, अंशु, मरीचि, मयूख, दीप्ति।

कोकिल—पिक, वसन्त-दूत, कोयल, काकलीक, परभृत, वनप्रिय।

खल—अधम, पामर, नीच, दुष्ट, दुर्जन, कुटिल, धूर्त, लंठ।

गणेश—गणनायक, विनायक, विघ्नराज, एकदन्त, गजानन, लम्बोदर, वक्रतुण्ड, द्वैमातुर, शूर्पकर्ण, गणाधिप।

गङ्गा—भागीरथी, सुरसरि, त्रिपथगा, जाह्नवी, मंदाकिनी, देवापगा।

गाय—गौ, धेनु, सुरभि, गोरू, उस्रा, अघन्या।

घर—आगार, अयन, निकेतन, भवन, धाम, सदन, गृह, सद्म, निलय।
घोड़ा—तुरंग, तुरग, वाजि, अश्व, हय, घच्छी, घोटक, सैन्धव।
चन्द्रमा—निशापति, तारापति, शशि, इन्दु, सोम, विधु, सुधांशु, कलानिधि, क्षपाकर, रजनीश, मयंक, शशांक, द्विजराज।
चाँदनी—चन्द्रिका, कौमुदी, ज्योत्स्ना, हिमकर, चन्द्रमरीची, अमृत द्रव।
चाँदी—रजत, जातरूप, रुक्म, कलधौत, रौप्य, रूपा।
जल—पय, नीर, अम्बु, वारि, सलिल, उदक, तोय, जीवन, अप्।
जीभ—रसना, जिह्वा, रसज्ञा, रसिका।
झण्डी—ध्वजा, पताका, वैजयन्ती, कदलिका।
डरावना—भीषण, भीष्म, भयंकर, कराल, विकराल, भीम।
ढाक—पलाश, टेसू, केसू, किंशुक, रक्त पुष्पक, सुपर्णी।
तरकश—तूण, तूणीर निषंग, उपासङ्ग, तूर्णी, इषुधि।
तलवार—करवाल, खड्ग, असि, कृपाण, किरवान, चन्द्रहास।
तालाब—सर, सरोवर, तड़ाग, पुष्कर, ताल, कासार, जलाशय, सरसी
दाँत—दशन, रदन, दन्त, मुखखुर, द्विज।
दिन—दिवस, वासर, दिवा, वार, अहन्।
दुर्गा—भवानी, गौरी, गिरिजा, शिवा, उमा, चण्डी, पार्वती।
दूध—दुग्ध, क्षीर, पय।
देवता—देव, अमर, अमर्त्य, सुर, विबुध, वसु, वृन्दारक।
धन—वित्त, सम्पत्ति, अर्थ, द्रव्य, सम्पदा, दौलत, लक्ष्मी।
धनुष—चाप, शरासन, कोदण्ड, सायक।
नदी—सरिता, तटनी, तरंगिनी, निम्नगा, आपगा, सरि।
नाव—तरी, पोत, जलयान, नौका, नौ, तरिणी।
पक्षी—खग, विहंग, शकुनि, शकुन्त, पतंग, अण्डज।
पंडित—बुध, विद्वान्, सुधी, कोविद, प्राज्ञ, मनीषी।
पत्थर—अश्म, पाषाण, शिला, उपल, प्रस्तर, पाहन।
पर्वत—पहाड़, गिरि, धरणीधर, शैल, अद्रि, नग, महीधर, भूधर, अचल
पवन—वायु, समीर, वात, अनिल, पवमान, बयार, समीरण, मारुत।
प्रत्यञ्चा—शिंजिनी, मौर्वी, गुण, ज्या, गोधा, पनच।

पृथ्वी—भू, भूमि, अवनि, धरित्री, कु, वसुन्धरा, क्षोणी, अचला, वसुमती, वसुधा, मही, रसा, मेदिनी, पुहुमि, क्षिति।

पुरुष—मनुष्य, जन, मनुज, मानव, नर, मर्त्य।

पुत्र—सुत, तनय, आत्मज, औरस, तनुज, अपत्य।

पुत्री—सुता, तनया, आत्मजा, धीय, लड़की, तनुजा, दुहिता, सुता।

फूल—सुमन, प्रसून, पुष्प, कुसुम, पुहुप।

बादल—जलद, पयोद, वारिधर, जलधर, वारिवाह, सारंग, मेघ, नीरद, अम्बुद, जीमूत।

बन्दर—कपीश, हरि, मर्कट, शाखामृग, वानर, कपि, कीश।

बसन्त—ऋतुराज, मधु, माधव, कुसुमाकर, पिकानन्द।

बिजली—विद्युत्, चञ्चला, चपला, तड़ित, सौदामिनी, घनवाण, घनप्रिया।

बुद्धि—धी, मनीषा, प्रज्ञा, मेधा, मति।

बाग—आराम, उद्यान, उपवन, वाटिका, बगीचा।

ब्राह्मण—विप्र, भूदेव, भूमिसुर, द्विज, महीदेव, अग्रजन्मा, वेदपाठी।

भौंरा—अलि, मधुप, भृंग, मधुकर, भ्रमर, षट्पद, मिलिन्द, चंचरीक।

भौंह—भ्रू, भ्रकुटि, तन्द्रिका, प्रतीला, भौं, भव।

महादेव—शिव, त्रिलोचन, चन्द्रमौलि, त्रिपुरारि, नीलकण्ठ, शम्भु, शङ्कर, पशुपति, गौरीश, गङ्गाधर, महेश, उमापति, हर।

मछली—उलूपी, पाठीन, झष, जलज, मीन, मकर, मत्स्य।

मदिरा—मधु, शराब, मद्य, हाला, वारुणी, सुरा।

माला—सुमिरणी, मलिका, माल्य, दाम।

मित्र—सुहृद, तात, हितू, प्रिया, अभिन्न-हृदय, स्नेही।

मुकुट—किरीट, शेखर, कोटीर, मौलि, अवतन्स, उष्णीष।

मृग—कृष्णसार, हरिण, भीरु, हृदय, कुरंग, रुरु, करसायर।

मेंढक—दादुर, मण्डूक, भेक, शालूर, प्लव।

मोर—सारंग, केकी, शिखी, कलापी, नीलकण्ठ।

यम—काल, यमराज, शमन, सूर्य-पुत्र, महिषवाहन, कृतान्त।

यमुना—रवितनया, रविनन्दिनी, यमी, रविजा, कृष्णा, कालिन्दी।

राजा—नृप, नरेश, महीपति, भूपति, महीप, महिपाल, अवनीश, नरपति।

रात्रि—निशि, यामिनी, रैन, तमी, निशीथ, शर्वरी, रजनि, क्षपा।
राक्षस—निशिचर, निशाचर, यातुधान, मनुजाद, असुर, दानव, दैत्य।
लक्ष्मी—रमा, कमला, श्री, इन्दिरा, पद्मा, भार्गवी, सिन्धुसुता।
बाण—शिलीमुख, विशिख, तीर, सायक, शर, नाराच, तोमर।
विष—हलाहल, गरल, कालकूट, माहुर, धूलर।
विष्णु—नारायण, गरुडध्वज, चक्रपाणि, चतुर्भुज, जनार्दन, कमलापति।
श्रीकृष्ण—घनश्याम, केशव, माधव, मोहन, गोपाल, मुरलीधर, गिरि
वासुदेव, कंसारि, देवकीनन्दन, हृषीकेश।
शरीर—काया, तनु, कलेवर, वपु, गात्र, गात, अंग, देह।
शब्द—निर्घोष, स्वन, रव, ध्वनि, निनाद, नाद।
समुद्र—पयोधि, सिन्धु, तोयनिधि, अर्णव, सागर, उदधि, जलनि
वारीश, रत्नाकर, अब्धि, पारावार, दधि।
सिंह—मृगराज, पचानन, केहरि, शार्दूल, मृगरिपु, गजारि, वनराज।
सूर्य—भानु, पतंग, दिनेश, रवि, मार्तण्ड, आदित्य, दिनकर, भास
दिवाकर, सविता, तरणि, सूर, अंशुमाली, अर्क,
सरस्वति—शारदा, वाणी, गिरा, भारती, वीणा-पाणि, ब्राह्मी।
साँप—विषधर, मणिधर, अहि, पन्नग, उरग, नाग, भुजंग, व्याल, मा
सर्प, हरि, चक्षुश्रवा, द्विजिह्व।
सिर—मस्तक, माथा, शिर, मुण्ड, मौलि, शीश।
सेना—वरूथिनि, सैन्य, अनीक, अनी, दल, कटक, वाहिनी, चमू।
स्त्री—अबला, वनिता, कान्ता, भामा, तरुणी, नारी, कामिनी, दा
तिया, रमणी, बाला, युवती, महिला।
सोना—स्वर्ण, कंचन, कनक, सुवर्ण, कलधौत, हरि, हेम।
हनुमान्—पवनसुत, बजरंगी, कपीश्वर, महावीर, मारुति, रामदूत।
हाथी—गयन्द, करी गज, मतंग, कुंजर, कञ्जर, हस्ती।

२—विपरीतार्थक शब्द

कुछ ऐसे भी शब्द हैं जिनका अर्थ एकदम विपरीत या उल्टा

...दों का विपरीत अर्थ निम्नलिखित चार तरह से मालूम किया
है :

(अ) भिन्न शब्दों के द्वारा : हानि-लाभ, जीवन-मरण, शत्रु-मित्र, ...भ-अन्त, ऊँच-नीच, आकाश-पाताल, भला-बुरा, विष-अमृत, रात-... मूक-वाचक, सुख-दुःख, कठोर-कोमल, मोटा-दुबला, बुद्धिमान-... स्थूल-सूक्ष्म, स्वर्ग-नरक, ह्रस्व-दीर्घ, धनी-दरिद्र, गरीब-अमीर, ...धि-निषेध, हर्ष-शोक, पाप-पुण्य, राजा-रङ्क, नया-पुराना, पूरा-...क्रूरा, अपना-पराया, खरा-खोटा, गुण-दोष, उत्थान-पतन, सच-झूठ, ...जड़-चेतन, ज्येष्ठ-कनिष्ठ, शीत-उष्ण, निन्दा-स्तुति, कड़ुआ-मीठा, कृतज्ञ-कृतघ्न, उदय-अस्त, आय-व्यय, लेन-देन, छोटा-बड़ा आदि।

(आ) शब्द के आदि में 'अ', 'अन्' और 'निर' जैसे निषेधार्थक उपसर्गों के जोड़ने में भी विपरीतार्थक शब्द बनते हैं। विपरीतार्थक शब्द बनाते समय व्यञ्जन से प्रारम्भ होने वाले शब्दों में 'अ' जोड़ा जाता है और स्वर से आरम्भ होने वाले शब्दों में 'अन्' जोड़ा जाता है। जैसे : ...र्म-अधर्म, सत-असत, न्याय-अन्याय, चर-अचर, स्वस्थ-अस्वस्थ, ...ल्याण-अकल्याण, मङ्गल-अमङ्गल, टल-अटल, स्थिर-अस्थिर, चंचल-...ल, अन्त-अनन्त, आदि-अनादि, आतम-अनातम, आतुर-अनातुर, ...च्छा-अनिच्छा, ईश-अनीश, उचित-अनुचित, ऋत-अऋत, एक-अनेक, ...श्वर्य-अनैश्वर्य, आदर-निरादर आशा-निराशा, अभिमान-निरभिमान ...पराधी-निरपराधी आदि।

(इ) उपसर्ग जोड़ने से भी विपरीतार्थक शब्द बनते हैं। जैसे... ...म-विषम, जय-पराजय, क्रय-विक्रय, मान-अपमान, गुण-अवगुण, की... ...पकीर्ति, यश-अपयश, पक्ष-विपक्ष, श्वास-उच्छ्वास आदि।

(ई) भिन्न-भिन्न उपसर्गों के योग से भी विपरीतार्थक शब्द ... । जैसे : उन्नति-अवनति, प्रत्यक्ष-परोक्ष, संयोग-वियोग, सुगम-... ...र-दुष्कर, आयात-निर्यात, निर्गुण सगुण, स्वतन्त्र-परतन्त्र, नि... ...कार, उत्कृष्ट-निकृष्ट, अतिवृष्टि-अनावृष्टि, सरस-नीरस, अनुकूल-प्र... ...कार-अपकार, सुगन्ध-दुर्गन्ध, अनुराग-विराग, सधवा-विधवा, ... सुलभ-दुर्लभ, स्वदेश-विदेश।

३—अनेकार्थक शब्द

अंक—चिह्न, गोद, १, २, ३ आदि संख्याएं, नाटक-अंक, आंक ।
अज—बकरा, ब्रह्मा, दशरथ के पिता, जीव, ईश्वर ।
अक्रूर—मित्र, श्री कृष्ण के चाचा, कोमल स्वभाव ।
अम्बर—वस्त्र, आकाश ।
अरुण—सूर्य, लाली, सूर्य का सारथि ।
अर्क—इन्द्र, आक, सूर्य, विष्णु, तांबा ।
अर्थ—प्रयोजन, निमित्त, कारण, धन, अभिप्राय, लाभ ।
अशोक—मौर्यवंश का सम्राट्, एक पेड़, शोकरहित ।
अयन—घर, गति, चलना, स्थान, मार्ग, विषुवत्‌रेखा से उत्तर या दक्षिण सूर्य का रास्ता ।
इन्दु—कपूर, चन्द्रमा ।
इन्द्रवधु—इन्द्राणी, बीरबहूटी ।
कंक—कपट, युधिष्ठिर, ब्राह्मण, बगुला, कौआ ।
कनक—धतूरा, सोना ।
कर—महसूल, हाथ, सूंड, किरण, जड़, मशीन ।
कर्ण—कुन्ती का पुत्र, कान, समकोण, त्रिभुज में बड़ी भुजा ।
कर्ता—पहिला कारक, ईश्वर, करने वाला, स्वामी ।
कर्म—दूसरा कारक, काम, भाग्य ।
कल—आज का अगला और पहिला दिन, आराम, यन्त्र, दाव-पेंच, अ मधुर ध्वनि, वीर्य, चैन ।
कला—समय का भाग, अंश, चन्द्रमण्डल का सोलहवां गुण, छल ।
काल—समय, मृत्यु, यमराज, अकाल ।
कृष्ण—वासुदेव, अन्धकार, काला, कलियुग, कोयल ।
खग—मन, पक्षी, तीर, ग्रह, हवा ।
खाल—चमड़ा, धोकनी, गाड़ी, विमान ।
गति—मोक्ष, कर्म, क्रिया, उपाय, राह, ज्ञान, चाल, दशा ।
गुन—विशेषता, रस्सी, सत्व-रज-तम, हुनर, स्वभाव, धनुष की डोरी

गुरु—द्विमात्रिक अक्षर, पूज्य, बृहस्पति, शिक्षक, आचार्य, बड़ा भारी ।

गो—इन्द्रिय, आकाश, सूर्य, व्रज, दिशा, वाण, वाणी, पानी, पृथ्वी, किरण, स्वर्ग, गाय ।

चक्र—भूमंडल, चकवा, सेना, भीड़, व्यूह-रचना, घेरा, चाक, पहिया ।

चपला—लक्ष्मी, विजली ।

ज्येष्ठ—जेठ का महिना, श्रेष्ठ, वड़ा, पति का वड़ा भाई ।

तम—तमोगुण, अन्धेरा, एक प्रत्यय, राहु, तमाल ।

तात—भाई, मित्र, पुत्र, बाप, प्यारा ।

ताल—ताली बजाने का शब्द, ताला, एक वृक्ष, तालाब ।

दक्ष—चतुर, ब्रह्मा का पुत्र ।

दण्ड—यमराज का अस्त्र, दमन, एक घड़ी समय, सजा, लाठी, एक व्यायाम, राजनीति का एक अंग ।

दर्शन—देखना, भेंट, दर्पनशास्त्र, आंख ।

दल—पक्ष, मोटाई, खण्ड, समूह, सोना, पत्ता ।

—राजनीति का दूसरा अङ्ग, ध्वजा, माला, रस्सी, माल्य ।

—सार वस्तु, द्रवित होने वाला पदार्थ, औषधि, घन ।

द्विज—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, दांत, पक्षी, केश ।

द्विजराज—ब्राह्मण, चन्द्रमा, गरुड़, शिव ।

धर्मराज—यमराज, युधिष्ठिर, जिनेन्द्र, बुद्ध ।

ध्रुव—ध्रुव भक्त, अटल, सत्य, ध्रुव तारा, केन्द्र ।

नकुल—युधिष्ठिर का भाई, पुत्र, महादेव, नेवला, वंशरहित ।

नग—नगीना, वृक्ष, पर्वत, संख्या ।

नन्दन—इन्द्र का बाग, पुत्र, सुखदायक ।

नाक—स्वर्ग, प्रतिष्ठा, नासिका ।

नाग—सांप, हाथी, नाग केशर ।

नायक—सेनापति, मुखिया, नाटक का प्रधान पात्र, प्रेमाभिलाषी ।

नीलकण्ठ—एक पक्षी, मोर, महादेव ।

पञ्चानन—सिंह, पंचमुखी, महादेव ।

पय—दूध, पानी।
पद—पद्य, पाँव, स्थान, प्रतिष्ठा, विभक्ति युक्त शब्द।
पयोधर—स्तन, पर्वत, बादल, गन्ना।
पुष्कर—एक तीर्थ, हाथी की सूँड का अग्रभाग, जल, तालाव, कमल, आकाश
पुर—नगर, शरीर, एक राक्षस का नाम, भरापूरा, घर।
फल—लाभ, नतीजा, भाले की नोंक, सन्तान, खाद्यपदार्थ।
भव—महादेव, जन्म, संसार, कुशलक्षेम।
माधव—श्रीकृष्ण, वसन्त ऋतु, वैशाख, महुआ।
मान—घमण्ड, नाप, मूल्य।
मुद्रा—आकृति, टकसाल, छाप, रुपया, अंगूठी।
मूल—वंश, पूँजी, उन्नीसवाँ नक्षत्र, जड़।
मृग—पाँचवाँ नक्षत्र, हरिण, पशुमात्र, हाथी।
यन्त्र—ताला, औजार, बाजा, टोटका।
योग—योग्य, समाधि, शुभ-घड़ी, मेल।
रक्त—रुधिर, लाल।
रङ्ग—वर्ण, ढंग, खेल, आनन्द।
रचना—बनाना, सजावट, ग्रन्थ।
रजत—सोना, हार, सफेद, दाँत, हाथी, चाँदी।
रस—स्वाद, अर्क, पारा, कविता के नवरस, राग, गुण, पानी।
राग—क्रोध, मोह, रङ्ग, प्यारा, गीत।
लघु—छोटा, दीन, ह्रस्व, स्वर, दुष्ट, सुन्दर, हल्का।
लय—स्वर, तान, टेर, नाश, लीन।
लोक—भुवन, मनुष्य।
वटु—बालक, विद्यार्थी, ब्रह्मचारी।
वत्स—बालक, बछड़ा, वर्ष, प्यार का शब्द।
वन—स्थान, जङ्गल, पानी।
वर—वरदान, पति, श्रेष्ठ।
वर्ग—चार भुज का क्षेत्र जिसकी चारों भुजाएँ समान हों तथा चारों समकोण हों, किसी अङ्क को उसी से गुणा करना

वर्ण—अक्षर, जाति, रङ्ग ।

वसु—रत्न, किरण, जल, आठ देवता, अग्नि, लगाम ।

विग्रह—कलह, शरीर, भाग, आकार, विस्तार ।

विधि—भाग्य, ब्रह्म, रीति, शास्त्र में कही हुई नीति ।

विहंगम—तीर, पक्षी, बादल, चन्द्र, सूर्य ।

श्री—विष्णु की पत्नी, लक्ष्मी, धन, शोभा ।

संज्ञा—सूर्य की पत्नी, नाम, बुद्धि, चेतना, गायत्री ।

सर—पानी, बाण, तालाब ।

सरस्वती—विद्या, शारदा, एक नदी, वाणी ।

सारङ्ग—मोर, साँप, बादल, चातक, हाथी, स्त्री, दीपक, शङ्ख, वस्त्र, चन्दन, कपूर, भौंरा, पानी ।

सुरभि—कामधेनु, वसन्तऋतु, सुगन्ध, सुन्दर, गाय ।

हंस—श्वेत, सरोवर का पक्षी, ईश्वर, जीव, योगी, राजा, सूर्य, घोड़ा ।

हरि—कामदेव, विष्णु, इन्द्र, सांप, सिंह, घोड़ा, सूर्य, चन्द्रमा, तोता, बंदर, यमराज, हवा, किरण, कोयल, हंस, पर्वत ।

क्षेत्र—सदावर्त बांटने का स्थान, स्थान-तीर्थ, शरीर, खेत ।

(४)—विषमतासूचक एकार्थक शब्द

(१) अज्ञ, मूर्ख

अज्ञ—जिसे पढ़ने-लिखने या जानने-समझने का अवसर न मिला हो अनभिज्ञ ।

मूर्ख—जिसमें जानने-समझने की क्षमता न हो, जड़ ।

(२) अलौकिक, अस्वाभाविक

अलौकिक—जो लोक या समाज में न पाया जाय, दैवी या स्वर्गिक ।

अस्वाभाविक—जो सृष्टि के नियम के विपरीत हो, बनावटी, कृत्रिम ।

(३) भ्रम, प्रमाद

भ्रम—असावधानी से होने वाली भूल या त्रुटि ।

प्रमाद—मूर्खतावश या जानबूझकर की गई भूल ।

(४) सेवा, शुश्रूषा

सेवा—देवता, गुरुजन या बड़ों की टहल, सहायता।
शुश्रूषा—रोगी की परिचर्या या देखभाल।

(५) श्रद्धा, भक्ति

श्रद्धा—बड़ों के प्रति उनके ज्ञान और गुण के कारण अनुराग, आदर।
भक्ति—देवता, ईश्वर या गुरुजनों के प्रति प्रेम।

(६) प्रेम, प्रणय, स्नेह, वात्सल्य

प्रेम—किसी भी व्यक्ति या पदार्थ के प्रति साधारण अनुराग।
प्रणय—स्त्री के प्रति प्रेम।
स्नेह—छोटों के प्रति प्रेम।
वात्सल्य—पिता व गुरु का अपने पुत्र-पुत्री या शिष्य के प्रति स्नेह।

(७) ईर्षा, द्वेष, स्पर्धा

ईर्षा—दूसरों की उन्नति देखकर पैदा होने वाली जलन।
द्वेष—दूसरों से अकारण की गई शत्रुता या घृणा।
स्पर्धा—दूसरों से आगे बढ़ जाने की इच्छा।

(८) व्याख्यान, अभिभाषण

व्याख्यान—मौखिक भाषण।
अभिभाषण—लिखित भाषण।

(९) उत्साह, साहस

उत्साह—कार्य करने की स्फूर्ति या प्रेरणा।
साहस—भय सामने देखकर भी कार्य करने की प्रेरणा।

(१०) प्रतियोगिता, प्रतिद्वन्द्विता

प्रतियोगिता—गुणों के बल पर अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने की इच्छा।
प्रतिद्वन्द्विता—गुणों के अभाव में छल कपट से श्रेष्ठता प्राप्त करने की इच्

(११) परामर्श, मन्त्रणा

परामर्श—अपना मत प्रकट करना, सलाह देना।
मन्त्रणा—गुप्त विचारों का आदान-प्रदान।

वर्ण—अक्षर, जाति, रङ्ग ।

वसु—रत्न, किरण, जल, आठ देवता, अग्नि, लगाम ।

विग्रह—कलह, शरीर, भाग, आकार, विस्तार ।

विधि—भाग्य, ब्रह्म, रीति, शास्त्र में कही हुई नीति ।

विहंगम—तीर, पक्षी, बादल, चन्द्र, सूर्य ।

श्री—विष्णु की पत्नी, लक्ष्मी, धन, शोभा ।

संज्ञा—सूर्य की पत्नी, नाम, बुद्धि, चेतना, गायत्री ।

सर—पानी, बाण, तालाब ।

सरस्वती—विद्या, शारदा, एक नदी, वाणी ।

सारङ्ग—मोर, साँप, बादल, चातक, हाथी, स्त्री, दीपक, शङ्ख, वस्त्र, चन्दन, कपूर, भौंरा, पानी ।

सुरभि—कामधेनु, वसन्तऋतु, सुगन्ध, सुन्दर, गाय ।

हंस—श्वेत, सरोवर का पक्षी, ईश्वर, जीव, योगी, राजा, सूर्य, घोड़ा ।

हरि—कामदेव, विष्णु, इन्द्र, साँप, सिंह, घोड़ा, सूर्य, चन्द्रमा, तोता, बंदर, यमराज, हवा, किरण, कोयल, हंस, पर्वत ।

क्षेत्र—सदावर्त बाँटने का स्थान, स्थान-तीर्थ, शरीर, खेत ।

(४)—विषमतासूचक एकार्थक शब्द

(१) अज्ञ, मूर्ख

अज्ञ—जिसे पढ़ने-लिखने या जानने-समझने का अवसर न मिला हो, अनभिज्ञ ।

मूर्ख—जिसमें जानने-समझने की क्षमता न हो, जड़ ।

(२) अलौकिक, अस्वाभाविक

अलौकिक—जो लोक या समाज में न पाया जाय, दैवी या स्वर्गिक ।

अस्वाभाविक—जो सृष्टि के नियम के विपरीत हो, बनावटी, कृत्रिम ।

(३) भ्रम, प्रमाद

भ्रम—असावधानी से होने वाली भूल या त्रुटि ।

प्रमाद—मूर्खतावश या जानबूझकर की गई भूल ।

(४) सेवा, शुश्रूषा

सेवा—देवना, गुरुजन या बडो की टहल, सहायता।
शुश्रूषा—रोगी की परिचर्या या देखभाल।

(५) श्रद्धा, भक्ति

श्रद्धा—बडों के प्रति उनके ज्ञान और गुण के कारण अनुराग, आदर।
भक्ति—देवता, ईश्वर या गुरुजनो के प्रति प्रेम।

(६) प्रेम, प्रणय, स्नेह, वात्सल्य

प्रेम—किसी भी व्यक्ति या पदार्थ के प्रति साधारण अनुराग।
प्रणय—स्त्री के प्रति प्रेम।
स्नेह—छोटो के प्रति प्रेम।
वात्सल्य—पिता व गुरु का अपने पुत्र पुत्री या शिष्य के प्रति स्नेह।

(७) ईर्षा द्वेष, स्पर्धा

ईर्षा—दूसरो की उन्नति देखकर पैदा होने वाली जलन।
द्वेष—दूसरो से महारान का गहरा शत्रुता या घृणा।
स्पर्धा—दूसरो से आगे बढ जाने की इच्छा।

(८) व्याख्यान, अभिभाषण

व्याख्यान—मौखिक भाषण।
अभिभाषण—लिखित भाषण।

(९) उत्साह, साहस

उत्साह—कार्य करने की स्फूर्ति या प्रेरणा।
साहस—भय सामने देखकर भी काम करने की प्रेरणा।

(१०) प्रतियोगिता प्रतिद्वन्द्विता

प्रतियोगिता—गुणो के बल पर अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने की इच्छा।
प्रतिद्वन्द्विता—गुणो के अभाव में छल कपट से श्रेष्ठता प्राप्त करने की इच्छा।

(११) परामर्श, मन्त्रणा

परामर्श—अपना मत प्रकट करना, सलाह देना।
मन्त्रणा—गुप्त विचारों का आदान-प्रदान।

(१२) प्रार्थना, निवेदन, आवेदन

प्रार्थना—गुरुजनों के सामने विनीत भाव से इच्छा प्रकट करना।

निवेदन—दूसरों की इच्छानुसार विनम्र विचार रखना।

आवेदन—अपने गुण दिखाकर किसी से काम करवाने के लिये इच्छा प्रकट करना, प्रार्थना-पत्र।

(१३) दया, कृपा, सहानुभूति

दया—दूसरों का दुःख देख कर हृदय पिघल जाना।

कृपा—छोटों पर की जाने वाली दया।

सहानुभूति—दूसरों को जैसे अनुभूति हो वैसी ही अनुभूति करना, उनके दुःख को अपना दुःख समझना।

(१४) अहङ्कार, अभिमान

अहङ्कार—अपने को उचित से अधिक समझना।

अभिमान—अपनी वास्तविकता, प्रतिष्ठा या महत्ता का ध्यान रखना।

(१५) अस्त्र, शस्त्र

अस्त्र—वह हथियार जिसे फेंक कर प्रहार किया जाता है।

शस्त्र—वह हथियार जिसे हाथ में रख कर प्रहार किया जाता है।

(१६) भ्रान्ति, सन्देह

भ्रान्ति—निर्मूल या गलत धारणा।

सन्देह—मन का अस्थिर या अनिश्चयात्मक विचार।

(१७) आधि, व्याधि

आधि—मानसिक कष्ट।

व्याधि—शारीरिक कष्ट।

(१८) उद्योग, उद्यम

उद्योग—भरसक या शक्ति भर प्रयत्न।

उद्यम—पेशा, व्यवसाय या धन्धा।

(१९) आयु, अवस्था, वय

आयु—सम्पूर्ण जीवन।

अवस्था—जीवन का वर्षों मे मापदण्ड।
वय—आयु का पूर्ण हो जाने वाला एक भाग।

(२०) घृणा, ग्लानि, प्रायश्चित

घृणा—दूसरे के बुरे कार्यों पर अपनी अनिच्छा और अरुचि प्रकट करना
ग्लानि—अपने कार्यों के प्रति अपने ऊपर ही उत्पन्न अरुचि।
प्रायश्चित—अपनी भूल पर स्वेच्छा से दुःख प्रकट करना और आगे :
की पुनरावृत्ति न होने देने का विचार।

(२१) खेद, दुःख, शोक, विषाद, क्षोभ, पश्चाताप

खेद—पश्चाताप अथवा निराशा मे प्रसन्नता का अभाव।
दुःख—कष्ट या किसी वस्तु के अभाव मे प्रसन्नता का अभाव।
शोक—किसी की मृत्यु पर प्रसन्नता का अभाव।
विषाद—बड़ा भारी दुःख।
क्षोभ—अनिष्ट के समय प्रसन्नता का अभाव।
पश्चाताप—भूल से अनुचित कार्य करने पर खेद करना।

(२२) स्त्री, महिला, पत्नी

स्त्री—साधारण स्त्री।
महिला—कुलीन घर की स्त्री।
पत्नी—अर्धाङ्गिनी।

(२३) प्रयास, प्रयत्न, यत्न, चेष्टा

प्रयास—साधारणतः कष्टों का विचार न करके कार्य करना।
प्रयत्न—साधारणतः तन-मन से कार्य करना।
यत्न—साधारणतः तन-मन से कार्य करना।
चेष्टा—मन से यत्न करना।

(२४) भय, आतङ्क, त्रास

भय—किसी अनिष्ट के विचार से मनमे विशेष विकार उत्पन्न होना।
आतङ्क—शरीर और मन में उत्पन्न भय का विचार।
त्रास—दूसरो के द्वारा कष्ट देना।

(२५) अमूल्य, अतिमूल्य, बहुमूल्य

मूल्य—जिसका कोई मूल्य न आँका जा सके।
अतिमूल्य—आवश्यकता से अधिक या अनुचित मूल्य।
बहुमूल्य—क़ीमती, अधिक किन्तु उचित मूल्य।

(२६) हृदय, अन्तःकरण, चित्त

हृदय—ज्ञानेद्रिय।
अन्तःकरण—सत-असत का अनुभव करने वाली इन्द्रिय।
चित्त—स्मरण करने की इन्द्रिय।

५—रूप में किंचित् भिन्न शब्द

(१) अणु=कण, छोटा टुकड़ा
अनु=पीछे (अपसर्ग)

(२) अर्घ=मूल्य
अर्घ्य=पूजा का द्रव्य

(३) अलि=भौंरा
आली=सखी

(४) अंस=कंधा
अंश=भाग

(५) अनल=अग्नि
अनिल=वायु

(६) अपेक्षा=इच्छा, बनिस्बत
उपेक्षा=अवहेलना, निरादर

(७) अवलम्ब=सहारा
अविलम्ब=शीघ्र

(८) अपमान=निरादर
उपमान=जिस वस्तु से किसी की उपमा दी जाय

(९) अविराम=निरन्तर, लगात
अभिराम=सुन्दर

(१०) आवरण=परदा
आभरण=गहना

(११) आकर=खान
आकार=रूप

(१२) इति=समाप्ति
ईति=अकाल का

(१३) उधार=ऋण
उद्धार=तरना, मो

(१४) कपट=छल
कपाट=किवाड़

(१५) कुल=वंश
कूल=किनारा

(१६) कृत=किया हु
कृत्य=कार्य
क्रीत=खरीद

(१७) कान=सुनने की इन्द्रियाँ
कानि=मर्यादा
(१८) ग्रह=सूर्य, चन्द्र आदि
गृह=घर
(१९) चिर=हमेशा
चीर=वस्त्र
(२०) छत्र=छतरी
क्षत्र=क्षत्रिय
(२१) छात्र=विद्यार्थी
क्षात्र=क्षत्रिय सम्बन्धी
(२२) जलद=बादल
जलज=कमल
जलधि=समुद्र
(२३) तरणि=सूर्य
तरणी=नाव
तरुणी=युवती
(२४) तरङ्ग=लहर
तुरङ्ग=घोड़ा
(२५) तुन्द=तोंद
तुण्ड=मुख
(२६) दारा=स्त्री
द्वारा=मार्फत
(२७) दीप=दिया, दीपक
द्वीप=टापू
द्विप=हाथी
(२८) दूत=संवाद ले जाने वाला
द्यूत=जुआ
(२९) नग=पहाड़
नाग=साँप या हाथी

(३०) निर्जर=देवता
निर्झर=झरना
(३१) नक्र=मगर
नरक=स्वर्ग का विपरीत
(३२) पानी=जल
पाणि=हाथ
(३३) प्रकार=तरह
प्राकार=परकोटा
(३४) प्रसाद=कृपा, प्रसन्नता
प्रासाद=महल
(३५) प्रणाम=नमस्कार
परिणाम=फल
परिमाण=मात्रा
(३६) पुष्कर=कमल, तालाब
पुष्कल=बहुत
(३७) प्रथा=रीति,
पृथा=कुन्ती
(३८) परुष=कठोर
पुरुष=मनुष्य
(३९) पथ=मार्ग
पथ्य=परहेज
(४०) बली=शक्तिमान
बलि=पूजोपहार
(४१) बिस=कमलनाल
विष=जहर
(४२) बलाक=बगुला
बलाहक=बादल
(४३) मत=राय
मति=बुद्धि

(४४) मूल = जड़
मूल्य = कीमत

(४५) लक्ष = लाख
लक्ष्य = उद्देश्य, निशान

(४६) वसन = वस्त्र
व्यसन = बुरी आदत

(४७) वित्त = दौलत
वृत्त = गोल घेरा

(४८) बिना = विहीन, अभाव में
वीणा = एक वाद्य यंत्र

(४९) वारिद = बादल
वारिस = उत्तराधिकारी

(५०) शर = तीर
सर = तालाब

(५१) शूर = वीर
सूर = सूर्य, अन्धा

(५२) सुत = पुत्र
सूत = सारथि

(५३) शुक्ल = सफ़ेद
शुल्क = फीस

(५४) सकल = सब
शकल = टुकड़ा

(५५) सब = सारे
शव = लाश

(५६) सकृत = एक बार
शकृत = विष्ठा

(५७) सम = बराबर
शम = शान्ति

(५८) सित = सफेद
शीत = ठण्डा
शती = नीला

(५९) समान = बराबर
सम्मान = आदर

(६०) सिता = शक्कर
सीता = हल का फाल, रामपत्नी

(६१) शुचि = पवित्र
सूची = सुई

(६२) षष्टि = साठ
षष्ठी = पक्ष की छठी तिथि

अभ्यास

१—पर्यायवाची शब्द से आप क्या समझते हैं ?

२—निम्नलिखित शब्दों के चार-चार पर्यायवाची शब्द दीजिए :
इन्द्र, कमल, सारङ्ग, किरण, बादल, पुत्री, पृथ्वी, यम।

३—विपरार्थक शब्द किसे कहते हैं ?

४—निम्नलिखित शब्दों के विपरीतार्थक शब्द लिखिए :
पराया, स्वदेशी, धर्म, न्याय, कृतघ्न, विधि, सूक्ष्म, पुण्य।

५—निम्न शब्दों के अलग-अलग कितने अर्थ हो सकते हैं बताइये :
अर्क, कला, गुण, खग, दण्ड, दल, नकुल, पक्ष ।

६—निम्नलिखित के अर्थ में क्या अन्तर है ? लिखिये और उ
वाक्यों में प्रयोग करके स्पष्ट कीजिए :
श्रद्धा-भक्ति, व्याख्यान-अभिभाषण, प्रतियोगिता-प्रतिद्वन्द्विता, अस
शस्त्र, भ्रान्ति-सन्देह, आधि-व्याधि ।

७—निम्नलिखित शब्दों के अर्थ का भेद स्पष्ट कीजिए :
छात्र-क्षात्र, जलद-जलधि, तरणि-तरणी-तरुणी, बलाका-बलाह
शुक्ल-शुक्र, शुचि-सूची ।

——

पद-परिचय

पदों के विषय में व्याकरण से सम्बन्धित ज्ञान कराने को पद-परिचय कहते हैं। साधारणतः शब्द पाँच प्रकार के माने गये हैं : संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, अव्यय और क्रिया। आगे की पंक्तियों में इन्हीं का पद-परिचय दिया जा रहा है।

१—संज्ञा

संज्ञा का पद-परिचय देते समय नीचे लिखी बातों पर ध्यान दिया जाता है :

(अ) संज्ञा के भेद—(व्यक्तिवाचक, जातिवाचक, तथा भाववाचक)

(आ) लिंग—(पुंल्लिग अथवा स्त्रीलिंग)

(इ) वचन—(एक वचन अथवा बहु वचन)

(ई) कारक—(कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण और सम्बोधन)

(उ) अन्य शब्द और क्रिया से सम्बन्ध

उदाहरणार्थ—(१) रमेश बाजार से कपड़ा लाया।
(२) मोहन, दूध वाले को बुलाओ।
(३) राम ने चाकू से फल काटा।

(१) रमेश बाजार से कपड़ा लाया।

रमेश—व्यक्तिवाचक संज्ञा, पुंल्लिग, एक वचन, कर्त्ता कारक, 'लाया' क्रिया का कर्त्ता।

बाजार—जातिवाचक संज्ञा, पुंल्लिग, एक वचन, अपादान कारक, 'लाया' क्रिया का अपादान कारक।

कपड़ा—जातिवाचक संज्ञा, पुंल्लिग, एक वचन, कर्म कारक, 'लाया' क्रिया का कर्म कारक।

(२) मोहन, दूध वाले को बुलाओ।

मोहन—व्यक्तिवाचक संज्ञा, पुंल्लिग, एक वचन, सम्बोधन कारक।

दूध वाला—जातिवाचक संज्ञा, पुंल्लिग, एक वचन, कर्म कारक, 'बुलाओ' क्रिया का कर्म।

(३) राम ने चाकू से फल काटा।

राम—व्यक्तिवाचक संज्ञा, पुल्लिङ्ग, एक वचन, कर्त्ता कारक, 'काटा' क्रिया का कर्त्ता।

चाकू—जातिवाचक संज्ञा, पुंल्लिङ्ग, एक वचन, करण कारक, 'काटा' क्रिया का करण।

फल—जातिवाचक संज्ञा, पुंल्लिङ्ग, एक वचन, कर्म कारक, 'काटा' क्रिया का कर्म।

२—सर्वनाम

संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्द को सर्वनाम कहते हैं। इसलिये सर्वनाम के पद-परिचय में लगभग वे ही बातें होती हैं जो संज्ञा के पद-परिचय में आवश्यक होती हैं। अन्तर इतना ही रहता है कि जहाँ संज्ञा के पद-परिचय में संज्ञा के भेद दिए जाते हैं वहाँ सर्वनाम में सर्वनाम के भेद दिए जाते हैं।

उदाहरणार्थ—(१) मैंने तुम्हारा चाकू तोड़ दिया।
(२) उस भिखारी की मदद करो।
(३) जो सुबह उठेगा वह प्रसन्न रहेगा।

(१) मैंने तुम्हारा चाकू तोड़ दिया।

मैंने—पुरुषवाचक सर्वनाम, उत्तम पुरुष, पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनों एक वचन, कर्त्ता कारक, 'तोड़ दिया' क्रिया का कर्त्ता।

तुम्हारा—पुरुषवाचक सर्वनाम, मध्यम पुरुष, पुंल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनों। एक वचन, सम्बन्ध कारक, 'चाकू' का सम्बन्ध।

(२) उस भिखारी की मदद करो।

उस—निश्चयवाचक सर्वनाम, अन्य पुरुष, पुंल्लिङ्ग, एक वचन, 'भिखारी' का विशेषण।

(३) जो सुबह उठेगा वह प्रसन्न रहेगा।

जो—सम्बन्धवाचक सर्वनाम, अन्य पुरुष, पुंल्लिङ्ग, एकवचन, कर्त्ता कारक, 'उठेगा' क्रिया का कर्त्ता।

वह—सम्बन्धवाचक सर्वनाम, अन्य पुरुष, पुंल्लिङ्ग, एक वचन, कर्त्ता कारक, 'प्रसन्न रहेगा' क्रिया का कर्त्ता।

३—विशेषण

विशेषण का पद-परिचय देते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है :

(अ) विशेषण के भेद

(आ) लिंग

(इ) वचन

(ई) विशेष्य

उदाहरणार्थ—(१) यह सुन्दर साड़ी है।

(२) पिताजी ने मुझे चार रंगीन कमीज दिये।

(३) तुमने इस कपड़े की पूरी कीमत क्यों दे दी?

(१) यह सुन्दर साड़ी है।

सुन्दर—गुणवाचक विशेषण, स्त्रीलिङ्ग, एक वचन, 'साड़ी' का विशेषण।

(२) पिताजी ने मुझे चार रंगीन कमीज दिये।

रंगीन—गुणवाचक विशेषण, पुंल्लिङ्ग स्त्रीलिंग दोनों, बहु वचन, 'कमीज' का विशेषण।

(३) तुमने इस कपड़े की पूरी कीमत क्यों दे दी?

इस—संकेतवाचक विशेषण, पुंल्लिङ्ग, एक वचन, 'कपड़े' का विशेषण।

पूरी—परिमाणवाचक विशेषण, पुंल्लिङ्ग, एक वचन, 'कीमत' का विशेषण।

४—क्रिया

क्रिया का पद-परिचय देते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है :

(अ) क्रिया के भेद

(आ) वाच्य

(इ) लिंग

(ई) वचन
(उ) पुरुष
(ऊ) काल
(ए) प्रकार
(ऐ) कारक से सम्बन्ध

उदाहरणार्थ—(१) राम परदेश गया है।
(२) वह अखबार पढ़ रहा है।
(३) मैं तुम्हारा चाचा हूँ।

(१) राम परदेश गया है।

गया है—सकर्मक क्रिया, कर्तृवाच्य, वर्तमान काल, पुल्लिङ्ग, एक वचन, अन्य पुरुष, 'राम' इसका कर्ता है।

(२) वह अखबार पढ़ रहा है।

पढ़ रहा है—सकर्मक क्रिया, कर्तृवाच्य, अपूर्ण वर्तमान काल, एक वचन, पुंल्लिंग अन्य पुरुष, इसका कर्ता 'वह' है।

(३) मैं तुम्हारा चाचा हूँ।

हूँ—अकर्मक क्रिया, कर्तृवाच्य, सामान्य वर्तमान काल, एक वचन, पुंल्लिङ्ग, उत्तम पुरुष, 'मैं' इस क्रिया का कर्ता है।

५—क्रिया-विशेषण

क्रिया-विशेषण का पद-परिचय देते समय क्रिया-विशेषण के भेद तथा सम्बन्ध बताना आवश्यक होता है।

उदाहरणार्थ-(१) राम अभी आ रहा है।
(२) मोहन शोरगुल मत करो!
(३) तुम्हारे कहने पर ही मैं वहाँ गया।

इन वाक्यों में 'अभी' 'मत' और 'वहाँ' क्रिया-विशेषण हैं। उनका पद-परिचय इस प्रकार होगा :

अभी—कालवाचक क्रिया-विशेषण, 'आ रहा है' क्रिया की विशेषता प्रकट करता है।

...वाचक क्रिया-विशेषण, निषेधवाचक, 'और' कुछ करो क्रिया
...रीति बताता है।
...अवधारणावाचक क्रिया-विशेषण, 'पढ़ो' क्रिया की विशेषता प्रकट
करता है।

६—अव्यय

अव्यय का पद-परिचय देते समय उसके भेद और सम्बन्ध का उल्लेख करना आवश्यक होता है। जैसे :

(१) बाजार के सिरे पर गोशाला के पास उनका घर है।

(२) यद्यपि नरेश दुबला है, तथापि बुद्धिमान् है।

(३) वाहवाह ! कितनी सुन्दर बात कही।

(१) बाजार के सिरे पर गोशाला के पास उनका घर है।

पर—सम्बोधक अव्यय, 'सिरे' संज्ञा से अपना सम्बन्ध रखता है।

पास—सम्बोधक अव्यय, 'घर' संज्ञा से अपना सम्बन्ध रखता है।

(२) यद्यपि नरेश दुबला है, तथापि बुद्धिमान् है।

यद्यपि, तथापि—समुच्चयबोधक अव्यय, दुबला और बुद्धिमान का सम्बन्ध स्थापित करता है।

(३) वाहवाह ! कितनी सुन्दर बात कही।

वाहवाह—विस्मयादि-बोधक अव्यय, हर्ष सूचित करता है।

अभ्यास

१—संज्ञा के पद-परिचय में किन-किन बातों की आवश्यकता हो...
लिखिए।

२—निम्नलिखित वाक्यों में संज्ञा शब्दों का पद-परिचय दीजिए :

(अ) राम ने उस पुस्तक में संशोधन करना आवश्यक सम...

(आ) चाहे हिन्दी पढ़िये चाहे मराठी दोनों की लिपि एक...

(इ) सोहन बाजार से एक घड़ी और एक पेन खरीद ला...

३—सर्वनाम का पद-परिचय देते समय किन-किन बातों क...
...क होता है ?

४—निम्नलिखित वाक्यों में सर्वनाम शब्दों का पद-परिचय दीजिये :

(अ) मैं अपनी किताब लेकर उसके घर गया।

(आ) यह पुस्तक किसी विद्यार्थी की होगी।

५—विशेषण का पद परिचय देते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है ?

६—क्रिया-विशेषण और अव्यय का पद-परिचय देते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

७—नीचे लिखे वाक्यों में आये हुए संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय शब्दों का पद-परिचय दीजिये :

(अ) भारत सरकार हिन्दी भाषा के प्रचार के लिये शीघ्र बड़ा कार्य करेगी।

(आ) मेरे घर के पास यद्यपि अन्धेरा है तथापि रास्ता ठीक है।

(इ) यदि मैं शिक्षामन्त्री होता तो सब बच्चों के लिए शिक्षा अनिवार्य कर देता।

(ई) वाह, यह भी खूब कहा उसकी तो मौत ही हो जायगी।

(उ) सन्तों की वाणी अमृतमय है, वह किसका उद्धार नहीं कर सकती ?

——

उपसर्ग और प्रत्यय

१—उपसर्ग

शब्द विचार नामक एक पिछले अध्याय में हम पढ़ चुके हैं कि व्युत्पत्ति के अनुसार शब्दों के तीन भेद हैं—रूढ़ि, यौगिक और योग-रूढ़ि। सब भाषाओं की तरह हिन्दी में भी कुछ ऐसे शब्द हैं जिनसे दूसरे यौगिक शब्द बनाये गये। यौगिक शब्द बनाने के तीन तरीके हैं: (१) शब्द के पूर्व कुछ उपसर्ग लगाने से (२) शब्द के पश्चात् प्रत्यय लगाने से और (३) दो या दो से अधिक शब्दों के योग से। प्रस्तुत अध्याय में हम उपसर्ग और प्रत्यय के सम्बन्ध में ही विचार करेंगे।

उपसर्ग वे अव्यय शब्द हैं जिनका प्रयोग अकेले नहीं होता। किसी शब्द के पूर्व उपसर्ग लगाने से उनका अर्थ बदल जाता है। उपसर्ग न तो अपना स्वतन्त्र अर्थ रखते हैं और न प्रयोग में ही आते हैं। वे तो किसी अन्य शब्द के पहले प्रयुक्त होकर अर्थ में विशेषता प्र[दान] कर देते हैं। संस्कृत व्याकरण के अनुसार उपसर्ग केवल 'धातु' अ[र्थात्] क्रिया के ही पूर्व लगाये जाते हैं। धातु या धातु से बने शब्दों के अ[तिरिक्त] और शब्दों के पूर्व जिन अव्ययों का प्रयोग होता है उन्हें अव्यय कहते। हिन्दी में बहुत से उपसर्ग संस्कृत से आये हैं लेकिन कुछ फारसी-अरबी से आये हैं। हिन्दी और संस्कृत भाषा में प्रयु[क्त होने] वाले उपसर्ग निम्न प्रकार हैं:

अति—अधिक या उत्कर्ष—अत्याचार, अत्यन्त, अतिरिक्त, अतिशय, अतिकाल, अतितम, अतिनिर्धन।

अधि—श्रेष्ठता, प्रधानता—अधिकार, अधिराज, अध्यक्ष, अधिपति।

अनु—पीछे या बाद में—अनुगामी, अनुज, अनुकरण, अ... अनुचर, अनुक्रम।

अप—हीनता, विरोध, अभाव—अपयश, अपकार, अपमान, अपवाद, अपराध, अपशब्द, अपकर्ष ।

अभि—सम्मुख, विशेष निकट—अभिनन्दन, अभिज्ञान, अभिमुख, अभिमत, अभिलिप्सा, अभिप्राय, अभिशाप, अभ्यागत, अभिमान, अभिलाषा ।

अव—हीनता-अवगुण, अवसर, अवनति अवज्ञा, अवतार, अवलम्ब, अवगत ।

अन्तः—मध्य—अन्तःकरण, अन्तर्देश, अन्तःपुर, अन्तर्राष्ट्रीय,

अन—नहीं—अनादि, अनधिकार, अनन्तर, अनजान ।

आ—मर्यादा, तक, विशेष-आदेश, आकण्ठ, आजन्म, आगमन, आकर्षण, आजानबाहु, आसमुद्र, आरोहण, आक्रमण, आकांक्षा, आलिंगन, आरम्भ, आचरण, आहार, आदाब ।

इति—समाप्त—इतिवृत्त, इतिहास

उत्—ऊपर, ऊँचा, प्रबल-उन्मुख, उद्गम, उच्चारण, उत्साह, उत्कर्ष उत्तम, उदय, उदाहरण, उत्पत्ति, उड्डयन, उत्कण्ठा ।

उप—समीपता, अप्रधानता, सदृश—उपचार, उपदेश, उपाध्यक्ष, उपनाम, उपनयन, उपग्रह, उपवन, उपकार, उपकृत, उपभेद, उपमन्त्री ।

कु—बुरा—कुसङ्ग, कुविचार, कुमति, कुसंस्कार ।

दुः—दुष्ट, कठिन, हीन—दुर्बुद्धि, दुर्गम, दुर्जन, दुर्गुण, दुस्साध्य, दुर्गति, दुराचार, दुर्दशा ।

नि—भीतर, नीचे, बाहर—निवेश, निबन्ध, निकृष्ट, निदर्शन, निवृत्त, निपात ।

निः, निस्, निर्—निषेध, अभाव, अनिश्चय-निर्बल, निःसङ्ग, निर्दोष, निर्देश, निःक्षिप्त, निर्गत, निःश्रेयस, निर्णय, निरपराध, निर्धन, निर्जीव, निर्भय,

—पीछे, उलटा—पराजय, पराभव, परावृत्त, पराक्रम, पराधीन।

—चारों ओर, व्याप्ति—परिभ्रमण, परिखा, परिपूर्ण, परिष्कार, परिधान, परिक्रमा, परिजन, परितोष, परिच्छेद।

—अधिक—प्रबल, प्रसन्न, प्रयोग, प्रार्थना, प्रशान्त, प्रख्यात, प्रचार, प्रमाण, प्रसिद्ध।

प्रति—विरुद्ध, सामने, एक-एक—प्रतिकार, प्रतिफल, प्रत्यक्ष, प्रतिशोध, प्रतिज्ञा, प्रत्युत्तर, प्रतिवादी, प्रतिपल, प्रत्येक, प्रतिक्षण, प्रतिकूल, प्रतिनिधि, प्रतिपक्षी।

वि—अभाव, अतिशय—विभाव, विकार, विलक्षण, विश्लेषण, विशेष, विहार, विवरण, विलाप, विदेश, विज्ञान, विभूषण, विवाद, विचित्र, वियोग, विमुख, विस्मरण।

सम्—सहित, अच्छा, पूर्ण—संमुख, संस्कार, संस्कृति, सम्मेलन, संस सम्मति, संसिद्धि, सम्पूर्ण, संग्रह, संग सन्तोष, संरक्षण, संहार।

सु—अच्छा, सहज, शुभ— सुकर्म, सुगति, सुलभ सुजन, सुयश, सुज सुशिक्षित, सुगम, सुवचन, सुकृत।

उपसर्ग की भांति प्रयोग में आने वाले विशेषण और अव्य

अ, अन—अभाव, निषेध · अधर्म, अज्ञान, अनीति, अभाव, अगम, अचेत, अलग, अछूत, अनल, अथाह, अनेक, अनन्तर, अनमोल, अनगिनत।

अधस्—नीचे—अधःपतन, अधोमुख, अधोगति, अधोभाग, अधोवस

आविः—प्रकट—आविष्कार, आविर्भाव।

ईषत्—थोड़ा—ईषद्दर्शन, ईषत्प्राप्त।

चिर—बहुत—चिरकाल, चिरंजीव, चिरायु।
तिरस्—छिपाव—तिरस्कार, तिरोभाव, तिरोधान।
पुनः—फिर—पुनर्जन्म, पुनरागमन, पुनरुक्ति, पुनर्विवाह, पुनर्प्राप्ति, पुनर्मिलन।
पुरः—आगे—पुरस्कार, पुरश्चरण, पुरोहित, पुरोगामी।
स—सहित—सप्रेम, सपरिवार, सजीव, सरस, [illegible], सगोत्र, सगुण, सहृदय।
सत्—अच्छा—सत्पुरुष, सत्कर्म, सन्तान, सद्गुण, सज्जन।
सह—साथ—सहज, सहगमन, सहचर, सहपाठी, सहोदर।
सु—अच्छा—सुगम, सुहृदय, सुशील, सुविचार, सुजन, सुयश, सुरम्य, सुहृद, सुवचन।
स्व—अपना—स्वदेश, स्वराज, स्वराज्य, स्वधर्म, स्वतन्त्र, स्वभाव।

विदेशी भाषाओं के उपसर्ग

ब—से—बहुक्म, बदौलत, बनाम, बजरिये, बदर्जे।
बा—साथ—बाअदब, बातमीज, बाकायदा, बामुख्तार।
बे—बिना—बेईमान, बेदर्दी, बेगुनाह, बेहद, बेचारा।
ना—अभाव—नापसन्द, नालायक, नाराज, नाचीज, नाजुक, नाकाबिल।
नेक—अच्छा—नेकनाम, नेकनियत, नेकचलन।
ला—बिना—लाइल्म, लाजवाब, लापरवाह।
बद—बुरा—बदनाम, बदचलन, बदनीयत, बदतमीज, बदमाश, बदबू, बदमिजाज, बदगुमान।
गैर—भिन्न—गैरहाजिर, गैरमुल्क, गैरमुमकिन।
कम—थोड़ा—कमजोर, कमबख्त, कमनसीब।
खुश—अच्छा—खुशकिस्मत, खुशदिल, खुशबू, खुशमिजाज।
सर—मुख्य—सरदार, सरताज, सरकार, सरहद।
हर—प्रत्येक—हररोज, हरसाल, हरबार, हरदम।
हम—साथ—हमराह, हमदम, हमउम्र, हमशक्ल।

२—प्रत्यय

वे शब्दांश, जो किसी शब्द के अन्त में लगकर उसके अर्थ और अवस्था में परिवर्तन कर देते हैं, प्रत्यय कहे जाते हैं। ये न स्वतन्त्र शब्द कहे जा सकते हैं, न अपना स्वतन्त्र अर्थ ही रखते हैं। उपसर्गों की भाँति उनका प्रयोग भी अकेले नहीं होता। किन्तु जब वे अन्य शब्दों के पश्चात् लगा दिये जाते हैं तो एक नया अर्थ पैदा कर देते हैं। प्रत्यय सभी प्रकार के शब्दों में लग सकते हैं; जैसे : लिखना + वट = लिखावट, सुन्दर + ता = सुन्दरता। प्रत्यय दो प्रकार हैं—(१) कृदन्त (२) तद्धित।

(१) कृदन्त—क्रियात्मक शब्दों के पीछे जो प्रत्यय लगते हैं उन्हें कृदन्त कहते हैं। कृदन्त शब्दों के पांच प्रकार होते हैं :

(अ) कर्त्तृवाचक—जिससे क्रिया के करने वाले का अर्थ जाना जाता है ऐसे शब्द को कर्त्तृवाचक कृदन्त कहते हैं; जैसे : लिखाने-वाला जागने-वाला, खिलाड़ी, गायक, चटोरा, आदि। इसके मुख्य प्रत्यय निम्न-लिखित हैं :

वाला—सोने-वाला, पढ़ने-वाला, जाने-वाला, आने-वाला आदि।

इया—धुनिया, जड़िया।

आड़ी—खिलाड़ी।

ऊ—खाऊ, उड़ाऊ, रट्टू, बिगाड़ू, चलाऊ।

क—तैराक, लड़ाक, मारक, तारक, पालक, उड़ाक।

इयल—अड़ियल, सड़ियल।

एरा—सँपेरा, लुटेरा, कड़ेरा।

ऐत—फिकैत, लठैत।

ओड़ा—भगोड़ा।

ओटा—चटोरा।

वैया—गवैया, नचैया।

हारा—जानन-हारा, रोकन-हारा।

हुआ—सड़ा हुआ, गला हुआ, पका हुआ, चढ़ा हुआ।

(आ) कर्मवाचक—यदि सामान्य भूत की क्रिया (सकर्मक) के आगे 'हुई', 'हुआ' लगा देते हैं तो कर्मवाचक कृदन्त बन जाते हैं, जैसे : पढ़ा हुआ, सुना हुआ, लिखी हुई, देखी हुई।

हुआ—पढ़ा हुआ, लिखा हुआ, सुना हुआ, गिना हुआ।
हुई—पढ़ी हुई, लिखी हुई, सुनी हुई, गिरी हुई।
ना—बिछौना, चबैना।
नी—ओढ़नी, सूँघनी, चटनी, कहानी।
आ—ठेला, घेरा, मेला।
गया—देखा गया, सुना गया, उठा गया।

(इ) करणवाचक—क्रिया के साथ ना, नी, अन्, ई, ऊ, लगाकर जो शब्द बनाए जाते हैं, वे करणवाचक कृदन्त कहे जाते हैं; जैसे : चलनी, बेलना आदि।

ना—ढकना, ओढ़ना, चलना।
नी—ढकनी, ओढ़नी, कतरनी।
अन्—झाड़न, बेलन, ढक्कन।
ई—कुदाली, रेती, फाँसी।
ऊ—झाड़ू।

(ई) भाववाचक—भाववाचक संज्ञा की तरह ही भाववाचक कृदन्त भी बनते हैं, जैसे उतार, लपट, दौड़, रोक, मेल आदि।

अ—गमन, पुकार, लेन, देन, चाल, जाँच, पहुँच, लूट, चोर, दौड़, सीख, मोड़, बिचार, चमक, दमक।
आ—घेरा, फेरा, जोड़ा, घाटा, छापा, मेला।
आई—लड़ाई, चढ़ाई, पढ़ाई, सिलाई, बिनाई।
आन—उठान, उड़ान, थकान।
आव—बढ़ाव, बहाव, बनाव, घुमाव, छिड़काव, लगाव।
आहट—चिल्लाहट, घबराहट, मुस्कराहट।
आवट—बनावट, सजावट, मिलावट, थकावट, दिखावट, रुकावट लिखावट।

(३) भाववाचक—जिससे भाव आदि का ज्ञान हो; जैसे: हठ से हठी, दया से दयालु।
आई—भलाई, बुराई, सच्चाई, मुटाई।
आस—मिठास, भड़ास, खटास, ।
आहट—चिकनाहट, कड़आहट।
ई—सर्दी, गर्मी, चोरी, खेती, नर्मी।
पन—बचपन, लड़कपन, छोटापन, गरापन।
पा—बुढ़ापा, रंडापा, अपनापा।

(४) सम्बन्धवाचक—जिससे सम्बन्ध का ज्ञान हो; जैसे: ससुराल।
आल—ससुराल, ननिहाल।
एरा—ममेरा, फुफेरा, ननेरा, चचेरा।

(५) अल्पतासूचक—जिससे अल्पता का ज्ञान हो; जैसे: बुढ़िया।
इया—डिबिया, बुढ़िया, खटिया।
ई—रस्सी, टोकरी, ढोलकी, पहाड़ी, घाटी, डोरी।
ओला—खटोला, संपोला।
ली—टिकुली, पटुली।

अभ्यास

(१) उपसर्ग किसे कहते हैं? उनका क्या महत्त्व है?
(२) निम्नलिखित शब्दों में उपसर्ग बताइये :
प्रतिलिपि, अकाल, अत्यन्त, निर्लज्ज, निडर, सम्मान, अनुक्रम, आकांक्षा, प्रतिकूल, प्रयोग, प्रार्थना, उपवन, विमुख, विस्मरण, सुगम, संसार, संसिद्धि, प्रतिशोध।
(३) 'वि' प्रत्यय लगाने वाले पाँच शब्द लिखिये।
(४) 'भार' शब्द में भिन्न-भिन्न प्रत्यय लगाकर पाँच शब्द बनाइये।
(५) प्रत्यय से आप क्या समझते हैं, वे कितने प्रकार के होते हैं?
(६) निम्नलिखित शब्दों में आये हुए प्रत्यय लिखिये :
रोता हुआ, पानी वाली, मदरपन, बनिया, भगोड़ा

(७) निम्नलिखित क्रियाओं से कृदन्त वनाइये :

बोना, काटना, भूलना, चुराना, थकना, गिरना ।

(८) कृदन्त और तद्धित में क्या अन्तर है ? स्पष्ट कीजिये ।

(९) गुणवाचक तद्धित किसे कहते हैं ?

(१०) निम्नलिखित शब्दों से गुणवाचक तद्धित वनाइये :

भार, मेल, वोझ, वाजार, पेट, रस, मूत ।

——

समास

पिछले अध्याय में हम उपसर्ग और प्रत्यय के सम्बन्ध में पढ़ चुके हैं। इनके अतिरिक्त भी दो या दो से अधिक शब्दों के योग से नए शब्द बनाए जाते हैं। इस प्रकार दो शब्दों के पारस्परिक योग से नये शब्द बनाने की क्रिया का नाम समास है और इस प्रकार बने हुए शब्द को सामासिक शब्द कहते हैं। समास बनाने पर शब्दों के बीच परस्पर सम्बन्ध बतलाने वाले शब्दों, प्रत्यय अथवा विभक्ति का लोप हो जाता है और एक नया शब्द बन जाता है। सामासिक पदों के टुकड़ों या पदों को अलग-अलग कर उनका सम्बन्ध प्रकट कर देने की क्रिया को 'विग्रह' कहते हैं। जैसे 'यशोदानन्दन' एक सामासिक पद है। यह यशोदा और नन्दन इन दोनों के सम्बन्ध से बना है। विग्रह करने पर इनका सम्बन्ध इस प्रकार व्यक्त किया जाएगा—यशोदा का नन्दन। समास का अर्थ है 'संक्षेप'। समास के द्वारा शब्दों का स्वरूप संक्षिप्त या छोटा बना दिया जाता है। जैसे 'चार हैं मुँह जिसके' न कह कर हम संक्षेप में 'चतुरानन' कहते हैं।

शब्दों के योग में सन्धि के नियमों का प्रयोग किया जाता है; जैसे: पीत+अम्बर=पीताम्बर। जिन शब्दों में समास होता है उन सबका पद समान नहीं होता। उनमें से किसी एक का अर्थ मुख्य होता है और शेष उसके अर्थ को पुष्ट करते हैं। समासपद में कम से कम दो शब्द होते हैं। पहिले पद को 'पूर्वपद' और दूसरे पद को 'उत्तरपद' कहा जाता है। सामासिक शब्द में कभी उत्तर-पद प्रधान होता है, कभी पूर्व-पद। कभी-कभी दोनों ही प्रधान होते हैं और कभी-कभी दोनों ही प्रधान नहीं होते हैं। वैसे समास एक है। लेकिन प्रधानता या अप्रधानता के आधार पर उसके चार भेद किये जाते हैं

(१) पूर्व-पद प्रधान .... अव्ययीभाव
(२) उत्तर-पद प्रधान .... तत्पुरुष, कर्मधारय, द्विगु
(३) उभय-पद प्रधान .... द्वन्द्व
(४) अन्य-पद प्रधान .... बहुव्रीहि

(१) अव्ययी-भाव समास—जिस सामासिक पद में पहिला पद प्रधान हो और वह प्राय: अव्यय हो तो वह अव्ययी-भाव समास कहा जाता है। यह सामासिक पद क्रिया-विशेषण का कार्य करता है। जैसे :

सामासिक पद	विग्रह
आजीवन	जीवन तक (इसी प्रकार आजन्म)
यथाविधि	विधि के अनुसार (इसी प्रकार यथाक्रम) यथारुचि, यथास्थान, यथानियम)
अनुरूप	रूप के अनुसार (इसी प्रकार अनुकूल)
प्रतिमास	महीने-महीने (इसी प्रकार प्रतिवर्ष, प्रतिदिन, प्रतिक्षण)

हिन्दी में अव्ययी-भाव समास का प्रयोग निम्नलिखित रूप से होना है :

(क) हिन्दी ····अतिकाल, आजन्म, पराजय, निधड़क, निडर।
(ख) उर्दू ····बेशक, नाहक, हररोज, बखूबी।
(ग) मिश्रित ····बेकाम, हरघड़ी, बेखटके, हरदिन।
(घ) संज्ञा-द्विरुक्ति ····द्वार-द्वार, पल-पल, हाथों-हाथ, गली-गली।
(ङ) अव्यय-द्विरुक्ति····बीचों-बीच, पास-पास, बार-बार, धीरे-धीरे।

(२) तत्पुरुष समास—जिस सामासिक पद में अन्तिम पद प्रधान होता है और पूर्व में कर्त्ता एवं सम्बोधन कारक को छोड़ कर शेष कारकों में किसी कारक की विभक्ति से युक्त होता है उसे तत्पुरुष समास कहते हैं। तत्पुरुष समास से दोनों पद संज्ञा होते हैं और जिस विभक्ति का लोप होता है उसी के कारक के नाम पर इस समास का नाम होता है।

(क) कर्मतत्पुरुष—यदि पद-विग्रह करने पर पहिले पद के आगे कर्म का चिह्न आये तो कर्म तत्पुरुष समास होता है। जैसे : माखनचोर (माखन चुराने वाला), शरणागत (शरण आने वाला)।

(ख) करण तत्पुरुष—यदि पद का विग्रह करने पर पहले पद के आगे करण का चिह्न हो तो करणतत्पुरुष होता है। जैसे : रेखाङ्कित

(रेखा से अंकित), कपड़छान (कपड़े से छना हुआ) मुँहमाँगा (मुँह से माँगा हुआ)।

(ग) सम्प्रदान तत्पुरुष—यदि पद का विग्रह करने पर पहिले पद के आगे सम्प्रदान कारक का चिह्न हो तो सम्प्रदान तत्पुरुष होता है। जैसे: देवोपहार (देवता के लिए उपहार) यज्ञशाला (यज्ञ के लिए शाला), देशभक्ति (देश के लिए भक्ति)।

(घ) अपादान तत्पुरुष—यदि पद का विग्रह करने से पहिले पद के आगे अपादान कारक का चिह्न हो तो अपादान तत्पुरुष होता है। जैसे: जन्मान्ध (जन्म से अन्धा), गुरुभाई (गुरु के सम्बन्ध से भाई), पथभ्रष्ट (पथ से भ्रष्ट)।

(ङ) सम्बन्ध तत्पुरुष—यदि पद का विग्रह करने से पहिले पद के आगे सम्बन्ध कारक का चिह्न हो तो सम्बन्ध तत्पुरुष होता है। जैसे: वनमानुष (वन का मानुष), घुड़दौड़ (घोड़ों की दौड़), लखपति (लाखों का पति)।

(च) अधिकरण तत्पुरुष—यदि पद का विग्रह करने से पहिले पद के आगे अधिकरण कारक का चिह्न हो तो अधिकरण तत्पुरुष होता है। जैसे: जलमग्न (जल में मग्न), आपबीती (अपने पर बीती हुई), मोहान्ध (मोह में अन्धा)।

(३) कर्मधारय समास—जो सामासिक पद विशेषण और विशेष्य अथवा उपमेय और उपमान से मिल कर बना है उसे कर्मधारय समास कहते हैं। कर्मधारय समास के विग्रह करने पर प्रायः 'जो', 'रूप', 'समान' आदि शब्द आते हैं। इनसे उनकी पहिचान में सरलता होती है। जैसे. पुरुषोत्तम (पुरुषों में उत्तम नराधम (नरों में अधम) मुख कमल (कमल मुख)।

(४) द्विगुसमास—जिस सामासिक पद में पहिला पद संख्या वाचक और दूसरा पद मुख्य होता है, उसे द्विगु समास कहते हैं। इस समास का समस्त पद समुदाय या समाहार का बोध कराता है। अतः विग्रह करते समय समाहार शब्द लगा दिया जाता है। जैसे

सिद्धियों का समूह), सप्तलोक (सात लोकों का समूह), चौदह
न (चौदह भुवनों का समूह), नवरत्न (नौरत्नों का समूह)।

(५) द्वन्द्व—जिस सामासिक पद में दोनों पद संज्ञाएं हों और
नों प्रधान हों अथवा उनका समाहार हो तो उसे द्वन्द्व समास कहते हैं।
म समास के पदों के बीच 'या' 'वा' 'और' आदि शब्द छिपे रहते
हैं। जैसे : दिन-रात (दिन और रात), जात-कुजात (जात और कुजात),

द्वन्द्व समास के तीन भेद होते हैं :

(अ) इतरेत्तर द्वन्द्व—जहाँ दोनों पद प्रधान हों और दोनों संज्ञा हों
वहाँ इतरेत्तर द्वन्द्व समास होता है। जैसे : ऋषि-मुनि (ऋषि और मुनि)।
राधा-कृष्ण (राधा और कृष्ण)।

(आ) वैकल्पिक द्वन्द्व—जब परस्पर विरोधी पदों का मेल होता है
तब वैकल्पिक द्वन्द्व समास होता है। जैसे : दिन-रात (रात वा दिन)
-ख-दुःख (सुख वा दुःख), यश-अपयश (यश वा अपयश)।

(इ) समाहार द्वन्द्व—जिस सामासिक पद में वास्तविक अर्थ के सा
थ अन्य अर्थ भी सूचित हों तो उसे समाहार द्वन्द्व कहते हैं। जैसे :
साहूकार (सेठ और साहूकार के अतिरिक्त अन्य सब लोग भी), अन्न-
(अन्न और जल के अतिरिक्त अन्य खाद्य पदार्थ)।

(६) बहुब्रीहि समास—जिस सामासिक पद में प्रयुक्त प
से कोई भी प्रधान नहीं होता और उससे उन पदों से भिन्न किसी
अर्थ का बोध होता है उसे बहुब्रीहि समास कहते हैं। बहुब्रीहि स
सामासिक पद किसी संज्ञा का विशेषणवत् होता है। जैसे : चतुरान
हैं मुंह जिसके अर्थात् ब्रह्मा) यहाँ न पूरा पद चतुः है न आन
दोनों के अतिरिक्त ब्रह्मा का अर्थ निकलता है। इसी प्रकार
के अन्य उदाहरण है—कृतकार्य, गङ्गाधर, निशाचर, चन्द्रमौलि,
नीलकण्ठ, दशानन, जितेन्द्रिय, निर्विकार, अनन्त आदि।

समास के सम्बन्ध में कुछ स्मरणीय बातें

(१) समास के सम्बन्ध में पहिली ध्यान रखने योग्

कि प्रयोग के अनुसार एक ही शब्द में एक से अधिक समास हो सकते हैं। अतः समास का निर्णय करने के पूर्व वाक्य में उसका अर्थ भली प्रकार समझ लेना चाहिए। जैसे : भगवान् पीताम्बर के दर्शन से बड़ी शान्ति मिली। (पीताम्बरी = पीत है अम्बर जिसका—बहुव्रीहि समास)।

जैसे : पीताम्बर पहिन कर भगवान् की पूजा की।

(पीताम्बर = पीला वस्त्र—कर्मधारय समास)।

वह निडर जा रहा है। (अव्ययीभाव—जा रहा है क्रिया का विशेषण)

निडर आदमी कठिनाई का मुकाबला बड़े साहस से करते हैं।

निडर = जिसको डर नहीं है वह—बहुव्रीहि समास।

(२) निषेधार्थक 'अ' या 'अन' को देखकर ही तत्पुरुष समास बतला देना ठीक नहीं। समास का निर्णय अर्थ पर अवलम्बित रहता है। जैसे : 'अपुत्र' का अर्थ है—जिसके पुत्र नहीं है। इस विग्रह के अनुसार अपुत्र में बहुव्रीहि समास है।

(३) विभक्ति समासान्त पद के अन्त में लगती है। अव्ययीभाव क्रियाविशेषण हो जाता है अतः, उसमें विभक्ति नहीं लगती। दूसरे स्थानों पर आवश्यकतानुसार सभी विभक्तियाँ लगती हैं।

जैसे : सज्जन के लिए दुनिया में कोई दुश्मन नहीं।

(४) सामासान्त पदों में कई प्रकार के परिवर्तन हो जाते हैं :

(अ) आकारान्त पुंल्लिंग शब्द अकारान्त हो जाते हैं :
जैसे : जिसकी आशा निर्गत है वह = निराश (बहुव्रीहि)

(आ) ईकारान्त और ऋकारान्त में 'क' जुड़ जाता है।
जैसे : जिसकी पत्नी है वह = सपत्नीक, जिसकी स्त्री है वह = सस्त्रीक।

(इ) कुछ शब्दों का उत्तर पद बदल जाता है। जैसे : रात्रि का रात्र, गन्धि का गन्ध, अक्षि का अक्ष, और राजा का राज
जैसे : नव रात्रियों का समूह नव-रात्र (द्विगु)
देवों का राजा—देवराज (तत्पुरुष)
जिसकी गन्ध दुष्ट हो—दुर्गन्ध (बहुव्रीहि)
अक्षियों (आँखों) के सम (के सामने

समास विग्रह

पद	विग्रह	समास
(१) चतुर्भुज	चार भुजा हैं जिसकी (विष्णु)	बहुव्रीहि समास
(२) षट्-ऋतु	छह ऋतुओं का समूह	द्विगु समास
(३) प्रतिमास	मास मास	अव्ययीभाव समास
(४) भानु-वंश	भानु का वंश	तत्पुरुष समास
(५) कोलकिरात	कौल और किरात	द्वन्द्व समास
(६) नील-कमल	नील है जो कमल	कर्मधारय समास
(७) ऋणमुक्त	ऋण से मुक्त	तत्पुरुष समास
(८) सप्तद्वीप	सात द्वीपों का समूह	द्विगु समास
(९) अनुरूप	रूप के अनुसार	अव्ययीभाव सम
(१०) पतझड़	जिसमें पत्ते झड़ते हैं वह ऋतु	बहुव्रीहि समास
(११) घनश्याम	घन की तरह श्याम	कर्मधारय समा

अभ्यास

१—समास किसे कहते हैं ? समास के भेद किस आधार पर किये जा

२—उदाहरण देकर द्विगु और कर्मधारय, कर्मधारय और बहुव्रीहि
अव्ययीभाव और बहुव्रीहि समास का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

३—नीचे लिखे पदों को विग्रह करके समास लिखिये :
जलजात, उपकूल, धर्मशाला, रजनीचर, गिरिराजकिशोरी,
अनन[illegible], अष्टसिद्धि, त्रिनेत्र, सस्त्रीक।

वाक्य-विचार

वाक्य शब्दों का समूह है जो एक विचार को पूरी तरह प्रकट कर देता है। मोटे रूप से वाक्य के दो खण्ड होते हैं। पहिले खण्ड में किसी के बारे में कुछ कहा जाता है। दूसरे खण्ड में वह बात कही जाती है जो कर्ता द्वारा हुआ होता है। दूसरे शब्दों में वाक्य में कर्ता और क्रिया का होना आवश्यक होता है। कुछ ऐसे भी वाक्य होते हैं जिनमें कर्ता नहीं होता लेकिन ऐसे वाक्य बहुत कम होते हैं। जैसे: लिखो, पढ़ो। इन वाक्यों से यद्यपि अर्थ स्पष्ट हो जाता है तथापि इनमें 'तुम' शब्द अर्थात् कर्ता का लोप है। अतः चाहे कर्ता प्रकट रूप में हो चाहे उसका लोप हो, वाक्य उसके बिना पूर्ण नहीं होता। हिन्दी में साधारणतः प्रत्येक वाक्य में सबसे पहिले कर्ता फिर कर्म और अन्त में क्रिया आती है। जैसे: मोहन पुस्तक खरीद रहा है। केशव गाय पालता है। किन्तु यदि इस क्रम को बदल दिया जाय और पहिले वाक्य को इस प्रकार लिखा जाय—'मोहन खरीद रहा है पुस्तक' अथवा 'खरीद रहा है पुस्तक मोहन' तो वाक्य शुद्ध नहीं कहा जा सकता। अतः वाक्य में शब्दों का एक निश्चित क्रम होता है, उस क्रम को बदल देने से वाक्य विशृङ्खलित हो जाता है। वह वाक्य, वाक्य नहीं रहता। दूसरी बात यह है कि वाक्य का आधा अंश सुनकर यदि पूरा भाव मालूम हो जाय तो वह वाक्य त्रुटि-पूर्ण है। वाक्य के शब्दों को सुनते-सुनते सुनने वाले की आकांक्षा बढ़नी चाहिए। जैसे 'राम घर पर' इतना कहने पर श्रोता को उत्सुकता होगी कि आगे क्या कहा जाने वाला है और जब वह यह सुन लेगा कि 'रहता है' तो उसकी आकांक्षा पूरी होगी। इसी प्रकार तीसरी बात यह है कि वाक्य में ऐसे शब्द रखे जाय जो स्पष्ट अर्थ सूचित करें। यदि अर्थ में अस्पष्टता या विरोध पैदा हो जाय तो वह शुद्ध वाक्य नहीं कहा जा सकता। जैसे वह कुए से पानी सींचता है। इस वाक्य में पानी के बाद 'खींचता' या 'निकालता' आना चाहिए।

रचना के अनुसार वाक्य के तीन भेद होते हैं—(१) साधारण वाक्य (२) मिश्रित वाक्य और (३) संयुक्त वाक्य।

(४) आज्ञार्थक वाक्य—जिस वाक्य से किसी प्रकार की आज्ञा विनती या उपदेश का बोध हो उसे आज्ञार्थक वाक्य कहते हैं; जैसे : यह पुस्तक टेबल पर रख दो।

(५) विस्मयादि बोधक—जिस वाक्य से आश्चर्य, विस्मय आदि भावों का बोध हो उसे विस्मयादि बोधक वाक्य कहते हैं, जैसे : हाय-हाय ! उसकी दोनों टाँगें कट गईं।

(६) इच्छा-बोधक—जिस वाक्य से इच्छा या आशीष का बोध हो उसे इच्छा बोधक वाक्य कहा जाता है, जैसे: भगवान् करे कहीं से भी दर्शन मिल जायँ।

(७) सन्देह-सूचक—जिस वाक्य से सन्देह या सम्भावना प्रकट होती है उसे सन्देह-सूचक वाक्य कहा जाता है, जैसे: शायद वह बीमार हो गया होगा।

(८) संकेतार्थक—जिस वाक्य से संकेत या शर्त का बोध हो उसे संकेतार्थक वाक्य कहते हैं, जैसे यदि पानी न बरसा तो अकाल पड़ जायगा।

वाक्य-शुद्धि

वाक्य में अशुद्धि का होना उतना ही कुरुचि-पूर्ण और भद्दा लगता है जितना किसी बढ़िया दूध के बर्तन में मक्खी का गिर जाना। मक्खी गिर जाने से जैसे दूध पीने की इच्छा तो रहती ही नहीं उल्टे दूध से नफरत होने लगती है, उसी प्रकार अशुद्ध वाक्यों को पढ़ने की इच्छा तो होती ही नहीं उसके लेखक के प्रति भी आदर या स्नेह की भावना कम हो जाती है। अतः वाक्य शुद्धि भाषा-ज्ञान की पहिली और महत्त्व-पूर्ण बात है। कुछ लोगों का ख्याल है कि वर्तनी शुद्ध किए देने से वाक्य भी शुद्ध हो जाता है लेकिन उनकी यह धारणा ठीक नहीं है। वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ दूर कर देने पर भी ऐसी अनेक बातें रह जाती हैं जिनके सम्बन्ध में सावधानी न रखी जाय तो वाक्य अशुद्ध रहता है और भाषा में सरसता नहीं आ पाती। यहाँ हम ऐसी ही कुछ भूलों पर विचार करेंगे जिनका निराकरण हो जाने पर वाक्य-शुद्धि का मार्ग सरल हो जाता है।

(क) शब्दों का यथास्थान प्रयोग

प्रायः बहुत से लोग व्याकरण की ठीक-ठीक जानकारी के अभाव में रचना-सम्बन्धी अनेक भूलें कर बैठते हैं। वे शब्दों को यथास्थान नहीं रख पाते जिससे सारा वाक्य भद्दा हो जाता है। उदाहरण के लिए निम्न लिखित वाक्य ध्यान से पढ़िये :

१. फुटबाल खेलता है अविनाश कुमार।

२. केशव, हाय, हाय खो गई मेरी पुस्तक।

३ कहाँ जा रहे हो मेरे प्यारे दोस्त मोहन।

वाक्य रचना की दृष्टि से हम कर्त्ता को सबसे पहिले, कर्म को उसके बाद और क्रिया को अन्त में रखते हैं, किन्तु पहले वाक्य में इस नियम की कोई परवाह नहीं की गई है। इसमें कर्ता है 'अविनाश कुमार'। उसे पहिला स्थान दिया जाना चाहिये। उसके बाद 'फुटबाल' और अन्त में 'खेलता है' आना चाहिये। तब वाक्य का स्वरूप होगा 'अविनाश कुमार फुटबाल खेलता है' जो कि शुद्ध है।

इसी प्रकार की भूल दूसरे और तीसरे वाक्य में भी दुहराई गई हैं। दूसरे वाक्य में 'हाय हाय' शोक प्रकट करने वाला शब्द है। उसे सबसे, पहिले रखा जाना चाहिये और वाक्य का सङ्गठन कर्त्ता, कर्म, क्रिया के क्रम से करना चाहिये। तब वाक्य का स्वरूप होगा—हाय हाय, केशव, मेरी पुस्तक खो गई। इसी नियम के अनुसार तीसरे वाक्य का सही स्वरूप होगा—'मेरे प्यारे दोस्त मोहन कहाँ जा रहे हो ?

(ख) उपयुक्त शब्दों का प्रयोग

यद्यपि शब्दों को यथास्थान प्रयुक्त करने से वाक्य की रचना या सङ्गठन शुद्ध हो जाता है तथापि यदि शब्दों के सही-सही अर्थ का ज्ञान न हो और जहाँ जिस शब्द की आवश्यकता हो उसी का प्रयोग न किया जाय तब भी वाक्य सदोष बना रहता है। उदाहरण के लिये निम्न-लिखित दो वाक्यों को ध्यान से पढ़िये :

१. जब श्री सुशीला देवी ने सभा-पत्नी का आसन ग्रहण किया तो सबने जोर से तालियाँ बजाईं।

२. घोड़ा जोर-जोर से चिल्ला रहा है।

पहले वाक्य में सुशीला देवी के सामने 'श्री' रखा गया है जो अनुपयुक्त है। यदि सुशीला देवी कुमारिका हैं तो उनके नाम के सामने 'कुमारी' शब्द लिखा जाना चाहिए और यदि वे विवाहित हैं तो उनके सामने 'श्रीमती' शब्द लिखा जाना चाहिये। 'श्री' शब्द पुरुषों के लिए काम में लिया जाता है, स्त्रियों के लिये नहीं। इसी प्रकार सभापति का स्त्रीलिङ्ग सभानेत्री होता है, सभापत्नी नहीं। इन दोनों अशुद्धियों को दूर कर देने के बाद वाक्य का शुद्ध स्वरूप होगा—'जब श्रीमती सुशीला देवी ने सभानेत्री का आसन ग्रहण किया तो सबने जोर से तालियाँ बजाईं।' दूसरे वाक्य में घोड़े के लिए 'चिल्लाना' शब्द उपयुक्त नहीं है। उसके लिए हिनहिनाना शब्द का प्रयोग किया जाता है। अतः वाक्य का सही स्वरूप होगा—'घोड़ा जोर जोर से हिनहिना रहा है।'

इस प्रकार की और भी कई भूलें हमें इधर-उधर दिखाई पड़ जाती हैं। हम एक विशिष्ट जाति या वर्ग के व्यक्ति के नाम के आगे विशिष्ट शब्द का प्रयोग कर उनके प्रति आदर व्यक्त करते हैं। जैसे : सिक्खों के लिए 'सरदार' शब्द का प्रयोग किया जाता है। उत्तर प्रदेश के सेठजी के लिए 'लालाजी' का। कायस्थों के लिए 'मुंशीजी' शब्द का और ब्राह्मणों के लिए 'पण्डितजी' का। इसी तरह कुछ विशिष्ट पुरुषों के लिए विशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे गांधीजी के लिए 'महात्मा' शब्द का प्रयोग किया जाता है और विनोबा के लिए 'सन्त' का। तिलक को 'लोकमान्य' कहा जाता था और चित्तरंजनदास को 'देशबन्धु'। अतः इन बातों का ध्यान रखना भी आवश्यक होता है।

(ग) कारकों की विभक्तियों का अशुद्ध प्रयोग

बहुत से लोग कारकों की विभक्तियों का प्रयोग ठीक-ठीक नहीं करते और उससे वाक्य गलत हो जाता है। उदाहरण के लिए नीचे लिखे हुए वाक्यों को ध्यान से पढ़िये.

१. सावन मासे वर्षा।

२. प्रश्न कठिन है कुछ समझ नहीं आता।

सन्धि है जिससे इस शब्द का शुद्ध रूप होता है वनौषधि । अतः शुद्ध रूप में इस वाक्य का स्वरूप इस प्रकार होना चाहिये—'आप वनौषधि का प्रयोग क्यों नहीं करते ?' दूसरे वाक्य में भी वधु और आगमन के योग से 'वध्वागमन' शब्द बनता है। अतः 'वधु आगमन' के स्थान पर वध्वागमन लिखने से दूसरा वाक्य भी शुद्ध हो जाता है।

(च) अन्य भाषाओं के उपसर्ग प्रत्यय आदि से सम्बन्ध रखने वाली अशुद्धियाँ

विदेशी भाषाओं के शब्द के रूप उन्हीं भाषाओं के व्याकरण के अनुसार बदले जाते हैं। उन शब्दों का रूप हिन्दी व्याकरण के अनुसार बदलना ठीक नहीं होता। इसी प्रकार विदेशी भाषा के शब्दों में उपसर्ग और प्रत्यय भी उस भाषा के नियम के अनुसार लगाने चाहिए। उदाहरण के लिए 'चार टिकिटें दीजिए' के स्थान पर 'चार टिकिट्स दीजिए' ही शुद्ध माना जायगा। 'मैं कुछ महत्वपूर्ण लेटरों की प्रतीक्षा कर रहा हूँ' के स्थान पर 'मैं कुछ महत्वपूर्ण लेटर्स की प्रतीक्षा कर रहा हूँ' कहना शुद्ध होगा। इसी प्रकार 'मैं अपनी बात सअदब कहना चाहता हूँ' के स्थान पर 'मैं अपनी बात बाअदब कहना चाहता हूँ' कहना शुद्ध होगा। 'तुम्हें इतनी अमीरता नहीं दिखानी चाहिए' के स्थान पर होगा 'तुम्हें इतनी अमीरी नहीं दिखानी चाहिए'

अशुद्ध और शुद्ध वाक्य

अशुद्ध—किताब मेरी मैंने उसी दिन दे दी थी।
 शुद्ध—मैंने अपनी किताब उसी दिन दे दी थी।
अशुद्ध—यहाँ ओफ कितनी रज धुर है।
 शुद्ध—ओफ! यहाँ कितनी रज धुर है।
अशुद्ध—सहजोबाई और मीराबाई हिन्दी की अच्छी कवि थीं।
 शुद्ध—सहजोबाई और मीराबाई हिन्दी की अच्छी कवयित्रियाँ थीं।
अशुद्ध—स्वतन्त्रता दिवस पर राजदूत मान्य ने झण्डा फ

अभ्यास

१—वाक्य किसे कहते हैं ? अच्छे वाक्य में क्या-क्या गुण होने चाहिये ?
२—संयुक्त और मिश्रित वाक्यों में क्या अन्तर है ?
३—अर्थ की दृष्टि से वाक्य के कौन-कौन से भेद होते हैं ?
४—निम्नलिखित वाक्यों को शुद्ध रूप में लिखो .

(क) सुधा ने अब तक फीस नहीं लाई।
(ख) द्वारका सिरी कृष्णजी की जन्मभूमि थी।
(ग) सच्चा मित्र जीवन में कोई एक ही बिरला होता है।
(घ) गोपियों ने राधा श्रीकृष्ण के पास भेजी।
(ङ) क्या तुमको नहीं मालूम कि नरेश दिल्ली से वापिस लौट आया।
(च) मीठा आम का रंग भले ही पीला हो पर रस अवश्य मीठी होती है।
(छ) हमारी नाक में दम हो गया है।
(ज) मुझको नौकर को भेजने को कहा गया था।
(झ) तब शायद वह अवश्य आएगा।

से बैठे हैं, युधिष्ठिर का छोटा भाई बहुत बड़ा वीर था। इन वाक्यों में 'अच्छे' 'मिलने वाले' तथा 'युधिष्ठिर का छोटा भाई' क्रमशः 'कवि' 'लोग' और 'अर्जुन' कर्त्ता के विस्तारक है।

विधेय और उसके भाग

क्रिया विधेय का मुख्य अंश होता है। क्रिया-विशेषण अथवा क्रिया-विशेषण के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्द विधेय का विस्तारक कहे जाते हैं। विधेय के चार भाग होते हैं—(१) क्रिया, (२) कर्म और उसका विस्तारक, (३) पूरक और उसका विस्तारक और (४) क्रिया-विशेषण अथवा क्रिया का विस्तारक। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक वाक्य में विधेय के ये चारों भाग रहें। कभी अकेली क्रिया से ही विधेय का कार्य चल जाता है और कभी इन चार भागों में से दो, तीन, अथवा चारों भी रहते हैं।

(१) प्रत्येक वाक्य में एक क्रिया अवश्य होती है। जैसे : सुशील जाता है। इस वाक्य में 'जाता है' क्रिया है। इसी से विधेय का काम पूरा हो जाता है।

(२) कर्म और उसका विस्तारक—जब क्रिया सकर्मक होती है तो उसका कर्म भी होता है। जैसे सुशील स्कूल जाता है। यहाँ 'स्कूल' कर्म हुआ। कभी-कभी क्रिया द्विकर्मक होती है और वाक्यों में दो कर्म होते हैं। जैसे . राम ने मोहन को गेंद दे दी। यहाँ 'मोहन', 'गेंद' दोनों ही कर्म हैं।

जिस प्रकार कर्त्ता का विस्तार करने वाले शब्द को कर्त्ता का विस्तारक कहते हैं उसी प्रकार कर्म का विस्तार करने वाले शब्द को कर्म का विस्तारक कहते हैं। जैसे राम ने सोहन के भाई मोहन को काली गेंद दे दी। यहाँ 'सोहन के भाई' तथा 'काली' दोनों ही क्रमशः 'मोहन' और 'गेंद' कर्म के विस्तारक हैं।

(३) पूरक और पूरक का विस्तारक—यदि क्रिया उसका पूरक होता है। पूरक शब्द या तो संज्ञा होते/

मिश्रित वाक्य

मिश्रित वाक्य मे एक मुख्य उपवाक्य होता है और शेष आश्रित उपवाक्य। आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं—(१) संज्ञा उपवाक्य (२) विशेषण वाक्य और (३) क्रिया-विशेषण उपवाक्य।

(१) संज्ञा उपवाक्य—जो उपवाक्य प्रधान उपवाक्य को संज्ञा के रूप मे अथवा कारक के रूप मे सहायता करते हैं, आश्रित संज्ञा उपवाक्य कहे जाते हैं। संज्ञा उपवाक्य, वाक्य मे संज्ञा का काम करता है। जैसे : सब जानते हैं कि तुम एक अच्छे कलाकार हो।

(२) विशेषण उपवाक्य—जो आश्रित उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की किसी संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताते हैं, वे विशेषण उपवाक्य कहे जाते हैं। जैसे : वह आदमी जो कल ही नौकर हुआ था आज भाग गया।

(३) क्रिया विशेषण उपवाक्य—जो उपवाक्य प्रधान उपवाक्य की क्रिया की विशेषता प्रकट करते हैं, क्रिया-विशेषण उपवाक्य कहे जाते हैं। जैसे : जितना जितना पढता जाता है उतना उतना ही सुशील बनता जाता है।

मिश्रित वाक्य का वाक्य विशेषण दो प्रकार से किया जाता है। (१) विस्तृत वाक्य-विश्लेषण, (२) संक्षिप्त वाक्य-विश्लेषण। विस्तृत वाक्य-विश्लेषण मे वाक्यों के उपवाक्य और उपवाक्यों के भिन्न-भिन्न भाग अलग-अलग दिखाये जाते हैं जब कि संक्षिप्त वाक्य-विश्लेषण मे केवल उपवाक्य और उनका सम्बन्ध दिखाया जाता है। विस्तृत वाक्य विश्लेषण पर साधारण वाक्य का वाक्य-विश्लेषण करते समय प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँ संक्षिप्त वाक्य-विश्लेषण के दो तीन उदाहरण दिये जा रहे हैं .

(१) प्रसन्नता का विषय है कि इतने विद्वान् श्रोताओ के सामने मुझे व्याख्यान देने का अवसर मिला।

(क) प्रसन्नता का विषय है—मुख्य उपवाक्य।

(ख) कि इतने विद्वान् श्रोताओ के सामने

अवसर मिला—(क) के आश्रित उपवाक्य, विषय का समानाधिकरण ।

'कि'—संयोजक ।

(२) जल्दी दौड़ो ताकि ट्रेन के समय पर पहुँच सकें ।

(क) जल्दी दौड़ो—मुख्य उपवाक्य ।

(ख) ताकि ट्रेन के समय पर पहुँच सकें—(क) के आश्रित क्रिया-विशेषण उपवाक्य ।

(ग) ताकि—संयोजक

(३) जब पुलिस लाठी बरसा रही थी तब एक अन्धा आदमी जो रास्ता भूल गया था, रो पड़ा और कहने लगा, 'भाई, कृपा कर मुझे थोड़ी देर तुम्हारे घर में आश्रय दे दो ।'

(क) एक अन्धा आदमी रो पड़ा—प्रधान उपवाक्य ।

(ख) और (वह) कहने लगा—(क) का समानाधिकरण उप-वाक्य ।

(ग) जो रास्ता भूल गया था—(क) के आश्रित विशेषण उपवाक्य ।

(घ) भाई कृपा करके थोड़ी देर मुझे घर में ठहरने दो—(ख) के आश्रित संज्ञा उपवाक्य ।

(ङ) जब पुलिस लाठी बरसा रही थी—(क) के आश्रित क्रिया विशेषण उपवाक्य ।

संयुक्त वाक्य

संयुक्त वाक्य में एक से अधिक प्रधान उपवाक्य रहते हैं और इन प्रधान वाक्यों के साथ बहुधा इनके आश्रित उपवाक्य भी रहते हैं जो अपना पूर्ण अर्थ रखते हुए स्वतन्त्र रहते हैं । संयुक्त वाक्य साधारण रूप से समुच्चयबोधक अव्यय द्वारा जोड़े जाते हैं, जैसे:

(१) संयोजक—और, एवम्, फिर आदि ।

मैं बाजार जाऊँगा और पुस्तक ले आऊँगा ।

(२) विभाजक—अथवा, नहीं, तो, नकि, न, चाहे ।

हम सदाशिव के साथ दिल्ली जायेंगे अथवा मथुरा जायेंगे ।

(३) विरोध दर्शक—लेकिन, वरन्, बल्कि ।

उसने बड़ा परिश्रम किया लेकिन गोल नहीं कर सका ।

(४) परिणाम दर्शक—अस्तु, क्योंकि, अत, इसलिये।
मैं दिल्ली गया था, इसलिये तो ये यहाँ आये हैं।

संयुक्त वाक्य का संक्षिप्त वाक्य-विश्लेषण

(१) साधारण बाढ़ में किनारे के खेतों को ही क्षति पहुँचती है, किन्तु बड़ी बाढ़ में गाँव के गाँव बह जाते हैं।

(२) व्यायाम से बल बढ़ता है, चेहरा सतेज बनता है और सब प्रकार के कामों में मन लगता है।

(३) पहिले दो दिन तो सुधा ने कृष्णा को सामने से गुजरते हुए देखा था लेकिन वह तड़के ही निकल जाती थी, अत. वह उसे रोक नहीं पाती थी और समझती थी कि कोई और लड़की जा रही होगी।

(१) (क) साधारण बाढ़ में किनारे के पेड़ों को ही क्षति पहुँचती है—प्रधान उपवाक्य (ख) से संयुक्त।
(ख) किन्तु बड़ी बाढ़ में गाँव के गाँव बह जाते हैं—प्रधान उपवाक्य 'क' का समान-वर्शी।

(२) (क) व्यायाम से बल बढ़ता है ···प्रधान उपवाक्य।
(ख) चेहरा सतेज बनता है प्रधान उपवाक्य (क) का सामानाधिकरण उपवाक्य।
(ग) सब प्रकार के कामों में मन लगता है ···प्रधान उपवाक्य (क) का सामानाधिकरण उपवाक्य।

(३) (क) पहिले दो दिन तो सुधा ने कृष्णा को सामने से गुजरते हुए देखा था ···प्रधान उपवाक्य।
(ख) लेकिन वह तड़के ही निकल जाती थी ···प्रधान उपवाक्य (क) का विरोध सूचक उपवाक्य।
(ग) अत: वह उसे रोक नहीं पाती थी ···उपवाक्य (ख) का परिणाम बोधक उपवाक्य।
(घ) और वह यही समझती थी ···उपवाक्य (ग) का समानाधिकरण।
(ङ) कोई और लड़की जा रही होगी—उपवाक्य (घ) आश्रित

लिखने समय रुकने, भाव प्रकट करने या सम्बन्ध प्रदर्शन करने के लिये जिन सर्व-स्वीकृत और सर्व-ग्राह्य चिह्न का प्रयोग किया जाता है उन्हें विराम-चिह्न कहा जाता है। हिन्दी में निम्नलिखित विराम चिह्न प्रचलित है :

१—अल्प विराम	,
२—अर्द्ध विराम	;
३—अपूर्ण विराम	:
४—पूर्ण विराम	।
५—प्रश्न-सूचक चिह्न	?
६—विस्मयादि बोधक चिह्न	!
७—सम्बोधक चिह्न	!
८—योजक या विभाजक चिह्न	-
९—निर्देशक चिह्न	—
१०—कोष्टक	( ) { } [ ]
११—उद्धरण चिह्न	' ', " "
१२—लोप चिह्न	+ × ....'
१३—विवरण चिह्न	:—
१४—तुल्यता या समानता सूचक चिह्न	=
१५—संक्षेप सूचक चिह्न	००
१६—हंस-पद चिह्न	^

१ –अल्प-विराम

पढ़ते समय जहाँ थोड़ी देर के लिये रुक
लगाया जाता है। अल्प विराम चिह्न का प्रयोग
अधिक होता है अतः इस चिह्न [illegible] भी
प्रयोग निम्नलिखित स्थान पर [illegible] :

(क) यदि एक ही वा
आदि समान
अल्प-विराम

दिल्ली, आगरा, कानपुर, लखनऊ और इलाहाबाद जाऊँगा।

(ख) वाक्य के मध्य में आये हुए विशेषण अथवा क्रिया-विशेषण उपवाक्य के पूर्व और पश्चात् दोनों ओर अल्प विराम का प्रयोग किया जाता है। जैसे : मैंने जो योजना बनाई थी, सफल हो गई।

(ग) सम्बोधन शब्द के बाद भी अल्प-विराम का प्रयोग किया जाता है। जैसे : सुनो महेश, कल तुम्हें परीक्षा देने के लिये जल्दी ही जाना है।

(घ) विषय को स्पष्ट बतलाने और सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिये भी अल्प विराम का प्रयोग किया जाता है। जैसे : श्रीमद्भागवत, गीता, ११ वाँ अध्याय, श्लोक १८।

(ङ) उक्ति या उद्धरण चिह्न से पूर्व भी अल्प विराम लगाया जाता है। जैसे : राम ने कहा, "मैं परसों जयपुर जा रहा हूँ।"

(च) जहाँ परस्पर सम्बन्ध वाले दो शब्दों के बीच में कोई पद, वाक्यांश या उपवाक्य आकर उन्हें अलग कर दे, वहाँ उनके दोनों ओर अल्प-विराम लगाया जाता है। जैसे चाहे तुम घर नहाओ, चाहे कुएँ पर जाओ, १० बजे तक अवश्य आ जाना।

(छ) यदि संयुक्त वाक्य के दूसरे वाक्य का प्रारम्भ 'अतः', 'अतएव' 'तभी', 'इसलिए', 'किन्तु', 'वरन', 'परन्तु', 'क्योंकि' आदि से हो तो उसके पहिले अल्प विराम लगाया जाता है। [illegible] मोहन अपनी कक्षा में प्रथम [illegible], परन्तु [illegible] सबसे पीछे रहता है।

(ज) 'वह', 'यह' अथवा नित्य सम्बन्धी [illegible] शब्द जहाँ लुप्त हो वहाँ भी अल्प-विराम लगाया जाता है। जैसे मोहन जो भी [illegible] है [illegible]।

(झ) वाक्य में पढ़ते समय जिन स्थानों पर [illegible] आवश्यक लगे, वहाँ अल्प-विराम का प्रयोग [illegible]। जैसे : कौशल्या इतनी [illegible] न बोलती थी [illegible] थी, न पीती थी और न [illegible] थी।

(ञ) समान पदी शब्द, या वाक्यांश को पृथक् करने के लिये अल्प-विराम का प्रयोग किया जाता है। जैसे : भारत के सर्व-मान्य नेता, पं० जवाहरलाल नेहरू, कल अमेरिका से लौट रहे हैं।

२—अर्द्ध विराम

जिस स्थान पर अल्प-विराम की अपेक्षा अधिक रुकना पड़ता है, वहाँ अर्द्ध विराम लगाया जाता है। अर्द्ध विराम को अल्प-विराम और पूर्ण विराम के बीच का चिन्ह कह सकते हैं। अर्द्ध विराम का प्रयोग निम्नलिखित स्थानों पर किया जाता है :

(क) किसी एक वाक्य पर निर्भर रहने वाले कई आश्रित वाक्यों के बीच अर्द्ध-विराम लगाया जाता है। जैसे : जब तक वह अत्याचारी यह न देख लेगा कि बीसियों परिवार त्राहि-त्राहि कर रहे हैं, उनके पास न पहिनने को कपड़ा है न खाने को अनाज, वे दर-दर के भिखारी बन गये हैं; तब तक उसका हृदय शान्त नहीं होगा।

(ख) जब किसी एक वाक्य के दो भागों में से पहिला भाग अपने अर्थ में पूर्ण हो और दूसरा उसकी व्याख्या आदि करता हो तब उनके बीच अर्द्ध-विराम लगाया जाता है। जैसे : मैं कसरत करता हूँ; तुम मालिश कर लो।

(ग) समानाधिकरण वाक्यों के मध्य में भी अर्द्ध विराम का प्रयोग किया जाता है। जैसे : कर्वे विश्व विद्यालय की नींव आचार्य कर्वे ने डाली; उन्हीं ने उसे कॉलेज बनाया; उन्होंने उसे महिला-शिक्षा का एक आदर्श केन्द्र बनाया; और उन्हों ने ही उसे विश्वविद्यालय भी बनाया।

(घ) प्रधान वाक्य से कारणवाचक क्रिया-विशेषण का सम्बन्ध दूर होने पर अर्द्ध-विराम लगाया जाता है। जैसे : मैं तुम्हारा चेहरा एक क्षण के लिये भी देखना नहीं चाहता; मेरी आँखों के सामने से हट जाओ!

(ङ) मिश्रित अथवा संयुक्त वाक्य में जो वाक्य दूसरे वाक्य अथवा वाक्यों में विपरीत अर्थ प्रकट करते हैं उस वाक्य के पूर्व अर्द्ध विराम लगाया जाता है। जैसे : मारने-पीटने या कड़ी-कड़ी सजा देने से आजादी का आन्दोलन दबाया नहीं जा सकता, उससे तो वह ऐसे ही तेज होता है जैसे घृताहुति से अग्नि प्रज्ज्वलित होती है।

३–अपूर्ण विराम

यदि किसी स्थान पर अर्द्ध विराम की अपेक्षा अधिक समय तक रुकना पड़े तो अपूर्ण विराम लगाया जाता है। हमारी भाषा में अपूर्ण चिह्न तथा विसर्ग चिह्न में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। अतः इस चिह्न का प्रयोग बहुत कम ही किया जाता है। इस चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थानों पर किया जाता है :

(क) जहाँ रुकना आवश्यक एवं अनिवार्य हो जाता है। जैसे : दो दिन बुखार आया और लड़की चल बसी : क्या करें भाग्य में यही लिखा था।

(ख) जहाँ किसी कथन की पुष्टि में एक से अधिक उदाहरण दिये जांय और वहाँ अर्थात्, जैसे, उदाहरणार्थ आदि शब्दों का प्रयोग न किया जाय वहाँ अपूर्ण विराम लगाया जाता है। जैसे : शेक्सपीयर ने कई अच्छे नाटक लिखे : मेकबेथ, हेमलेट, किंग लियर, आँथेलो, जूलियस सीजर, वेनिस का सौदागर, रोमियो जूलियट, जैसी आपकी मर्जी आदि।

(ग) जहाँ बातचीत के बाद 'संक्षेप में', 'सारांश यह' आदि वाक्यों का प्रयोग होता है वहाँ उनके बाद अपूर्ण विराम लगाया जाता है। जैसे : सारांश यह है ; यदि आप ईमानदारी और मेहनत से काम करें तो मैं आपको नौकरी दिला सकता हूँ।

(घ) यदि वाक्य स्वतन्त्र होते हुए भी अन्योन्याश्रित हो तो अपूर्ण विराम का प्रयोग किया जाता है। जैसे : सब धर्मों का यही आदेश है : प्राणी मात्र पर दया करो, सत्य बोलो और किसी को हानि मत पहुँचाओ।

४—पूर्ण विराम

पूर्ण विराम चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थानों पर किया जाता है :

(क) साधारणतः प्रत्येक पूर्ण वाक्य के अन्त में पूर्ण विराम लगाया जाता है। जैसे : मैं अपना काम समाप्त करके दिल्ली जाऊँगा।

(ख) आज्ञा-सूचक या आदेशात्मक वाक्य के अन्त में भी पूर्ण विराम लगाया जाता है। जैसे : अभी बैठो। थोड़ी देर बाद जाना।

५—प्रश्न-सूचक चिह्न

प्रश्न-सूचक चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थानों पर किया जाता है :

(क) यदि किसी वाक्य में कोई प्रश्न पूछा जाता है तो अन्त में प्रश्न-सूचक चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : क्या आप आज ही लौटे हैं ?

(ख) यदि किसी वाक्य से सन्देहात्मक अथवा अनिश्चयात्मक भाव सूचित हो तो प्रश्न-सूचक चिह्न लगाया जाता है। जैसे : शायद आप परीक्षा में पास हो गए हैं ?

(ग) यदि वाक्य में कहीं सांकेतिक, सन्देहात्मक अथवा व्यङ्गात्मक भाव प्रदर्शित किया जाय तो कोष्टक के अन्दर प्रश्न-सूचक चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : यहाँ सब सभ्य व्यक्ति (?) रहते हैं, तभी तो चोर-बाजारी, रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है।

६—विस्मयादिबोधक चिह्न

(क) विस्मयादिबोधक चिह्न का प्रयोग उस वाक्य में किया जाता है जहाँ हर्ष, विषाद, घृणा, भय, आश्चर्य, प्रार्थना, आज्ञा, मनोवेगों का प्रदर्शन करना होता है। जैसे :

(१) अरे ! चोर भाग रहा है, पकड़ो उसे !

(२) छि: ! कितने गन्दे विचार हैं तुम्हारे !

(३) भगवन् ! गरीबों पर दया करो !

(ख) उपहास तथा व्यङ्ग के विशेषभाव को सूचित करने के

विस्मयादिबोधक चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : यदि आप पाँच पचास हजार रुपया खर्च करने के लिए तैयार हों तो महीने भर में ही आपको अनेक संस्थाओं का सभापति बना दूँ! फिर प्रत्येक अखबार आपका चित्र छापेगा, प्रत्येक संस्था आपका गुणगान करेगी।

७—सम्बोधक चिह्न

विस्मयादि-बोधक चिह्न और सम्बोधक चिह्न में कोई अन्तर नहीं है। चिह्न वही है, किन्तु जहाँ पुकारने या सचेत करने का भाव होता है वहाँ सम्बोधक चिह्न लगाया जाता है। जैसे : अरे केशव! कहाँ चले गये, इधर आओ।

योजक या विभाजक चिह्न

जहाँ दो या दो से अधिक शब्दों का सम्बन्ध प्रकट करना होता है वहाँ योजक या विभाजक चिह्न का प्रयोग किया जाता है। इसके नियम इस प्रकार हैं :

(क) साधारणतः योजक चिह्न उन तत्पुरुष और द्वन्द्व समासों के बीच लगाया जाता है जो सन्धि या रूप-परिवर्तन के कारण एक नहीं हो पाते। जैसे : माता-पिता, दिन-रात।

(ख) पुनरुक्ति अथवा युग्म रूप में जिन शब्दों का प्रयोग होता है वहाँ भी योजक चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : राम-राम, पढ़ते-पढ़ते, आमने-सामने।

(ग) यदि कोई शब्द पंक्ति के अन्त में पूर्ण न हो सके तब भी इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : मैंने बार-बार कहा कि मित-व्ययता से काम लो परन्तु तुम मेरी बात मानते ही नहीं।

निर्देशक चिह्न

जहाँ किसी बात को समझाने के लिए उदाहरण देते हैं या किसी बात का निर्देशन करते हैं वहाँ निर्देशक चिह्न लगाया जाता है। इसका प्रयोग नीचे लिखे स्थानों में होता है :

(क) वार्तालाप विषयक लेखों में वक्ता के नाम के अथवा जहाँ किसी की उक्ति शुरू होती है वहाँ इस चिह्न (—) [illegible]

जाता है। जैसे : राम ने कहा—यह अखबार पढ़ो।

(ख) यदि वाक्य के बीच में कोई वाक्य, वाक्यांश या स्वतन्त्र-पद आ जाए तो उसके दोनों ओर भी इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : हमारे चारों भाई—भगवान् उनकी रक्षा करे—दंगाग्रस्त क्षेत्र मे शान्ति स्थापना के लिए गए हैं।

(ग) विषय विभाग सम्बन्धी प्रत्येक शीर्षक के आगे और जहा उदाहरण देना हो वहाँ भी इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : तुलसीदास की सभी रचनाएं जैसे—रामायण, विनय पत्रिका, कवितावली, गीतावली, पार्वती-मंगल—मैंने पढ़ ली हैं।

(घ) यदि वाक्य मे क्रिया के अनेक कर्ता हों, और अन्त में कोई शब्द सामूहिक रूप मे उनका प्रतिनिधित्व करे तो उस शब्द से पूर्व निदशक चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : बालक, बूढ़े, स्त्री, पुरुष, हिन्दू, मुसलमान-सभी तो 'भारत छोड़ो' आन्दोलन मे कूद पड़े थे।

(ग) यदि वाक्य मे कोई ऐसा शब्द प्रयोग करने का अवसर आ जाय जो भद्दा हो तो उसके स्थान पर भी निर्देशक चिह्न लगाया जाता है। जैसे : रमेश को बहुत गुस्सा आ रहा था, उसने कहा सुशील तो—बच्चा है।

१०—कोष्टक चिह्न

कोष्टक चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थानों पर किया जाता है :

(क) कोष्टक चिह्न का प्रयोग ऐसे स्थल पर होता है जहाँ कुछ अथवा वाक्य मुख्य-वाक्य से सम्बन्धित नहीं होते हैं, उनका वाक्य मे होना अर्थ स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है। जैसे : आगरा निवासी लल्लू लालजी (सं० १८२०-१ का प्रेम-सागर उल्लेखनीय ग्रन्थ है।

(ख) नाटकों में अभिनय की क्रिया को प्रकट करने के लि कोष्टक चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : सुधारक बढ़ कर) ठहरो! अब हरिजनों के साथ इतना नहीं किया जा सकेगा।

(ग) कहीं-कहीं गम्भीर या क्लिष्ट शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के लिये भी इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : भाषावार प्रान्त रचना के लिए भारत-सरकार ने तीन वर्ष पहले एक आयोग (कमीशन) बैठाया था।

११—उद्धरण चिह्न

उद्धरण चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थानों पर किया जाता है :

(क) जब किसी व्यक्ति द्वारा कहे हुए वाक्य ज्यों के त्यों रखना आवश्यक होता है तब उद्धरण चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : उस दिन हरिभाऊजी ने मुझ से कहा था—"मेरे कोई पुत्र नहीं, मैं तुम्हें अपने पुत्र की तरह ही रखना चाहता हूँ।"

(ख) किसी पुस्तक या लेखक के उद्धृत किये हुए शब्द उद्धरण चिह्न के अन्तर्गत रखे जाते हैं। जैसे : रामायण में तुलसी दासजी के प्रतिपाद्य भगवान् राम ही हैं। उन्होंने लिखा है— "इहि महँ आदि मध्य अवसाना, प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।"

(ग) यदि किसी वाक्य में दो उद्धरण आ जायँ तो पहिले अवतरण के लिए दोहरे चिह्न और दूसरे के लिये इकहरे चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे विनोबा प्रार्थना प्रवचन में कह रहे थे— "सम्पत्ति किसी व्यक्ति की नहीं समाज की—ईश्वर की है, तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा है—'सम्पत्ति सब रघुपति कै आही।'...... .. .... "

१२—लोप-चिह्न

जब किसी अवतरण में कुछ शब्द अथवा वाक्य छोड़ दिये जाते हैं और लेखक यह संकेत करना चाहता है कि कुछ छोड़ दिया गया है तो लोप चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे शान्त रहो ......दुर्भाग्य की काली छाया .. ....। यदि अनुच्छेद या अधिक वाक्य छोड़ दिये जाते हैं तो [× × ×] चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

कहीं कहीं (') के द्वारा भी लोप चिह्न का काम चला लिया जाता है। जैसे : सन् १८५७ न लिखकर '५७ ही लिख दिया जाता है।

१३—विवरण चिह्न

किसी विषय अथवा बात को समझाने के लिये अथवा निर्देश के लिये विवरण चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : सन्धि तीन प्रकार की होती है स्वर सन्धि, व्यंजन सन्धि और विसर्ग सन्धि।

१४—तुल्यता या समानता सूचक चिह्न

जहाँ एक वस्तु की तुलना या समानता दूसरी वस्तु से दिखानी होती है वहाँ इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : आठ फर्लाङ्ग=एक मील।

१५—संक्षेप-सूचक चिह्न

जहाँ पूरा शब्द या पूरा नाम न लिखकर संक्षिप्त नाम से ही काम चलाना आवश्यक होता है वहाँ इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन या प्रयाग-महिला विद्यापीठ के स्थान पर हि० सा० स० या प्र० म० वि०।

१६—हंसपद चिह्न

यदि वाक्य में भूल से कोई शब्द समूह छूट जाता है तो इस चिह्न को बीच में लगाकर छूटे हुए शब्द, पंक्ति के ऊपर लिख दिये जाते हैं। जैसे :

निवासी
शंभूनाथ शुक्ल विंध्य प्रदेश के ^ हैं,

उपर्युक्त चिह्नों के अतिरिक्त नीचे लिखे चिह्न भी हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होते हैं :

(१) पुनरुक्ति चिह्न ,,
(२) समाप्ति सूचक चिह्न —:०:—
(३) विशेष चिह्न *, †, ‡, || आदि

अभ्यास

१—विराम चिह्नों की क्या उपयोगिता है ?
२—विराम चिह्न कितने प्रकार के हैं, उनके नाम बताइये ?
३—अर्द्ध विराम कहाँ-कहाँ लगाया जाता है ?
४—योजक या विभाजन चिह्न कहाँ-कहाँ लगाया जाता है ?

५—निम्नलिखित वाक्यों मे उपयुक्त चिह्न लगाइये :

(१) गाधीजी के अनुसार किसी को न मारनामात्र ही अहिंसा नही है वरन् वास्तविक अहिंसा तो यह है किसी भी प्राणी को मन, वचन और कर्म से किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुँचाया जाय ।

(२) उपन्यासकार पूर्ण चिड़िया ही नही बल्कि आस-पास बैठी हुई दूसरी चिडिया को तथा जहाँ तक उसकी निगाह दौड़ सके पूरे दृश्य को सावधानी के साथ अवलोकन करता है, किन्तु कहानीकार धनुर्विद्या विशारद वीर अर्जुन की भाँति अपने निशाने को अचूक बनाने के लिये केवल आँख की ओर अधिक से अधिक सिर को जिसमे आँख अवस्थित है, लक्ष कर तीर चलाता है ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

साधारणतः मुहावरे शब्द का अर्थ है—अभ्यास। किन्तु इस साधारण अर्थ में उसका प्रयोग नहीं होता। हम ऐसे पद या वाक्यांश को मुहावरे कहते हैं जो अपने साधारण शाब्दिक अर्थ के स्थान पर लाक्षणिक या कोई दूसरा अलौकिक अर्थ प्रकट करे। अपनी मनोभावना दूसरों पर ठीक तरह अभिव्यक्त करने के लिये, अपनी अनुभूति की तीव्रता प्रकट करने के लिये हमें कुछ चुभते हुए लोक-प्रचलित वाक्यांशों का प्रयोग करना पड़ता है। इनके प्रयोग से हमारा कार्य सरल बन जाता है। लोकोक्तियाँ या मुहावरे भाषा को सजीव, रोचक, प्रवाह-पूर्ण और आकर्षक बना देते हैं। उनके प्रयोग से जहाँ लिखने या बोलने वाले को इस बात का सन्तोष हो जाता है कि वह अपनी बात ठीक तरह कह सका है, वहाँ सुनने वाले को भी इस बात से सन्तोष होता है कि वह वक्ता या लेखक के विचारों को ठीक-ठीक समझ पाया है। उदाहरण के लिये यदि कोई आदमी थोड़ा बड़ा ओहदा पाकर घमण्ड से फूल उठे और सीधे मुँह बात भी न करे तो हमें यह कह कर सन्तोष होगा कि—'प्यादा से फर्जी भयो, टेढ़ो-टेढ़ो जाय'। इससे हमारी मनोभावना ठीक-ठीक व्यक्त हो जायगी। इसी प्रकार सुनने वाले को भी हमारी मनोभावना की ठीक-ठीक कल्पना हो सकेगी। अपने विचार, भाव या अनुभूति की तीव्रता दूसरों पर प्रकट करने में मुहावरे और लोकोक्तियाँ सहायक होती हैं। जो बात दूसरे शब्दों में, दो तीन वाक्य लिख अथवा बोल कर भी हम प्रकट नहीं कर पाते हैं, वह लोकोक्तियों के द्वारा एक छोटा-सा वाक्यांश प्रकट कर देता है।

भाषा को प्रवाह-पूर्ण और सजीव बनाकर मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ लेखक, वक्ता और श्रोता सभी का काम सरल बना देते हैं। वे लिखने, कहने, सुनने और पढ़ने के काम में एक रस पैदा कर देते हैं जिससे वह कार्य बड़ा रोचक हो जाता है। इसलिये भाषा में मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग आवश्यक माना गया है।

लोकोक्तियों का महत्त्व निर्विवाद है। किन्तु अपात्र के हाथ में पड़ कर वे अर्थ का अनर्थ भी कर देती है। अतः विद्यार्थियों के लिए उन्हें भलीभाँति समझ लेना आवश्यक है। उन्हें ठीक तरह समझे बिना ही प्रयोग में लाना कई बार अभीष्ट प्रभाव नहीं डाल पाता। बल्कि उससे उल्टा प्रभाव ही पड़ता है। इसी प्रकार लोकोक्तियों के शब्दों में भी कोई परिवर्तन करना उचित नहीं है। इस परिवर्तन से भी अर्थ का अनर्थ हो सकता है और अनेक बार वह प्रयोगकर्ता के अज्ञान का ही सूचक बन जाता है। अतः नीचे हम कुछ लोकोक्तियाँ और मुहावरे दे रहे हैं। उनके साथ-साथ हमने उनके अर्थ और प्रयोग भी देने का प्रयत्न किया है ताकि ठीक प्रकार समझने और अपने वाक्यों में प्रयोग करने में कठिनाई न हो।

१. मुहावरा—अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना।
अर्थ—अपने मुँह अपनी प्रशंसा करना।
प्रयोग—मोहन को कोई पसन्द नहीं करता लेकिन वह है जो हर समय अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनता रहता है।

२. मु०—अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।
अ०—एक व्यक्ति कोई बड़ा काम नहीं कर सकता।
प्र०—लोग चाहते हैं कि मोहन [illegible] में [illegible] आने वाली [illegible] अकेला चना भाड़ फोड़ सकता है।

३. मु०—अक्ल के पीछे लाठी लिए फिरना।
अ०—मूर्खतापूर्ण बात करना।
प्र०—मोहन को कितनी बार समझाया कि [illegible] जिस व्यक्ति से झगड़ा न करो लेकिन वह तो अक्ल [illegible] लाठी लिए फिरता है।

४. मु०—अञ्चल पसारना।
अ०—दया की भीख मांगना।
प्र०—हे ईश्वर! दुनिया से मुझे कोई [illegible] मांगने हो अपना अञ्चल पसार

मु०—अपना-सा मुँह लेकर रह जाना।
अ०—शर्मिन्दा होना।
प्र०—किशोर बड़ी शान से लालाजी के पास रुपये उधार माँगने गया। लेकिन जब उन्होंने इन्कार कर दिया तो अपना-सा मुँह लेकर रह गया।

मु०—अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना।
अ०—अपना अहित स्वयं कर लेना।
प्र०—नौकरी से त्याग-पत्र देकर उसने अपने पैरों आप ही कुल्हाड़ी मार ली।

७. मु०—अपने पैरों पर खड़े होना।
अ०—स्वावलम्बी बनना।
प्र०—बी० ए० पास करने के बाद तो नगेन्द्र अपने पैरों पर खड़ा हो गया है; अब उसे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं रही।

८. मु०—अपना उल्लू सीधा करना।
अ०—अपना काम बनाना।
प्र०—आजकल स्वार्थी लोग गांधी-टोपी धारण कर अपना उल्लू सीधा करते हैं, पर ऐसे लोग समाज तथा राष्ट्र के लिए कलंक हैं।

९. मु०—अक्ल पर पत्थर पड़ना।
अ०—मूर्ख बनना।
प्र०—कितना समझाया लेकिन नारायण ने एक नहीं सुनी। प्रतीत होता है कि उसकी अक्ल पर पत्थर पड़ गये हैं।

१०. मु०—अन्धे की लकड़ी।
अ०—एक मात्र सहारा।
प्र०—बूढ़ी मुनिया के लिये उसका एकमात्र पुत्र ही [illegible] लकड़ी है।

१. मु०—अरहर की टट्टी, गुजराती ताला।
अ०—अनमेल वस्तुओं का साथ।
प्र०—इन फटी-टूटी और सड़ी-गली पुस्तकों पर रङ्गीन [illegible] तो अरहर की टट्टी गुजराती ताला वाली ही बात

१२. मु०—अधजल गगरी छलकत जाय ।

अ०—ओछा मनुष्य इतराता है ।

प्र०—सदाशिव तीन बार मैट्रिक में फेल हो चुका है, लेकिन बातें ऐसी करता है मानो बी० ए० पास हो ! ठीक ही है अधजल गगरी छलकत जाय । (इसी अर्थ में 'प्यादा से फर्जी भयो टेढ़ो टेढ़ो जाय' वाली कहावत भी काम में ली जाया करती है ।)

१३. मु०—अपने मरे बिना स्वर्ग नहीं दीखता ।

अ०—अपने किये बिना काम नहीं होता ।

प्र०—मैं कितनी बार महेश, प्रकाश और किशोर से कह चुका हूँ कि घर की सफाई कर दो, लेकिन किसी ने नहीं सुना । ठीक ही है अपने मरे बिना स्वर्ग नहीं दीखता ।

१४. मु०—अब पछताय होत क्या जब चिडिया चुग गई खेत ।

अ०—काम बिगड़ जाने पर पश्चाताप व्यर्थ है ।

प्र०—जब दिल्ली जाने के लिए घर से निकलते हुए केशव ने बहुत देर कर दी और गाड़ी निकल जाने पर हाय-तोबा करने लगा, तो सिद्धेश्वर ने कहा—'अब पछताय होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत ।'

१५. मु०—अपना दाम खोटा तो परखने वाले का क्या दोष ?

अ०—जब हमारे अन्दर ही बुराई हो तो उसके लिए दूसरों को दोष क्यों दिया जाय ?

प्र०—जब चोरी करने पर शुकदेव को नाना शिवराम ने डाँट दिया तो शुकदेव का भाई नानाजी से लड़ने लगा । इस पर उसकी माँ ने कहा—'अपना दाम खोटा तो परखने वाले का क्या दोष ?'

१६. मु०—अन्धे के हाथ बटेर लगना ।

अ०—अयोग्य व्यक्ति को कोई बहुमूल्य चीज बिना परिश्रम मिल जाना ।

प्र०—रमेश ने साल भर तो कुछ पढ़ा-लिखा नहीं था, उसे द्वितीय श्रेणी मिलना तो 'अन्धे के हाथ बटेर लगना है ।'

१७. मु०—अंधे के आगे रोना अपने दीदार खोना ।

अ०—मूर्ख को समझाना व्यर्थ होता है ।

प्र०—आप किस मूरख को समझाने जा रहे हैं कि प्रकृति की [illegible] । लेकिन यह सुनता ही नहीं । अन्धे के आगे रोना और अपने दीदा खोना वाली कहावत चरितार्थ हो रही है ।

१८. मु०—अन्धों में काना राजा ।

अ०—अशिक्षित मूर्खों में एक कम मूर्ख व्यक्ति भी आदरणीय बन जाता है ।

प्र०—यहाँ [illegible] को कोई नहीं पूछता था लेकिन इस गाँव में तो वह 'अन्धों में काना राजा है ।'

१९. मु०—अंगूर खट्टे होना ।

अ०—अप्राप्य वस्तु में बुराई का दोष लगाना ।

प्र०—आजकल मोहन कहता फिरता है कि [illegible] ? [illegible] 'अंगूर खट्टे होते हैं ।'

२०. मु०—आँख दिखाना ।

अ०—धमकाना ।

प्र०—भाई, छोटी-छोटी बात पर आँख क्यों दिखाते रहते हो ?

२१. मु०—आँख चुराना ।

अ०—छिपना ।

प्र०—कुछ दिनों से मोहन आँख चुरा कर निकल जाता है ।

२२. मु०—आँख का तारा ।

अ०—प्यारा ।

प्र०—शिवेन्द्र अपने पिता की आँख के तारे थे ।

२३. मु०—आँख बिछाना ।

अ०—स्वागत करना ।

प्र०—[illegible] के स्वागत के लिए आँखें बिछाए रहती थी ।

२४. मु०—आँख लाल करना ।

अ०—क्रोध करना।

प्र०—जब समुद्र ने प्रार्थना करने पर भी मार्ग नहीं दिया, तो राम ने आँखें लाल करली।

२५. मु०—आँखें चार होना।

अ०—प्रणय के बन्धन में बँधना।

प्र०—शिवदयाल का पढ़ने में मन नहीं लगता। ऐसा प्रतीत होता है कि रागिणी से उसकी आँखें चार हो गई हैं।

२६. मु०—आँखों से गिरना।

अ०—निगाह में तुच्छ हो जाना।

प्र०—जिस दिन से उसकी चोरी पकड़ी गई है वह सबकी आँखों से गिर गया है।

२७. मु०—आँखों में धूल झोंकना।

अ०—धोखा देना।

प्र०—सबकी आँखों में धूल झोंक कर गब्बरसिंह दिन दहाड़े पाँच हजार रुपया ले भागा।

२८. मु०—आँखें भर आना।

अ०—शोक-विह्वल हो जाना।

प्र०—जब राम वन जाते समय विदा लेने आये थे माता कौशल्या की आँखें भर आईं।

२९. मु०—आँधी के आम।

अ०—बहुत सस्ती चीज।

प्र०—आज कल आलू दो आने सेर हैं, खरीद लो। आँधी के आम बार-बार हाथ नहीं लगते।

३०. मु०—आकाश-पाताल का अन्तर।

अ०—बहुत भारी फर्क।

प्र०—जब राम वनवासी होकर जङ्गल में चले गये तो उनकी स्थिति में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया।

३१ मु०—आग लगाना।

अ०—झगड़ा पैदा करना।

प्र०—जब धर्मप्रकाश एम० ए० की परीक्षा के साथ कानून की परीक्षा देने का प्रयत्न करने लगा तो लोगों ने समझाया—एक ही परीक्षा दे लो, 'आधी छोड़ सारी को धावे, आधी रहे न सारी पावे।'

४५. मु०—आँख के अन्धे, नाम नैनसुख।

अ०—नाम कुछ, काम कुछ।

प्र०—जब सुरेशराम एडवोकेट एक साधारण मुकद्दमे की ही पैरवी नहीं कर सके तो ग्रामीण मुवक्किल बोल उठा—"आँखों के अन्धे, नाम नैनसुख।"

४६. मु०—आँख के अन्धे, गाँठ के पूरे।

अ०—मूर्ख धनवान्।

प्र०—अगर बिना मेहनत किये ही रुपया पाना चाहते हो तो कोई आँख का अन्धा गाँठ का पूरा तलाश करो।

४७. मु०—आँख में धूल झोंकना।

अ०—धोखा देना।

प्र०—भाई, बिना टिकिट यात्रा करके तो तुम रेलवे वालों की "आँखों में धूल झोंकते हो।"

४८. मु०—आकाश-पाताल एक करना।

अ०—अत्यन्त कठिन परिश्रम करना।

प्र०—थोड़ा समय बचा था लेकिन अविनाश "आकाश-पाताल एक करके पास हो गया।"

४९. मु०—आकाश से गिरा तो खजूर में अटका।

अ०—कठिनता से कार्य पूरा होने पर भी बीच में कोई बाधा आजाना।

प्र०—राममनोहर ने जब बहुत परिश्रम करके विदेश जाने के लिये छात्रवृति प्राप्त करली तो जाने के दिन ही जहाज कम्पनी के कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी। यह तो ऐसे ही हुआ कि "आसमान से गिरा और खजूर में अटका।"

५०. मु०—आये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास।

अ०—लक्ष्य भ्रष्ट होना।

जब मार्ग में एक पेड़ के नीचे घण्टे भर पड़े-पड़े बीत गया तो केशव अपने साथी से बोला—'आये थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास।'

५१. मु०—आप न जावे सासरे औरन को सिख देय।
अ०—स्वयं सन्मार्ग पर न चलकर दूसरों को शिक्षा देना।
प्र०—देवराम स्वयं तो तीर्थ यात्रा के लिये नहीं जाता, मुझे बार बार कहता है। सच है 'आप न जावे सासरे औरन को सिख देय।'

५२. मु०—ईंट का घर मिट्टी का दिया।
अ०—बना बनाया काम बिगाड़ दिया।
प्र०—किसानभाई ने परिश्रम से अनाज बोया और उसे सींचा लेकिन जब वह कटा तो सारे ढेर को एक चिनगारी ने स्वाह कर दिया। ठीक ही कहा है 'ईंट का घर मिट्टी का दिया।'

५३. मु०—ईंट से ईंट बजाना।
अ०—विध्वंस करना।
प्र०—प्रताप ने कहा—'मैं किसी का राज्य नहीं चाहता लेकिन यदि किसी ने मेवाड़ पर दृष्टि डाली तो ईंट से ईंट बजा दूँगा।'

५४. मु०—इधर-उधर की हाँकना।
अ०—असत्य बातें कहना।
प्र०—इतनी देर से क्यों इधर-उधर की हाँक रहे हो, बन्द करो ये बातें।

५५ मु०—इज्जत उतारना।
अ०—प्रतिष्ठा भङ्ग करना।
प्र०—भरी सभा में मेरे कर्जदार होने की बात कह कर तुमने मेरी इज्जत उतारनी है।

५६. मु०—इधर की दुनियाँ उधर होना।
अ०—असम्भव बात का होना।
प्र०—चाहे इधर की दुनियाँ उधर हो जाय, मैं सिगरेट नहीं पिऊँगा।

५७. मु०—उँगली उठाना।
अ०—निन्दा करना।
प्र०—ऐसा कोई काम मत करो जो लोग उँगली उठावें।

६४. मु०—ऊँची दुकान फीके पकवान ।
अ०—दिखावा ज्यादा, वास्तविकता कम ।
प्र०—क्यों व्यर्थ ही महेशबाबू की प्रशंसा कर रहे हो ? 'ऊँची दुकान फीके पकवान' वाली बात है ।

६५. मु०—ऊँट किस करवट बैठे ?
अ०—न जाने क्या परिणाम हो ?
प्र०—स्थिति अनिश्चित है पता नहीं इन चुनावों में 'ऊँट किस करवट बैठे ?'

६६. मु०—ऊँट के गले में बिल्ली ।
अ०—अनमेल सम्बन्ध ।
प्र०—अपने एम० ए० पास पुत्र का विवाह गाँव की अशिक्षित लड़की से करके आपने ऊँट के गले में बिल्ली बाँध दी है ।

६७. मु०—उल्टी माला फेरना ।
अ०—अशुभ की कामना करना ।
प्र०—क्यों उल्टी माला फेरते हो ? मैं तो वैसे ही कठिनाइयों में से गुजर रहा हूँ ।

६८. मु०—उठी पैंठ आठवें दिन लगना ।
अ०—गया हुआ अवसर कठिनता से प्राप्त होना ।
प्र०—भाई, समय व्यर्थ मत गँवाओ । उठी पैंठ आठवें दिन लगती है । मेरे रिटायर होने पर तुम्हारे काम में अनेक बाधायें आ सकती हैं ।

६९. मु०—उल्लू बोलना ।
अ०—उजाड़ होना ।
प्र०—जहाँ नादिरशाह की सेनाएँ गईं वहाँ उल्लू बोलने लग गये ।

७०. मु०—उल्टी खोपड़ी ।
अ०—मूर्ख होना ।
प्र०—उसे ज्यादा समझाने से क्या लाभ ! उसकी तो खोपड़ी ही उल्टी है ।

७१. मु०—एक हाथ से ताली नहीं बजती ।

अ०—एक पक्ष का दोष नहीं होता ।

प्र०—कौशल किशोर अपनी असफलता का दोष अध्यापक पर डालना चाहता है लेकिन एक हाथ से ताली नहीं बजती ।

. मु०—एक म्यान में दो तलवारें ।

अ०—एक स्थान पर दो व्यक्तियों का अधिकार होना ।

प्र०—या तो आप मोटर चलाइये या मैं, एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकतीं ।

७३. मु०—एक पन्थ दो काज ।

अ०—एक काम के साथ दूसरा काम हो जाना ।

प्र०—चलो, सब्जी भी खरीद लेंगे और मेला भी देख लेंगे, एक पंथ दो काज ।

७४. मु०—एक एक ग्यारह होना ।

अ०—मेल से कार्य बनना ।

प्र०—कौन कहता है कि तुम और मैं मिल कर स्कूल नहीं चला सकते ? भाई, एक और एक मिल कर ग्यारह होते हैं ।

७५. मु०—एक चुप सौ को हरावे ।

अ०—मौन से झगड़े मिट जाते हैं ।

प्र०—जब केशव गुस्सा होकर आवे, तो तुम चुप हो जाना । एक चुप सौ को हरावे ।

७६. मु०—एक पापी नाव को ले डूबता है ।

अ०—एक बुराई अनेक हानियों को जन्म देती है ।

प्र०—यदि उस दिन मोहन झगड़ा खड़ा न करता तो इतना हत्याकाण्ड न होता । एक पापी सारी नाव को ले डूबता है ।

७७. मु०—एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है ।

अ०—छोटी बुराई ही बड़ा भयङ्कर रूप ग्रहण कर लेती है ।

प्र०—विनोद ने परीक्षा में नकल करके हमारे सारे विद्या बदनाम करवा दिया । एक मछली सारे तालाब को कर देती है ।

८५. मु०—ओठ चबाना।

अ०—गुस्सा करना।

प्र०—जब पिताजी के सामने दिनेश ने नवीन की शिकायत कर दी तो वह ओठ चबाने लगा।

८६. मु०—कलम तोड़ना।

अ०—बहुत अच्छा लिखना।

प्र०—सुरेश ने वह कविता इतनी सुन्दर लिखी कि कलम ही तोड़ दी है।

८७. मु०—कठपुतली होना।

अ०—किसी के कहने में चलना।

प्र०—अरे, उसकी क्या बात करते हो, वह तो हेडमास्टर की कठपुतली है।

८८. मु०—कंगाली में आटा गीला।

अ०—कष्ट के समय और कष्ट मिलना।

प्र०—मेरे पास इस समय केवल सात रुपये हैं; यदि तुम्हें ये भी देदू, तो 'कंगाली में आटा गीला' वाली कहावत चरितार्थ होगी।

८९. मु०—कञ्चन बरसना।

अ०—समृद्धि होना।

प्र०—जब से जीवनभाई मिनिस्टर बने हैं, बड़े ठाट हैं। रोज कञ्चन बरसता है।

९०. मु०—कलई खुलना।

अ०—भेद प्रकट हो जाना।

प्र०—जब कलई खुल जाती है तो सब नफरत करने लग जाते हैं।

९१. मु०—कहने से कुम्हार गधे पर नहीं बैठता।

अ०—जिद्दी आदमी कहने से काम नहीं करता।

प्र०—मैंने देवी प्रसाद से कितनी बार कहा कि ट्यूशन कर; लेकिन कहीं कहने से कुम्हार गधे पर बैठता है।

९२. मु०—कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली।

अ०—मूर्ख ।
प्र०—उस काठ के उल्लू की मैं सूरत भी नहीं देखना चाहता ।

१००. मु०—काले के आगे दीपक नहीं जलता ।
अ०—शक्तिशाली के आगे कुछ वस नहीं चलता ।
प्र०—लोग कलक्टर की बड़ी बुराई करते हैं, लेकिन जब वह सामने आता है तो चुप । सच है काले के आगे दीपक नहीं जलता ।

१०१. मु०—का वर्षा जब कृषि सुखाने ।
अ०—समय निकल जाने पर प्रयत्न व्यर्थ होता है ।
प्र०—चोरों के भाग जाने पर जब पुलिस पहुँची, तो लोगों ने कहा, 'का वर्षा जब कृषि सुखाने ?'

१०२. मु०—काला अक्षर भैंस बराबर ।
अ०—निरक्षर ।
प्र०—अरे भाई ! उन्हें किताब क्यों भेंट करते हो ? उनको तो काला अक्षर भैंस बराबर है ।

१०३. मु०—कानों में तेल डालना ।
अ०—सुन कर भी न सुनना ।
प्र०—मैंने कितनी बार उनसे रुपये माँगे, लेकिन उन्होंने तो जै कानों में तेल डाल लिया है ।

१०४. मु०—काई-सी फटना ।
अ०—इधर-उधर भाग पड़ना ।
प्र०—जब सभा में पुलिस आई तो जैसे काई-सी फट गई ।

१०५. मु०—कोयले की दलाली में काले हाथ ।
अ०—बुरे काम का नतीजा बुरा ही निकलना ।
प्र०—मैंने बस का किराया वसूल करके जब मालिक को दिये तो दो रुपये कम हो गये जो पास से देने पड़े । 'कोयले की दलाली में काले हाथ ।'

१०६. मु०—काठ में पांव देना ।
अ०—जान-बूझ कर बन्धन में पड़ना ।

प्र०—वृद्धावस्था में शादी पर वकीलसाहब ने काठ में पाँव दे दिया है।

१०७. मु०—कान का कच्चा होना।

अ०—किसी की भी बात पर बिना समझे-बूझे भरोसा कर लेना।

प्र०—तुम्हारे गुरुजी कान के बड़े कच्चे हैं।

१०८. मु०—कान खड़े होना।

अ०—चकित रह जाना।

प्र०—दिन दहाड़े बैंक से २०,०००) रु. की चोरी कर ले जाने की खबर से लोगों के कान खड़े हो गये।

१०९. मु०—कान खा जाना।

अ०—बहुत बातें करना।

प्र०—मैं वहाँ आधे घण्टे ही बैठा, लेकिन बच्चों ने कान खा लिये।

११०. मु०—कान भरना।

अ०—दूसरों के बारे में उल्टी सीधी बातें कहकर उनका अहित करवाना।

प्र०—मैं उसे जानता हूँ वह प्रतिदिन किशोर के विरुद्ध नेताजी के कान भरता रहता है।

१११. मु०—कान पकड़ना।

अ०—भूल स्वीकार करना।

प्र०—कान पकड़ता हूँ, अब कल से बीड़ी नहीं पिऊँगा।

११२. मु०—कान पर जूँ न रेंगना।

अ०—कुछ परवाह नहीं करना।

प्र०—मैं अपने पेड़ के बारे में पचास पत्र लिख चुका हूँ, लेकिन ऑफीसरों के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती।

११३. मु०—कागजी घोड़े दौड़ाना।

अ०—लिखा पढ़ी करना।

प्र०—मैं तो कागजी घोड़े दौड़ाता रहता हूँ, कभी तो

११४. मु०—काला मुँह होना।

अ०—बदनाम होना।
प्र०—जब गबन की बात प्रकट हो गई, तो शिवराम का काला मुँह हो गया।

. मु०—काम तमाम करना।
अ०—मार डालना।
प्र०—औरंगजेब ने आज्ञा दी कि किसी प्रकार शिवाजी का काम तमाम कर दो।

१६. मु०—कुएँ में भाँग पड़ना।
अ०—सबकी अकल मारी जाना।
प्र०—मैंने पच्चीस आदमियों को समझाया लेकिन एक भी धर्मशाला बनवाने के लिए चन्दा देने को तैयार नहीं हुआ। ऐसा लगता है कि कुए में ही भाँग पड़ गई है।

११७. मु०—खटाई मे पड़ना।
अ०—झमेले मे पड़ना।
प्र०—स्कूल की इमारत का मामला अब खटाई में पड़ गया है।

१८. मु०—खरबूजे को देख कर खरबूजा रंग बदलता है।
अ०—एक को देख कर दूसरा भी वैसा ही करता है।
प्र०—जब राधा झूठ बोल गई तो उसको देखकर सुशीला भी झूठ बोल गई। सत्य है खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है।

११९. मु०—खोपड़ी चाट जाना।
अ०—अधिक बोलकर थका देना।
प्र०—मैं शिवकुमार से घबराता हूँ, वह खोपड़ी चाट जाता है।

१२०. मु०—खाक छानना।
अ०—मारे-मारे फिरना।
प्र०—रमेश ने तो सारे भारत की खाक छान डाली है।

१२१. मु०—खाल उधेड़ना।
अ०—बहुत पीटना।

अ०—अधिक बोलने वाले कुछ करते नहीं।

प्र०—ज्यादा बकवास मत करो। यदि ताकत हो तो कुछ कर दिखाओ। ज्यादा गरजने वाले बरसते नहीं हैं।

१३०. मु०—गर्दन काटना।

अ०—बहुत हानि पहुँचाना।

प्र०—उसका खेत नीलाम करवा कर तो जमींदार ने जैसे उसकी गर्दन ही काट ली।

१३१. मु०—गाजर-मूली समझना।

अ०—अत्यन्त शक्तिहीन समझना।

प्र०—नेपोलियन की सेना दुश्मनों को गाजर-मूली समझती थी।

१३२. मु०—गूलर का फूल।

अ०—अप्राप्य वस्तु।

प्र०—आज बाजार में किसी के पास दूध नहीं है। पता नहीं वह गूलर का फूल क्यों बन रहा है?

१३३. मु०—गाल बजाना।

अ०—डींग हाँकना।

प्र०—युद्ध-स्थल में गाल बजाना व्यर्थ है। यहाँ तो हथियारों का कौशल दिखाओ।

१३४. मु०—गुदड़ी का लाल।

अ०—गुणवान् किन्तु गुप्त।

प्र०—मेरे विद्यालय में कई गुदड़ी के लाल हैं। इनकी कला कुछ वर्षों बाद दिखाई देगी।

१३५. मु०—गाल फुलाना।

अ०—गुस्सा होना।

प्र०—शोभा तो बात-बात में गाल फुला लेती है।

१३६. मु०—गाँठ का पूरा।

अ०—रुपये वाला।

प्र०—यह विद्यालय तो कोई गाँठ का पूरा ही चला सकता है।

१३७. मु०—गुरु तो गुड़ रह गये, चेला शक्कर हो गये।

अ०—छोटे व्यक्ति का ऐसा काम करना जो बड़ों के काम से श्रेष्ठ हो।

प्र०—विनोद को डॉक्टर की उपाधि मिलने पर उसके गुरु बोले—'तुमने खूब प्रगति की। लोग ठीक कहते हैं, गुरु गुड़ रह गये, चेला शक्कर हो गये।'

१३८. मु०—घड़ों पानी पड़ना।

अ०—बहुत लज्जित होना।

प्र०—फेल होने का समाचार सुनते ही विजय पर घड़ों पानी पड़ गया।

१३९. मु०—घर बैठे गङ्गा आना।

अ०—बिना परिश्रम लाभ होना।

प्र०—ओ हो! आज तो घर बैठे गङ्गा आ गई, आपके दर्शन से बड़ा लाभ मिला।

१४०. मु०—घर का भेदी लङ्का ढावे।

अ०—फूट ही हानि का मुख्य कारण है।

प्र०—१८५७ का आन्दोलन हमारे देशवासियों की सहायता से ही दबा दिया गया। ठीक है—'घर का भेदी लङ्का ढावे।'

१४१. मु०—घी के दीपक जलाना।

अधिक प्रसन्न होना।

प्र०—भाई सुरेश, तुम्हारे पिताजी मन्त्री बन गये। अब तो घी के दीपक जलाओ।

१४२. मु०—घर का, न घाट का।

अ०—बेकार।

प्र०—अशिक्षित व्यक्ति को न अच्छी नौकरी मिल पाती है, न व्यापार में ही सफलता मिलती है। बेचारा न घर का रहता है, न घाट का।

१४३. मु०—घर में खीर तो बाहर खीर।

अ०—घर आदर तो बाहर आदर।

प्र०—देवकुमार को घर में सब प्यार करते हैं और औरों पर लोग

अ०—निर्लज्ज।

प्र०—नारायण तो चिकना घड़ा है। उसे कितनी ही बातें कहीं पर वह बदला लेने को तैयार न हुआ।

१५२. मु०—चिकनी चुपड़ी बातें करना।

अ०—कपट-भरी बातें करना।

प्र०—मंगलचन्द चिकनी-चुपड़ी बातें तो बहुत करता है लेकिन कर्ज नहीं चुकाता है।

१५३. मु०—चुटकियों में उड़ाना।

अ०—तुच्छ समझना।

प्र०—अरे, देवीप्रसाद! उसकी चिन्ता मत करो। उसे तो मैं चुटकियों में उड़ा दूँगा।

१५४ मु०—चोटी से एड़ी तक का जोर लगाना।

अ०—खूब कोशिश करना।

प्र०—मन्त्री-पद के लिए बाबासाहब ने 'चोटी से एड़ी तक का जोर लगा दिया' पर सफलता नहीं मिली।

१५५ मु०—चिराग तले अन्धेरा।

अ०—अपनी बुराई न दिखाई देना।

प्र०—वे हमको तो सत्य-अहिंसा का उपदेश देते नहीं स्वयं? चिराग तले अन्धेरा।

१५६ मु०—चोर की दाढ़ी में तिनका।

अ०—दोषी की घबराहट।

प्र०—ज्योंही राजेन्द्र ने कहा कि मेरी घड़ी चोरी हो गई, देवीशङ्कर बोला—'भाई मेरी तलाशी ले लो। मुझे लगता है।' महेन्द्र जानता था कि यह देवीशङ्कर का काम है। अतः वह बोला—'चोर की दाढ़ी में तिनका।'

१५७ मु०—चोरी और सीना जोरी।

अ०—अपराध करके अकड़ना।

प्र०—जब सोम-यात्रा पर आदमी को रस्सा लगा कर भी डाँटने लगा तो वह व्यक्ति बोला—'चोरी और सीना जोरी।'

अ०—निर्लज्ज ।

प्र०—नारायण तो चिकना घड़ा है ! उसे कितनी ही बातें कहो पर वह बदला लेने को तैयार न हुआ ।

१५२. मु०—चिकनी चुपड़ी बातें करना ।

अ०—कपट-भरी बातें करना ।

प्र०—मंगलचन्द चिकनी-चुपड़ी बातें तो बहुत करता है लेकिन कर्ज नहीं चुकाता है ।

१५३. मु०—चुटकियों में उड़ाना ।

अ०—तुच्छ समझना ।

प्र०—अरे, देवीप्रसाद ! उसकी चिन्ता मत करो । उसे तो मैं चुटकियों में उड़ा दूँगा ।

१५४. मु०—चोटी से एड़ी तक का जोर लगाना ।

अ०—खूब कोशिश करना ।

प्र०—मन्त्री-पद के लिए काकासाहब ने 'चोटी से एड़ी तक का जोर लगा दिया' पर सफलता नहीं मिली ।

१५५. मु०—चिराग तले अन्धेरा ।

अ०—अपनी बुराई न दिखाई देना ।

प्र०—वे हमको तो सत्य-अहिंसा का उपदेश देते नहीं थकते हैं और स्वयं ? चिराग तले अन्धेरा ।

१५६. मु०—चोर की दाढ़ी में तिनका ।

अ०—दोषी की घबराहट ।

प्र०—ज्योंही राजेन्द्र ने कहा कि मेरी घड़ी खो गई, वैसे ही देवीशङ्कर बोला—'भाई मेरी घड़ी देख लो । मुझे बड़ा डर लगता है ।' महेन्द्र जानता था कि यह देवीशङ्कर का ही काम है । अतः वह बोला—'चोर की दाढ़ी में तिनका ।'

१५७. मु०—चोरी और सीना जोरी ।

अ०—अपराध करके अकड़ना ।

प्र०—जब ताँगे-वाला एक आदमी को धक्का लगाकर भी डाँटने लगा तो वह व्यक्ति बोला—'चोरी और सीना जोरी ।'

छोटे मुँह बड़ी बात मत बोलो।

१६६. मु०—छठी का दूध याद आ जाना।

अ०—बहुत अधिक परेशान होना।

प्र०—मोटर बिगड़ जाने से जब जंगल में ही एक रात और एक दिन बिताने के लिए विवश होना पड़ा तो सोहन को छठी का दूध याद आ गया।

१६७. मु०—छाती पर साँप लोटना।

अ०—ईर्ष्या से जल जाना।

प्र०—मेरी वेतन-वृद्धि देखकर शिवराम की छाती पर साँप लोट गया।

१६८. मु०—जल में रहे, मगर से बैर।

अ०—आश्रयदाता से ही झगड़ा करना।

प्र०—मैंने रामसिंह को समझाया कि मालिक से लड़ाई मत करो—जल में रहना और मगर से बैर करना अच्छा नहीं होता।

१६९ मु०—जैसा देश, वैसा भेष।

अ०—देश-काल को देख कर चलना।

प्र०—मैं सूट नहीं पहनता था, लेकिन कालेज में आने पर सिलाना पड़ा। क्या करें, जैसा देश, वैसा भेष।

१७०. मु०—जान पर खेलना।

अ०—मृत्यु से बिना डरे कार्य करना।

प्र०—जब राधा डूबने लगी तो नरेश ने जान पर खेल कर उसे बचा लिया।

१७१. मु०—जबान में लगाम न होना।

अ०—बिना सोचे-विचारे बोल उठना।

प्र०—उसकी जबान में लगाम नहीं है, इसलिए मैं उससे ज्यादा बात नहीं करता।

१७२ मु०—जड़ उखाड़ना।

अ०—नष्ट करना।

प्र०—मोहन रात-दिन अपने दोस्त के लिए काम करता है, लेकिन दोस्त है कि मोहन की जड़ ही उखाड़ रहा है।

१७३. मु०—जली-कटी सुनाना।

अ०—गाली-गलौज व व्यङ्ग में बातें करना।

प्र०—मुझे गुस्सा आ रहा था, इस बार तो मैंने सुरेश को खूब जली-कटी सुनादीं।

१७४. मु०—जीती मक्खी निगलना।

अ०—जान-बूझ कर हानि उठाना।

प्र०—मैं जानता था कि दिल्ली जाना हानिकर है, लेकिन मालिक की आज्ञा जो थी, जीती मक्खी निगलनी पड़ी।

१७५. मु०—जूतियाँ चटकाते फिरना।

अ०—इधर-उधर भटकना।

प्र०—आजकल विनय की नौकरी तो छूट गई है, वह इधर-उधर जूतियाँ चटकाता फिरता है।

१७६. मु०—जिसकी लाठी उसकी भैंस।

अ०—शक्ति ही निर्णायक होती है।

प्र०—प्रश्न हुआ कि कम्पनी का मुनाफा किसको कितना मिले? महेशबाबू प्रभावशाली व्यक्ति हैं, वे ही मुनाफा हजम कर गये। भाई आजकल तो जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली बात है।

प्र०—लड़के को चार महीनों से समझाया जा रहा है कि शादी करने, पर वह टस से मस नहीं होता।

१८०. मु०—टाँग अड़ाना।
अ०—बाधा डालना।
प्र०—सेठजी का इस कम्पनी से कोई सम्बन्ध नहीं, लेकिन हमेशा इसमें टाँग अड़ाते ही रहते हैं।

१८१. मु०—टेढ़ी उँगली से घी निकालना।
अ०—चालाकी से काम निकालना।
प्र०—जब वह प्रार्थना करने पर भी नहीं माना तो मैं लाठी ले आया। लाठी देखते ही भाई साहब चुप हो गये। ठीक है—टेढ़ी उँगली से ही घी निकलता है।

१८२. मु०—टेढ़ी खीर।
अ०—कठिन कार्य।
प्र०—एम० ए० पास कर लेना सुरेन्द्र के लिए टेढ़ी खीर है।

१८३. मु०—टका-सा जवाब दे देना।
अ०—नाहीं कर देना।
प्र०—मैं बड़ी आशा से छात्रवृत्ति की सिफारिश करने सक्सेना बाबू के घर गया, लेकिन उन्होंने टका-सा जवाब दे दिया।

१८४. मु०—टट्टी की ओट शिकार खेलना।
अ०—छिपकर कोई बुरा काम करना।
प्र०—क्या आप समझते हैं कि यह सब भागीरथजी का काम है? नहीं साहब, यह तो टट्टी की ओट शिकार खेला जा रहा है।

१८५. मु०—ठकुर सुहाती बातें करना।
अ०—चापलूसी करना।
प्र०—देवकरणजी तो ठकुर सुहाती बातें करने के लिये प्रसिद्ध हैं।

१८५. मु०—ठण्डी साँस लेना।
अ०—आह भरना।

प्र०—जब दुर्घटना का समाचार मिला तो धन्नालालजी ठण्डी साँसे लेने लगे ।

७. मु०—डूबते को तिनके का सहारा ।

अ०—निराशा में भी आशा की झलक ।

प्र०—कर्ज में डूबे हुए सेठ रघुनाथदास को बीमा के दस हजार रुपये मिल गये तो जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिल गया ।

८८ मु०—डंके की चोट ।

अ०—स्पष्ट रूप से ।

प्र०—वह डंके की चोट कहता है कि रामस्वरूप ने गबन किया है ।

१८९. मु०—डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाना ।

अ०—अपना काम अलग-अलग करना ।

प्र०—राम दयाल ने कहा कि आओ साथ-साथ पढ़लें, लेकिन मोहन तो अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही पकाना चाहता है ।

—ढाक के तीन पात ।

प्र०—नेपाली सेना ने जर्मनी की लड़ाई में शत्रुओं के दाँत खट्टे कर दिये।

मु०—दाँतों तले अँगुली दबाना।

अ०—आश्चर्य चकित होना।

प्र०—ताजमहल देखकर वाइसराय ने दाँतों तले अंगुली दबाली।

३. मु०—दाँत किटकिटाना।

अ०—क्रोध करना।

प्र०—वह व्यर्थ ही मुझ पर दाँत किटकिटाता रहता है।

२०४. मु०—दाँत दिखाना।

अ०—असमर्थता प्रकट करना।

प्र०—जब उनसे जङ्गल में चलकर शिकार खेलने के लिये कहा तो उन्होंने दाँत दिखा दिये।

२०५. मु०—दाँत गड़ाना।

अ०—प्राप्ति की प्रबल इच्छा रखना।

प्र०—उस घड़ी पर तो जयमुखलालजी दाँत गड़ा रहे हैं।

२०६. मु०—दाल में काला।

अ०—कुछ बुराई का सन्देह होना।

प्र०—ठाकुर साहब की उदासीनता बताती है कि कुछ दाल में काला है।

मु०—दाल न गलना।

अ०—काम न बनना।

प्र०—चले जाइये, यहाँ आपकी दाल नहीं गलेगी।

८. मु०—दिन फिरना।

अ०—अच्छे दिन आना।

प्र०—अंग्रेजों के चले जाने पर [illegible] के दिन फिर गये हैं।

२०९. मु०—दीपक लेकर ढूँढना।

अ०—खूब तलाश करना।

प्र०—सन्तों की वाणी वाली पुस्तक तो मैं दीपक लेकर ढू[illegible] है। पता नहीं, वह मिल भी सकेगी या नहीं।

अ०—पोल खोलना।

प्र०—जब जयकिशन बोलने खड़ा हुआ तो उसने भारत-उद्योग-कम्पनी की धज्जियाँ उड़ा दीं।

२१८. मु०—नमक-हरामी करना।

अ०—कृतघ्न बनना।

प्र०—देखो, गुरु, मालिक और माता-पिता के साथ नमक-हरामी करना अच्छा नहीं होता।

२१९. मु०—न तीन में, न तेरह में।

अ०—किसी भी गिनती में नहीं।

प्र०—उसकी कौन सुनता है वह तो न तीन में है, न तेरह में।

२२०. मु०—नमक-मिर्च लगा कर कहना।

अ०—बात को बढ़ा-चढ़ा कर कहना।

प्र०—शकुन्तला का भरोसा नहीं वह नमक-मिर्च लगाकर कहती है।

२२१. मु०—नाक का बाल।

अ०—घनिष्ठ मित्र।

राव आजकल शिवदासानी की नाक का बाल बना हुआ है।

कटना।

अपमान होना।

जब मैं शर्त हार गया तब ऐसा लगा जैसे नाक कट गई।

नानी याद आना।

अ०—होश ठिकाने आना।

प्र०—वह पत्थर इतना भारी था कि उसे उठाने में सुलतानसिंह को नानी याद आ गई।

२२४. मु०—नाक में दम करना।

अ०—तङ्ग कर देना।

प्र०—विनय इतना ऊधम मचाता है कि नाक में दम कर देता है।

२२५. मु०—नाको चने चबाना।

अ०—कष्ट पहुँचाना।

२३४. मु०—पासा पलटना।
अ०—भाग्य बदलना।
प्र०—राजा साहब के स्वर्गवास से सुशील के भाग्य का पासा पलट गया।

२३५. मु०—पेट में दाढ़ी होना।
अ०—कपटी होना।
प्र०—मैं खूब जानता हूँ शिवदयाल के पेट में दाढ़ी है।

२३६. मु०—पानी पड़ना।
अ०—सब व्यर्थ हो जाना।
प्र०—वर्षा से नाटककार की कला पर पानी पड़ गया। कोई ठहरा ही नहीं।

२३७. मु०—फूँक-फूँक कर पैर रखना।
अ०—सावधानी से काम करना।
प्र०—कितनी बार कह चुका हूँ कि फूँक-फूँक कर पैर रखो। जमाना नाजुक है।

मु०—बगलें झाँकना।
अ०—उत्तर न दे पाना।
प्र०—जब कक्षा में मास्टर साहब ने प्रश्न पूछे, तो सुरेश बगलें झाँकने लगा।

मु०—बहती गङ्गा में हाथ धोना।
अ०—अवसर से लाभ उठाना।
प्र०—सरकार कर्ज देती है, तो मकान बनालो। बहती गङ्गा में हाथ धो लेना चाहिये।

२४०. मु०—बाल बाँका न होना।
अ०—थोड़ी सी भी हानि न होना।
प्र०—उस दुर्घटना में चार व्यक्ति मर गये, परन्तु जगतनारायण का बाल भी बाँका न हुआ।

२४१. मु०—बायें हाथ का खेल।
अ०—सरल कार्य।

और लोहे का कंट्रोल हो गया—सिर मुँड़ाते ही ओले गिरे।

२६६. मु०—साँप मरे न लाठी टूटे।

अ०—विना हानि के कार्य हो जाना।

प्र०—उनसे लड़ने जाना ठीक नहीं। ऐसा रास्ता निकालो कि साँप मरे, न लाठी टूटे।

२६७. मु०—सोते सिंह को जगाना।

अ०—शक्तिशाली से झगड़ा करना।

प्र०—राजपूतों को गाली देना सोते सिंह को जगाना है।

२६८. मु०—सौ सुनार की एक लुहार की।

अ०—किसी की सौ वार की हानि दूसरे की एक वार की हानि के बराबर हो जाती है।

प्र०—देखो, मुझे तङ्ग मत करो। तुम्हारे वार-वार सताने का बदला मैं एक वार में ले लूँगा—'सौ सुनार की एक लुहार की।'

२६९. मु०—सर पर कफ़न बांधे फिरना।

अ०—मरने को तैयार रहना।

राजपूत तो सर पर कफ़न बांध कर निकलते थे, अतः उनकी लड़ाई भयंकर होती थी।

मु०—सिर का पसीना एड़ी तक आना।

अ०—कठिन परिश्रम करना।

प्र०—सिर का पसीना एड़ी तक आया है, तब कहीं मैंने दस हजार रुपये कमाये हैं।

२७१. मु०—हाथ धोकर पीछे पड़ना।

अ०—जी-जान से लग जाना।

प्र०—[illegible] तो हाथ धोकर अंग्रेजों के पीछे पड़ा है।

२७२ मु०—हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना।

अ०—कुछ काम न करना।

प्र०—हाथ पर हाथ रख कर तो आलसी बैठते है। उठो, कुछ काम करो।

२८१. मु०—हाथी चले जाते हैं कुत्ते भौंकते रहते हैं।

अ०—बुद्धिमान मूर्खों की बातों पर ध्यान नहीं देते।

प्र०—शहर में कुछ लोगों ने उनके खिलाफ पर्चेबाजी की लेकिन उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। अरे भाई ! हाथी चले जाते हैं, कुत्ते भौंकते रहते हैं।

२८२. मु०—श्री-गणेश करना।

अ०—प्रारम्भ करना।

प्र०—यह अच्छा हुआ तुमने आज से घूमने का श्री-गणेश कर दिया है।

---

३. सरलार्थ—अपठित सम्बन्धी प्रश्न पूछते समय किसी भी गद्य या पद्य का अर्थ चार प्रकार से पूछा जाता है : (१) सरलार्थ (२) भावार्थ (३) तात्पर्य (४) व्याख्या।

(१) सरलार्थ—किसी गद्यांश या पद्यांश में आये हुए लेखक के भाव या विचार को बोल-चाल की सरल भाषा में व्यक्त कर देना सरलार्थ कहलाता है। अर्थ करते समय कठिन शब्दों, मुहावरों आदि को सरल भाषा में लिख दिया जाता है। सरलार्थ का उद्देश्य लेखक के अभिप्राय को सीधे-सादे शब्दों में अभिव्यक्त करना ही होता है।

(२) भावार्थ—जब जटिल और क्लिष्ट शब्दों एवं मुहावरों आदि को केवल सरल भाषा में लिख देना इष्ट नहीं होता है, बल्कि लेखक के मुख्य भाव को स्पष्ट करना होता है और इसी दृष्टि से गद्यांश या पद्यांश को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है तब उसे भावार्थ कहते हैं।

(३) तात्पर्य—लेखक या कवि के शब्दों में जो मुख्य भाव या प्रेरणा होती है उसे स्पष्ट करना ही तात्पर्य बताना कहा जाता है।

(३) व्याख्या—जब प्रसंग बताते हुए विस्तार-पूर्वक किसी पद्यांश या गद्यांश के रस, अलंकार, छन्द, अन्तर्कथा आदि का वर्णन करके उसमें निहित अर्थ या रहस्य को स्पष्ट किया जाता है तो उसे व्याख्या कहा जाता है। व्याख्या में तीन बातों का ध्यान प्रमुख रूप से रखा जाता है—(क) प्रकरण, (ख) अर्थ, (ग) विशेष।

(क) प्रकरण—जिन बातों से व्याख्या के समझने में सहायता मिलती है उन्हें प्रकरण कहते हैं। उदाहरणार्थ : वह गद्यांश या पद्यांश किस जगह से लिया गया है, उसमें कौन किससे कहता है आदि। इसे प्रसंग भी कहा जाता है। प्रसंग बता देने से अर्थ समझने में बड़ी सहायता मिलती है।

(ख) अर्थ—प्रसंग लिख देने के बाद गद्यांश या पद्यांश का सरल और

३—रेखांकित अंश का तात्पर्य लिखते समय केवल उसका शब्दार्थ नहीं लिखना चाहिए, बल्कि उसके आशय को अपने शब्दों में बताने का प्रयत्न करना चाहिए।

४—किसी पद या शब्द का अर्थ देते समय केवल पर्यायवाची शब्द लिख कर सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए। जो अर्थ दिया जाय वह ऐसा हो कि मूल अंश के स्थान पर रखा जा सके और तब यदि उसे पढ़ा जाय तो वाक्य-संगठन में कोई दोष आए बिना ही आशय स्पष्ट हो जाय। उसके कारण आशय को कोई आघात नहीं पहुँचना चाहिये।

५—व्याख्या, सरलार्थ, तात्पर्य, भावार्थ आदि लिखते समय सीधी सरल और सुबोध भाषा का प्रयोग करना चाहिये।

६—यदि किसी अवतरण का शीर्षक लिखना हो तो वह इस प्रकार का होना चाहिए कि उसकी आत्मा को अभिव्यक्त कर सके। यदि उस प्रकार का कोई शीर्षक अवतरण में ही ढूँढ़ने का प्रयत्न किया जाय तो बहुत अंशों में निराश नहीं होना पड़ेगा। वह अवतरण की प्रारम्भिक या अन्तिम पंक्तियों में कहीं न कहीं मिल सकता है।

* अपठित अवतरण

गद्यांश

(१)

मैं दुनिया में एक छोर से दूसरे छोर तक गया और देखा कि प्रत्येक स्थान पर गुलामी, प्रशंसा और आदर की उत्सव-यात्रा के साथ मौजूद है। लोग उसकी बलि-वेदी पर नवयुवक और नवयुवतियों को भेंट चढ़ाते हैं और उसे देवता के नाम से पुकारते हैं। उसके चरणों में सुगन्ध तथा शराब चढ़ाते हैं और उसे बादशाह के नाम से पुकारते हैं। उसकी मूर्तियों के सामने धूप बत्तियाँ सुलगाते हैं और उसे अवतार का नाम देते हैं। शीश नवाते हुए उसके सामने गिरते हैं और उसे कानून कहते हैं। उसके लिए लड़ने और एक दूसरे का वध करते हैं और उसका नाम राष्ट्रीयता

---

* ये अवतरण संक्षिप्तीकरण (Precis) के लिए भी समुचित अभ्यास बन सकते हैं।

३—इस अवतरण का उपयुक्त शीर्षक होगा—'गुलामी'।

४—देवता, बादशाह, अवतार, कानून, राष्ट्रीयता, भाई-बन्दी, समानता आदि कई अच्छे रूपों में हमें गुलामी दिखाई देती है। वह दुनियाँ के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रत्येक स्थान में प्रशंसा और आदर की उत्सव-यात्रा के साथ मौजूद दिखाई देती है।

(२)

साहित्यकार को लोक हृदय के अनुकूल परिपूर्ण शब्द प्रकट करने की कला साधनी चाहिए। अर्थात् सम्यक्, मधुर और कुशल तीनों प्रकार की वाणी बोलना—जिसमें न्यून, अतिरिक्त, और विपरीत भाव न हो। यह एक महान् साधना है जो उसी को सधती है जिसे अपना निज का कोई विकार न हो। जो निज का विकार रखता है वह इस तरह की सम्यक् वाणी प्रकट नहीं कर सकता। थर्मामीटर को खुद का बुखार नहीं होता इसलिये वह दूसरों का बुखार नाप सकता है। इसी प्रकार जिसमें स्वयं कोई विकार नहीं होता वही दूसरों के लिये सम्यक् वाणी बोल सकता है। —विनोबा

नं० १—रेखाङ्कित शब्दों की व्याख्या कीजिये।

२—इस गद्यांश का सारांश चार पंक्तियों में लिखिये।

३—इस गद्यांश का उपयुक्त शीर्षक बताइये।

४—अन्तिम वाक्य की पद-व्याख्या कीजिये।

५—साहित्यकार को कौन-सी कला की साधना करना चाहिए? यह साधना कौन-सा व्यक्ति कर सकता है?

(३)

आचार्य विश्वश्रुति के तीनों शिष्यों ने शिक्षा समाप्त करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिए अनुमति माँगी। आचार्य की आँखें डबडबा आईं। अनुमति दे दी।

उस समय संध्या हो रही थी। तीनों शिष्य अपनी-अपनी तैयारी

कर लिया। यही माया अपने जाल में फँसा कर हमें अपने से अलग कर देती है। लेकिन साधना से यह दूरी मिट सकती है। की इस साधना को रहस्यवाद कहते हैं।

कबीर की कविता अपने काल की अस्त-व्यस्तता और धार्मिक वना से पैदा हुई वह हमारा हृदय छूती है और आज भी संकेत रती है कि ऐसा करेंगे तो कविता का रस हमें धरती के ताप शाप से मुक्ति देगा।

प्रश्न नं० १—उपर्युक्त अवतरण का भावार्थ सरल भाषा में लिखिये।
२—रेखांकित वाक्यांशों का अर्थ लिखिये।
३—कबीर के रहस्यवाद से आप क्या समझते हैं?
४—किन बातों ने प्रमुख रूप से कबीर की कविता को जन्म दिया?
५—निम्नलिखित मुहावरों का अर्थ लिख कर उन्हें वाक्यों में प्रयुक्त कीजिये—
गह भटकना, जड़ पकड़ना, जाल में फँसना, हृदय छूना।
६—इस अवतरण के अन्तिम वाक्य का वाक्य-विश्लेष कीजिये।
६—समान बनायें—हिन्दू-मुसलमान, अक्षर-ब्रह्म, ब्र विष्णु-महेश, ताप-शाप।

(५)

चुन्न-मिन नामक एक चीनी शिष्य ने अपने गुरु ताओ वू की सेवा की। एक दिन चुन्न-मिन ने गुरु के पास जाकर कहा-"जिस में आया हूँ आपने मुझे धर्म के सार के विषय में कभी नहीं बताया

गुरु ने उत्तर दिया—"जब से तुम यहाँ आये हो, मैं का सार बताये बिना नहीं रहा हूँ। जब तुम चाय के प्याले मेरे पास लाये तब मैं कभी उसे ग्रहण किये बिना नहीं रहा तुमने हाथ जोड़ कर आदर-पूर्वक मुझे प्रणाम किया है तब मैं सिर झुकाये बिना नहीं रहा हूँ अब तुम्हीं बताओ मैंने

४—दुःख जगद्धात्री माता का सन्देश-वाहक क्यों कहा गया है ?

५—लेखक के अनुसार मनुष्य और पशु में क्या अन्तर है ?

६—अन्तिम वाक्य का वाक्य-विश्लेपण कीजिये ।

(७)

मातः दुर्गे, हमारे शरीर में योग बल द्वारा प्रवेश कर । हम होंगे तेरे यन्त्र, तेरी अशुभ-विनाशिनी तलवार, तेरे अज्ञान-विनाशी प्रदीप । हे माता, भारत के युवकों की इस आशा को पूर्ण कर । यन्त्री बन कर यन्त्र चला, शुभ-यन्त्री होकर तलवार घुमा, ज्ञान-दीप्ति-प्रकाशिनी होकर हाथ में प्रदीप ले और प्रकाशमान् हो ।

मातः दुर्गे, अब की बार तुझे पाने पर हम तेरा विसर्जन नहीं करेंगे । श्रद्धा, भक्ति और प्रेम की डोर से तुझे बाँध लेंगे । आ मातः, हमारे मन, प्राण और शरीर में प्रकाशमान् हो ।

वीर मार्ग-प्रदर्शिनी ! आ, हमारा सारा जीवन ही अविच्छिन्न दुर्गापूजा हो । हमारे समस्त कार्य अविरत, पवित्र, प्रेममय, शक्तिमय एवं मातृ-सेवा-व्रत से युक्त हों । यही प्रार्थना है, हे माता ! तू भारत में आविर्भूत हो, प्रकाशमान् हो ।

—योगीराज अरविन्द

प्रश्न नं० १—रेखांङ्कित वाक्यांशों की व्याख्या कीजिये ।

२—लेखक माता दुर्गा से क्या याचना करता है ?

३—उपर्युक्त अवतरण का तात्पर्य लिखिये !

४—अन्तिम वाक्य की पद-व्याख्या कीजिये ।

५—सन्धि-विच्छेद कीजिये :

अविच्छिन्न, अविरत, जगद्धात्री, पुरुषार्थ, उल्लास ।

६—समास बताइये :

वीरमार्ग-प्रदर्शिनी, दुर्गा-पूजा, मातृसेवाव्रत, योगबल अशुभ-विनाशी, अशुभ-यंत्री, ज्ञानदीप्ति, तथा मार्ग-प्रदर्शिनी

व्यक्तित्व के उदाहरण हैं। मनोविज्ञान के विद्यार्थी के लिए उनका जीवन एक पूरी की पूरी प्रयोगशाला है। उसमें दार्शनिक की खोज है, उसमें सन्देह-वादी और संशयात्मा का प्रश्न-चिह्न है। उसमें भक्त और सेवक का आत्म-निवेदन है, उसमें विद्रोह की हुँकार है। और राजनीतिज्ञ का समझौता है। एक स्कॉच की तरह वह अनेक एवं बहुरूपी व्यक्तियों के व्यक्ति हैं।

इसका मतलब यह नहीं कि उसमें कोई प्रधान धारा अथवा जीवन की प्रवृत्ति पर शासन करने वाला कोई उपकरण नहीं है। न ये बातें किंचित् उपहास करती हैं उनका; नहीं, ये उनके जीवन को महत्त्व और गति देने वाले आवश्यक उपादान हैं। और इन उपादानों का वे अत्यन्त जीवनदायनी रूप में उपयोग करते हैं! —रामनाथ 'सुमन'

प्रश्न नं० १—रेखांकित वाक्यांशों की व्याख्या कीजिये।

२—उपर्युक्त पंक्तियों का सारांश लिखिये।

३—श्री सम्पूर्णानन्द अनेक व्यक्तियों के व्यक्ति क्यों कहे गये हैं?

४—श्री सम्पूर्णानन्द किन उपादानों का जीवनदायी रूप में उपयोग करते हैं?

५—पहिले वाक्य का वाक्य विश्लेपण कीजिये।

(१०)

मैंने भारत के सामने आत्म-बलिदान का पुरातन कानून रखने का साहस किया है, क्योंकि सत्याग्रह और उसकी प्रशाखाएं—असहयोग और सविनय प्रतिकार—आत्म-पीड़न के नये नाम के सिवाय और कुछ नहीं है। वे ऋषि जिन्होंने हिंसा के बीच में अहिंसा के कानून को खोजा न्यूटन की अपेक्षा कहीं अधिक प्रतिभाशाली थे। वे स्वयं वेलिंगटन की अपेक्षा कहीं अधिक महान् योद्धा थे। अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग वे जानते थे इसलिये वे समझ गये थे कि उनका कोई उपयोग नहीं है और इसलिये थके-हारे विश्व को उन्होंने सिखाया था कि उसकी मुक्ति हिंसा से नहीं, बल्कि अहिंसा से होगी।

आज हम उन खतरों को देख रहे हैं जो शक्ति की उद्दण्डता के साथ होते हैं। एक दिन ऋषियों द्वारा घोषित यह पूर्ण सत्य प्रकट होगा :

'असत्याचरण से मनुष्य की समृद्धि होती है, शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है, चाही हुई चीजें मिलती हैं लेकिन जड़ में उसका नाश हो जाती है'

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रश्न नं० १—रेखांकित वाक्यांशों की व्याख्या कीजिये।

२—इस अवतरण का भावार्थ अपने शब्दों में लिखिये।

३—इसका शीर्षक लिखिये।

४—कवीन्द्र रवीन्द्र के अनुसार मानव का विजय-मार्ग क्या है और वह किस प्रकार उसे पा सकता है ?

५—कवीन्द्र ने मानव में विश्वास खोने को पाप क्यों कहा है ? वे उसे अपराजित क्यों मानते हैं ?

(१२)

रवीन्द्रनाथ स्वप्नद्रष्टा कवि थे। 'तन्त्रीनाद कवित्त रस' में सब अंग बूड़े हुए थे। संसार की कठोर वास्तविकताओं को भूले नहीं थे देश की दासताजन्य दयनीय दशा से उनका हृदय दुखित रहता था। उनका जीवन सन्देश 'पलायनवाद' का न था। उनकी कला कला के लिए न थी, वरन् 'बहुजनहिताय' थी। वे राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में 'भव में नव वैभव प्राप्त कराने' आये थे। वे यहाँ गढ़ने और जोड़ने आये थे, तोड़ने नहीं। वे विदेशी शासन के आर्थिक शोषण के ही विरुद्ध न थे वरन् उससे जो भारतीय स्वाभिमान की शोचनीय क्षति होती थी उसके प्रति सात्त्विक क्रोध प्रकट करने आये थे। अंग्रेज जैसी जाति से, जो दूसरों को मान्यता देने में स्वभावतः कृपण हैं, उन्हें भरपूर मात्रा में प्रशंसा मिली। किन्तु वे उस

प्रशंसा की मोह-निद्रा में पड़े रहे। जलियाँवाला-बाग के क्रूर हत्याकाण्ड से उनका हृदय द्रवित हो गया और अंग्रेजों के द्वारा दी हुई 'सर' की पदवी को दृढ़ता-पूर्वक ठुकरा दिया।

—गुलाबराय

प्रश्न नं० १—रेखांकित वाक्यांशों की व्याख्या कीजिये।

२—उपर्युक्त अवतरण में कवि रवीन्द्रनाथ की किन-किन विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है? संक्षेप में उन्हें स्पष्ट कीजिये।

३—अन्तिम वाक्य का वाक्य-विश्लेषण कीजिये।

४—इस अवतरण का उपयुक्त शीर्षक सुझाइये।

५—निम्न पदों में कौन से समास हैं और क्यों?

स्वप्नद्रष्टा, तन्त्रीनाद, कवितारस, दासता-जन्य, नव-वैभव, मोह-निद्रा।

६—इस अवतरण का भावार्थ सरल शब्दों में लिखिये।

(१३)

निबन्ध के लक्षणों में स्वच्छन्दता, सरलता, आडम्बर-हीनता घनिष्ठता और आत्मीयता के साथ लेखक के वैयक्तिक आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण का भी उल्लेख किया जाता है। परन्तु ये लक्षण विविध लेखकों की कृतियों में जितने विभिन्न रूपों में मिलते हैं इसे स्मरण रखना आवश्यक है। निबन्धकार की स्वच्छन्दता उच्छृंखलता नहीं है। उसकी अनियमता में भी एक नियम है और उसकी अव्यवस्था में भी एक व्यवस्था है। जान पड़ता है कि वह यत्नात्मक प्रयास नहीं करता परन्तु वास्तव में ऐसा भ्रम पैदा करने के लिए उसे स्वयं अपनी मौलिक पद्धति खोजनी पड़ती है। अतः निबन्ध एक ऐसी कलाकृति हो जाता है कि जिसके नियम लेखक द्वारा ही आविष्कृत होते हैं। इसी प्रकार सहज, सरल, आडम्बरहीन आत्माभिव्यक्ति के लिए परिष्कार और विचार-शील गम्भीर व्यक्तित्व की अपेक्षा है। यद्यपि उसकी कृति में प्रायः रूपों की परिपक्वता का अभाव-सा दिखाई [illegible] परन्तु

पाठक के साथ लेखक की निकटता और आत्मीयता वास्तविक होती है। इसके अभाव में सफल कथात्मक निबन्ध-रचना संभव नहीं। निबन्ध लेखक बिना किसी संकोच के अपने जीवन के अनुभव सुनाता और उन्हें आत्मीयता के साथ उनमें भाग लेने को आमन्त्रित करता है। उसकी यह घनिष्ठता जितनी सच्ची और सघन होगी, उसका निबन्ध पाठकों पर उतना ही सीधा और तीव्र असर करेगा।

प्रश्न नं० १—सफल निबन्ध के कौन-कौन से गुण हैं ?

२—रेखांङ्कित वाक्यांशों का अर्थ स्पष्ट कीजिये।

३—एक सफल निबन्धकार को किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

४—इस अवतरण का उपयुक्त शीर्षक क्या होगा ? लिखिये।

५—"यद्यपि उसकी कृति........ वास्तविक होती है !" इस वाक्य का वाक्य-विश्लेषण कीजिये।

(१४)

जब महाभारत का अन्तिम श्लोक महर्षि वेदव्यास के मुखारविन्द से निसृत हो, गणेशजी के सुडौल सुपाठ्य अक्षरों में भूर्जपत्र पर अंकित हो चुका, तब गणेशजी से महर्षि ने कहा—"विघ्नेश्वर, धन्य है आपकी लेखनी ! महाभारत का सृजन तो वस्तुतः उसीने किया है। पर एक वस्तु आपकी लेखनी से भी अधिक विस्मयकारी है। वह है आपका मौन। सुदीर्घकाल तक आपका हमारा साथ रहा। इस अवधि में मैंने तो पन्द्रह-बीस लाख शब्द बोल डाले परन्तु आपके मुख से एक भी शब्द नहीं सुना।" इस पर गणेशजी ने मौन की व्याख्या करते हुए कहा—

"बादरायण, किसी दीपक में अधिक तेल होता है, किसी में कम। परन्तु तेल का अक्षय भण्डार किसी दीपक में नहीं होता। उसी प्रकार देव, मानव, दानव, आदि जितने भी तनुधारी हैं सब की प्राण-शक्ति सीमित है। किसी की कम है, किसी की कुछ अधिक, परन्तु असीम किसी की नहीं। इस प्राण-शक्ति का पूर्णतया लाभ वही पा सकता है जो संयम से उसका उपयोग करता है। संयम ही समस्त सिद्धियों का

आधार है संयम का प्रथम सोपान है—वचोगुप्ति अर्थात् वाक्संयम, जो वाणी का संयम नहीं रखता उसकी जिह्वा बोलती रहती है। बहुत बोलने वाली जिह्वा अनावश्यक बोलती है और अनावश्यक शब्द प्रायः विग्रह और वैमनस्य पैदा करते हैं जो हमारी ध्यान-शक्ति को लोप करते हैं। वचोगुप्ति से यह सारा अनर्थ परम्परा दग्ध-बीज हो जाती है इसीलिए मैं मौन का उपासक हूँ।"

प्रश्न नं० १—रेखांकित वाक्यांशों की व्याख्या कीजिए।

२—सन्धि-विग्रह कीजिये—

मुखारविन्द, महर्षि, वचोगुप्ति, अनर्थ, विश्वेश्वर।

३—वाक् संयम का महत्त्व स्पष्ट कीजिये।

४—इस अवतरण का आशय लिखिए।

५—इस अवतरण का उपयुक्त शीर्षक सुझाइए।

(१५)

हे प्रभु, मैं सरल कामों की कामना नहीं करता। मेरी प्रार्थना है कि मुझे सबल मन और प्रचुर क्षमताएँ दीजिए ताकि मैं उन सभी कठिन से कठिन कार्यों को कर सकूँ जिनसे आगे जीवन में मेरा वास्ता पड़े। मेरी सहायता करो कि मैं दूसरों की सहायता करके उनका जीवन अधिक सुविधामय और सुखमय बना सकूँ। मेरी आस्था मेरे साथी मानवों में सदा दृढ़ बनी रहे चाहे वे मेरे विरुद्ध कुछ भी कहें, कुछ भी करें।

मुझे शक्ति दो भगवान्, कि मैं इस स्वर्णिम सूत्र के अनुसार जीवन यापन कर सकूँ—मेरे आसपास जो हों उन्हें प्रोत्साहित करते रहने का उत्साह मुझमें बना रहे, जो दुःखी हों उनके कष्ट का बोझ मैं हलका करता रहूँ और अपने आनन्द को, अपने हर्ष को दूसरों के साथ बाँट कर भोगूँ।

मेरी सहायता करो कि संसार में मैं भी कुछ ऐसा कर सकूँ जिसे उत्तम योगदान माना जाय! मुझे साहस और विश्वास दो कि मैं आपदाओं को मुस्कराहट के साथ झेल सकूँ और सा[illegible] है

ज्ज्वल पक्ष को देखने का गुण प्राप्त कर सकूं। मेरे अन्दर इस भावना की जोत प्रज्ज्वलित रहे। हे प्रभु ! मैं सदा तुम्हारी इच्छा को निष्ठा और निर्भयता के साथ कार्यान्वित कर सकूँ और मेरा मन सदैव शान्ति से भरा-पूरा रहे।

प्रश्न नं० १—रेखांकित वाक्यांशों की व्याख्या कीजिये।
२—इस अवतरण का भावार्थ लिखिये।
३—इसका उपयुक्त शीर्षक सुझाइये।
४—इसमें लेखक क्या प्रार्थना करता है ?

पद्यांश

(१)

लक्ष्मी सदैव चलती फिरती, चपला-सी चमक दिखाती है।
यह धरती अचला होने से कब साथ किसी के जाती है ?
मनुजात तुम्ही जैसे हैं जो हत-भाग्य तुम्हारे ही भाई।
वे भूमि भाग से वंचित हैं तो कहो कौन उत्तरदायी ?
प्रभु ने यह अवसर दिया तुम्हें जो वस्तु अधिक तुमने पाई।
देकर वह उनके अर्थ उन्हें तुम बनो समान सदय-न्यायी।
ले लो यह यश की लूट स्वयं जो टूट सुफलसी आती है।
यह धरती अचला होने से कब साथ किसी के जाती है।

—दिनकर

प्रश्न नं० १—रेखांकित वाक्यांशों की व्याख्या कीजिये।
२—इस पद्यांश का सारांश लिखिये।
३—इस कविता द्वारा कवि क्या प्रेरणा देता है ?
४—समास-विग्रह कीजिये और बताइये कि निम्नलि
कौनसे समास हैं :
हतभाग्य, अचला, मनुजात, भूमिभाग, समान, सदय
५—लक्ष्मी और अचला की यहाँ कौनसी विशेषता बताई
६—कवि कौनसा यश लूटने की प्रेरणा देता है अ

कौन-कौन से भाव होने की बात कहता है ?

(२

सूखा कंकाल, नभ के नीचे आज,
अस्थि-पंजर-निष्प्राण, शून्य श्वासों का भार !
यही हैं वे लाखों भटकते भूखे-बाल !
दीन-कंगाल, नग्न कंकाल !
कौन सुनता है करुण पुकार ?
किसे रुलाता है हाहाकार ?
अरे निर्धन-नादान,
उसे तुम कहते हो भगवान्—
जो बरसाता है जीवन में रोग-शोक दुःख-दैन्य अपार,
जिसने तुमको उदर दिया है और अगारों का संसार !
उसे सुनाने चले पुकार !
भूल गया है ईश्वर जग को पा मादक अधिकार !

—नरेन्द्र शर्मा

प्रश्न नं० १—रेखांकित वाक्यांशों का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
२—इस अवतरण में कवि ने किसका चित्र खींचा है ?
३—इस अवतरण का उपयुक्त शीर्षक बताइए।
४—कवि के अनुसार ईश्वर के द्वारा समाज का भुला दिये जाने के क्या प्रमाण हैं ?
५—इस अवतरण का सारांश चार पंक्तियों में लिखिए।
६—इनमें कौनसे समास हैं—
मादक-अधिकार, रोग-शोक, दुःख-दैन्य, भूखे-बाल, सूखा-कङ्काल, निर्धन-नादान, अस्थि-पंजर-निष्प्राण।

(३)

तर्क से तर्कों का रण छिड़ा, विषयों में मत रह विचार !
ज्ञान के कोलाहल के बीच डूबता जाता संसार !

और सब का उल्टा परिणाम, बुद्धि का जितना बढ़ता जोर।
आदमी के भीतर की शिरा हुई जाती कुछ और कठोर।
ज्ञान के मरु से चलता हुआ, आदमी खोता जाता है।
हृदय के सर का शीतल वारि और कम होता जाता है।
बुद्धि तृष्णा की दासी हुई, मृत्यु का सेवक है विज्ञान।
चेतता तब भी नहीं मनुष्य, विश्व का क्या होगा भगवान्!

—'दिनकर'

प्रश्न नं० १—रेखांकित वाक्यांशों का अर्थ स्पष्ट कीजिये।
२—उपर्युक्त अवतरण का भावार्थ लिखिये।
३—उपर्युक्त अवतरण में कवि कौनसी चिन्ता व्यक्त करता है?
४—इस चिन्ता का क्या कारण है?
५—उपर्युक्त कविता का शीर्षक बताइये।

(४)

युवक नहीं जो देख संकटों को डर जाता,
वह चकोर ही नहीं कि अंगार न खाता,
बलिदानों का पंथ नहीं जिसने पहिचाना,
कह देगा यह कौन कि वह भी है परवाना।
उष्ण रक्त की धार जवानी माँग रही है।
वीरोचित शृङ्गार जवानी माँग रही है॥

नहीं चाहती आज जवानी पंकिल यौवन,
नहीं चाहिये आज जवानी को अल्हड़पन,
आज जवानी माँग रही है यह परिवर्तन,
दर्द एक का बने दूसरे दिल की धड़कन,
मानवता का प्यार जवानी माँग रही है।
वीरोचित शृङ्गार जवानी माँग रही है॥

—हरिप्रसाद शर्मा

प्रश्न नं० १—आज जवानी क्या माँग रही है ?
२—युवक किसे कहना चाहिए ?
३—रेखांकित वाक्यांशों का अर्थ बताइये।
४—उपर्युक्त अवतरण का तात्पर्य लिखिये।
५—इस अवतरण का शीर्षक बताइये।

(५)

पत्थर के टुकड़े काटते ही रहो,
जाने कब, कौन मूर्ति बन बोले,
मुस्काए, गाए, जी जाये,
पर यों तप का फल मिल जाय ?
मैं इसलिए तो कहता हूँ—
छैनी कुण्ठित न हो,
हथौड़ी थकती न रु,
हाथ विश्राम न माँगे
जितनी मूर्तियाँ गढ़ सकें
उतनी हम गढ़ डालें,
गढ़ते ही जाएँ।

—राजकुमार शर्मा

प्रश्न नं० १—उपर्युक्त कविता का शीर्षक बताइए।
२—कवि पत्थर के टुकड़े काटते ही रहने की बात क्यों कहता है ?
४—इस कविता का भावार्थ लिखिए।

(६)

शीतल चन्दन चन्द्रमा, तैसे शीतल संत।
तैसे शीतल सन्त, जगत की ताप बुझावें,
जो कोई आवे शरण, मधुर सुर कथा सुनावें।
धीरज शील सुभाव क्षमा ना जात बखानी

कोमल अति मृदु वैन, वज्र को करते पानी ।
रहन चलन मुस्कान ज्ञान को सुगन्ध लगावें,
तीन ताप मिट जाय सन्त के दरसन पावें ।
'पलटू' ज्वाला उदर की रहे न मिटे तुरन्त,
शीतल चन्दन चन्द्रमा तैसे शीतल सन्त ॥

—पलटू साहब

प्रश्न नं० १—पलटूसाहब के अनुसार सन्त किसे कहना चाहिये ।
२—सन्त के दर्शन से क्या लाभ मिलता है ?
३—रेखांकित वाक्यांशों का अर्थ लिखिये ।
४—उपर्युक्त पद्यांश का सरल अर्थ कीजिये ।

(७)

प्रभु जू सरन तिहारी आयो
जो कोई सरन तिहारी नाहीं, भरम भरम दुःख पायो ।
औरन के मन देवी देवा मेरे मन तुहि भायो ।
जब सों सुरति तुम्हारी जग में, और न सीस नमायो ॥
नरपति सुरपति आस तुम्हारी, यह सुनिकै मैं धायो ।
तीरथ बरत सकल फल त्यागो चरन कमल चित लायो ॥
... मुनि अरु सिव ब्रह्मादिक तेरो ध्यान लगायो ।
आदि अनादि जुगादि तेरो जस वेद पुरानन गायो ॥
अब क्यों न बाँह गहो हरि मेरी तुम काहे बिसरायो ।
चरनदास कहो करता तूही गुरुदेव सुकदेव बताओ ॥

—चरनदास

प्रश्न नं० १—उपर्युक्त पद का सरलार्थ लिखिये ।
२—रेखांकित शब्दों का अर्थ लिखिये ।
३—निम्नलिखित शब्दों का तत्सम रूप बताइये ।
सरन, भरम, सिव, सुरति, सीस, नरपति, तीरथ, बरत, चरन, जस ।

(८)

ली जाँच प्रेम ने बहुत मगर बापू ! तू सदा खरा उतरा।
शूली पर से भी बार बार तू, नूतन ज्योति भरा उतरा।
प्रेमी की यह पहचान परवशता की न जीभ पर लाते हैं,
दुनियाँ देती है जहर किन्तु वे सुधा छिड़कते जाते हैं।
जाने कितने अभिशाप मिले, कितना है पीना पड़ा गरल,
तब भी नयनों में ज्योति हरी, तब भी मुख पर मुस्कान सरल।
सामान्य मृत्तिका के पुतले, हम समझ नहीं कुछ पाते हैं,
तू दो सेना किस भाँति पार जो हम दिन रात बनाते हैं।
कितना विभेद ! हम भी मनुष्य पर तुच्छ स्वहित में सदा लीन,
तन पर बंधन व्याकुल विषण्ण, लोह के तारों के अधीन।
पर, तू सारों से परे कामना-जयी एकरस निर्विकार,
पृथ्वी को शीतल करता है, छाया द्रुम-सी बाहें पसार,

—'दिनकर'

प्रश्न नं० १—उपर्युक्त कविता का सारांश लिखिए।
२—रेखांकित वाक्यांशों का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
३—इस कविता का शीर्षक लिखिए।
४—निम्नलिखित शब्दों को अपने वाक्यों में प्रयुक्त कीजिये—
परवशता, सुधा, एकरस, छायाद्रुम, मृत्तिका, कामना-जयी और विभेद।
५—कवि ने इस अवतरण में गांधीजी के कौन-कौन से गुणों का उल्लेख किया है ?

(९)

वे नृशंस हैं, वे जन के श्रम बल से पोषित,
दूसरे धनी, जोंक जग के हैं, भू उनसे शोषित
नहीं जिन्हें करनी श्रम से जीविका उपार्जित,
नैतिकता से भी रहे जो अतः अपरिचित,
सभ्यता की क्रीड़ा-कन्दुक है जिनकी ना,

अहंमन्य वे मूढ़ अर्थ—बल के व्यभिचारी।
सुराङ्गना सम्पदा सुराओं से संसेवित,
नर पशु हैं वे—भार मनुजता जिनसे लज्जित।
दर्पी, हठी, निरंकुश, निर्मम, कलुषित, कुत्सित,
गत संस्कृति के गरल, लोक-जीवन जिनसे मृत।
जग जीवन का दुरुपयोग है उनका जीवन,
अब न प्रयोजन उनका, अन्तिम हैं उनके क्षण।

—सुमित्रानन्दन पन्त

प्रश्न नं० १—उपर्युक्त कविता का शीर्षक लिखिये।

२—निम्नलिखित शब्दों के अर्थ लिखिये और उन्हें वाक्यों में प्रयुक्त कीजिये—
निरंकुश, सुरांगना, संसेवित, कन्दुक, शोषित, गरल, प्रयोजन, कलुषित, कुत्सित, अर्थ-बल।

३—इस कविता में किसकी भर्त्सना की गई है और क्यों ?

४—इस कविता का आशय पाँच पंक्तियों में लिखिये।

(१०)

रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखो गोय,
सुनि इठलैहैं लोग सब बाँटि न लैहैं कोय।
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं
उनसे पहिले वे मरे, जिन मुख निकसत नाहिं।
रहिमन राज सराहिये ससि सम सुखद जो होय,
कहा बापुरो भानु जो तप्यो तरैयन खोय।
मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय;
रहिमन सोई मीत है, भीर पड़े ठहराय।
क्षमा बड़न को चाहिए छोटन को उत्पात,
का रहीम हरि को घट्यो जो भृगु मारी लात।

प्रश्न नं० १—उपर्युक्त दोहों का सरल अर्थ लिखिये।

२—रेखाङ्कित शब्दों का अर्थ लिखिये।

(१२)

वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा-सी
वह दीप-शिखासा-शान्त, भाव में लीन
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी-दीन
दलित भारत की ही विधवा है।
षड् ऋतुओं का शृंगार,
कुसुमित कानन में नीरव पद-सञ्चार
अमर कल्पना में स्वच्छन्द विहार—
व्यथा की भूली हुई कथा है।
उसका एक स्वप्न अथवा है।
उसके मधु-सुहाग का दर्पण
जिसमें देखा था उसने
बस एकबार बिम्बित अपना जीवन-धन
अबल हाथों का एक सहारा—
लक्ष्य जीवन का प्यारा वह ध्रुवतारा
दूर हुआ वह बहा रहा है
उस अनन्त-पथ से करुणा की धारा।

प्रश्न नं० १—रेखाङ्कित वाक्यांशों की व्याख्या कीजिये।

२—इस अवतरण से कवि ने भारतीय विधवा का करुण चित्र खींचने का प्रयत्न करते हुए कौन-कौन सी उपमाओं का प्रयोग किया है? लिखिये।

३—अवतरण के आधार पर विधवा जीवन की करुणा का वर्णन कीजिये।

४—उपर्युक्त अवतरण का उपयुक्त शीर्षक सुझाइये।

५—समास-विग्रह कीजिये और बताइये कि इन पदों में कौन-कौन से समास हैं :

अनन्त-पथ, जीवन-धन, ध्रुवतारा, मधु-मुस्कान, इष्ट-देव, स्मृति-रेखा, काल-ताण्डव, दीप-शिखा।

(१३)

जैसी मुख तें नीकसै तैसी चालै चाल।
पारब्रह्म नेड़ा रहै पल में करै निहाल॥
जैसी देखी आतमा तैसा सालिगराम।
साधू प्रतषि देव है, नहीं पाथर सूँ काम॥
कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न फिरावै आपणा कहा फिरावै मोहि॥
चतुराई हरि ना मिलै ए बाताँ की बात।
एक निसप्रेही निरधार का गाहक गोपीनाथ॥
काची काया मन अथिर, थिर थिर काम करंत।
ज्यूँ ज्यूँ नर निधड़क फिरै, त्यूँ त्यूँ काल हसंत।

प्रश्न नं० १—रेखाङ्कित वाक्यांशों का सरल अर्थ लिखिए।
२—कबीर साहब के उपदेशों का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
३—प्रत्येक दोहे का अलग-अलग शीर्षक सुझाइए।
४—उपर्युक्त दोहे में कबीर ने किस प्रकार के आचरण पर बल दिया है?
५—तत्सम रूप लिखिए—
साहब, निरधार, काची, थिर, अथिर, काठ, पाथर, प्रतषि, आतमा।

(१४)

कौन है जो मौन है मन में मेरे,
और मुसकराता है,
आँख करना चाहता हूँ चार,
पर नज़र चुराता है?

हर सुबह में जब उघड़ती आँख,
लगता है कि बैठा सिरहाने।
हर उदय में शक्ति देता,
यामिनी में स्नेह गाता है।
कौन है जो मौन है मन में मेरे,
और मुसकराता है।
कभी लगता किसी क्षण में
कि मानो बरजता है—यह न कर;
किसी क्षण में धीर देता है
कि, तरना है तो धारा से न डर;
फिर किसी क्षण हर द्विधा से
दीन करके आपको ऊपर उठाता है,
कौन है जो मौन है मन में मेरे
और मुसकराता है।

प्रश्न नं० १—रेखाङ्कित वाक्यांशों का अर्थ समझाइये।
२—इस कविता का भावार्थ लिखिये।
३—इस कविता का कोई उपयुक्त शीर्षक सुझाइये।
४—ऐसी कौन-कौनसी बातें हैं जिससे कवि को किसी अव्यक्त परोक्ष सत्ता की अनुभूति होती है?

(१५)

लोहे के पेड़ हरे होंगे, तू गान प्रेम के गाता चल।
नम होगी यह मिट्टी आँसू के कण बरसाता चल।
सिसकियों और चीत्कारों से जितना भी हो आकाश भरा।
कंकालों का हो ढेर खप्परों से चाहे हो पटी धरा।
आशा है स्वर का भार, पवन को लेकिन, लेना ही होगा।
जीवित स्वप्नों के लिए मार्ग मुर्दों को देना ही होगा।
रंगों के सातों घट उँडेल यह अँधियाली रँग जायेगी।

उषा को सत्य बनाने को जावक नभ पर छिटकाता चल ।
आदर्शों से आदर्श भिड़े, प्रज्ञा प्रज्ञा पर टूट रही ।
प्रतिमा प्रतिमा से लड़ती है धरती की किस्मत फूट रही ।
आवर्तों का है विषम जाल, निरुपाय बुद्धि चकराती है ।
विज्ञान यान पर चढ़ी हुई सभ्यता डूबने जाती है ।
जब जब मस्तिष्क जयी होता संसार ज्ञान से जलता है ।
शीतलता की है राह हृदय, तू यह संवाद सुनाता चल ।

प्रश्न नं० १—उपर्युक्त अवतरण में कवि ने किन बातों की ओर संकेत किया है ?

२—कवि के अनुसार इस संसार में शान्ति कैसे स्थापित की जा सकती है ?

३—रेखांकित वाक्यांशों का अर्थ लिखिए ।

४—इस कविता का सारांश तीन अथवा चार वाक्यों में लिखिए ।

५—अन्तिम चार पंक्तियों का [illegible] अर्थ [illegible] ।

शैली

शैली का साधारण अर्थ है [illegible] तरीका' । बाबू श्यामसुन्दरदासजी के अनुसार [illegible] का नाम ही शैली है । वस्तुतः शैली उस अभिव्यक्ति [illegible] है जिसके द्वारा शब्द रचना प्रभावोत्पादक, आकर्षक और [illegible] बन जाती है । इस परिभाषा के अनुसार शैली [illegible] ध्वनि, शब्द-शक्ति, रीति, अलंकार सब आ जाते हैं, क्योंकि [illegible] में कोई शब्द में चमत्कार पैदा करता है और कोई अर्थ [illegible] और अर्थ दोनों में ही चमत्कार पैदा करता है तथापि [illegible] आता है उसके [illegible] और अर्थ [illegible] अभिप्रेत है । [illegible] की प्रणाली कहते [illegible] अर्थात्, यह अभिव्यक्ति [illegible] को बढ़ाने का [illegible]

यद्यपि भाषा का आश्रय हम आत्म-प्रकाशन और विचार-विनिमय के लिए ही लेते हैं, तथापि अपनी सौन्दर्य-भावना के कारण हम इस कार्य को भी सजावट और सुन्दरता के साथ करना चाहते हैं। सजावट और सौन्दर्य-प्रियता हमारा स्वभाव है। किसी भी बात को, किसी भी वस्तु को उसके नग्न रूप में रख देना हमें अच्छा नहीं लगता। यही कारण है कि वक्ता या लेखक अपनी बात को सुन्दर और नपे-तुले शब्दों में कहना चाहता है ताकि उसका अभीष्ट परिणाम हो। लेखक या वक्ता जहाँ एक ओर अपने विचार ठीक तरह से अभिव्यक्त करना चाहता है, उन्हें सजाकर दूसरों के सामने रखना चाहता है; वहाँ दूसरी ओर वह यह भी चाहता है कि वे सुनने वाले या पढ़ने वाले को अच्छे लगें और उनका अभीष्ट प्रभाव पड़े। यही शैली का कलात्मक रूप है। शैली का यह कलात्मक रूप प्राप्त करने के लिए लेखक जहाँ पाठक की रुचि का ध्यान रखता है, वहाँ शब्द-शक्ति का पूरा-पूरा ज्ञान भी प्राप्त करता है और व्याकरण के नियमों का पालन, अनुच्छेदों का संगठन, क्रिया-पदों का उपयोग, विशेषणों का चयन तथा शुद्ध वाक्यों की रचना आदि महत्त्वपूर्ण बातों का भी ध्यान रखता है। मतलब यह है कि लेखक अपने विचार, भाव या अनुभूति को इतने सुन्दर, आकर्षक और प्रभावोत्पादक ढंग से अभिव्यक्त करना चाहता है जिससे पाठक के सामने एक चित्र-सा खिंच जाय। इस दृष्टि से "शैली उस कला-पूर्ण साधन का नाम है जो रमणीय, आकर्षक, एवं प्रभावोत्पादक रूप से रचना के समस्त सरस तत्त्वों की अभिव्यक्ति में अभिनव तथा उचित शक्ति का सञ्चार करता है।"

शैली का महत्त्व

एक अंग्रेजी-साहित्यकार के अनुसार "शैली ही मनुष्य है और मनुष्य ही शैली है।" शैली के वैचित्र्य एवं महत्त्व के सम्बन्ध में ये विचार बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। वस्तुतः प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव, प्रत्येक व्यक्ति की रुचि और प्रत्येक व्यक्ति की प्रवृत्ति दूसरे व्यक्ति के स्वभाव, रुचि और प्रवृत्ति से भिन्न होती है अतः जब वह किसी

भी वस्तु को देखता है तथा उसके सम्बन्ध में अपने विचार अभिव्यक्त करता है तो विभिन्नता आ ही जाती है। यदि लेखक विचारशील और गम्भीर है तो वह वस्तुओं को गम्भीरता से और विचारपूर्वक देखेगा। फिर उसकी शैली में उथलापन नहीं आ सकेगा। उसकी शैली स्वभावत: गम्भीर और विचारात्मक होगी। किन्तु दूसरी ओर यदि लेखक विनोद-प्रिय और चंचल-स्वभाव का होगा तो वह वस्तुओं को उड़ती हुई नजर से ही देखेगा और उसकी शैली मनोरंजक एवं हास्यरस प्रधान ही होगी। अत: शैली से मनुष्य को और मनुष्य से शैली को पहिचानना कठिन नहीं होता है। व्यक्ति और शैली का घनिष्ट सम्बन्ध है। शैली लेखक की शब्द-साधना और कौशल का परिणाम है, उसमें लेखक के विचार, अनुभूति, रुचि, चरित्र, स्वभाव, संस्कार सब कुछ चित्रित हो जाते हैं। शैली मानो व्यक्ति का प्रतिबिम्ब ही है।

शैली जहाँ व्यक्ति के स्वभाव, रुचि, कौशल, और शब्द-साधना का परिणाम होती है, वहाँ व्यक्ति की अनुभूतियों की तीव्रता का भी उस पर कम प्रभाव नहीं होता। लेखक जब किसी भावना को बड़ी तीव्रता से अनुभव करता है तो उसको उसी तीव्रता से अभिव्यक्त करने के लिए भी उतावला-सा हो उठता है। अनुभूति की तीव्रता के साथ अभिव्यक्ति की तीव्रता भी आ ही जाती है। मीरा, कबीर, और तुलसी जैसे सन्त शब्द-साधना के फेर में पड़कर उच्च-कोटि के कवि नहीं बने। उनके मन में भक्ति की लहर बड़े जोर से उठी और दुनियाँ के प्रति विरक्ति तथा भगवान् के प्रति प्रेम की भावना इतनी तीव्र बन गई कि अनुभूति की वह तीव्रता शब्दों में उतरे बिना न रह सकी। इसी प्रकार जब किसी लेखक के मन में करुणा, क्रोध, उत्साह, विरक्ति, दया आदि किसी भी भाव की प्रबलता होती है तो वह उसे उसी प्रबलता के साथ अनुभव करवाने के लिए शक्तिशाली भाषा की खोज करता है। यह शक्तिशाली भाषा की खोज ही उसे शैली के पास ले जाती है। शैली भाषा को शक्तिशाली और प्रभावपूर्ण बनाती है। शैली की इस शक्ति बहुत बड़े कार्य करने की क्षमता रखती है। शैली ने अनेक पतितों को सदाचारी बनाया है, असाधुओं को साधु बनाया, अनेक

कंजूसों को दानी बनाया और अनेक अकर्मण्य लोगों को कर्मवीर बनाया है। तलवार, बन्दूक या एटम की शक्ति भी जिस काम को नहीं कर सकी उसी को शैली ने कर दिखाया है।

कला-पक्ष

कोई भी साहित्यकार अपनी अनुभूतियाँ या मनोवेगों को भाषा का परिधान पहिनाकर लोगों के सामने रखता है। इसी को हम साहित्य कहते हैं। इस साहित्य के दो पक्ष होते हैं—भाव-पक्ष और कला-पक्ष। भाव-पक्ष के अन्तर्गत बुद्धितत्त्व, भावतत्त्व, और कल्पना-तत्त्व आते हैं तथा कला-पक्ष के अन्तर्गत शैली। जब लेखक किसी विषय पर लिखने के लिए तैयार होता है तो पहिले बुद्धि से काम लेता है और अपने विषय की सीमा निर्धारित कर लेता है। वह यह तय करता है कि लोगों के सामने उसे कौन-कौन-सी बातें रखनी हैं और कितनी। यही बुद्धि-तत्त्व या ज्ञान-तत्त्व है। इस तत्त्व का सहारा लिए बिना कोई भी साहित्यकार कलम नहीं उठाता है। इसके बाद वह विषय के साथ हृदय का सम्बन्ध स्थापित करता है। यह रचना का दूसरा तत्त्व है। इसे भाव-तत्त्व या हृदय-तत्त्व कहा जाता है। साहित्य-निर्माण का कार्य इस तत्त्व के बिना हो ही नहीं सकता। चाहे कहानी हो या कविता और चाहे नाटक हो या उपन्यास जब तक उसमें कोई मुख्य संवेदना नहीं होती, तब तक वह जैसे बेजान रहती है। तीसरा तत्त्व है—कल्पना-तत्त्व। कल्पना के सहारे लेखक ऐसी बातें दिखाने का प्रयत्न करता है जो किसी ने देखी नहीं हैं, ऐसी बातें सुनाने का प्रयत्न करता है जो किसी ने सुनी नहीं हैं और ऐसी अनुभूतियों का चित्र खींच देता है जिसको उसने कभी अनुभव नहीं किया है। अतः कल्पना-तत्त्व के द्वारा रचना में रस आ जाता है। ये तीनों तत्त्व मिलकर भाव-पक्ष को सबल बनाते हैं। यह भाव-पक्ष काव्य, कहानी, उपन्यास या नाटक की आत्मा होता है। उसका शरीर है कला-पक्ष। कला-पक्ष की सहायता से भाव-पक्ष के सौन्दर्य का दर्शन होता है। उसके सौन्दर्य को बढ़ाने और

टिकाने के काम में प्रकाशन का सम्बन्ध निर्विवाद है। इस प्रकाशन को ही हम शैली कह सकते हैं।

शैली और अलङ्कार

ऊपर कहा जा चुका है कि मनुष्य सौन्दर्य-प्रेमी है। सौन्दर्य-प्रियता मानव-स्वभाव है। एक सुन्दर से फूल या रङ्ग-बिरंगे खिलौने को देखकर छोटा-सा बालक भी अपने को भूल-सा जाता है और उसे प्राप्त करने की धुन में इस बात का विचार ही नहीं करता कि फूल तालाब के बीचों-बीच है या खिलौना आग के पास रखा हुआ है। यह सौन्दर्य-प्रियता उसे सुन्दरता का उपासक बना देती है और जहाँ भी उसे कुरूपता दिखाई देती है उसे हटाकर सुन्दरता की प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न करता है। सौन्दर्योपासना के इस कार्य में अलङ्कार उसकी बड़ी सहायता करते हैं। वस्तुतः किसी सुन्दर और सजी-सजाई वस्तु को और सजाने की आवश्यकता नहीं होती है। सजाया तो उसी को जाता है जिसमें सुन्दरता नहीं है। लेकिन यह मानव-स्वभाव ही है कि जो चीज स्वाभाविक रूप से सुन्दर होती है उसे भी हम सजाने का प्रयत्न करते हैं और उसकी शोभा को और ज्यादा बढ़ाकर मानसिक तृप्ति का अनुभव करते हैं। फूल सुन्दर है किन्तु उसको गुलदस्ते में सजाकर किसी भी कमरे की मेज पर रख देते हैं और उससे कमरे की शोभा बढ़ जाती है। सुन्दर स्त्री की वेणी में फूल की माला, ललाट पर बिन्दी, आँखों में काजल और हाथों में मेंहदी उसके सौन्दर्य को और ज्यादा बढ़ा देते हैं। अतः कुरूप को सजाने के लिए ही नहीं सुन्दर को और ज्यादा सुन्दर बनाने के लिए भी अलङ्कार का उपयोग किया जाता है। अलङ्कार स्वाभाविक सुन्दरता को और ज्यादा बढ़ा देते हैं। भाषा के क्षेत्र में भी अलङ्कार यही चमत्कार दिखाते हैं। वे भाषा के सौन्दर्य में अभिवृद्धि कर देते हैं। उनके द्वारा दुरूह भावों को समझना सरल हो जाता है, भाषा में प्रवाह आ जाता है और विषय का ऐसा चित्र मस्तिष्क-पटल पर खिंच जाता है कि वर्षों तक भुलाया नहीं जाता। अनुप्रास, यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा, श्लेष, रूपक

...क की बड़ी सहायता करते हैं और उसका मार्ग सरल बना देते
। सब प्रकार के अलङ्कारों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता
: (१) सादृश्य-मूलकता, (२) विरोधमूलकता, तथा (३) समीपता।
उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि ऐसे बहुत से अलङ्कार हैं जो किसी बात
को स्पष्ट करने के लिए उससे मिलती-जुलती किसी दूसरी बात को
सामने रखते हैं। इस प्रकार की सादृश्यता गुणों पर ध्यान रखकर ही
बताई जाती है। उदाहरण के लिए : 'जब वह मैदान में
आया तो लोग इस प्रकार भाग गये जैसे कोई शेर आया
हो।' दूसरी प्रकार के ऐसे भी कुछ अलङ्कार हैं जो व्यक्ति या पदार्थ
के गुण-अवगुण विरोध का सहारा लेकर स्पष्ट करते हैं। जैसे : "अब
तुम निरे बालक नहीं रहे जो प्रत्येक बात तुम्हें समझाई जाय।"
तीसरी प्रकार के अलङ्कार वे हैं जिनमें सामीप्य भावों से किसी शब्द
का अर्थ-बोध कराया जाता है। जैसे : "आजकल उसकी पाँचों
उँगलियाँ घी में हैं।" इस प्रकार ये तीनों प्रकार के अलङ्कार अपने-अपने
ढङ्ग से भाषा के सौंदर्य को बढ़ाते ही हैं। अतः शैली में अलङ्कार का एक
महत्त्वपूर्ण स्थान है।

शैली और संगीत

अलङ्कार के द्वारा जिस सौंदर्य की अभिवृद्धि होती है वह के...
शब्दों की आकृति या बनावट का सौंदर्य नहीं होता। वह शब्दों...
ध्वनियों तथा अर्थों के सामञ्जस्य का सौंदर्य भी होता है। प्रत्येक...
के एक या उससे अधिक अर्थ तो होते ही हैं, उनकी अपनी ध्वनि...
होती है। लेखक उनके अर्थ और ध्वनि में सामञ्जस्य पैदा करने का...
करता है। लेखक इस कार्य में जितना अधिक सफल होता है...
के हृदय को आनन्दविभोर बनाने की उतनी अधिक कला...
...ती है। स्वयं मानव की रचना ही विभिन्न तत्त्वों के साम...
हुई है। अतः उसकी आत्मा सदैव इसी साम्य, इसी साम...
बोलती रहती है। यह सामञ्जस्य या साम्य उसे शैली और...
गीतों में मिलता है जिस प्रकार शैली हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ...

है और शैली का आनन्द ज्ञानेन्द्रियों को ही प्राप्त होता है, उसी प्रकार संगीत भी ज्ञानेन्द्रिय का ही विषय है। जब गायक वाद्य की ध्वनि में अपने कण्ठ की ध्वनि मिलाकर उसके साथ मग्न हो गाता है तब श्रोता भी मंत्रमुग्ध-सा हो जाता है और अपनी ज्ञानेन्द्रियों को चारों ओर से समेट कर उसी में लगा देता है। आदमी ही नहीं सांप, हरिण आदि जानवर भी संगीत पर मुग्ध होकर अपने प्राण तक न्यौछावर कर देते हैं। किसी वाद्य से निकले हुए स्वर में जो मोहकता होती है वही कोमलता ध्वनि-साम्य से होती है, जो शैली का एक प्रमुख गुण होता है और जिसके कारण शैली में सजीवता आती है। शैली भावुक हृदय का संगीत है। उस संगीत का आनन्द रसिक लोग सदैव लेते रहते हैं।

शैली और मनोविज्ञान

मनोविज्ञान वह विद्या है जो मानव-हृदय की कल्पनाओं, अनुभूतियों, और उमंगों का विश्लेषण करती है तथा उनके कारणों का पता लगाती है। मनोविज्ञान का सम्बन्ध अन्तर्जगत् से है। वह बताता है कि हमारी मूल प्रवृत्तियाँ क्या हैं, संस्कार क्या हैं, विचार और कल्पना क्या हैं, वे क्यों और कैसे उत्पन्न होते हैं तथा किन सिद्धान्तों के अनुसार चलते हैं। मनोविज्ञान के इन सिद्धान्तों का सम्बन्ध अब दिन-प्रतिदिन साहित्य से बढ़ता जा रहा है। अब मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के प्रकाश में ही लेखक की चिन्ता-धारा परीक्षण, एवं विश्लेषण किया जाता है। इधर 'शैली ही मनुष्य है' वाले सिद्धान्त के अनुसार लेखक का व्यक्तित्व शैली में रहता है। अतः शैली के अध्ययन में मनोविज्ञान के अध्ययन से बड़ी सहायता मिलती है। इस सम्बन्ध में एक और महत्त्व की बात यह है कि प्रत्येक वस्तु की एक-सी अनुभूति नहीं होती, प्रत्येक व्यक्ति का ज्ञान समान नहीं होता। इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति की अभिरुचि और वृत्ति भी अलग-अलग ही होती है। परिणाम यह होता है कि दुनिया को देखने का दृष्टिकोण भी सबका अलग-अलग हो जाता है। बस यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति की विचार-धारा भिन्न-

ती है और उसकी शैली में की भिन्नता होती है। यह एक
ानिक सत्य है कि व्यक्ति की अभिरुचि, वृत्ति और विचार-धारा
प्रभाव उसकी रचना में आये बिना नहीं रहता है। यदि उसे
कर कोई नाटक, कहानी, कविता या उपन्यास लिखना चाहे तो
ही उसे थोड़ी देर तक सफलता मिल जाय, वह स्थायी नहीं होगी
र अस्वाभाविकता का जो आवरण उसने डाला है वह दूर हुए बिना
रहेगा। इसीलिए तो यह कहा जाता है कि लेखक की शैली पर
उसकी मनोवृत्तियों की, व्यक्तित्व की छाप अमिट रहती है।

हमारी मनोवृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं—रूढ़ और उदार।
ऐसी मनोवृत्तियाँ जो परम्परागत होने के कारण मजबूत बन गई हैं रूढ़
मनोवृत्तियाँ कही जाती हैं। ये रूढ़ मनोवृत्तियाँ धीरे-धीरे व्यापक बन
कर देशीय और जातीय बन जाती हैं और सारे देश और सारी जाति
की मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं। उदाहरण के लिए राम-कृष्ण
का पावन-चरित्र, हिन्दू-धर्म की पवित्रता, पतित-पावनी भागीरथी की
अघनाशिनी शक्ति, वेदों की प्राचीनता आदि ऐसी अनेक बातें हैं जिन्हें
कोई भी भारतीय श्रद्धा के साथ मानता है। इसी प्रकार प्रताप, शिवाजी,
झाँसी की रानी और गांधीजी भी हमारे समूचे समाज व देश के
श्रद्धा-भाजन हैं। इनके साथ जुड़े हुए विचार और भावनाएं हमारे
मानस पर जबरदस्त प्रभाव डालते हैं। ये धार्मिक, सामाजिक ए
जातीय मनोवृत्तियाँ हमारे जन-जीवन में रूढ़ हो गई हैं। अतः अप
देश, समाज, जाति, और धर्म के प्रति श्रद्धा-भावना रखने वाला क
भी व्यक्ति, इन मनोवृत्तियों के प्रभाव से अछूता नहीं रह सक
दूसरे प्रकार की मनोवृत्तियाँ उदार कही जाती हैं। हमारे
धर्म, धार्मिक पुरुष, इतिहास, परम्परा आदि का आदर तो हम
ही हैं किन्तु जब हम विदेशी धर्म, इतिहास और परम्परा के
में आते हैं तो उनकी भी बहुत-सी अच्छी बातें हमें आकर्षित
हैं और उनके महापुरुषों, धर्म, संस्कृति, सभ्यता आदि के प्रि
मन में आदर की भावना पैदा हो जाती है। अतः विदेशी
के सम्पर्क में आने से हमारे मानस में जिन वृत्तियों का उ

है उन्हें उदार मनोवृत्तियाँ कहा जाता है। पुराने ज़माने की अपेक्षा अब तो सम्पर्क के अवसर ज्यादा उपलब्ध हैं। आज का ज़माना ही अन्तर्राष्ट्रीयता का ज़माना कहा जाने लगा है और रेल, तार, डाक, वायुयान, रेडियो आदि ने पारस्परिक मेल-जोल एवं आदान-प्रदान को अधिक सुगम बना दिया है। अतः आज के लेखकों की रचनाओं पर हमें इस प्रकार की उदार मनोवृत्तियों का प्रभाव स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। यह एक अच्छा लक्षण है। उदार मनोवृत्तियों का प्रभाव जिस साहित्य पर जितना अधिक पड़ता है वह उतना ही चिर-स्थायी या सम्पूर्ण बन जाता है और जिस लेखक की रचनाओं में इन उदार मनोवृत्तियों का प्रभाव अधिक होता है वह लेखक उतना ही अधिक अच्छा लेखक माना जाता है। इन दोनों मनोवृत्तियों के अतिरिक्त लेखक पर पुराने और नये लेखकों की रचनाओं का भी प्रभाव पड़ता है। फिर चाहे प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दे जाता हो, चाहे न दिखाई देता हो। इस प्रकार से नयी नयी शैलियों का जन्म होता है और लेखकों की प्रतिभा को विकास का समुचित अवसर मिलता है।

शैली के उपादान

शैली की उद्भावना दो प्रकार के उपादान तत्वों से होती है— बाह्य तत्व तथा आभ्यन्तरिक तत्व। बाह्य तत्वों के अन्तर्गत (१) ध्वनि (२) शब्द (३) वाक्य (४) अनुच्छेद (५) प्रकरण और (६) चिह्न आते हैं। यहाँ हम पहले शैली के इन बाह्य उपादानों पर ही विस्तार से विचार करेंगे।

(१) बाह्य उपादान

(अ) ध्वनि—शैली के बाह्य उपादान तत्वों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। पाठक शब्द अथवा ध्वनि रखता है। शब्द उस ध्वनि का साकार रूप ही तो है अतः शब्दों के ध्वनि समूहों से वाक्यों की रचना होती है। ध्वनियों के प्रयोग में सबसे पहले इस बात का ध्यान रखना होता है कि ध्वनियाँ श्रुति-कटु न हों। श्रुति-कटु ध्वनियाँ

ती है और उसकी शैली में की भिन्नता होती है। यह एक ानिक सत्य है कि व्यक्ति की अभिरुचि, वृत्ति और विचार-धारा प्रभाव उसकी रचना में आये बिना नहीं रहता है। यदि उसे कर कोई नाटक, कहानी, कविता या उपन्यास लिखना चाहे तो ही उसे थोड़ी देर तक सफलता मिल जाय, वह स्थायी नहीं होगी र अस्वाभाविकता का जो आवरण उसने डाला है वह दूर हुए बिना रहेगा। इसीलिए तो यह कहा जाता है कि लेखक की शैली पर उसकी मनोवृत्तियों की, व्यक्तित्व की छाप अमिट रहती है।

हमारी मनोवृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं—रूढ़ और उदार। ऐसी मनोवृत्तियाँ जो परम्परागत होने के कारण मजबूत बन गई हैं रूढ़ मनोवृत्तियाँ कही जाती हैं। ये रूढ़ मनोवृत्तियाँ धीरे-धीरे व्यापक बन कर देशीय और जातीय बन जाती हैं और सारे देश और सारी जाति की मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है। उदाहरण के लिए राम-कृष्ण का पावन-चरित्र, हिन्दू-धर्म की पवित्रता, पतित-पावनी भागीरथी की अघनाशिनी शक्ति, वेदों की प्राचीनता आदि ऐसी अनेक बातें हैं जिन्हें कोई भी भारतीय श्रद्धा के साथ मानता है। इसी प्रकार प्रताप, शिवाजी, झाँसी की रानी और गांधीजी भी हमारे समूचे समाज व देश के श्रद्धा-भाजन हैं। इनके साथ जुड़े हुए विचार और भावनाएँ हमारे मानस पर जबरदस्त प्रभाव डालते हैं। ये धार्मिक, सामाजिक ए जातीय मनोवृत्तियाँ हमारे जन-जीवन में रूढ़ हो गई हैं। अतः अप देश, समाज, जाति, और धर्म के प्रति श्रद्धा-भावना रखने वाला क भी व्यक्ति, इन मनोवृत्तियों के प्रभाव से अछूता नहीं रह सक

दूसरे प्रकार की मनोवृत्तियाँ उदार कही जाती है। हमारे धर्म, धार्मिक पुरुष, इतिहास, परम्परा आदि का आदर तो हम ही हैं किन्तु जब हम विदेशी धर्म, इतिहास और परम्परा के में आते हैं तो उनकी भी बहुत-सी अच्छी बातें हमें आकर्षित हैं और उनके महापुरुषों, धर्म, संस्कृति, सभ्यता आदि के प्र मन में आदर की भावना पैदा हो जाती है। अतः विदेशी के सम्पर्क में आने से हमारे मानस में जिन वृत्तियों का उ

है उन्हें उदार मनोवृत्तियाँ कहा जाता है। पुराने जमाने की अपेक्षा अब तो सम्पर्क के अवसर ज्यादा उपलब्ध हैं। आज का जमाना ही अन्तर्राष्ट्रीयता का जमाना कहा जाने लगा है और रेल, तार, डाक, वायुयान, रेडियो आदि ने पारस्परिक मेल-जोल एवं आदान-प्रदान को अधिक सुगम बना दिया है। अतः आज के लेखकों की रचनाओं पर हमें इस प्रकार की उदार मनोवृत्तियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह एक अच्छा लक्षण है। उदार मनोवृत्तियों का प्रभाव जिस साहित्य पर जितना अधिक पड़ता है वह उतना ही चिर-रचनाओं का महत्त्वपूर्ण अंग बनता है और जिस लेखक की रचनाओं में इन उदार मनोवृत्तियों का प्रभाव अधिक होता है वह लेखक उतना ही अधिक अच्छा लेखक माना जाता है। इन दोनों मनोवृत्तियों के अतिरिक्त लेखक पर पुराने और नये लेखकों की रचनाओं का भी प्रभाव पड़ता है। फिर चाहे प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दे जाता हो, चाहे न दिखाई देता हो। इस प्रभाव के कारण नई-नई शैलियों का जन्म होता है और लेखकों की प्रतिभा को विकास का समुचित अवसर मिलता है।

शैली के उपादान

शैली की उद्भावना दो प्रकार के उपादान तत्त्वों से होती है—बाह्य तत्त्व तथा आन्तरिक तत्त्व। बाह्य तत्त्वों के अन्तर्गत (१) ध्वनि (२) शब्द (३) वाक्य (४) अनुच्छेद (५) प्रकरण और (६) चिह्न आते हैं। यहाँ हम पहले शैली के इन बाह्य उपादानों पर ही विस्तार से विचार करेंगे।

(१) बाह्य उपादान

(अ) ध्वनि—शैली के बाह्य उपादान तत्त्वों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रत्येक शब्द अपनी ध्वनि रखता है। शब्द उस ध्वनि का साकार रूप ही तो है अतः शब्दों के ध्वनि समूहों से वाक्यों की रचना होती है। ध्वनियों के प्रयोग में लेखक को इस बात का ध्यान रखना होता है कि ध्वनियाँ पुनरुक्त न हों—[illegible] ध्वनियों

...क ऊब जाता है। वह ऐसी रचना पसन्द करता है जो श्रुति-
...ो। श्रुति-कटुत्व के दोष से अपनी रचना को बचाये रखने के
...लेखक को ट-वर्ग, रेफयुक्त वर्णों तथा द्वित्व वर्णों के प्रयोग से
...तक संभव हो बचा रहना चाहिए। इसी प्रकार वर्ग के प्रथम
...का द्वितीय के साथ तथा तृतीय का चतुर्थ के साथ संयोग भी
...से कम हो, इस बात का ध्यान रखना चाहिए। भाषा में श्रुति-
...त्व न आने देने के साथ-साथ ध्वनियों की प्रसंगानुकूल योजना का
...ध्यान रखना चाहिये। यदि मधुर और कोमल भावनाओं की
...अभिव्यक्ति की जा रही हो तो उसमें ध्वनि-लालित्य और श्रुति-कोमलता
...का ध्यान रखना आवश्यक होता है। यदि युद्ध का वर्णन करना हो
और उसके लिए उग्र एवं उद्धत भावनाओं की अभिव्यक्ति आवश्यक
हो, तो ओजपूर्ण ध्वनियों का प्रयोग करना चाहिए। सारांश यह कि
ध्वनि-योजना प्रसंग के अनुकूल होनी चाहिए।

(आ) शब्द-योजना—दो या दो से अधिक शब्दों के समूहों से
वाक्य बनता है। जिस प्रकार प्रत्येक अक्षर और शब्द की अपनी
ध्वनि होती है और [illegible] में ध्वनि का ध्यान रखना आवश्यक
होता है [illegible] अर्थ भी होते हैं और उनका ध्यान
[illegible] सार्थक शब्दों के
[illegible] करता है। ये सार्थक शब्द
[illegible] भावनाओं का [illegible] के हृदय तक
[illegible] को जागृत करता है। ऐसे
[illegible] भावनाओं [illegible] पूरा-पूरा ध्यान न रखे
[illegible] शब्द-योजना [illegible] शब्द के सही अर्थ का
स्थिति में यदि लेखक [illegible] उनका प्रयोग अच्छे ले...
अपने उद्देश्य में [illegible] तथा यथास्थान [illegible] शब्द-योज...
उपयुक्त शब्दों का [illegible] बनती है। व्याकरण के
के गुण हैं। [illegible] भी आता है। [illegible]
अन्तर्गत व्याकरण का अध्ययन [illegible] विशेषण तथा क्रिया-पद
[illegible] तीन भेद होते हैं—संज्ञा, [illegible] किस शब्द का प्रयो...
[illegible] मालूम हो जायगा [illegible] एक ही बादल को—अ...
[illegible] अथवा भाव के लिए हुआ है।

घन, जलधर, घटा, जलद, वारिद, जीमूत, नीरद, वारिधर, पयोद, अम्बुद, पयोधर, मुदिर, जलजीवन आदि नामों से पुकारा जाता है। किन्तु प्रत्येक नाम के साथ एक इतिहास है, एक विशेष अर्थ है। यदि इस बात की उपेक्षा करके कोई धाराधर के स्थान पर अभ्र और अभ्र के स्थान पर धाराधर लिख दे तो विद्वानों की मण्डली में उसकी मजाक ही उड़ाई जायगी। इसी प्रकार विशेषण और क्रिया-पद का प्रयोग भी सोच-विचार कर करना चाहिए। एक बात और ध्यान रखने की यह है कि जहाँ तक हो सके प्रान्तीय भाषा के शब्दों से बचना चाहिए। विदेशी शब्दों के प्रयोग से भी बचे रहना चाहिए। यदि हम फारसी, अरबी, अंग्रेजी, फ्रेंच और लैटिन भाषा के शब्दों का धड़ाधड़ प्रयोग करने लगें तो पाठक को उन्हें समझने में कठिनाई होगी। इससे शैली का समुचित प्रभाव भाषा पर नहीं पड़ सकेगा और शैली दोषपूर्ण हो जायगी।

(३) वाक्य योजना—शैली का तीसरा महत्त्वपूर्ण उपादान है—वाक्य-योजना। यद्यपि प्रत्येक शब्द का अलग-अलग अपना-अपना अर्थ होता है तथापि पूरे भाव की अभिव्यक्ति वाक्य के द्वारा ही होती है। हम बात वाक्य में ही करते हैं और वाक्य में ही अपने विचार अभिव्यक्त करते हैं। वाक्य हमारी भाषा का मेरुदण्ड है। ध्वनि और शब्द तो भाषा के प्रारम्भिक अवयव हैं। अतः किसी भी लेखक के लिए वाक्य-योजना पर पूरा-पूरा ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध में सबसे पहले ध्यान रखना चाहिए कि एक वाक्य में एक ही विचार की अभिव्यक्ति हो। एक वाक्य में अधिक विचार लाने का प्रयत्न किया तो उसमें अस्पष्टता, विशृंखलता आदि दुर्गुण पैदा होंगे। दूसरी बात यह है कि वाक्य-योजना में व्याकरण के नियमों का ध्यान रखना चाहिये। व्याकरण के नियमों का ध्यान रखने से भाषा परिमार्जित बनती है और अभिव्यक्ति में स्पष्टता आती है। इसके साथ वाक्य में कुछ शब्दों पर बल देना भी आवश्यक होता है। अतः जिन शब्दों पर बल देना उचित हो उन पर बल देना चाहिए। ऐसे वाक्य नहीं लिखने चाहिये जिनमें एक विचार पूरा न होता हो। अधूरे वाक्यों से भाषा का

से पाठक ऊब जाता है। वह ऐसी रचना पसन्द करता है जो श्रुति-मधुर हो। श्रुति-कटुत्व के दोष से अपनी रचना को बचाये रखने के लिए लेखक को ट-वर्ग, रेफयुक्त वर्णों तथा द्वित्व वर्णों के प्रयोग से जहाँ तक संभव हो बचा रहना चाहिये। इसी प्रकार वर्ग के प्रथम वर्णों का द्वितीय के साथ तथा तृतीय का चतुर्थ के साथ संयोग भी कम से कम हो, इस बात का ध्यान रखना चाहिये। भाषा में श्रुति-कटुत्व न आने देने के साथ-साथ ध्वनियों की प्रसंगानुकूल योजना का भी ध्यान रखना चाहिये। यदि मधुर और कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति की जा रही हो तो उसमें ध्वनि-लालित्य और श्रुति-कोमलता का ध्यान रखना आवश्यक होता है। यदि युद्ध का वर्णन करना हो और उसके लिए उग्र एवं उद्धत भावनाओं की अभिव्यक्ति आवश्यक हो, तो ओजपूर्ण ध्वनियों का प्रयोग करना चाहिये। सारांश यह कि ध्वनि-योजना प्रसंग के अनुकूल होनी चाहिये।

(आ) शब्द-योजना—दो या दो से अधिक शब्दों के समूहों से वाक्य बनता है। जिस प्रकार प्रत्येक अक्षर और शब्द की अपनी ध्वनि होती है और अक्षरों की योजना में ध्वनि का ध्यान रखना आवश्यक होता है उसी प्रकार शब्दों के अनेक अर्थ भी होते हैं और उनका ध्यान रखे बिना रचना सुन्दर नहीं बन सकती। लेखक सार्थक शब्दों के द्वारा ही तो अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है। ये सार्थक शब्द ही वे साधन हैं जिनके बल से लेखक दूसरे व्यक्तियों के हृदय तक पहुँचता है और उनकी प्रसुप्त भावनाओं को जाग्रत करता है। ऐसी स्थिति में यदि लेखक शब्द-योजना का पूरा-पूरा ध्यान न रखे तो अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता। शब्द के सही अर्थ का ज्ञान उपयुक्त शब्दों का चयन तथा यथास्थान उनका प्रयोग अच्छे लेखक के गुण हैं। इससे उसकी शैली शक्तिशाली बनती है। शब्द-योजना के अन्तर्गत व्याकरण का अध्ययन भी आता है। व्याकरण के अनुसार शब्दों के तीन भेद होते हैं—संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया-पद। इनके समुचित अध्ययन से मालूम हो जायगा कि किस शब्द का प्रयोग किस वस्तु अथवा भाव के लिए हुआ है। एक ही बादल को—अभ्र, धारा-

घर, दवाखाना, दफ्तर, अखबार, वारिद, अंगूर, मौसम, कागज, पनीर, अमरूद, पनीर, तुरुप, अलमीरा आदि नामों से पुकारा जाता है। किन्तु प्रत्येक नाम के साथ एक इतिहास है, एक विशेष भाव है। यदि इस भाव की उपेक्षा करके कोई धोबगर के स्थान पर अन्य और अन्य के स्थान पर धोबगर लिख दे तो विद्वानों की मण्डली में उसकी मजाक ही उड़ाई जायगी। इसी प्रकार विशेषण और क्रिया-पद का प्रयोग भी सोच-विचार कर करना चाहिए। एक बात और ध्यान रखने लायक यह है कि जहाँ तक हो सके प्रान्तीय भाषा के शब्दों से बचना चाहिए। विदेशी शब्दों के प्रयोग से भी बचे रहना चाहिए। यदि हम फारसी, अरबी, अंग्रेजी, फ्रेंच और लैटिन भाषा के शब्दों का धड़ाधड़ प्रयोग करने लगें तो पाठक को उनके समझने में कठिनाई होगी। इससे शैली का समुचित प्रभाव श्रोता पर नहीं पड़ सकेगा और शैली दोषपूर्ण हो जायगी।

(५) वाक्य योजना—शैली का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपादान-तत्त्व है—वाक्य योजना। यद्यपि प्रत्येक शब्द का अलग-अलग अलग-अलग अर्थ होता है, तथापि पूरे भाव की अभिव्यक्ति वाक्य के द्वारा ही होती है। हम बात वाक्य में ही कहते हैं और वाक्य में ही अपने विचार अभिव्यक्त करते हैं। वाक्य हमारी भाषा का मूलाधार है। शब्द और वाक्य ही भाषा के प्रमुख उपकरण हैं। अतः किसी भी लेखक के लिए वाक्य-रचना पर पूरा-पूरा ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध में सब से पहले ध्यान रखना चाहिए कि एक वाक्य में केवल एक ही विचार की अभिव्यक्ति हो। एक वाक्य में अधिक विचार व्यक्त करने का प्रयत्न किया तो उसमें अस्पष्टता, विशृंखलता आदि बुराइयाँ पैदा होंगी। दूसरी बात यह है कि वाक्य-रचना में व्याकरण के नियमों का ध्यान रखना चाहिए। व्याकरण के नियमों का ध्यान रखने से भाषा परिमार्जित बनती है और अभिव्यक्ति में स्पष्टता आती है। इसके साथ वाक्य में कुछ शब्दों पर बल देना भी आवश्यक होता है। अतः जिन शब्दों पर बल देना अपेक्षित हो उन पर बल देना चाहिए। ऐसे वाक्य नहीं लिखने चाहिए जिनमें एक विचार पूरा न हुआ हो। अधूरे वाक्य

होता है। तीसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वाक्य के समस्त
चाहता हो। ऐसा न हो कि लिखा कुछ जाय और उसका मतलब
र निकले। अतः इस सम्बन्ध मे इस बात का पूरा-पूरा
खना चाहिये कि हम ऐसी बातें न लिखदें जो हमारी ही पूर्व
बात को गलत सिद्ध करदें। शब्द और विचार का विरोध जहाँ
सम्भव हो भाषा में न आने देना चाहिए। चौथी महत्वपूर्ण बात
है कि लेखक के द्वारा प्रयुक्त शब्द परस्पर सन्निहित होने चाहिये।
ा न हो कि जिस काल, पुरुष और लिंग मे बात प्रारम्भ की गई है
ह आगे बढ़ते-बढ़ते उस काल, पुरुष, लिंग आदि के विपरीत हो जाय।
पाँचवीं महत्त्वपूर्ण बात यह है कि रचना मे आकार, ध्वनि एवं अर्थ पर
पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। जिस वाक्य मे इन तीनों का सुन्दर
सामञ्जस्य होता है वह वाक्य उत्कृष्ट बनता है। जहाँ तक आकार का
सम्बन्ध है वाक्य छोटा होना ही अच्छा है। छोटे वाक्य समझने में
सरल होते हैं। बड़े-बड़े वाक्य दुरूह हो जाते हैं और उनका समझना
कठिन हो जाता है। यदि वाक्य मिश्र या संयुक्त है तो उसके अङ्गों में
परस्पर संतुलन होना चाहिए। मुहावरों का प्रयोग वाक्य का सौंदर्य बढ़ा देता
है। अतः अवसर के अनुकूल मुहावरों का प्रयोग करना चाहिये। हाँ, इस बात का
ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि मुहावरों की भरमार न हो जाय।

(ङ) अनुच्छेद योजना—शैली का चौथा उपादान-तत्त्व है—
अनुच्छेद-योजना। अनुच्छेद का अर्थ है उद्देश्ययुक्त वाक्यों का समूह
शब्द और वाक्य के बाद रचना में अनुच्छेद का ही महत्त्व होता है
अनुच्छेद की योजना में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उ
केवल एक ही प्रसंग के विचारों का विराम हो। यदि उसमें अन्य प्र
के विचार भी भरने का प्रारम्भ किया गया अथवा उस प्रसङ्ग के वि
विचार भी छिन गए तो अनुच्छेद की सुन्दरता नष्ट हो जायगी।
अनुच्छेद का प्रारम्भ या तो ऐसे वाक्य न करना चाहिये जिससे
सार आ जाए या ऐसे वाक्य से हो जिनमें उसमें वर्णित प्र
प्रस्तावना हो। इसी प्रकार अनुच्छेद का अन्त ऐसे वाक्य

चाहिए जो आगे के अनुच्छेद की भूमिका बन सके । तात्पर्य यह है कि निबन्ध के अनुच्छेद माला के फूलों की तरह एक दूसरे से बंधे हुए हों । उनका अपना क्रम हो और वे आपस में संगठित हों ।

(उ) प्रकरण-योजना—प्रकरण शैली का चौथा उपादान तत्त्व है । अनुच्छेद के बाद रचना में प्रकरण का भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है । प्रकरण कई अनुच्छेदों से बनता है । एक प्रकरण में एक ही विषय का एक ही वस्तु का प्रतिपादन अनेक दृष्टियों से होता है । प्रत्येक दृष्टिकोण के लिए एक या अनेक अनुच्छेद हो सकते हैं । प्रकरण का आरम्भ बड़े आकर्षक ढंग से करना चाहिए । प्रारम्भ जितना ही सुन्दर और आकर्षक होगा उतना ही पाठक को पसन्द आयेगा । यदि प्रारम्भ अच्छा न हुआ तो हो सकता है कि पाठक दो-चार वाक्य पढ़ कर ही उसे छोड़ दे । इसी प्रकार प्रकरण का अन्त भी आकर्षक होना चाहिए । आकर्षक अन्त की परिभाषा यह है कि प्रकरण समाप्त करने के बहुत देर तक विषय पाठक के मस्तिष्क में गूंजता रहे । प्रकरण में नयी-नयी बातें कहना उसके सौन्दर्य को बढ़ा देता है । अतः अनावश्यक बातों के कथन से प्रकरण का सौन्दर्य नष्ट नहीं करना चाहिए ।

(ऊ) चिह्न विचार—यह विचार शैली का छठा उपादान तत्त्व है । इस पर हम पिछले एक अध्याय में विस्तार से विचार कर चुके हैं, अतः उन सब बातों को यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं । इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि चिह्नों के समुचित प्रयोग से अर्थ-बोध का कार्य सुगम बन जाता है । इनसे एक ओर लेखक को अपनी बात स्पष्टता से कहने में सहायता मिलती है तो दूसरी ओर पाठक को वाक्यों और अनुच्छेदों में कही हुई बातों को समझने में सरलता होती है । यदि लेखक चिह्नों के समुचित प्रयोग पर ध्यान रखे तो उसकी रचना निर्दोष और सुन्दर हो जाती है । अतः प्रत्येक लेखक को पूर्ण विराम, अर्द्ध-विराम, अल्प-विराम, प्रश्नवाचक चिह्न आदि के प्रयोग-स्थलों का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए और उनका समुचित प्रयोग करना चाहिए ।

(२) शैली के आभ्यन्तरिक उपादान

शैली के बाह्य उपादानों पर विचार कर लेने के बाद अब हम उसके आभ्यंतरिक उपादानों पर विचार करेंगे। भारतीय साहित्यकारों ने रचना-चातुर्य के लिये रीति शब्द का प्रयोग किया है। रीति-काव्य की आत्मा और पदों की विशेष रचना का नाम है। भारतीय आचार्यों ने जिस रूप में रीति का वर्णन किया है उस में लेखक का व्यक्तित्व नहीं रहता किन्तु शैली पर लेखक की मानसिक विशेषताओं की छाप रहती है। इस दृष्टि से रीति और शैली में तात्त्विक अन्तर है। किन्तु रीति में ऐसे गुण हैं जो शैली का सौन्दर्य भी बढ़ा देते हैं। अतः शैली की दृष्टि से रीति का महत्त्व कम नहीं है। भरतमुनि के अनुसार रीति का सबसे बड़ा गुण है दोषों का अभाव। श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पद-सौकुमार्य, अर्थ-व्यक्ति, उदारता और कान्ति रीति के गुण हैं। ये ही काव्य के गुण भी हैं। भरतमुनि के बाद अलंकार-शास्त्र का विकास हुआ और आचार्य मम्मट तथा अन्य आचार्यों ने ओज, प्रसाद एवं माधुर्य गुणों को ही प्रधानता दे दी। इन्हीं गुणों के आधार पर रीति के वैदर्भी, गौड़ी, पाञ्चाली—तीन मुख्य भेद किये गये। वैदर्भी वह रचना कही जाने लगी जो माधुर्य व्यञ्जक वर्णों से निर्मित हो, जिसमें समास न हो और जो ललित हो। जिस रचना में कठिन वर्ण हों और समास की बहुलता हो वह गौड़ी कही जाने लगी। इसी प्रकार माधुर्य-व्यंजक एवं ओज व्यंजक वर्णों के बाद जो वर्ण बचे रहते हैं उनसे निर्मित तथा पांच-छह पदों तक की समास वाली रचना को पाञ्चाली कहते हैं। इन रीतियों में वाचक, लाक्षणिक और व्यञ्जक तीन प्रकार के शब्द तथा वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ तीन प्रकार के अर्थ पाये जाते हैं। वाचक शब्द में जो अर्थ होता है उसे वाच्यार्थ, लाक्षणिक शब्द में जो अर्थ होता है उसे लक्ष्यार्थ और व्यंजक शब्द में जो अर्थ होता है उसे व्यंग्यार्थ कहते हैं। इन तीनों अर्थों के प्रादुर्भाव में जो शक्तियां काम आती हैं उन्हें क्रमशः अभिधा, लक्षणा और व्यंजना कहते हैं। इन्हीं शक्तियों को वृत्ति भी कहा जाता है।

भारतीय दृष्टिकोण से शैली के तीन मुख्य गुण हैं—ओज, प्रसाद और माधुर्य। जब किसी रचना के सुनने से मन में तेज का उदय हो तो उस रचना को ओजपूर्ण कहते हैं। लम्बे समास और ट-वर्ग की अधिकता वाले वाक्यों की भाषा ओजगुणपूर्ण मानी जाती है। शैली का दूसरा गुण है प्रसाद। जब शब्द शीघ्र ही हृदय को स्पर्श करने लगते हैं तो प्रसादगुणयुक्त रचना कहते हैं। सरलता और सुबोधता प्रसाद-गुण व्यंजक माने जाते हैं। शैली का तीसरा गुण है माधुर्य। माधुर्य वह गुण है जो हृदय को आनन्द से परिपूर्ण कर देता है। इस गुण से हृदय द्रवीभूत हो जाता है। माधुर्य गुण शृङ्गार, करुण और शान्त रसों में रहता है, ओज वीर, रौद्र और वीभत्स रसों में तथा प्रसाद लगभग सभी रसों में रह सकता है। जिस प्रकार अलंकार, शब्द और अर्थ का धर्म है, उसी प्रकार गुण रस का धर्म है। अलंकार रस का साथ छोड़ कर नीरस रचना में भी रह सकता है किन्तु गुण रस का साथ छोड़ कर नहीं रह सकता।

पाश्चात्य दृष्टिकोण

पाश्चात्य समालोचकों के अनुसार [illegible] स्पष्टता, प्रभावोत्पादकता, [illegible]।

(अ) सरलता—[illegible] करती है यदि उसमें [illegible] [illegible] समझ पाते हैं [illegible] है। अपनी रचना का [illegible] और दूसरों का [illegible]। उन्हें [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] हमें [illegible]।

(आ) स्पष्टता—[illegible] भावों के

दूसरा गुण है—स्वच्छता। लेखक की रचना इतनी स्वच्छ हो कि उसमें कहीं गूढ़ता या रहस्यों जैसी बात न रहे। उसे अपनी अनुभूतियों, भावनाओं एवं कल्पनाओं के गूढ़ रहस्यों को पूर्णतः खोलकर पाठकों के सामने रख देना चाहिये। स्वच्छता का गुण अपनी रचना में लाने के लिये लेखकों को क्लिष्ट शब्दों, बड़े-बड़े पारिभाषिक शब्दों, दुरूह कल्पनाओं, गूढ़ उद्धरणों, अप्रचलित उपमाओं एवं अस्पष्ट अन्तर्कथाओं के प्रयोग से बचना चाहिये।

(इ) स्पष्टता—उत्कृष्ट शैली का तीसरा गुण है—स्पष्टता। लेखक जो कुछ कहना चाहता है वह स्पष्टता-पूर्वक पाठक के मानस पर अंकित हो जाय, यह शैली का एक महत्त्वपूर्ण गुण है। यदि लेखक के शब्दों में अस्पष्टता है, उसके कथन का सही चित्र नहीं खींच पाता है तो वह शैली का दोष माना जायगा। अतः अपनी रचना में अस्पष्टता का गुण लाने के लिए उसे अपनी भाषा व्याकरण-सम्मत बनानी चाहिये। उसके वाक्य, शब्द, मुहावरे, पद सब कुछ व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होने चाहिये। यदि शुद्धता का अभाव रहा तो लेखक कहेगा कुछ और उसका मतलब निकलेगा कुछ और।

(ई) प्रभावोत्पादकता—शैली का चौथा गुण है—प्रभावोत्पादकता। यदि किसी लेखक की रचना सरल, स्वच्छ और स्पष्ट है किन्तु इन गुणों के होते हुए भी यदि वह प्रभावशाली नहीं है तो उसमें वे सब गुण व्यर्थ हो जाते हैं। अतः प्रभावोत्पादकता शैली का प्रमुख गुण है। इस गुण को लाने के लिये लेखक को अपना विषय सर्व साधारण की अनुभूति के योग्य बना देना चाहिये। अपनी रचना मे वह जिस हर्ष, शोक, क्रोध, बैर, उत्साह, आशा, निराशा, आदि का चित्रण करना चाहता है वह एक व्यक्ति का हर्ष-विषाद न रह कर विश्वजनीन बन जाय। अपने हर्ष-विषाद को सबका हर्ष-विषाद बनाने की शक्ति लेखक में जितनी अधिक आ जायगी उतना ही वह जनमानस को छू सकेगा, झंकृत कर सकेगा। अतः किसी भी उत्कृष्ट शैली मे जनमानस को छूकर झंकृत कर देने की शक्ति होनी चाहिये।

(उ) शिष्टता—उत्कृष्ट शैली का पांचवां गुण है—शिष्टता। मान

सौन्दर्योपासक है। उसे वस्तु की सुन्दरता सदैव आकर्षित करती है। किसी वस्तु को नग्न, भद्दे अथवा कुरुचिपूर्ण ढङ्ग से उपस्थित करना उसे रुचता नहीं है। अतः लेखक जो कुछ लिखे शिष्ट भाषा में, सुरुचिपूर्ण शब्दों में लिखे। उसे मर्यादा का ध्यान रखकर ही लिखना चाहिये। शिष्टता, मर्यादा और सुरुचि का ध्यान रख कर वह जो कुछ लिखेगा वह पाठक को अच्छा लगेगा। अतः लेखक को सौन्दर्य-विधान का ख्याल सदैव रखना चाहिये।

(ऊ) लय—उत्कृष्ट शैली का छठवाँ गुण है—लय। शब्दों का जिस प्रकार अपना अर्थ होता है उसी प्रकार उनकी ध्वनि भी होती है। शब्द ध्वनियों का समूह होता है। अतः शब्दों की ध्वनि और अर्थ में साम्य का ध्यान रखना लेखक को न भूलना चाहिये। इससे शैली में लय और प्रवाह का आविर्भाव होता है। लय दो प्रकार की होती है—(१) ध्वनिलय और (२) ताल-लय। मधुर ध्वनियों की योजना से शैली में ध्वनिलय आती है। ताल-लय एक प्रकार का गीतात्मक स्वर-सञ्चार होता है। वह स्वरों के उतार-चढ़ाव पर निर्भर रहता है।

इन गुणों के अलावा हास्य और विनोद का गुण भी शैली को उत्कृष्ट बनाने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। हास्य-विनोद से पाठक का मन विषय में रमता है और उसकी ग्रहणशीलता बढ़ती है। जिस प्रकार अच्छे मिष्ठान्न के साथ नमकीन वस्तु भोजन के आनन्द को बढ़ा देती है उसी प्रकार हास्य-विनोद से भी शैली में रोचकता आ जाती है। किन्तु हास्य-विनोद का प्रयोग मर्यादा ही में होना चाहिये।

शैली के दोष

शैली के गुणों का विवेचन कर देने के बाद उसके दोषों पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। एक ही भाव को बार-बार दुहराते रहना शैली का दोष है, अक्सर कुछ लोग अलग-अलग शब्दों में एक ही बात कहते रहते हैं। यह ठीक नहीं है। कम से कम शब्दों में ज्यादा से ज्यादा बात कहने वाली शैली अच्छी मानी जाती है। शैली का दूसरा दोष है ऐसे वाक्यों का प्रयोग करना जो [illegible]
इससे रचना दुरूह और अनिश्चित बनती है।

शब्दों का प्रयोग करना जिसमें अस्पष्टता बनी रहे। चौथा दोष है
आवश्यक और अनुचित शब्दों का प्रयोग । कई बार कुछ लोग अपना
पाण्डित्य दिखलाने के लिये स्वयं ही कुछ बड़े-बड़े शब्दों का प्रयोग करते
। इसी प्रकार ऐसे शब्दों का प्रयोग भी करते हैं जो उचित नहीं होते ।
शैली को अच्छी बनाने के लिये अनावश्यक और अनुचित शब्दों के प्रयोग से
बचना चाहिये । पाँचवाँ दोष है एक ही शब्द की पुनरुक्ति करना । पुनरुक्ति से
शब्द कानों को अच्छा नहीं लगता । ग्राम्य शब्दों का प्रयोग और शब्दा-
डम्बर शैली का छठा दोष है । उन्हीं शब्दों का प्रयोग करना चाहिये जो
उस भाषा के हैं । उस स्थल पर ग्रामीण द्वारा बोले जाने वाले
प्रांतीय भाषा के शब्दों का प्रयोग शैली को दोष-पूर्ण बना देता है ।
सातवाँ दोष है, पाण्डित्य प्रदर्शन की चेष्टा । बहुत से लोग अपनी विद्वत्ता
दिखाने के लिये अनावश्यक रूप से बड़े-बड़े क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग करते
हैं, ऐसा करना अच्छा नहीं है । सीधे सादे सरल शब्दों के प्रयोग
से ही शैली अच्छी बनती है । आठवाँ दोष है—संयोजक और वियोजक
शब्दों का अनुचित प्रयोग । नवाँ दोष है—मिश्रित रूपक का प्रयोग
दोष है—अनुच्छेदों तथा विराम-चिह्नों का अभाव । अनुच्छे
...म-चिह्नों के अभाव में, भाषा में स्पष्टता, सरलता, स्वच्छ
प्रभावोत्पादकता नहीं आ पाती । ग्यारहवाँ दोष है—पहिले वि
उत्कृष्टता का वर्णन करके बाद में उसकी न्यूनता का वर्णन क
ससे प्रभावोत्पादकता नष्ट हो जाती है । बारहवाँ दोष है विचा
असम्बद्धता । विचार क्रमपूर्ण होने से पाठक को समझने
नहीं लगती, किन्तु उनके असम्बन्ध होने से उलझन-सी पैदा हो ज

शैली के स्वरूप अंग

ऊपर शैली के जिन बाह्य और आभ्यन्तरिक उपादान
वर्णन किया गया है । उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि शैली
अनुभूति और अभिव्यञ्जना की प्रधानता रहती है । जहाँ
का सम्बन्ध है, विचार के तीन प्रमुख गुण हैं—सरलता,
आनुकूल्य । विचार की सरलता शैली को सरल बनाती है

लेखक को पूरी तरह हजम हो जाता है—वह उसका अपना ही विचार हो जाता है तब उसे सीधे-सादे सरल शब्दो मे अभिव्यक्त करना आसान हो जाता है। अतः सरलता विचार का महत्वपूर्ण गुण है। वह विचार की परिपक्वता का द्योतक है । विचार मे स्पष्टता लाने के स्पष्ट और प्रत्यक्ष उदाहरण दिये जाते हैं ताकि अस्पष्टता के लिए कोई स्थान न रहे। विशेषार्थ-बोधक कथन को प्रधानता भी स्पष्टता लाने के लिए ही दी जाती है। स्पष्ट शैली की यह विशेषता होती है कि उसमे एक परिच्छेद मे एक शब्द ही अर्थ मे प्रयुक्त किया जाता है। उसमे कोई असंगत कथन नहीं होता। आरोहरण मे युग-गत ज्ञान से काम लिया जाता है और विचार विषय के अनुरूप होते हैं।

अनुभूति के तीन गुण हैं—प्रवृति, ओज और काति । इन्द्रिय वृत्तियो को आकर्षित करने के गुण को प्रवृति कहते हैं। जो रचनाएँ जीव और प्रकृति के प्रति प्रेम पैदा करती है, जीवो के सुख-दुःख के प्रति सहानुभूति पैदा करती हैं—ऐन्द्रिय वृति को जागृत करने वाली रचनाएँ कही जाती है । जिन रचनाओ से हृदय मे शक्ति का संचार हो उन्हे ओजगुण से पूर्ण रचना कहते हैं। ऐसी रचनाओ मे प्रकृति के रहस्यो का वर्णन इस प्रकार किया जाता है कि मन मे उत्कृष्ट भाव पैदा होते हैं। जिन रचनाओ मे अह्लादप्रदायिनी शक्ति होती है उन्हें कान्तिगुण से पूर्ण रचना कहा जाता है। शब्द, पद तथा वाक्य का लालित्य, रसज्ञता, विनोद, वाक्-चातुरी, सुरुचि-पूर्ण, शब्द चयन, परिष्कृत कथनो की योजना आदि इसी गुण की वृद्धि करते हैं। गुण वाली रचनाओं मे धर्म और सदाचार के प्रति रुचि पैदा करने की क्षमता होती है तथा पाठकों के विचार के प्रति सम्मान का भाव रहता है।

अभिव्यञ्जना के चार गुण हैं—रुचि, अनुक्रम, मधुरता, और यथार्थता । परिमार्जित भाषा का व्यवहार अभिव्यञ्जना मे रुचि का परिणाम है। जिन रचनाओ मे रुचि का ध्यान रखा जाता है उनमें शब्द और वाक्य नपे-तुले होते हैं। अनुक्रम के कारण पाठक को रचना का अर्थ समझने में सरलता होती है। स्वर-मधुरता का गुण हृदय और मस्तिष्क मे आनन्द का उद्रेक करता है, श्रुति मधुर रचना मे इतनी

और शब्दों का प्रयोग करना जिससे अस्पष्टता बनी रहे। चौथा दोष है अनावश्यक और अनुचित शब्दों का प्रयोग । कई बार कुछ लोग अपना पाण्डित्य दिखलाने के लिये स्वयं ही कुछ बड़े-बड़े शब्दों का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार ऐसे शब्दों का प्रयोग भी करते हैं जो उचित नहीं होते । शैली को अच्छी बनाने के लिये अनावश्यक और अनुचित शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिये । पांचवां दोष है एक ही शब्द की पुनरुक्ति करना । पुनरुक्ति से शब्द कानों को अच्छा नहीं लगता । ग्राम्य शब्दों का प्रयोग और शब्दाडम्बर शैली का छठा दोष है। उन्हीं शब्दों का प्रयोग करना चाहिये जो उस भाषा के हैं । उस स्थल पर ग्रामीण द्वारा बोले जाने वाले प्रान्तीय भाषा के शब्दों का प्रयोग शैली को दोष-पूर्ण बना देता है। सातवां दोष है, पाण्डित्य प्रदर्शन की चेष्टा। बहुत से लोग अपनी विद्वता दिखाने के लिए अनावश्यक रूप से बड़े-बड़े क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग करते हैं, ऐसा करना अच्छा नहीं है । सीधे सादे सरल शब्दों के प्रयोग से भी शैली अच्छी बनती है । आठवां दोष है—संयोजक और वियोजक शब्दों का अनुचित प्रयोग । नवां दोष है—मिश्रित रूपक का प्रयोग । दसवां दोष है—अनुच्छेदों तथा विराम-चिह्नों का अभाव । अनुच्छेदों और विराम-चिह्नों के अभाव में, भाषा में स्पष्टता, सरलता, स्वच्छता और प्रभावोत्पादकता नहीं आ पाती । ग्यारहवां दोष है—पहिले विषय की उत्कृष्टता का वर्णन करके बाद में उसकी न्यूनता का वर्णन करना । इससे प्रभावोत्पादकता नष्ट हो जाती है । बारहवां दोष है विचारों की असम्बद्धता । विचार अस्पष्ट होने से पाठक को समझने में देर तो लगती है, किन्तु उनके असम्बद्ध होने से उलझन-सी पैदा हो जाती है ।

शैली के स्वरूप अंग

ऊपर शैली के भिन्न बाह्य और आभ्यन्तरिक उपादान-तत्वों का वर्णन किया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि शैली में विचार, भावना और अभिव्यक्ति की प्रधानता रहती है। जहां तक विचार का सम्बन्ध है, विचार के तीन प्रमुख गुण हैं—सरलता, स्पष्टता और मौलिकता। विचार की सरलता शैली को सरल बनाती है। जब विचार

लेखक को पूरी तरह हजम हो जाता है—वह उसका अपना ही विचार हो जाता है तब उसे सीधे-सादे सरल शब्दों में अभिव्यक्त करना आसान हो जाता है। अतः सरलता विचार का महत्त्वपूर्ण गुण है। वह विचार की परिपक्वता का द्योतक है। विचार में स्पष्टता लाने के स्पष्ट और प्रत्यक्ष उदाहरण दिये जाते हैं ताकि अस्पष्टता के लिए कोई स्थान न रहे। विशेषार्थ-बोधक कथन को प्रधानता भी स्पष्टता लाने के लिए ही दी जाती है। स्पष्ट शैली की यह विशेषता होती है कि उसमें एक परिच्छेद में एक शब्द ही अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। उसमें कोई असगत कथन नहीं होता। आरोहण में युग-गत ज्ञान से काम लिया जाता है और विचार विषय के अनुरूप होते हैं।

अनुभूति के तीन गुण हैं—प्रवृत्ति, ओज और कान्ति। इन्द्रिय वृत्तियों को आकर्षित करने के गुण को प्रवृत्ति कहते हैं। जो रचनाएँ जीव और प्रकृति के प्रति प्रेम पैदा करती हैं, जीवों के सुख-दुःख के प्रति सहानुभूति पैदा करती हैं—ऐन्द्रिय वृत्ति को जागृत करने वाली रचनाएँ कही जाती हैं। जिन रचनाओं से हृदय में शक्ति का सचार हो उन्हें ओजगुण से पूर्ण रचना कहते हैं। ऐसी रचनाओं में प्रकृति के रहस्यों का वर्णन इस प्रकार किया जाता है कि मन में उत्कृष्ट भाव पैदा होते हैं। जिन रचनाओं में अह्लादप्रदायिनी शक्ति होती है उन्हें कान्तिगुण से पूर्ण रचना कहा जाता है। शब्द, पद तथा वाक्य का लालित्य, रसज्ञता, विनोद, वाक्-चातुरी, सुरुचि-पूर्ण, शब्द चयन, परिष्कृत कथना की योजना आदि इसी गुण की वृद्धि करते हैं। गुण वाली रचनाओं में धर्म और सदाचार के प्रति रुचि पैदा करने की क्षमता होती है तथा पाठकों में विचार के प्रति सम्मान का भाव रहता है।

अभिव्यञ्जना के चार गुण हैं—रुचि, अनुक्रम, मधुरता, और यथार्थता। परिमार्जित भाषा का व्यवहार अभिव्यञ्जना में रुचि का परिणाम है। जिन रचनाओं में रुचि का ध्यान रखा जाता है उनमें शब्द और वाक्य नप-तुले होते हैं। अनुक्रम के [illegible] पाठक को रचना का अर्थ समझने में सरलता होती है। स्वर [illegible]
मस्तिष्क में आनन्द का उद्रेक करता है,

जाता है प्रायः वाक्य एक क्रिया वाले होते हैं। इस बात का ध्यान विशेषरूप से रखा जाता है कि भाषा प्रभावोत्पादक, समर्थ एवं अर्थवान् हो। थोड़े से शब्दों में बहुत कुछ कह देना इस शैली का एक बहुत बड़ा गुण है। इस शैली में ऐसे छोटे और प्रसादगुण युक्त वाक्यों का प्रयोग किया जाता है जो चुस्त होने के साथ-साथ मर्मस्पर्शी भी होते हैं।

(२) गुम्फित शैली—इस शैली में गुम्फित वाक्यों का प्रयोग किया जाता है। गुम्फित वाक्य वे हैं जिनमें दो या दो से अधिक क्रिया पद आते हैं। अनुभवी और प्रौढ़ लेखक ही इस प्रकार की शैली अपना सकते हैं। यदि लेखक अनुभवी और प्रौढ़ न हुआ तो भाषा में शिथिलता आने का भय बना रहता है। गूढ़ विषयों के निरूपण में यह शैली अधिक उपयुक्त होती है।

इस शैली का सम्बन्ध मानव-इन्द्रियो से होता है। मानव-इन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति मे सहायता देती हैं। अतः जब लेखक का भावुक हृदय वाह्य इन्द्रियो द्वारा प्राप्त किये हुए अनुभव को जनता तक पहुँचाने के लिए व्याकुल हो उठता है और उसके परिणामस्वरूप शैली का जन्म होता है उसे व्यक्ति-प्रधान इन्द्रियानुभावात्मक शैली कहते है। व्यक्ति-प्रधान शैली का तीसरा स्वरूप है ज्ञानात्मक शैली। किसी विषय के विवेचन मे इसी प्रकार की शैली से काम लिया जाता है जिन शास्त्रीय विषयो मे मस्तिष्क का संयोग हृदय की अपेक्षा अधिक होता है, वे इस शैली मे ही लिखे जाते हैं।

व्यक्ति-प्रधान शैली मे किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व या निजत्व का अंश अधिक रहता है। लेकिन जब व्यक्तित्व विषय के प्रवाह मे तिरोहित हो जाता है तो उसे विषय-प्रधान शैली कहते है। विषय-प्रधान शैली मे लिखी हुई रचना मे लेखक के व्यक्तित्व का अभाव रहता है। उसमें लेखक छिपा रहता है, स्पष्टत. सामने नही आता। इस प्रकार की विषय-प्रधान शैली मे आलोचनात्मक, विचार-प्रधान, कथात्मक, एवं ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी लेख लिखे जाते हैं।

आलोचनात्मक शैली

जिस शैली मे लेखक की रचना के गुण-दोषो का विवेचन किया जाता है, उसे आलोचनात्मक शैली कहते हैं। इस शैली के तीन स्वरूप होते हैं। पहिला है निर्णयात्मक शैली। इस शैली मे आलोचना शास्त्रीय ढग से की जाती है अर्थात् लेखक लक्षण-ग्रन्थ मे वर्णित सिद्धान्तो के प्रकाश मे रचना के गुण-दोषो पर निर्णय देता है। वह निर्णय आलोचक का नहीं शास्त्रीय ग्रन्थो का रहता है। आलोचनात्मक शैली का दूसरा रूप है तर्क-प्रधान शैली। इस शैली मे लेखक अपनी तर्क बुद्धि के अनुसार रचना के गुण-दोषो पर प्रकाश डालता है। ऐसी आलोचनात्मक शैली या तो दोष-प्रधान होती है या गुण-प्रधान। लेखक के प्रति आलोचना का जो दृष्टिकोण बन जाता है उसी के अनुसार वह उचित या अनुचित ढंग से उसकी रचना को परखता है। इस

प्रकार की आलोचना में आलोचक का अहंभाव स्पष्टतः दिखाई देता है। ऐसा प्रायः दो कारणों से होता है, पहिला यह है कि आलोचक का ज्ञान परिमित अथवा अपूर्ण हो और दूसरा यह है कि वह लेखक के प्रति या तो पक्षपात कर रहा हो या उससे ईर्ष्या कर रहा हो। कोई भी कारण हो उनके कारण की आलोचना पक्षपातपूर्ण बन जाती है।

आलोचना-प्रधान शैली का तीसरा स्वरूप है—व्याख्या-प्रधान शैली। यही आलोचना की आधुनिक शैली है। इस शैली के अनुसार आलोचक न तो केवल शास्त्रीय-सिद्धान्तों पर चलता है और न अपने मनोरागों पर। वह रचना की आत्मा को परखने का प्रयत्न करता है और इस प्रकार उसकी आत्मा में प्रविष्ट होकर उसकी भावनाओं, कल्पनाओं तथा अनुभूतियों का विश्लेषण करता है। वह लेखक की परिस्थितियों, उसके सामाजिक वातावरण, उसकी रुचि-अरुचि, उसके संस्कार, जीवन आदि को जानने का प्रयत्न करता है। वह यह भी जानने का प्रयत्न करता है कि लेखक ने अपने विषय के प्रतिपादन के लिए कहाँ-कहाँ से भिन्न-भिन्न रूप में सामग्री एकत्रित की है। इस प्रकार के अध्ययन में आलोचक को लेखक के हृदय और मस्तिष्क दोनों का परिचय मिल जाता है। तब इस परिचय के प्रकाश में वह लेखक की कृति के गुण-दोषों को अपनी बुद्धि की तुला पर तोलता है। इस प्रकार की आलोचना शैली पक्षपात से दूर होती है और उसका दृष्टिकोण सदा लेखक के प्रति सहानुभूति से भरा रहता है।

शैली के सम्बन्ध में इतने विस्तार के साथ कह देने के बाद यह कहना अनुचित न होगा कि शैली के भेद और उपभेद समझने के बाद भी प्रत्येक लेखक की अपनी अपनी शैली होती है। वह स्वयं अपनी शैली का निर्माता होता है, उसकी अपनी शैली दूसरों की शैली से भिन्न होती है। इसका कारण जहाँ लेखक की अपनी योग्यता होती है वहाँ उसकी कुशलता भी होती है। उसकी कल्पना, भावना, अनुभूति और [illegible] द्वारा एक ऐसी शैली को जन्म देता है जो सबसे भिन्न और सर्वथा नये प्रकार की होती है।

रस

हमारे प्राचीन आचार्यों के अनुसार 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है' (वाक्यं रसात्मकं काव्यं)। वे रस को काव्य की आत्मा मानते हैं। भरत-मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। प्रायः जब हम कोई सुन्दर कविता पढ़ते हैं या सुनते हैं तो हमें एक विशेष प्रकार का आनन्द अनुभव होता है। हम कुछ समय तक अपने को भूल कर उस आनन्द में खो जाते हैं। जब तक हम किसी विपन्न, दरिद्र या पीड़ित व्यक्ति की आर्त्त-वाणी सुनते हैं या किसी दुर्घटना का दृश्य देखते हैं तो एक तीव्र पीड़ा से अभिभूत हो जाते हैं, हमारा हृदय दुःख से भर जाता है। इसी प्रकार, जब हम अपने बहुत पुराने और निकटतम साथी प्रियजन से मिलते हैं, किसी आनन्दोत्सव में सम्मिलित होते हैं अथवा कोई सुखद समाचार सुनते हैं तो खुशी से झूमने लगते हैं यह आनन्दानुभूति ही रस है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि चित्त में उत्पन्न होने वाली यह विशेष वृत्ति ही रस है। वस्तुतः ऐसी चित्त-वृत्ति प्रत्येक सहृदय व्यक्ति के हृदय में वासनारूप में विद्यमान रहती है। वासना एक ऐसी ईश्वरदत्त शक्ति है जो प्रत्येक मानव-हृदय में छिपी हुई है। यही ईश्वरदत्त शक्ति जिसे वासना कहा गया है हमें रस की अनुभूति कराती है। काव्य में आचार्यों ने रस को 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहा है। रस के द्वारा जो आनन्दानुभूति हमें होती है वह लौकिक नहीं होती है, वह तो एक अनिर्वचनीय आनन्द है।

ये रस नौ हैं—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स अद्भुत और शान्त।

रस के चार अङ्ग होते हैं—स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव। जो भाव हमारे हृदय में स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं उन्हें स्थायी भाव कहते हैं। ये मनोभाव मानव-हृदय में सदैव एक

प्रसुप्त दशा में सोये हुए रहते । जब कोई अनुकूल परिस्थिति आती है तो ये सहसा जागृत हो जाते हैं । ये विरोधी या अविरोधी भावों से नष्ट नहीं होते तथा विरोधी भावों को भी अपने रूप में बदल लेने की शक्ति रखते हैं । सारांश यह कि जिस भाव का रूप सजातीय या विजातीय भावों के प्रभाव से भी बदल न सके और जब तक रस की अनुभूति होती हो तब तक विद्यमान रहे वही स्थायी भाव है । शृंगार का स्थायी रति है, हास्य रस का हास है, करुण रस का शोक है, रौद्र रस का क्रोध है, वीर रस का उत्साह है, भयानक रस का भय है, वीभत्स रस का जुगुप्सा है, अद्भुत रस का विस्मय है और शान्त रस का निर्वेद है । ये स्थायी भाव अपने-अपने रसों में विद्यमान रहते हैं और इनका परिपुष्ट रूप ही रस कहलाता है ।

स्थायी भाव को जाग्रत करने वाले भावों को विभाव कहते हैं । इन्हीं द्वारा रस अंकुरित होकर आस्वादन के योग्य बनता है । विभाव के दो भेद हैं—आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभाव । जिनके सहारे से रति, उत्साह, भय आदि स्थायी भाव उत्पन्न हों, वे आलम्बन विभाव कहे जाते हैं । दूसरे शब्दों में कहें तो जिस प्रकार चना, गेहूं आदि के बीज उनके अंकुर के आलम्बन होते हैं, उसी प्रकार स्थायी भाव को अंकुरित करने के लिए जिन विभावों की आवश्यकता होती है वे आलम्बन विभाव कहे जाते हैं । आलम्बन पर रस का उत्पन्न होना निर्भर करता है । उदाहरण के लिए यदि आप रास्ता चलते-चलते दीन, निर्बल और दुःखी व्यक्ति को किसी के द्वारा सताये जाते हुए पाते हैं, तो आपको बड़ा शोक होता है । अतः वह दुःखी व्यक्ति आपके शोक स्थायी भाव का आलम्बन हुआ । यही बात क्रोध, हास, रति आदि के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है ।

जिनके द्वारा आलम्बन विभाव से अंकुरित रति, जुगुप्सा, विस्मय, शोक, भय आदि स्थायी भाव उद्दीपित हों उन्हें उद्दीपन विभाव कहते हैं । दूसरे शब्दों में जिनके देखने या सुनने से किसी रस की पुष्टि हो उसे उद्दीपन विभाव कहते हैं । उदाहरण के लिए किसी अबला का आर्त-नाद, किसी बालक की करुण पुकार अथवा किसी उद्दण्ड व्यक्ति के

अभिमान भरे हुए शब्द हमारे शोक, क्रोध अथवा इसी प्रकार के अन्य भावो को उद्दीप्त कर देते हैं।

आलम्बन विभाव के माध्यम से अंकुरित और उद्दीपन विभाव के सहारे पल्लवित रति, क्रोध, शोक आदि स्थायी भावो को जो अनुभव कराते हैं उन्हें अनुभाव कहते हैं। अनु का अर्थ है—पीछे। अतः जो विभावो के पीछे चले उसे अनुभाव कहते हैं। आलम्बन और उद्दीपन द्वारा जागृत स्थायीभाव की स्थिति का बोध कराने वाली शारीरिक चेष्टा आदि को अनुभाव कहा जाता है। उदाहरणार्थ—शोक मे आँसू आना, उत्साह मे भुजाये फडकना, भय मे भागना आदि।

स्थायीभाव के साथ-साथ जल-तरङ्ग की भाँति प्रकट होने वाले अस्थिर मनोविकारो को संचारीभाव कहते हैं—इन्हें व्यभिचारीभाव भी कहते हैं। इनकी संख्या ३३ है। ये हैं—निर्वेद, ग्लानि, शङ्का, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीडा, चपलता, आवेग, हर्ष, जडता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार स्वप्न, विबोध, अमर्ष, अवहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क।

रस अनिर्वचनीय आनन्द है। इसी से रस को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। जब हम करुण रस से पूर्ण किसी नाटक को देखते हैं या किसी गीत, कहानी, उपन्यास, काव्य आदि को पढते हैं तो उसमें भी हम एक प्रकार के आनन्द की ही अनुभूति होती है, यही रसानुभूति है। यदि उनमे आनन्द की ही अनुभूति न हो तो उन्हे कौन पढ़ेगा? लेकिन उनकी ओर लोगो की जबरदस्त रुचि ही उनके महत्त्व को प्रकट करती है। रस की अनुभूति मे सत्वगुण की प्रधानता होती है। यदि रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता हुई तो रस की अनुभूति उस प्रकार नही हो पाती जिस प्रकार गन्दे शीशे मे स्वच्छ परछाँई नहीं दिखाई देती। अतः रजोगुण और तमोगुण पर सत्वगुण की प्रधानता आवश्यक है। इसी के द्वारा ज्ञान का प्रकाश होता है और ज्ञान के प्रकाश से ही सहृदय-जनों के हृदय मे रस की अनुभूति होती है।

विप्रलम्भ शृङ्गार का उदाहरण

है कितना बेचैन हृदय तुमको भूल न पाता क्यों?
वह रेवा-सा रूप तुम्हारा, आँखों में लहराता क्यों?
चञ्चल हिरणी-सी नयनों की करुणा मेरा घर भरती?
एक असीमित तृष्णा रह-रह कर मन को घायल करती।

—अञ्चल

यहाँ नायक का नायिका के प्रति प्रेम स्थायीभाव है। रेवा नदी के समान उसकी सुन्दरता तथा हरिणी के समान चंचल नेत्र उद्दीपन विभाव है। हृदय की बेचैनी और उसका न भूलना अनुभाव है। स्मृति आदि संचारी भाव है।

२—हास्य रस

जब हम किसी की विकृत चेष्टाएं, अनोखी वेशभूषा तथा अनोखी बातचीत देखते या सुनते हैं तो हास्य रस की उत्पत्ति होती है। हास्य रस के छह भेद हैं:

स्मित, हँसित, विहँसित, अवहँसित, अपहँसित और अतिहँसित

स्थायी भाव—हास।

आलम्बन विभाव—विचित्र आकृति, विचित्र वेश-भूषा, विचित्र वस्तुएँ, लज्जा, हीनता आदि।

उद्दीपन विभाव—हँसी बढ़ाने वाली चेष्टाएँ आदि।

अनुभाव—हँसना, मुँह खोलना, प्रसन्नता, आँखों को बन्द करना आदि।

संचारी भाव—रोमाञ्च, हर्ष, चपलता, निद्रा, आलस्य, अवहित्था आदि।

उदाहरण

बाबू बनने का यार फ़ेश फारमूला सुनो,
कीजिये इकन्नी खर्च मूँछ की मुड़ाई में।
लीजिये सेकिण्ड हैण्ड सूट डेढ़ रुपये में,
डेमी रिस्ट वाच चार पैसे की कलाई में।

स्थायी भाव—निर्वेद, शम।

आलम्बन—संसार की असारता, पाप-पुण्य का ज्ञान।

उद्दीपन—धर्मोपदेश, तीर्थ-भ्रमण, वेदान्त अध्ययन, सत्संग।

अनुभाव—रोमाच, शत्रु-मित्र में समभाव, गृह-त्याग, अश्रु-पात विषयों में अरुचि आदि।

संचारी भाव—स्मृति, निर्वेद, हर्ष, असूया, ग्लानि, दैन्य आदि।

उदाहरण

इस मध्य निशा में ओ अभाग,
तुझ को तेरे ही अर्थ त्याग—
जाता हूँ मैं यह वीतराग।
दयनीय ठहर तू, क्षीणभाग।
ओ क्षण भंगुर, भव, राम, राम।

—मैथिलीशरण गुप्त

यहाँ निर्वेद स्थायी भाव है। निस्सार संसार आलम्बन और इसे क्षण भंगुर समझना उद्दीपन है। अपने को वीतराग मानकर गृह-त्याग करना अनुभाव है। विबोध, ग्लानि संचारी भाव हैं।

वात्सल्य रस

इन नौ रस के अतिरिक्त वात्सल्य को भी एक और रस मान लिया गया है। भक्ति-रस भी वात्सल्य-रस के साथ आता है। वैसे ये दोनों रतिभाव के अन्दर आ जाते हैं।

स्थायी भाव—प्रेम, रति।

आलम्बन—शिशु।

उद्दीपन—शिशु की विविध चेष्टाएं और क्रीड़ाएं।

अनुभाव—हर्षित होना।

संचारी भाव—हर्ष, रोमाच आदि।

उदाहरण

भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाय।
भाजि चलत किलकत मुख, दधि ओठन लिपटाय।

—

अभ्यास

१. रस किसे कहते हैं ? रस के अंगों पर प्रकाश डालिये ।

२. शृंगार और वीर रस का उदाहरण देकर उनका अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

३. वीर रस की दो कविताएँ लिखिये ।

४. निम्नलिखित रचना में रस-निष्पत्ति का निर्देश कीजिये—

> पूनमा था भूमितल को अर्घ विधु का भाल ।
> बिखरे थे प्रेम के द्रुम, ध्यान बनकर बाल ।
> कामना सिर पर उठा था प्राण-पति का हाथ ।
> हो रही थी प्रकृति अपने आप पूर्ण सनाथ ॥

छन्द

वाक्य-रचना के दो प्रकार हैं—गद्य और पद्य । गद्य लिखने के लिए कर्ता, कर्म, क्रिया के क्रम का ध्यान रखना पड़ता है किन्तु पद्य में इस क्रम को अधिक ध्यान में रखने की आवश्यकता नहीं होती । हाँ, व्याकरण के लिंग, वचन, कारक, सन्धि, समास आदि का अवश्य ध्यान रखना पड़ता है । जैसा हम बोलते हैं उसी का लिखित रूप गद्य है । किन्तु पद्य छन्द-बद्ध रचना है । आचार्य दण्डी के अनुसार छन्द उसे कहते हैं जो आनन्द प्रदान करता है । छन्द की बड़ी व्यापक परिभाषा है । पहिचान की सरलता के लिए हम कह सकते हैं कि *साधारणतः जिस रचना में गण, मात्रा, यति, चरण, तुक आदि* का पूर्ण ध्यान रखा जाता है उसे छन्द कहते हैं । छन्द तीन प्रकार के होते हैं—मात्रिक, वर्णिक और मुक्तक । मात्रिक छन्दों का निर्माण मात्राओं के आधार पर होता है और वर्णिक छन्दों का निर्माण वर्णों के आधार पर । वर्णिक छन्द में वर्ण की एक निश्चित संख्या होती है तथा मात्रिक छन्द में मात्राओं की । मुक्तक छन्द मात्राओं और वर्णों के बन्धन से मुक्त होता है ।

वर्ण के बोलने में जितना समय लगता है उसे 'मात्रा' कहते हैं । मात्रा दो प्रकार की होती हैं—ह्रस्व और दीर्घ । छन्द-शास्त्र में अक्षर को वर्ण कहा जाता है । जिस वर्ण या अक्षर में एक मात्रा हो उसे 'लघु' और जिसमें दो हों उसे 'गुरु' कहते हैं, दूसरे शब्दों में ह्रस्व को लघु और दीर्घ को गुरु कहते हैं । जिन वर्णों के उच्चारण में कम समय लगता है उनको ह्रस्व और जिनके उच्चारण में अधिक समय लगता है उन्हें दीर्घ कहते हैं । लघु का चिह्न '।' तथा गुरु का चिह्न 'ऽ' होता है । उदाहरण के लिए 'राम दयाल'—ऽ । । ऽ ।, २, १, १, २, १—सात मात्राएँ हैं ।

लघु और गुरु जानने के लिए नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :

(क) अ, इ, उ और ऋ ये चारों स्वर लघु होते हैं।
तथा अ, इ, उ और ऋ की मात्रा वाले अक्षर भी लघु होते हैं।
जैसे : क, कि, कु आदि।

(ख) आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः ये सभी गुरु माने जाते हैं।
जैसे : का, की, कू, के आदि।

(ग) यदि किसी व्यंजन पर गुरु की मात्रा हो तथा साथ ही अनुस्वार अथवा विसर्ग हो तो दो मात्रा ही गिनी जाती है, जैसे कं, नः आदि

(घ) यदि किसी व्यंजन पर चन्द्र बिन्दु लगा हो तो वह लघु माना जाता है।

(ङ) संयुक्ताक्षर से पूर्व का अक्षर लघु होने पर भी गुरु मान लिया जाता है। जैसे : 'कुन्तल' (ऽ । ।)।

(च) किसी किसी स्थान पर उच्चारण के अनुसार लघु को गुरु और गुरु को लघु पढ़ते हैं। अभ्यास के लिये नीचे एक पंक्ति लिखकर उसकी मात्राएँ बताई जा रही हैं :

ऽ । । ऽ । ऽ । । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ = २३
कोटिन हूँ कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं।

गण

तीन अक्षरों के समूह को गण कहते हैं। लघु और दीर्घ के क्रम से गण आठ माने गये हैं :

गण का नाम	रूप	उदाहरण
यगण	। ऽ ऽ	बुलाना
मगण	ऽ ऽ ऽ	कोठारी
तगण	ऽ ऽ ।	आभार
रगण	ऽ । ऽ	बेबसी
जगण	। ऽ ।	कमाल
भगण	ऽ । ।	बालक
नगण	। । ।	कमल
सगण	। । ऽ	कमला

इन आठों गणों को याद रखने के लिए निम्नलिखित सूत्र याद कर लेना लाभदायक रहेगा। वह है 'यमाताराजभानसलगा'। अन्तिम दो वर्णों को छोड़कर इसके प्रथम आठ अक्षर आठ गणों के ही नाम हैं। जैसे, पहिले अक्षर 'य' का मतलब है—यगण और दूसरे 'मा' का अर्थ है मगण। इस प्रकार उपर्युक्त सूत्र गणों के नाम याद रखने में तो हमारी सहायता करता ही है, गणों की पहिचान में भी सहायता करता है। यदि आपको किसी भी गण का स्वरूप ज्ञात करना हो तो इस सूत्र में उस गण का नाम ढूँढ़िये और उसके आगे के दो और अक्षरों को मिलाकर एक गण बना लीजिये। इस गण का जो स्वरूप होगा वही उस गण का स्वरूप है। उदाहरण के लिए यदि यगण का स्वरूप मालूम करना हुआ तो 'यमाता' अर्थात यगण का स्वरूप ।ऽऽ मालूम हो जायगा।

छन्दों के विषय में आगे कुछ जानने के पहिले यह जान लेना चाहिए कि यति, गति, चरण, लय आदि किसे कहते हैं। छन्दों को पढ़ने में जो एक प्रकार का प्रवाह होता है उसे गति या लय कहते हैं। मात्राएँ पूरी होने पर भी यदि छन्द में लय न हो तो वह छन्द नहीं बनता, क्योंकि उसमें गति भङ्ग होने का दोष आ जाता है।

छन्द के पढ़ते समय जहाँ ठहरना पड़ता है उसे यति कहते हैं। इसका प्रयोग भाव को अधिक स्पष्ट करने तथा भाषा में सुन्दर गठन लाने के लिए किया जाता है।

छन्द के टुकड़ों को चरण कहते हैं। साधारणतः हर एक छन्द में चार चरण हुआ करते हैं। कुण्डलियाँ और छप्पय में छः चरण होते हैं। जिसके चारों चरणों में मात्राएँ बराबर हों वह सम छन्द कहा जाता है। जैसे द्रुतविलम्बित, चौपाई, रोला आदि और जो पहले तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरण में बराबर मात्राएँ हों वे अर्द्ध सम कहलाते हैं। जिनके चारों चरण एक से न हों अथवा जिनमें चार से अधिक चरण हों वे विषम कहलाते हैं।

छन्दों के चरण के अन्त में जो एक से स्वर-सहित व्यञ्जन रखे जाते हैं उन्हें तुक या अन्त्यानुप्रास कहते हैं।

(क) अ, इ, उ और ऋ ये चारों स्वर लघु होते हैं।
तथा अ, इ, उ और ऋ की मात्रा वाले अक्षर भी लघु होते हैं।
जैसे : कु, कि, कृ आदि।

(ख) आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः ये सभी गुरु माने जाते हैं।
जैसे : का, की, कू, के आदि।

(ग) यदि किसी व्यंजन पर गुरु की मात्रा हो तथा साथ ही अनुस्वार अथवा विसर्ग हो तो दो मात्रा ही गिनी जाती है, जैसे हैं, तः आदि

(घ) यदि किसी व्यंजन पर चन्द्र बिन्दु लगा हो तो वह लघु माना जाता है।

(ङ) संयुक्ताक्षर से पूर्व का अक्षर लघु होने पर भी गुरु मान लिया जाता है। जैसे : 'कुन्तल' (S I I)।

(च) किसी किसी स्थान पर उच्चारण के अनुसार लघु को गुरु और गुरु को लघु पढ़ते हैं। अभ्यास के लिये नीचे एक पंक्ति लिखकर उसकी मात्राएँ बताई जा रही हैं :

S I I S I S I I S S I I S I S S I I S I I S S = ३२

कोटिक हूँ कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारों।

गण

तीन अक्षरों के समूह को गण कहते हैं। लघु और दीर्घ के क्रम से ये आठ माने गये हैं :

गण का नाम	रूप	उदाहरण
यगण	I S S	बुलाना
मगण	S S S	कोठारी
तगण	S S I	आभार
रगण	S I S	बेबसी
जगण	I S I	कमाल
भगण	S I I	बासर
नगण	I I I	कमल
सगण	I I S	कमला

(४) सोरठा

इसके प्रथम और तीसरे चरण में ११, ११ तथा दूसरे और चौथे चरण में १३, १३ मात्राएँ होती हैं। इसकी तुक दूसरे चौथे चरण में न होकर पहिले और तीसरे चरण में होती है। पहिले और तीसरे के अन्त में गुरु लघु होता है। यह दोहा छन्द का बिल्कुल उल्टा होता है।

उदाहरण

ऽ। ऽ। ऽऽ।=११ ऽ। ।ऽ ।।।। ।।।=१३
मूक होय वाचाल, पंगु चढ़े गिरिवर गहन।
जासु कृपासु दयाल, हरहु सकल कलिमल दहन॥

—तुलसीदास

(५) गीतिका

दोहा-सोरठा की तरह इस छन्द में भी चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में २६ मात्राएँ होती हैं तथा चौदहवीं और बारहवीं मात्रा पर यति होती है। अन्त में लघु के बाद गुरु आता है। कभी कभी तीन लघु भी आ जाते हैं। इसमें ३, १०, १७ और २४ वीं मात्राएँ लघु होनी चाहिये।

उदाहरण

ऽ। ऽ।। ऽ।।ऽ ऽ।ऽ ।।ऽ ।ऽ=२६
धर्म के मग में अधर्मी में कभी चलना नहीं।
चित्त रख चलना कुमारग में कदम धरना नहीं।
शुद्ध भावों में भयानक भावना भरना नहीं।
बोध वर्धक लेख लिखने में कभी डरना नहीं॥

—नाथूराम शंकर शर्मा

(६) हरिगीतिका

हरिगीतिका छन्द में चार चरण होते हैं। प्रत्येक में २८ मात्राएँ होती है—१६ और १२ मात्राओं पर यति होती है। अन्त में लघु-गुरु आता है।

(९) ताटंक या लावणी

इस छन्द में भी चार-चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में १६, १४ के विराम से ३० मात्राएं होती हैं अन्त में दो गुरु होते हैं।

उदाहरण

ऽ। ऽ। ऽ ऽ। ऽ। ।। ।। ऽऽ ।।ऽऽ=३०
एक बार की सुनो तुम, जग यह सारा इठलाता,
मारी गई बुद्धि भोला की प्रभु शंकर हुआ दिवाना।
नेते भांग पीस कर छानी, और हुआ मतवाना,
थेई थेई लगा नाचने खूब ओढ कम्बल बाना।

(१०) उल्लाला

इस छन्द में चार-चार चरण होते हैं। इस के प्रथम और तृतीय चरण में १५ मात्राएं होती हैं तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में १३। इस प्रकार १५ और १३ के विराम से यति होती है।

उदाहरण

ऽऽ ।ऽ। ऽ।।।।। ऽ। ।।। ।। ।। ।ऽ=२८
तोरे विरंचि शङ्कर सहित, कोल कमठ अहि कल मल्यो।
ब्रह्माण्ड खण्ड किया चण्ड धुनि, जबहि राम शिव धनु दल्यो॥

(११) आल्हा या वीर

इस छन्द में १६, १५ के विराम से कुल ३१ मात्राएँ होती हैं अन्त में गुरु लघु होता है।

उदाहरण

।।। ।ऽ ।।ऽ ऽ ऽ ऽ।।ऽ ।।। ।ऽ।=३१
सुमिर भवानी जगदम्बा के औ शारद के चरण मनाइ,
आदि सुरसती तुमको ध्याऊं माता कण्ठ विराजी आइ।

(१२) बरवै

इस छन्द में भी चार चरण होते हैं। पहिले और तीसरे चरण में १२, १२ मात्राएं होती हैं तथा दूसरे और चौथे चरण में ७, ७। दूसरे और चौथे चरण के अन्त में जगण का होना आवश्यक है!

) द्रुत-विलम्बित

यह भी चार चरण का छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक नगण, दो भगण तथा एक रगण होता है। (नगण, भगण, भगण, रगण)

उदाहरण

I I I S I I S I I S I S
दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु शिखर पर थी अब राजती,
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

(३) वंशस्थ

इस छन्द के चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में क्रमशः एक जगण, एक तगण, एक जगण और एक रगण होता है। (जगण, तगण, जगण, रगण)

उदाहरण

I I S S S I I S I I I S
मुकुन्द चाहे वसुदेव पुत्र हो।
कुमार होवे अथवा व्रजेश के॥
विके उन्हीं के कर सब भाव हैं।
बसा हुआ है मन नेत्र में वही॥

—अयोध्यासिंह उ

(४) वसंततिलका

इस छन्द में चार चरण होते हैं। इसके प्रत्येक चरण में एक तगण, एक भगण, दो जगण और दो गुरु होते हैं। (तगण, भगण, जगण, जगण, गुरु, गुरु)

उदाहरण

ऽऽ ।ऽ।।। ऽ। ।ऽ।ऽ ऽ
वंशी निनाद सुन त्याग निकेतनों को।
दौड़े समस्त सविनोद उमंग में वे॥
गोपी अनंत बहु गोप अनेक बाला।
आईं विहार [illegible] के बन मेदिनी में॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

(४) मालिनी

यह पन्द्रह वर्ण का छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः दो नगण, एक मगण, और दो यगण होते हैं। (नगण, नगण, मगण, यगण, यगण)

उदाहरण

।।।।।। ऽऽऽ। ऽऽ। ऽऽ
[illegible] जन के जो कण्ठ का हार होता,
मुदित मधुपुरी का जीवनाधार होता।
वन कुसुम सलोना धूल में जा पड़ा है।
नियति नियम मेरा भी बड़ा ही कड़ा है।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

(५) मंदाक्रांता

यह छन्द सत्रह वर्ण का होता है। इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक मगण, एक भगण, एक नगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं। [illegible] चौथे, इसके बाद सत्रहवें वर्ण पर यति होती है। (मगण, भगण, नगण, तगण, तगण, गुरु, गुरु)

उदाहरण

[illegible], मलिन ललिता, जो व्यथा में पड़ी हो,
तो तू पाके, निकट उसके, श्याम के क्या गिराना।
तो धीरे से, [illegible] पत्ता, ध्वनि से अंकिता हो,
[illegible], [illegible], औ त्यागते [illegible] जाना॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

शार्दूल-विक्रीड़ित

इस छन्द के चार चरण होते हैं । प्रत्येक चरण में क्रमशः एक
…ण, एक मगण, एक जगण, एक सगण, दो तगण और एक गुरु
…ा है । बारहवें तथा उन्नीसवें वर्ण पर यति होती है (मगण, सगण
…ण, सगण, तगण, तगण, गुरु)

उदाहरण

ऽ ऽऽ ।। ऽ। ऽ।।।ऽ ऽऽ ।ऽ ऽ ।ऽ

आ बैठी उर मोह जन्य जड़ता विद्या विदा हो गई ।
पाई कायरता मलीन मन की हा, वीरता खो गई ॥
जागी दीन दया दरिद्र मन की श्री सम्पदा सो गई ।
माया शंकर की हँसाय हमको रुद्रा बनी रोगई ॥

—नाथूराम शंकर शर्मा

(८) शिखरिणी

इस छन्द में चार चरण होते हैं । प्रत्येक चरण में क्रमशः एक
यगण, एक मगण, एक नगण, एक सगण, एक भगण और अन्त में
एक लघु और एक गुरु होता है । छठे तथा ११ वे वर्ण पर यति होती
है । (यगण, मगण, नगण, सगण, भगण और लघु-गुरु)

उदाहरण

।ऽऽ ऽऽ ऽ ।।। ।।ऽ ऽ।।ऽ

मनोनी आशा सी सुखद सुषमा सी सरस सी,
दिशा जो देती थी तनय अपनी ही मगन सी ।
अनूठे नोनों से तरल मन से सींच कर जो,
बना ही देती थी बहु गुणमयी भू विपिन को ।

(९) शालिनी

यह चार चरण का छन्द होता है । इसके प्रत्येक चरण में ए…
दो तगण और दो गुरु होते हैं । चौथे और ग्यारहवें वर्ण पर…
है । (मगण, तगण, तगण, गुरु गुरु)

उदाहरण

SS S S S I S S I S S

दोनों की श्री देख के सोचते थे
जीते दोनों ओर के शूर सारे
गोरे काले दिव्य शस्त्रास्त्र वाले
तेजस्वी है तप्त भास्वान जैसे

(१०) तोटक छन्द

इस छन्द के प्रत्येक चरण में चार सगण होते है।

उदाहरण

I I S I I S I I S I I S

जगदीश सदा भवताप हरें।
इस जीवन में नव साध भरे।
जन मान इसे नुव दान करें,
इसके मन मन्दिर में विहरें।

(११) मदिरा सवैया (मालिनी)

यह चार चरण का छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में सात भगण और एक गुरु होता है। इसे मालिनी सवैया भी कहा जाता है।

उदाहरण

S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S

तोरि शरासन शंकर कौ, शुभ सीय स्वयम्वर मांझ वरी।
ताते बढ़यौ अभिमान महा, मन मेरीयो नेक न संक करी।
सो अपराध परयौ हम सों, अब क्यों सुधरे हम हूं धौं कहौ।
बाहु दे दोउ कुठारसिंह केशव, आपने धाम कौ पन्थ गहौ॥

(१२) मत्त-गयंद सवैया (मालती)

इस छन्द के चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में सात भगण और दो गुरु होते हैं। इसे मालती सवैया भी कहा जाता है।

उदाहरण

S I I S I I S I I S I S I S I I S I I S I I S S

मोर पखा सिर ऊपर राखिहौ, गुंज कि माल गरे पहिरौंगी,
ओढ़ि पिताम्बर लै लकुटी बन, गोधन ग्वालन संग फिरौंगी,
भावतो मेरी वही रसखान सो तेरे कहे सब स्वांग करौंगी,
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी।

—रसखान

(१३) सुमुखी सवैया

यह चार चरण का छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में सात जगण और अन्त में एक लघु और गुरु होता है।

उदाहरण

I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S

जुनीर लगे सिय रामहि साथ चले बन माहि फिरे न चहे।
हम प्रभु आयसु देहु चले न डरे सब सो कर जोरि कहे॥
चले कछु दूरि नये पग धूरि भले फल जन्म अनेक लहे।
सिया सुमुखी हरि फेरि तिन्हें बहु भाँति तें समुझाय कहे॥

(१४) दुर्मिल सवैया

इस छन्द में चार चरण होते हैं, इसके प्रत्येक चरण में आठ सगण होते हैं।

उदाहरण

I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S

हम डूब रहे दुख सागर में अब बार प्रभो धरिये धरिये,
अविवेक विषाद कहे हम क्या अब दीन कृपा करिये करिये।
यह भारत गारत हो न कहीं, धन धान्य यहीं भरिये भरिये,
बस हो अब देर विलम्ब नहीं यह दीन दशा हरिये हरिये।

(१५) कवित्त अथवा मनहरण

इस छन्द के प्रत्येक चरण में १६, १५ के

होते हैं। अन्त में गुरु होता है। इसमें ८, ८, ८ और ७ वर्ण पर यति होती है।

उदाहरण

सुनिये विटप वर, पुहुप तिहारे हम,
राखिहों हमें तो शोभा, रावरी बढ़ाएंगे।
तजिहों हरषि के तो, बिलग न माने कछु,
जहाँ जहाँ जैहे, तहाँ दूनो जस गाएँगे।
सुरन चढ़ेंगे नर सिर न चढ़ेंगे फेरि,
सुकवि अनीस हाथ हाथन बिकाएंगे।
देस में रहेंगे परदेस में रहेंगे काहू—
भेस में रहेंगे तऊ रावरे कहाएँगे।

—अनीस

(१४) घनाक्षरी

इस छन्द के प्रत्येक चरण में ३२ वर्ण होते हैं। शेष नियम मनहरण कवित्त की ही भाँति होते हैं। इसके अन्त में एक गुरु और एक लघु होता है।

उदाहरण

कब से तुम्हारी राह दिन-रात देखता हूँ,
दयाघन दयाकर दया दिखलाओ तुम।
यह तो बताओ तुम छिपे किस लोक में हो,
आओ शीघ्र मुझे मत तरसाओ तुम॥
राधा के सहित करो मेरे उर में निवास,
और सब मेरी भव बाधा को मिटाओ तुम।
जाऊँ कहाँ गोपाल शरण तुम्हारी छोड़,
नाम ही के नाते अब मुझे अपनाओ तुम॥

—गोपालशरण सिंह

———

अलंकार

'अलङ्कार' दो शब्दों से बना है—'अलं' और 'कार'। इसका अर्थ है—शोभा बढ़ाने वाला। आचार्य दण्डी के अनुसार काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों को अलङ्कार कहते हैं। साधारणतः हम अलङ्कार उन्हें कहते हैं जो कविता की शोभा बढ़ा देते हैं। जिस प्रकार लौकिक व्यवहार में गहने तथा रत्नों के आभूषण शरीर को सुशोभित करने के कारण अलङ्कार कहे जाते हैं, उसी प्रकार काव्य को अलंकृत करने वाले शब्दों की रचना को अलङ्कार कहते हैं। आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में यही बात कही है -

"काव्य शोभाकरान्धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते।"

अलङ्कार प्रधानतः दो भागों में विभक्त हैं—शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार। शब्द रचना के वैचित्र्य द्वारा काव्य को शोभित करने वाले अलङ्कारों को शब्दालङ्कार कहते हैं तथा अर्थ-वैचित्र्य की रचना द्वारा काव्य को शोभित करने वाले अलङ्कारों को अर्थालङ्कार कहते हैं। शब्दालङ्कारों की विचित्रता वर्णों अथवा शब्दों की पुनरावृत्ति और विशिष्ट शब्दों के प्रयोग पर निर्भर है। अर्थालङ्कारों की विचित्रता अर्थ वैचित्र्य पर। इन दो के अतिरिक्त एक और अलङ्कार भी मान लिया गया है—उभयालङ्कार। उभयालङ्कार में शब्द और अर्थ दोनों का ही वैचित्र्य समाया रहता है। अलङ्कारों का यह शब्द और अर्थगत विभाजन अन्वय और व्यतिरेक पर निर्भर रहता है। कारण के रहने पर कार्य का अवश्य होना अन्वय है और कारण के अभाव में कार्य का अभाव व्यतिरेक है। मतलब यह है कि जो अलङ्कार किसी विशेष शब्द की स्थिति रहने पर ही रह सकता है और उस शब्द के स्थान पर उसी अर्थ वाला दूसरा शब्द रख देने पर नहीं रह सकता, वह शब्दालङ्कार है। इसके विपरीत जो अलङ्कार शब्द विशेष पर निर्भर न होगा। अर्थात् जिन शब्दों के द्वारा किसी अलङ्कार की सृष्टि की जाती है यदि उन शब्दों के स्थान पर उसी अर्थ वाले दूसरे शब्द रख देने पर भी [illegible]
विद्यमान रह सकता हो तो वह अर्थालङ्कार है।

उदाहरण

चन्दन चन्दक चंदनी चन्दसान नव बाल,
नित ही चित चाहतु चतुर ये निशय के काल।

यहाँ 'च' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति हुई है।

(ङ) लाटानुप्रास शब्दानुप्रास

शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति में तात्पर्य भिन्नता होने को लाटानुप्रास कहते हैं।

उदाहरण

वे घर हैं बन ही सदा जो ह्वै बन्धु वियोग,
वे घर हैं बन ही सदा जो नहिं बन्धु वियोग।

यहाँ पहिली पंक्ति में जो शब्द आए हैं लगभग वे ही शब्द दूसरी पंक्ति में भी आये हैं—केवल तात्पर्य भिन्न है।

(३) यमक अलंकार

जहाँ शब्दों की आवृत्ति बार-बार हो परन्तु अर्थ में भिन्नता रहे वहाँ यमक अलङ्कार होता है।

उदाहरण

ऊँचे घोर मन्दिर के अन्दर रहन वारी,
ऊँचे घोर मन्दिर के अन्दर रहाती हैं,
कन्द मूल भोग करें; कन्द मूल भोग करें,
तीन बेर खाती तें वे तीन बेर खाती हैं।
भूखन शिथिल अङ्ग भूखन शिथिल अङ्ग,
बिजन डुलाती तें वे बिजन डुलाती हैं।
भूषन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ाती तें वे नगन जड़ाती हैं।

—भूषण

उपर्युक्त कवित्त में 'मन्दिर', 'कन्द बेर मूल', 'भूखन', 'नगन', 'बिजन' आदि शब्दों की दो-दो बार आवृत्ति हुई है और प्रत्येक उनका अर्थ अलग होता है।

यहाँ जीवन और जल शब्दों का रूप भिन्न-भिन्न होने पर भी अर्थ एक ही प्रतीत होता है। किन्तु जीवन का अर्थ प्राण देने वाला है, अतः पुनरुक्ति का आभास-मात्र है।

(७) चित्र अलङ्कार

वर्णों की रचना विशेष के कारण जो छन्द कमल आदि आकार में पढ़े जा सके, वहाँ चित्र अलंकार होता है।

(८) प्रहेलिका

जहाँ वाक्य की चतुरता से छन्द में ही इच्छित उत्तर निकल आवे, वहाँ प्रहेलिका अलंकार होता है।

मैं कह 'दिया' उसका नाम
अर्थ करो नहीं छोड़ो ग्राम।

—अमीर खुसरो

अर्थालंकार

अर्थालंकार के मुख्य भेद इस प्रकार हैं :

(१) उपमालंकार

जहाँ दो भिन्न-भिन्न वस्तुओं के साधारण धर्म द्वारा सम्बन्ध स्थापित किया जाय, वहाँ उपमा अलंकार होता है। दूसरे शब्दों में उपमेय और उपमान के सादृश्य की योजना करने वाले समान धर्म का सम्बन्ध उपमा है। जैसे : 'मुँह चन्द्रमा के समान है।' यहाँ मुँह और चन्द्रमा की समानता का ज्ञान कराया गया है। उपमालंकार में चार अङ्ग होते हैं—(१) उपमेय (२) उपमान (३) साधारण-धर्म और (४) वाचक। जिसकी उपमा दी जाती है या जिसको किसी के समान कहा जाता है उसे उपमेय कहते हैं। उदाहरण के लिये, 'मुँह चन्द्रमा के समान सुन्दर है।' इस वाक्य में 'मुँह' उपमेय है। जिसकी उपमा दी जाती है या जिससे समता दिखाई जाती है उसे उपमान कहा जाता है। उपर्युक्त वाक्य में 'चन्द्रमा' उपमान है। उपमेय और उपमान में समानता से रहने वाले गुण, क्रिया आदि धर्म को समान-धर्म या साधारण-धर्म कहते हैं। उपर्युक्त वाक्य में 'सुन्दरता'

इस पद्य मे शिवाजी उपमेय के बहुत से उपमान 'इन्द्र' 'बाड़व' 'रघुकुलराज' आदि बताये गये हैं।

(३) अनन्वय

अनन्वय का अर्थ है अन्वय (सम्बन्ध) न होना। अनन्वय मे अन्य उपमान का सम्बन्ध नही होता। उसमें उपमेय ही उपमान होता है। अतः जहाँ उपमान का अभाव प्रदर्शित कर उपमेय और उपमान को एक ही बताया जाय, वहाँ अनन्वय अलंकार होता है।

उदाहरण

आगे रहे गनिका गज गीध, सु तो अब कोउ दिखात नहीं हैं।
पाप परायण ताप धरे, परताप समान न आन कहीं है।
हे सुखदायक प्रेमनिधे जग यो तो भले औ बुरे सबही हैं।
दीनदयाल औ दीन प्रभो, तुमसे तुमही हमसे हमही हैं।

यहाँ 'तुमसे तुमही', 'हमसे हमही' मे 'दीनदयाल को दीनदयाल' से ही और 'अपने को अपने' से ही उपमा दी गई है।

(४) प्रतीप अलकार

प्रतीप का अर्थ है विपरीत या प्रतिकूल। इसमे उपमेय से उपमान की हीनता, उपमान से उपमेय की हीनता दिखाई जाती है।

उदाहरण

तेरे मुख सा पंकसुत या शशांक यह बात,
कहते हैं कवि झूठ वे बुद्धिरक विख्यात।

यह मुख का उत्कर्ष बताने के लिय कमल और चन्द्रमा व उपमानों की हीनता दिखाई गई है।

(५) रूपक अलकार

जहाँ उपमेय मे उपमान का आरोप किया जाय या दूसरे शब्दों में कहें तो जहाँ उपमेय और उपमान को एक रूप कह दिया जाय, वहाँ रूपक अलंकार होता है। इसके मुख्य भेद दो हैं :

(१) अभेद रूपक (२) तद्रूप रूपक।

जहाँ उपमेय और उपमान को समान रूप मान कर अभेद दिखाया जाय, वहाँ अभेद रूपक होता है।

उदाहरण

रनित भृङ्ग घंटावली, झरित दान मधु-नीर।
मन्द मन्द आवत चल्यो, कुञ्जर कुञ्ज समीर।

यहाँ कुंज की समीर में हाथी का आरोप है। समीर की सामग्री और मकरन्द में हाथी के घट और दान का आरोप है।

जहाँ उपमेय को प्रसिद्ध उपमान से भिन्न होने पर भी उपमान का वर्णन करने वाला कहा जाय, वहाँ तद्रूप रूपक होता है।

उदाहरण

अनुराग के रंगनि रूप तरंगिनी अंगनि ओप मनो उफनी।
कहि देव हियो सिय रानी सबै, सियरानी को देख सुहाग सनी॥
बर धायन बाम चढ़ी बरसै, मुसकानि-सुधा धनसार धनी।
सखियान के आनन इन्दुन तै अँखियान की बन्दनवार तनी॥

यहाँ मुसक्यान में सुधा का, आनन में इन्दु का और अँखियान में बन्दनवार का आरोप है। इसके अवयव नहीं बताये गये हैं।

(६) अपह्नुति

जहाँ उपमेय को स्वीकार करके अन्य उपमान को स्वीकार कर लिया जाय, वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है।

उदाहरण

धुरवा होइ न अलि यहै, धुँआ धरनि चहुं कोद।
जारत आवत जगत को, पावस प्रथम पयोद।

यहाँ बादल का निषेध कर आग के धुँए को स्वीकार किया गया है।

(७) भ्रान्तिमान

जहाँ उपमान के समान ही उपमेय को देखकर उपमान का भ्रम होने लगे, वहाँ भ्रान्तिमान अलंकार होता है।

उदाहरण

दुग्ध समझ कर नर, कपाल को लगे चाटने जिन्हें बिडाल,
तरु-छिद्रों में गिरी देख गज लगे मानने जिन्हें मृनाल।

यहाँ 'नर-कपाल' पर गिरने वाली चन्द्र-किरणों में दुग्ध का और तरु छिद्रों से निकली हुई किरणों में मृनाल का भ्रम होना बताया गया है।

(८) सन्देह अलंकार

जब किसी वस्तु को देखकर ठीक प्रकार से निश्चय न हो और संशय बना रहे, तब सन्देह अलंकार होता है।

उदाहरण

"तारे आसमान के आये मेहमान बन,
या कि कमला ही आज आके मुसकाई है।
चमक रही हैं चपला ही एक साथ या कि,
केशों में निशा के मुक्तावली सजाई है।"

यह दीपावली का वर्णन है। यहाँ दीप-मालिका में तारे आदि का सन्देह किया गया है।

(९) उत्प्रेक्षा अलंकार

जहाँ उपमान में उपमेय की सम्भावना या कल्पना की जाय, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। उत्प्रेक्षा अलंकार के तीन भेद होते हैं—वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा।

उदाहरण

मङ्गलमय कल्यानमय, अभिमत फल दातार।
जनु सब साँचे होन हित भये सगुन इकबार।

—तुलसी

रामचन्द्रजी की बरात के प्रस्थान करते समय अनेक शुभ शकुन हुए और वे मनाने लगे कि आगे हम सच्चे माने जायँ। यहाँ शकुनों के होने में उनके सच्चे होने की कल्पना की गई है।

(१०) अतिशयोक्ति अलंकार

जहाँ किसी वस्तु का कथन अत्यन्त बढ़ा-चढ़ाकर कि

तक कि लोक-मर्यादा को भी पार कर दिया जाता है, वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण

देख लो साकेत नगरी है यही,
स्वर्ग को छूने गगन है जा रही।

—मैथिलीशरण गुप्त

यहाँ साकेत नगरी के मकान इतने ऊँचे बताये गये हैं कि वे स्वर्ग को छूने के लिये जाते हुए प्रतीत होते हैं।

(११) प्रतिवस्तूपमालंकार

जहाँ उपमेय और उपमान के वाक्यों में भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा एक ही धर्म कहा जाय, वहाँ प्रतिवस्तूपमालंकार होता है।

उदाहरण

चटक न छाँड़त घटत हूँ सज्जन नेह गम्भीर।
फीको परे न वरु भटे रंग्यो लाल रङ्ग चीर।

—विहारी

(१२) अन्योक्ति अलंकार

जहाँ किसी वस्तु का सीधा वर्णन न करके उसके समान किसी दूसरी वस्तु का वर्णन किया जाय पर लक्ष्य पहिली वस्तु को ही किया जाय, तो अन्योक्ति अलंकार होता है। इसमें उपमेय का वर्णन करने के लिये केवल उपमान का ही वर्णन किया जाता है।

उदाहरण

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब में अपत कँटीली डार।

—विहारी

यहाँ यद्यपि बात गुलाब से कही गई है तथापि यह बात वस्तुतः ऐसे वैभवशाली व्यक्ति की है जिसका कि वैभव नष्ट हो चुका है।

(१३) दृष्टांत अलंकार

जहाँ पहिले एक बात कह कर फिर उसी से मिलती-जुलती दूसरी बात उदाहरण स्वरूप कही जाय, वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।

उदाहरण

कैसे छोटे नरन ते, सरत बड़ेन को काम।
मढ़ो दमामो जात कहुँ कहि चूहे के चाम ॥

—बिहारी

यहाँ पहिले एक बात कही गई और फिर दृष्टान्त देकर उसकी पुष्टि की गई है।

(१४) विरोधाभास अलंकार

जहाँ वस्तुतः विरोध न होने पर भी विरोध का आभास हो, वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है।

उदाहरण

या अनुरागी चित की गति, समझे नहीं कोय।
ज्यों-ज्यों बूढ़े श्याम रंग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय।

—बिहारी

यहाँ चित श्याम रङ्ग में डूबने से उज्ज्वल होता जाता है अतः विरोध स्पष्ट है, किन्तु श्याम का अर्थ श्रीकृष्ण से होने के कारण विरोध नहीं है।

(१५) व्यतिरेक अलंकार

जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय में अधिक गुणों का उत्कर्ष दिखाया जाय वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है।

उदाहरण

राधा मुख को चन्द इव, कहत जु हे मतिरंक।
निष्कलंक है यह सदा, वह प्रतच्छ सकलंक ॥

(१६) व्याजस्तुति अलंकार

जहाँ स्तुति के बहाने से निन्दा और निन्दा के बहाने से स्तुति की जाय, वहाँ व्याज-स्तुति अलंकार होता है। इस अलंकार में प्रकट रूप में निन्दा या स्तुति की जाती है लेकिन वास्तव में उसका भाव बिलकुल विपरीत होता है। व्याज अर्थ है—बहाना, और स्तुति का अर्थ है—प्रशंसा।

अर्थान्तरन्यास का अर्थ है—अन्य अर्थ रखना। इस अलंकार में सामान्य वृत्तान्त का विशेष वृत्तान्त से और विशेष का सामान्य वृत्तान्त से समर्थन किया जाता है।

उदाहरण

वड़े न हूजे गुणन विन बिरद वड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढ़्यो न जाय॥

इस दोहे में कहा गया है कि केवल नाम वड़ा होने से गुण के न। कोई वड़ा नहीं हो सकता। इस सामान्य वात का धतूरे के विशेष ...न्त द्वारा समर्थन किया गया है।

(२२) तद्गुण और पूर्वरूप अलंकार

यदि कोई वस्तु अपना गुण त्याग कर अपने निकट की किसी अधिक गुण वाली वस्तु के गुणों को ग्रहण करले, तो तद्गुण अलंकार होता है।

उदाहरण

अति सुन्दर दोनों कानों में जो कहलाते शोभागार,
एक एक था भूषण जिसमें जड़े हुए थे रत्न अपार।
कर्णपूर प्रतिविम्ब युक्त था कान्त कपोल युग्म उस काल,
कभी श्वेत था, कभी हरा था कभी कभी होता था लाल।

यहाँ दमयन्ती के कपोलों द्वारा अपना गुण त्याग कर समीपवर्ती अनेक रत्नजटित कर्ण-भूषण का श्वेत, हरा और रक्त गुण ग्रहण करने का वर्णन है।

(२२) अतद्गुण अलङ्कार

जहाँ समीपवर्ती वस्तु के गुण का ग्रहण किया जाना सम्भव होने पर भी यदि ग्रहण न किया जाय, तो अतद्गुण अलंकार होता है। अतद्गुण अलंकार पूर्वोक्त तद्गुण अलंकार का विरोधी है।

आप अपना हृदय उज्ज्वल कह रहे,
रङ्ग उस पर प्रिय नहीं चढ़ता कहीं।
राग पूरित हृदय में रखती उसे,
रक्त फिर भी वह कभी होता नहीं॥

यहाँ नायिका के राग भरे हुए हृदय से रक्त गुण द्वारा नायक के उज्ज्वल हृदय का रक्त होना सम्भव होने पर भी रक्त न होना कहा गया है।

(२४) स्वभावोक्ति अलङ्कार

जहाँ बालकों की चेष्टा या स्वरूप का वर्णन किया जाय अथवा किसी दृश्य का वर्णन ज्यों का त्यों कर दिया जाय, वहाँ स्वाभावोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण

धूरि धुरेटे धरणि पैं, धरत अटपटे पाय।
लाल लटपटे ओवरनि, भाषत सखि हरखाय॥

यहाँ श्रीकृष्णजी की बालकोचित चेष्टाओं का वर्णन किया गया है।



साहित्य का स्वरूप

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपने सुख-दुःख की चर्चा दूसरों से करता है और दूसरों के सुख-दुःख को जानना चाहता है। इसमें उसे एक प्रकार का आनन्द मिलता है। अपना सुख-दुःख दूसरों पर प्रकट किये बिना और दूसरों का सुख-दुःख जाने बिना उसे एक प्रकार की घुटन-सी प्रतीत होती है। अपने सुख-दुःख को अभिव्यक्त करने के लिए वह युगों से भाषा का आश्रय लेता आ रहा है। भाषा उसके विचार और भाव के आदान-प्रदान का माध्यम है। भाषा के द्वारा अपने भाव और विचार की अभिव्यक्ति ही साहित्य है। दूसरे शब्दों में ज्ञान-राशि के संचित कोष को साहित्य कहा जाता है। यह साहित्य का व्यापक अर्थ है। साहित्य में सहित का, सम्मिलन का भाव रहता है। उसमें संसार के समस्त प्राणियों का, ऊँच-नीच का, शिक्षित, अशिक्षित का यहाँ तक कि तीनों कालों का सम्मिलन होता है। लेकिन संस्कृत के प्राचीन आचार्य साहित्य का इतना व्यापक अर्थ नहीं लेते थे। उनके अनुसार तो साहित्य से तात्पर्य केवल उस रचना से है जो छन्द-बद्ध हो। मतलब यह है कि उनके अनुसार साहित्य और काव्य में कोई अन्तर नहीं था। उस समय साहित्य और काव्य एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते थे। किन्तु वह साहित्य का संकुचित अर्थ था। उस अर्थ के अनुसार गणित, दर्शन, इतिहास, भूगोल आदि लोकोपयोगी विषय साहित्य के अन्तर्गत नहीं आ सकते थे; क्योंकि इन विषयों का छन्द से कोई सम्बन्ध नहीं था। किन्तु आज साहित्य को उस संकुचित अर्थ में नहीं लिया जाता है। आजकल उसके अन्तर्गत गद्य और पद्य दोनों ही आ जाते हैं।

साहित्य के प्रकार

साहित्य दो प्रकार का होता है उपयोगी और कलात्मक। जिस साहित्य में हमारे दैनिक जीवन की आवश्यकता पूरी करने की क्षमता हो, जो हमें सुख दे सकता है, उसे हम उपयोगी साहित्य कहते हैं।

उदाहरण के लिए, यदि किसी पुस्तक में गेहूँ की खेती, गोपालन या बागवानी पर विस्तार के साथ विचार और अनुभव प्रकट किये गये हों तथा यह बताया गया हो कि अच्छे गेहूँ, दूध, फल या सब्जी किस प्रकार प्राप्त किये जा सकते हैं, तो उसे हम उपयोगी साहित्य कहेंगे। ऐसी पुस्तक को पढ़ने में हमें आनन्द नहीं मिलेगा। आनन्द तो तब मिलेगा जब हम उसमें बताये हुए विचारों को कार्यरूप में परिणित करेंगे। किन्तु कलात्मक साहित्य हम उसे कहते हैं जो चाहे उपयोगी हो या न हो परन्तु जिसके पढ़ने मात्र से ही हमें आनन्द प्राप्त होता है। आनन्द भावना जगत् की वस्तु है। भावना हमारे मन में स्वतः पैदा होती है। उसके लिए तर्क-वितर्क की आवश्यकता नहीं होती। उदाहरणार्थ, किसी सुन्दर फूल को खिला हुआ देखकर हमारा मन भी खिल उठता है और किसी भले आदमी की दुर्घटना के कारण मृत्यु होने का समाचार सुनते ही हम भी जैसे काठ मार जाता है। मन की यह प्रसन्नता या दुःख किसी तर्क वितर्क का परिणाम नहीं होती। वह सहज स्वाभाविक रूप से अपने आप ही पैदा हो जाती है। विचार तर्क वितर्क का परिणाम है। सह-शिक्षा होनी चाहिए या नहीं अथवा ईश्वर का अस्तित्व है या नहीं—इस प्रकार के विचार हमारे मन में अपने आप नहीं आते वे सोच-विचार, वाद-विवाद या अध्ययन के परिणाम होते हैं। आनन्द अपने आप मन में पैदा होने वाली वस्तु है। कलात्मक साहित्य सबसे पहिले आनन्द प्रदान करता है, उसके गुण-दोष का विचार बाद में होता है। इस प्रकार कलात्मक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसमें आनन्ददायिनी शक्ति होती है। जिस साहित्य में आनन्द देने की शक्ति नहीं, वह उपयोगी साहित्य तो है, कलात्मक साहित्य नहीं कहा जा सकता। इस आनन्द-दायिनी शक्ति की कसौटी पर कस कर ही हम भी कह सकते हैं कि जिस साहित्य में यह शक्ति जितनी अधिक होती है उसे हम उतना ही उच्च कलात्मक साहित्य कहते हैं।

साहित्य का महत्त्व

वस्तुतः साहित्य का अविर्भाव मानव-कल्याण के लिए हुआ है। साहित्य ने मानव का संस्कार किया है, उसे सभ्य बनाया है। यही कारण है कि साहित्य में मानव-जीवन की अभिव्यक्ति और मानव मस्तिष्क का चरम विकास समाया हुआ है। अनादि-काल से मानव जो कुछ सोचता और मनन करता आ रहा है साहित्य उसी का भण्डार है। वह एक ऐसा भण्डार है जिसमें मानव-जगत् के अमूल्य विचार, रत्नों की तरह, सजाकर रखे गये हैं। समाज बनता और मटता है किन्तु साहित्य का भण्डार अमर रहता है। साहित्य किसी ो समाज की आत्मा होती है। जिस समाज या राष्ट्र का अपना कोई हित्य नहीं उसे निष्प्राण ही समझना चाहिए। साहित्य में बड़ी जबरदस्त शक्ति होती है। जिस प्रकार अच्छा खाद और जल पाकर सूखे खेत लहलहा उठते हैं उसी प्रकार अच्छा साहित्य पाकर अवनत, पतित और पददलित समाज या राष्ट्र भी उठ खड़ा होता है। साहित्य में प्राणदायिनी शक्ति होती है। रूसी वाल्टेयर आदि की कलम से निकले हुए साहित्य ने ही फ्रांस में राज्यक्रांति की नींव डाली थी। उसी ने वहाँ प्रजातन्त्र का उन्नयन और विकास किया था। नव-निर्माण की इस अपार शक्ति के साथ उसमें विनाश की अपार शक्ति भी निहित है। वह हानिकर विचारधारा, रूढ़ि, रीति और परम्परा को मिटाता है। उसके सामने न तोप-गोलों की शक्ति टिक पाती है, न एटम की।

साहित्य हमारी ज्ञान-पिपासा को शान्त करता है। जटिल से जटिल समस्याओं को हल कर देने की शक्ति रखता है। वह मानव मस्तिष्क का भोजन है। यदि वह न मिले तो मस्तिष्क निष्क्रिय और दुर्बल बन जाएगा। मस्तिष्क के साथ-साथ यह हृदय का भी भोजन है। उसके द्वारा हमें जो आनन्द प्राप्त होता है वह ब्रह्मानन्द की कोटि का ही होता है। इसीलिए तो भर्तृहरि ने कहा था—

साहित्य सङ्गीत कलानभिज्ञः साक्षात्पशु पुच्छ विषाणहीनः ॥

साहित्य का उद्देश्य है मानव-मन का संस्कार। मानव-मन गुण

दोषमय विश्व की ही भाँति गुण-दोषमय है। उसमें मनुष्यत्व के साथ पशुत्व भी है। उसमें सात्विक गुण के साथ राजस और तामस गुणों का भी अस्तित्व है। इसीलिए हमारे प्राचीन आचार्यों ने साहित्य का उद्देश्य केवल धर्म और मोक्ष की प्राप्ति ही नहीं, काम और अर्थ की प्राप्ति भी बताया है।

(१) काव्य

कलात्मक साहित्य के प्रमुख रूप हैं—कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास और निबन्ध। काव्य या कविता की परिभाषा के सम्बन्ध में भारतीय आचार्यों में मतभेद है। साधारणतः काव्य के दो पक्ष हैं—कलापक्ष और भावपक्ष। शब्द, अर्थ, अलंकार कलापक्ष के अन्तर्गत आते हैं और भावव्यञ्जना, रस आदि भावपक्ष के अन्तर्गत। वस्तुतः कलापक्ष में अभिव्यक्ति की प्रधानता है, भावपक्ष में अनुभूति की। कलापक्ष काव्य का शरीर है तो भावपक्ष उसकी आत्मा। आचार्य विश्वनाथ और नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि का मत है कि रस काव्य की आत्मा है। इधर आचार्य दण्डी, भामह और केशवदासजी की यह मान्यता है कि अलंकार यानी रचना ही काव्य है। आचार्य कुन्तक काव्य में वक्रोक्ति की प्रधानता पर जोर देते हैं और आचार्य वामन रीति-पक्ष की प्रधानता पर। इस प्रकार इस प्रश्न पर अलग-अलग विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। किन्तु इन सब मतों में दो-तीन मत ऐसे हैं जो बहुत से विद्वानों द्वारा मान्य किए गए हैं। इनमें पहिला स्थान है साहित्य-दर्पण के रचयिता आचार्य विश्वनाथ का। आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है—'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' अर्थात् रसपूर्ण वाक्य ही काव्य है। रस किसे कहते हैं और वे कितने प्रकार के हैं आदि पर हम पीछे विस्तार के साथ कह चुके हैं। अतः यहाँ उसे दुहराने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। दूसरा स्थान है पं० जगन्नाथराज रसाकर का। उनके अनुसार—'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द काव्य है। तीसरा स्थान है आचार्य मम्मट का। आचार्य मम्मट ने अपने

नामक ग्रंथ में लिखा है—'तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणवनलंकृतो पुनः क्वापि।' अर्थात् दोषरहित एवं गुणयुक्त पदावली ही काव्य है। फिर कहीं कोई अलंकार भी न हो तो कोई बात नहीं।

यह तो हुई प्राचीन आचार्यों की बात। अर्वाचीन आचार्यों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि—"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिये मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं।" हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने बड़े हृदयस्पर्शी शब्दों में कविता की परिभाषा कविता में देते हुए लिखा है:

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आँखों से चुपचाप,
वही होगी कविता अनजान।

पन्तजी के इन शब्दों में भवभूति की 'एकोरस करुणः' और अंग्रेजी कवि की—'Our sweetest songs are those that tell of the saddest thoughts' वाली उक्ति की याद आ जाती हैं।

इस प्रकार काव्य की परिभाषा के प्रश्न पर यद्यपि सब आचार्य एक मत नहीं हैं तथापि एक बात तो सभी मानते हैं कि कविता में अनुभूति पक्ष की प्रधानता होती है। किन्तु ऐसा कहने से हमारा यह मतलब नहीं है कि अभिव्यक्ति-पक्ष का कम महत्त्व हैं। आचार्य गुलाबराय ने अपनी परिभाषा में अनुभूति-पक्ष और अभिव्यक्ति-पक्ष दोनों को ही प्रधानता दी है। उनकी यह मान्यता ठीक ही है। महत्त्व दोनों का है—एक का कुछ अधिक दूसरे का कुछ कम।

काव्य के भेद

(अ) महाकाव्य

काव्य दो प्रकार के होते हैं—प्रबन्ध और मुक्तक। जिस काव्य में कोई कथा हो उसे प्रबन्ध-काव्य कहते हैं और जिसमें कोई कथा न हो

उसे मुक्तक। प्रबन्ध काव्य दो प्रकार का होता है—महाकाव्य और खण्ड-काव्य। संस्कृत के आचार्यों के अनुसार महाकाव्य में निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिए :

(१) महाकाव्य की कथा ऐतिहासिक और लोक-प्रसिद्ध होनी चाहिए। सारी कथा कुछ परिच्छेद या सर्गों में विभक्त हो और ये परिच्छेद न बहुत बड़े हों और न बहुत छोटे। परिच्छेदों की संख्या आठ से अधिक होनी चाहिये।

(२) महाकाव्य का नायक देवता अथवा सद्वंशीय क्षत्रिय होना चाहिये। यदि ऐसा न हो तो नायक एक कुल, एक वंश के कई राजा होने चाहिये। नायक धैर्यवान् और यशस्वी होना चाहिये।

(३) जहाँ तक रस का सम्बन्ध है महाकाव्य में शृंगार, वीर अथवा शान्त रस की प्रधानता होनी चाहिये। इसका अर्थ यह नहीं कि अन्य रस न हों। अन्य रस भी होने चाहिये किन्तु प्रधानता उपर्युक्त रसों की हो। अन्य रसों का स्थान गौण हो।

(४) महाकाव्य की रचना का लक्ष्य धर्म, काम अथवा मोक्ष की प्राप्ति होनी चाहिए।

(५) प्रारम्भ में मङ्गलाचरण होना चाहिए। ग्रन्थ में कहीं पर सन्तों का गुणगान होना चाहिये और कहीं असन्तों की निन्दा भी होनी चाहिये।

(६) प्रत्येक परिच्छेद में एक ही छन्द होना चाहिये। किन्तु प्रत्यक परिच्छेद का अन्तिम छन्द भिन्न होना चाहिये। एक परिच्छेद विभिन्न छन्दों वाला भी होना चाहिये। प्रत्येक परिच्छेद के अन्त में अगले परिच्छेद की कथा की संक्षिप्त सूचना होनी चाहिये। प्रत्येक परिच्छेद का शीर्षक परिच्छेद में वर्णित कथावस्तु के आधार पर होना चाहिए।

(७) इन सब लक्षणों के अतिरिक्त महाकाव्य में प्रकृति-चित्रण अर्थात् वन, पर्वत, नदी, समुद्र, ऋतु, प्रातःकाल, संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, आदि का जहाँ तक सम्भव हो विस्तृत वर्णन चाहिए।

पश्चिमी विद्वानों का मत है कि महाकाव्य में काव्य की महानता होनी चाहिये। ऊपर जिन लक्षणों की चर्चा की गई है वे सब ऐसे लक्षण हैं जो किसी भी काव्य को महान् बना देने की चेष्टा करते हैं।

(आ) खण्ड-काव्य

महाकाव्य की भाँति कथा का प्रवाह खण्ड-काव्य में भी होता है किन्तु उसका क्षेत्र उतना व्यापक नहीं होता। महाकाव्य में यहाँ जीवन के सब अङ्गों की झाँकी दिखाई जाती है, वहाँ खण्ड-काव्य में केवल एक अङ्ग की। खण्ड-काव्य जीवन के एक पृष्ठ या एक चित्र की झाँकी अत्यन्त आकर्षक और सुन्दर रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। उसमें केवल एक प्रधान घटना का उल्लेख किया जाता है। एकांकी-नाटक और कहानी में भी लगभग यही बात होती है। महाकाव्य में जहाँ सम्पूर्ण जीवन का चित्र खींचा जाता है वहाँ खण्ड-काव्य में जीवन की पूरी कथा में से किसी आकर्षक अंश को चुन लिया जाता है। खण्ड-काव्य के सब सर्गों में प्रायः एक ही छन्द होता है। महाकाव्य के नायक की तरह खण्ड-काव्य का नायक भी देवोचित गुणों में पूर्ण होता है। खण्ड-काव्य में प्रकृति-चित्रण के लिए पर्याप्त अवसर नहीं मिलता। इसी प्रकार बड़े-बड़े सम्वादों को भी स्थान नहीं दिया जाता। इसमें वे संक्षिप्त और आकर्षक रूप में ही दिए जाते हैं। स्थान की कमी के कारण सभी वर्णनीय दृश्य सूक्ष्म रूप में उपस्थित किये जाते हैं। रस के उद्दीपन के लिए सांकेतिक शैली को अपनाया जाता है। हिन्दी में पञ्चवटी (गुप्तजी), जयद्रथ-वध (गुप्तजी), नहुष (गुप्तजी), वकसंहार, वन-वैभव (गुप्तजी). गङ्गावतरण (रत्नाकरजी), उद्धवशतक (रत्नाकरजी), पथिक (राम नरेश त्रिपाठी), मिलन (रामनरेश त्रिपाठी), सुदामा-चरित्र (नरोत्तमदास), जानकी-मङ्गल (तुलसीदास), आदि प्रसिद्ध खण्ड-काव्य हैं।

(इ) मुक्तक-काव्य

मुक्तक काव्य वह है जिसमें कथा-तारतम्य और प्रवाह का बन्धन न हो। बन्धन-मुक्तता ही उसकी प्रमुख विशेषता है। इस काव्य के प्रत्येक छन्द अथवा पद की अपनी निजी विशेषता होती है। वह

किसी अन्य छन्द या पद की अपेक्षा नहीं रखता। मुक्तक-काव्य का पद एक छोटे से भाव को लेकर बनाया जाता है। यह भाव अपने में पूर्ण होता है और उसका सम्बन्ध अपने आगे या पीछे के पद से कुछ नहीं होता। काव्याचार्यों ने मुक्तक काव्य के दो भेद किये हैं—पहिला है पाठ्य, दूसरा है गेय। पाठ्य मुक्तक सूक्तियों के रूप में होता है। नीति, शृंगार और वीर रस के दोहे इसी प्रकार के होते हैं। बिहारी के दोहे, वियोगी हरि की वीर सतसई, रहीम के दोहे, कबीर के दोहे, तुलसीदास की दोहावली इसी पाठ्य मुक्तक के अन्तर्गत आते हैं। गेय मुक्तक या गीति-काव्य की विशेषता यह होती है कि उसमें एक ही भाव की प्रधानता होती है। यद्यपि उसमें अन्य भाव भी होते हैं किन्तु वे उस एक प्रधानभाव के आस-पास ही चक्कर काटते हैं। गीत-काव्य में वैयक्तिकता की प्रधानता होती है और वह गेय होता है।

ऊपर जो कहा गया है कि गीत-काव्य में एक ही भाव की प्रधानता होती है उसका आशय यह है कि गीत का प्रमुख भाव पहिली पंक्ति में व्यक्त कर दिया जाता है। हिन्दी में हम ऐसी पंक्ति को टेक की पंक्ति कहते हैं। यह पंक्ति दो, तीन, चार, पाँच और छः पंक्तियों के बाद बार-बार दुहराई जाती है। वैयक्तिकता से हमारा तात्पर्य यह है कि गीति-काव्य वर्णात्मक नहीं होता। वह आत्म-प्रधान (Subjective) होता है। पहिले गीति-काव्य के लिए गेय होना आवश्यक समझा जाता था। किन्तु आजकल ऐसे गीत भी लिखे जाने लगे हैं जिनमें छन्द ही नहीं होता। फिर भी इस प्रकार के छन्दों में लय होती है। अतः अब गेयता से तात्पर्य केवल लय से रह गया है। सूरदास, मीराबाई, दादू, कबीर, विद्यापति आदि प्राचीन कवियों के पद तथा प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी आदि के गीत इसी प्रकार के काव्य में सम्मिलित किये जाते हैं।

(२) नाटक

साहित्याचार्यों के अनुसार काव्य के दो भेद होते

और दृश्य-काव्य। श्रव्य-काव्य का वर्णन किया जा चुका है। नाटक दृश्य-काव्य माना जाता है। काव्य का आनन्द सुनने से प्राप्त होता है जबकि नाटक का आनन्द देखने से, इसलिये इसे दृश्य-काव्य कहा गया है। दृश्यकाव्य या नाटक में भारतीय नाट्य-शास्त्र के अनुसार तीन प्रमुख तत्त्व माने जाते हैं—कथावस्तु, नायक और रस। किन्तु आजकल नाटक के छह तत्त्व माने जाते हैं—कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, रस, वातावरण और मञ्च। नाटक का कथानक कथावस्तु या वस्तु कहलाता है। कथावस्तु दो प्रकार की होती है—अधिकारिक और प्रासङ्गिक। अधिकारिक कथावस्तु उसे कहते हैं जो प्रमुख होती है और नाटक के प्रधान पात्रों से सम्वन्ध रखती हैं। वह आदि से अन्त तक एक ही गति से चलती है। प्रासङ्गिक कथावस्तु उसे कहते हैं जो गौण होती है। यह अधिकारिक कथावस्तु से अलग ऐसी कथा होती है जो प्रधान कथावस्तु के सौंदर्य को वढ़ाने में सहायता देती है। प्रासङ्गिक कथावस्तु प्रमुख कथा के विकास में सहायता करती है।

कथावस्तु तीन प्रकार की होती है—ऐतिहासिक, उत्पाद्य और मिश्रित। जिस कथा का आधार इतिहास या पुराण होता है, उसे ऐतिहासिक कहते हैं, किन्तु जो केवल कवि या लेखक की कल्पना का ही परिणाम होती है उसे उत्पाद्य कहते हैं। मिश्रित उसे कहते हैं जो ऐतिहासिक या पौराणिक होने के साथ-साथ कल्पित भी होती है। दूसरे शब्दों में जो न पूरी तरह कल्पित होती है न ऐतिहासिक या पौराणिक! कथावस्तु का विकास अर्थ-प्रकृति के द्वारा होता है। अर्थ-प्रकृतियाँ पाँच प्रकार की होती हैं—वीज, विन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य। वीज कथानक के उस मूलभाग को कहते हैं जिसे आगे विकसित होना है। इसे कथानक का मूल या जड़ कह सकते हैं। जिस प्रकार बीज में कोंपल उत्पन्न होती है उसी प्रकार जो वात कथा को आगे वढ़ाती है उसे विन्दु कहते हैं। पताका वह कथा भाग है जो कथानक के मूल उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक होता है। प्रकरी उन छोटे-छोटे कथांशों को कहते हैं जो कथानक के मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति में सीधे सहायक तो नहीं होते किन्तु कथानक को चमत्कार-पूर्ण बनाने के लिए

जोड़ दिए जाते हैं। यह आवश्यक नहीं होता कि इनका सीधा सम्बन्ध मुख्य कथानक से हो। कार्य कथानक की सबसे प्रमुख घटना को कहते हैं।

कथानक के विकास की पाँच अवस्थाएं होती हैं—आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। जिसमें किसी फल की प्राप्ति के लिये प्रयत्न किया जाता है उसे प्रयत्न कहा जाता है। जिसमें फल की प्राप्ति की आशा की जाती है किन्तु साथ ही असफलता की आशंका भी बनी रहती है, उसे प्राप्त्याशा कहते हैं। फलागम में सफलता निश्चित हो जाती है। उदाहरणार्थ रामायण की कथा पर यदि एक नाटक बना लिया जाय तो पृथ्वी का गाय का रूप धारण कर स्वर्ग जाना और इस प्रकार राम-जन्म का कारण बनना बीज होगा। राम का वनवास बिन्दु होगा और सुग्रीव की कथा पताका। रावण-जटायु का संवाद प्रकरी होगा और रावण-वध कार्य। इसी प्रकार राम-जन्म आरम्भ, राम-वनवास और सीता-हरण प्रयत्न, हनुमान का सीता को खोज निकालना प्राप्त्याशा, युद्ध में विभीषण द्वारा राम को रावण की नाभि में बाण मारने के लिए कहना नियताप्ति, तथा रावण का वध फलागम होगा।

कथावस्तु के जोड़ या मिलन के लिए सन्धियों की आवश्यकता होती है। सन्धियों के पाँच भेद होते हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, और निर्वहण। मुख सन्धि की सहायता से आरम्भ के संयोग द्वारा बीज अर्थ-प्रकृति की उत्पत्ति होती है। प्रतिमुख में प्रयत्न के कारण बीज अंकुरित होता है। गर्भ में बीज का विस्तार होता है। विमर्श या अवमर्श में विघ्न उत्पन्न होता है और निर्वहण में बीज पूर्णतः विस्तार पाकर सफलता तक पहुँच जाता है।

पाश्चात्य विद्वान नाटकों में चार प्रकार की एकता होना आवश्यक मानते हैं। ये हैं—स्थान की एकता, काल की एकता, कार्य की एकता और प्रभाव की एकता। स्थान की एकता का मतलब यह है कि कथानक में स्थान सम्बन्धी [illegible] हो। काल की एकता का यह मतलब है कि घटनाएं काल-क्रम रूप में दी जावें। [illegible] का

मतलब यह है कि घटनाएँ क्रमिक रूप से दी जावें। यदि इन तीनों एकताओं का अस्तित्व है तो प्रभाव की एकता आती है। अतः प्रभाव की एकता कोई अलग प्रकार की नहीं है। उसका मतलब यही है कि दर्शक पर अभीष्ट प्रभाव पड़े, वह अस्पष्ट, बिखरा-बिखरा या टूटा-टूटा न हो।

नाटक में पात्रों का बड़ा महत्त्व होता है और उन पात्रों में भी प्रमुख पुरुष-पात्र का तो सबसे ज्यादा महत्त्व होता है। उसे नायक कहते हैं। प्रधान स्त्री-पात्र को नायिका कहते हैं। प्राचीन आचार्यों के अनुसार नायक कुलीन, धैर्यवान्, वीर योद्धा, विद्वान्, चतुर, कुशल, विनम्र, त्यागी और मधुरभाषी होना चाहिये। संस्कृत नाटकों में प्रायः राजा, ब्राह्मण और देवता ही नायक होते थे। लेकिन अब यह आवश्यक नहीं माना जाता। अब तो चोर, डाकू, वेश्या और शराबी-जुआरी भी नायक हो सकते हैं—होते हैं। संस्कृत नाट्य-शास्त्र के अनुसार ायक चार प्रकार के होते हैं :

(१) धीरोदात्त—जो शोक, क्रोध आदि से विचलित न हो, जो क्षमाशील, दृढ़, गम्भीर और स्थिरमति हो; जो विनयशील एवं स्वाभिमानी हो।

(२) धीर-ललित—जो कला-प्रेमी और मधुर स्वभाव का हो।

(३) धीर-शान्त—जिसमें ब्राह्मणों के गुण हो।

(४) धीरोद्धत—जो कपटी, कुटिल, अहंकारी, अपनी प्रशंसा करने वाला तथा असहनशील हो।

प्रतिनायक आततायी, कपटी, कुटिल और लोभी होता है। पीठ-मर्द नायक का सहायक कहलाता है। परिहास-प्रिय व्यक्ति विदूषक कहा जाता है। नायिका तीन प्रकार की होती हैं—स्वकीया, परकीया और सामान्या। अवस्था के अनुसार नायिका के तीन भेद होते हैं— मुग्धा, मध्या, और प्रौढ़ा।

कथोपकथन तीन प्रकार का होता है—सर्व-श्राव्य, नियत-श्राव्य और अश्राव्य। सर्व-श्राव्य कथोपकथन वह है जिसको सब सुन सकें। नियत-श्राव्य कथोपकथन उसे कहते हैं जिसे कुछ थोड़े व्यक्ति ही सुन

पाते हैं। इन थोड़े से व्यक्तियों में श्रोताओं या दर्शकों का सुनना आवश्यक है। नियत-श्राव्य कथोपकथन रंगमञ्च पर उपस्थित पात्रों में से जिसे सुनाना आवश्यक होता है वे सुनते हैं; और शेष ऐसा अभिनय करते हैं जैसे उन्होंने सुन न पाया हो। ऐसा कथोपकथन अस्वाभाविक लगता है। लेकिन यह बहुत समय से चला आ रहा है। इस प्रकार नियत-श्राव्य कथोपकथन वह है जिसे वक्ता कहता है और दर्शक सुनता है, किन्तु रंगमञ्च के व्यक्ति नहीं सुन पाते हैं। इसे स्वगत भी कहा जाता है। अश्राव्य कथोपकथन वह है जिसे कहने वाला तो दिखाई नहीं देता किन्तु वह पात्रों को सुनाई पड़ता है। कथोपकथन मार्मिक और रुचिकर होना चाहिये। उसका संक्षिप्त होना भी आवश्यक है। यदि वह भाषण बन जाय तो उसमें लोगों की दिलचस्पी नहीं रहती। इसी प्रकार अधिकांश कथोपकथन का भावुकता-पूर्ण होना भी अच्छा नहीं होता। वह स्वाभाविक होना चाहिये।

रस नाटक में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उसके बिना दर्शकों को नाटक में कोई आनन्द ही नहीं आता। रस की निष्पत्ति भाव, विभाव, अनुभाव और संचारीभाव के योग से होती है। इन सब पर पिछले एक अध्याय में विचार हो चुका है। नाटक में वीर, शृंगार और करुण रसों की प्रधानता होती है। आज-कल नाटकों में रस का उतना विचार नहीं रखा जाता, जितना प्राचीन संस्कृत-नाटकों में रखा जाता था। आज-कल के नाटक मनोविज्ञान की किसी गुत्थी को सुलझाने की चेष्टा करते हुए प्रतीत होते हैं।

नाटक में वातावरण या देश-काल का भी पूरा पूरा ध्यान रखना पड़ता है। ऐसा न हो कि सीता का शृंगार ऊँची एड़ी के जूते पहिना कर किया जाय और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को लिपस्टिक लगा कर। इसी प्रकार काश्मीर में लू चला देना और जैसलमेर में बाढ़ का दृश्य दिखाना भी देश-काल की दृष्टि से सदोष होगा।

नाटक में मंच का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान होता है। मंच के कारण ही नाटक दृश्य-काव्य की कोटि में आता है अन्यथा उसमें और उपन्यास में कोई अन्तर ही न रह जाय। अतः नाटक में [illegible]त का ध्यान

रखना पड़ता है कि नाटक में ऐसी घटनाएं न रखी जायं जिनका प्रदर्शन मंच पर न किया जासके। इसी प्रकार ऐसी भाषा का प्रयोग भी नहीं किया जाना चाहिये जिसे सर्व-साधारण न समझ सकें। पात्रों की वेष-भूषा ऐसी हो कि दर्शक उन्हें सरलता से समझ सकें। जब कोई नया पात्र मंच पर आये तो अन्य पात्रों को तुरन्त उसका नाम लेना चाहिये जिससे दर्शक उसका नाम जान लें। स्थान की सूचना भी दर्शकों को पात्रों के कथोपकथन से मिल जानी चाहिये। दो दृश्यों और दो घटनाओं के बीच कितना समय बीत गया इसका ज्ञान भी दर्शकों को करा देना चाहिये।

प्राचीन संस्कृत नाटकों में मंच पर हत्या, भोजन, मृत्यु आदि दृश्य नहीं दिखाये जाते थे। उनमें पहले ही दृश्य में सूत्रधार नाटक और ।टककार का परिचय देता था। अन्त में भरत-वाक्य के रूप में एक उपदेश दिया जाता था जिसमें नाटक का सार आ जाता था लेकिन अब ये बातें नहीं होती हैं। इसी प्रकार प्राचीन नाटकों में असद्-प्रवृत्तियों की पराजय तथा सद्प्रवृत्तियों की विजय दिखाई जाती थी। अतः संस्कृत के नाटक सुखान्त होते थे किन्तु असद्वृत्तियों की विजय के कारण पश्चिमी नाटक दुखान्त होते हैं।

(३) उपन्यास

उपन्यास शब्द का शाब्दिक अर्थ है—सामने रखना। हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार स्व० प्रेमचन्द के अनुसार 'उपन्यास मानव जीवन का चित्र है।' बाबू श्यामसुन्दरदास उपन्यास को मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा मानते थे। बाबू गुलाबराय के शब्दों में उपन्यास कार्य-कारण शृङ्खला में बंधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के सत्य का उद्घाटन किया जाता है।

उपन्यास में पाँच प्रमुख तत्त्व होते हैं—कथानक, पात्र, मुख्य संवेदना,

वातावरण और शैली। कथानक कुछ घटनाओं का संकलन होता है। ये घटनाएं अलग-अलग होते पर भी एक दूसरे से बंधी रहती हैं। कथानक में कोई न कोई समस्या अवश्य होती है फिर वह चाहे जन्म से सम्बन्ध रखती हो चाहे मृत्यु से और चाहे प्रेम से सम्बन्ध रखती हो चाहे घृणा से। अच्छे कथानक के निर्वाचन पर ही उपन्यास की बहुत कुछ सफलता निर्भर रहती है। अच्छे कथानक में मौलिकता एवं कौशल होना चाहिए। उसमें सम्भावना, संगठितता और रोचकता भी आवश्यक होते हैं। कथा में नवीनता होना मौलिकता कहा जाता है और कथा से सम्बन्ध का निर्वाह कौशल। सम्भावना का अर्थ है कथानक का समुचित विकास। कथानक में संगठन एवं क्रम को संगठितता कहा जाता है और कौतूहल का समावेश रोचकता कहा जाता है।

पात्र दो प्रकार के होते हैं—स्थिर और परिवर्तनशील। स्थिर-पात्र वे हैं जो अपनी विशेषताओं को कायम रखते हैं। किन्हीं प्रभावों के कारण अपने स्वभाव को बदल नहीं पाते। सत्य हरिश्चन्द्र, राम, लक्ष्मण, भरत आदि इसी प्रकार के पात्र हैं। परिवर्तनशील पात्र वे हैं जो प्रभावों के वशीभूत होकर अपने स्वभाव को बदल लेते हैं। चोर-लुटेरे से साधु हो जाना अथवा-कामी क्रोधी से भगवद्-भक्त हो जाना इसी प्रकार के पात्रों की विशेषता है। तुलसीदास, बाल्मीकि आदि इसी कोटि के चरित्र हैं। उपन्यास में प्रायः इन दोनों प्रकार के पात्रों का पारस्परिक संघर्ष दिखाया जाता है। आज के बहुत से उपन्यासों में हमें यह दिखाई देता है कि एक स्थिर-पात्र के सम्पर्क में परिवर्तनशील पात्र आता है और किस प्रकार उसके चरित्र का विकास होता है। कभी कभी परिवर्तनशील पात्रों के पारस्परिक संघर्ष के परिणाम-स्वरूप भी कथानक आगे बढ़ता है। आजकल शायद ही कोई ऐसा उपन्यास मिलेगा जिसमें एक ही प्रकार के पात्र हों। पुराने जमाने की बात जाने दीजिए आजकल जो चरित्र-चित्रण प्रधान उपन्यास लिखे जा रहे हैं उनमें एक ही प्रकार के पात्रों से किसी भी प्रकार काम नहीं चल पाता। पात्रों के साथ चरित्र-चित्रण का तत्त्व भी [illegible] है। चरित्र-चित्रण का अर्थ है मानव-स्वभाव और मानव-[illegible]

वातावरण और शैली। कथानक कुछ घटनाओं का संकलन होता है। ये घटनाएं अलग-अलग होने पर भी एक दूसरे से बंधी रहती हैं। कथानक में कोई न कोई समस्या अवश्य होनी है फिर वह चाहे जन्म से सम्बन्ध रखती हो चाहे मृत्यु से और चाहे प्रेम से सम्बन्ध रखती हो चाहे घृणा से। अच्छे कथानक के निर्वाचन पर ही उपन्यास की बहुत कुछ सफलता निर्भर रहती है। अच्छे कथानक में मौलिकता एवं कौशल होना चाहिए। उसमें सम्भावना, संगठितता और रोचकता भी आवश्यक होते हैं। कथा में नवीनता होना मौलिकता कहा जाता है और कथा में सम्बन्ध का निर्वाह कौशल। सम्भावना का अर्थ है कथानक का समुचित विकास। कथानक के संगठन एवं क्रम को संगठितता कहा जाता है और कौतूहल का समावेश रोचकता कहा जाता है।

पात्र दो प्रकार के होते हैं—स्थिर और परिवर्तनशील। स्थिर-पात्र वे हैं जो अपनी विशेषताओं को कायम रखते हैं। किन्हीं प्रभावों के कारण अपने स्वभाव को बदल नहीं पाते। सत्य हरिश्चन्द्र, राम, लक्ष्मण, भरत आदि इसी प्रकार के पात्र हैं। परिवर्तनशील पात्र वे हैं जो प्रभावों के वशीभूत होकर अपने स्वभाव को बदल लेते हैं। चोर-लुटेरे से साधु हो जाना अथवा-कामी क्रोधी से भगवद्-भक्त हो जाना इसी प्रकार के पात्रों की विशेषता है। तुलसीदास, बाल्मीकि आदि इसी कोटि के चरित्र हैं। उपन्यास में प्राय इन दोनों प्रकार के पात्रों का पारस्परिक संघर्ष दिखाया जाता है। आज के बहुत से उपन्यासों में हमें यह दिखाई देता है कि एक स्थिर-पात्र के सम्पर्क में परिवर्तनशील पात्र आता है और किस प्रकार उसके चरित्र का विकास होता है। कभी कभी परिवर्तनशील पात्रों के पारस्परिक संघर्ष के परिणाम स्वरूप भी कथानक आगे बढ़ता है। आजकल शायद ही कोई ऐसा उपन्यास मिलेगा जिसमें एक ही प्रकार के पात्र हो। पुराने जमाने की बात जाने दीजिए आजकल जो चरित्र-चित्रण प्रधान उपन्यास लिखे जा रहे हैं उनमें एक ही प्रकार के पात्रों से किसी भी प्रकार काम नहीं चल पाता। पात्रों के साथ चरित्र-चित्रण का तत्व भी जुड़ा हुआ है। चरित्र-चित्रण का अर्थ है मानव-स्वभाव और मानव-ज्ञान का विश्लेषण।

रित्र-चित्रण की दो रीतियाँ हैं—विश्लेषणात्मक एवं नाटकीय । पहिली रीति के अनुसार लेखक पात्रों के स्वभाव का स्वयं वर्णन करता है और दूसरी के अनुसार यह कार्य पात्रों की अपनी बातचीत और क्रिया-कलाप के द्वारा । चरित्र-चित्रण के दो प्रमुख साधन हैं—वार्तालाप और क्रिया-कलाप । अतः उपन्यास लेखक को चरित्र-चित्रण में इन बातों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है । अच्छे चरित्र-चित्रण में सजीवता के साथ-साथ स्वाभाविकता का गुण अवश्य होता है ।

उपन्यास का तीसरा तत्त्व है मुख्य सम्वेदना । उपन्यास लेखक अपनी लेखनी से जीवन का कोई सही चित्रण उपस्थित करने का प्रयत्न करता है । उसका उद्देश्य होता है समाज में होने वाले किसी अभाव को वाणी देना—उस पर प्रकाश डालना । इसलिये वह किसी सामयिक समस्या को उठाता है अथवा आदर्श और यथार्थ का द्वन्द्व दिखाता है । मानव-जीवन का कोई सत्य, चाहे वह मनोवैज्ञानिक हो चाहे और किसी प्रकार का, उपन्यास का केन्द्र बिन्दु होता है और उसी के आस-पास कथावस्तु, पात्र, शैली, वातावरण आदि तत्त्व घूमते हैं । इसी सत्य को हम मुख्य सम्वेदना कहते हैं ।

चौथा तत्त्व है—वातावरण । नाटक के सम्बन्ध से विचार करते हुए हम वातावरण के तत्त्व पर विचार कर चुके हैं । नाटक के वातावरण और उपन्यास के वातावरण में वस्तुतः कोई विशेष अन्तर नहीं होता । अतः यहाँ उसको फिर से दोहराना आवश्यक नहीं है । उपन्यास और नाटक के वातावरण में इतना ही अन्तर होता है कि उपन्यास में वातावरण की सूचना सीधे-सीधे लिख दी जाती है लेकिन नाटक में इतना सीधापन नहीं होता ।

उपन्यास का पाँचवाँ तत्त्व है शैली । शैली का उपन्यास में बड़ा महत्त्व होता है । शैली का चुनाव उपन्यासकार कथावस्तु और चरित्र-चित्रण को ध्यान में रखकर करता है । उपन्यास की शैली तीन प्रकार की होती है । (१) ऐतिहासिक (२) आत्म-चरित्र और (३) पत्र । ऐतिहासिक शैली वह है जिसमें लेखक तटस्थ होकर घटनाओं का वर्णन कर देता है । इस प्रकार की शैली दुनियाँ के अधिकांश उपन्यासों में

मिलती है। आत्म-चरित्र शैली वह है जिसमें उपन्यास का कोई पात्र आत्म-चरित्र के रूप में अपनी कथा स्वयं कहने लगता है। जब उपन्यास का कोई एक पात्र दूसरे पात्र को पत्र लिखता है और पत्र के द्वारा सारी कथा कहता है तो उसे पत्र-शैली कहा जाता है। ऐतिहासिक-शैली से उपन्यास लिखना तुलनात्मक दृष्टि से सरल है। इसमें लेखक घटनाओं एवं चरित्र-चित्रण पर अपने विचार स्वतन्त्रता-पूर्वक व्यक्त कर सकता है। किन्तु आत्म-चरित्र और पत्र-शैली में इतनी सुविधा नहीं होती। आत्म-चरित्र और पत्र-शैली के द्वारा जो कुछ कहा जाता है वह उन पात्रों के विचार होते हैं, लेखक के नहीं। अतः इन शैलियों के द्वारा घटनाओं और पात्रों की तटस्थ समीक्षा सम्भव नहीं होती। इन पाँचों तत्त्वों के सुन्दर समन्वय से ही उपन्यास सुन्दर बनता है। यदि इनमें से कोई एक तत्त्व भी निर्बल हुआ तो उपन्यास सर्वाङ्ग सुन्दर नहीं बन पाता।

(४) कहानी

उपन्यास में जो पाँच तत्त्व होते हैं वे ही पाँच तत्त्व कहानी में भी होते हैं। कहानी और उपन्यास में बहुत बड़ी समानता है। यदि अंतर है तो इतना ही कि उपन्यास का आकार बड़ा होता है, कहानी का छोटा। कहानी का कथानक काफ़ी छोटा होता है। उसमें बहुत-सी घटनाएँ नहीं होतीं। प्रायः एक ही प्रमुख घटना उसमें होती है। यदि एक से अधिक घटनाएँ रहती भी हैं तो वे उस प्रमुख घटना की सहायक ही होती हैं। उपन्यास जहाँ जीवन का पूरा चित्र देना चाहता है वहाँ कहानी का कथानक उसकी झलकमात्र ही दिखाना चाहता है। कहानी का कथानक जीवन के एक बिन्दु पर केन्द्रित रहता है जब कि उपन्यास जीवन की धारा पर। उपन्यास में जीवन के बिन्दुओं का चित्रण होता है, किन्तु वह होता है धारा के चित्रण के लिए। इसी प्रकार कहानी में जीवन की धारा का चित्रण होता है किन्तु वह होता है जीवन के बिन्दुओं के चित्रण के लिए।

कहानी में पात्रों की संख्या सीमित होती है। फिर भी कहानी और उपन्यास में पात्रों की संख्या सम्बन्धी अन्तर विशेष म

चरित्र-चित्रण की दो रीतियाँ हैं—विश्लेषणात्मक एवं नाटकीय । पहिली रीति के अनुसार लेखक पात्रों के स्वभाव का स्वयं वर्णन करता है और दूसरी के अनुसार यह कार्य पात्रों की अपनी बातचीत और क्रिया-कलाप के द्वारा । चरित्र-चित्रण के दो प्रमुख साधन हैं—वार्तालाप और क्रिया-कलाप । अतः उपन्यास लेखक को चरित्र-चित्रण में इन बातों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है । अच्छे चरित्र-चित्रण में सजीवता के साथ-साथ स्वाभाविकता का गुण अवश्य होता है ।

उपन्यास का तीसरा तत्त्व है मुख्य सम्वेदना । उपन्यास लेखक अपनी लेखनी से जीवन का कोई सही चित्रण उपस्थित करने का प्रयत्न करता है । उसका उद्देश्य होता है समाज में होने वाले किसी अभाव को वाणी देना—उस पर प्रकाश डालना । इसलिये वह किसी सामयिक समस्या को उठाता है अथवा आदर्श और यथार्थ का द्वन्द्व दिखाता है । मानव-जीवन का कोई सत्य, चाहे वह मनोवैज्ञानिक हो चाहे और किसी प्रकार का, उपन्यास का केन्द्र विन्दु होता है और उसी के आस-पास कथावस्तु, पात्र, शैली, वातावरण आदि तत्त्व घूमते हैं । इसी सत्य को हम मुख्य सम्वेदना कहते हैं ।

चौथा तत्त्व है—वातावरण । नाटक के सम्बन्ध में विचार करते हुए हम वातावरण के तत्त्व पर विचार कर चुके हैं । नाटक के वातावरण और उपन्यास के वातावरण में वस्तुतः कोई विशेष अन्तर नहीं होता । अतः यहाँ उसको फिर से दोहराना आवश्यक नहीं है । उपन्यास और नाटक के वातावरण में इतना ही अन्तर होता है कि उपन्यास में वातावरण की सूचना सीधे-सीधे लिख दी जाती है लेकिन नाटक में इतना सीधापन नहीं होता ।

उपन्यास का पाँचवाँ तत्त्व है शैली । शैली का उपन्यास में बड़ा महत्त्व होता है । शैली का चुनाव उपन्यासकार कथावस्तु और चरित्र-चित्रण को ध्यान में रखकर करता है । उपन्यास की शैली तीन प्रकार की होती है । (१) ऐतिहासिक (२) आत्म-चरित्र और (३) पत्र । ऐतिहासिक शैली वह है जिसमें लेखक तटस्थ होकर घटनाओं का वर्णन कर देता है । इस प्रकार की शैली दुनियाँ के अधिकांश उपन्यासों मे

(५) निबंध

निबन्ध का शाब्दिक अर्थ है—'बँधा हुआ।' जब कुछ नपे-तुले सीमित शब्दों में किसी विषय की व्याख्या की जाती है तो उसे निबन्ध कहा जाता है। निबन्ध के तीन भाग माने गये हैं—प्रस्तावना, मध्य और उपसंहार। विषय की दृष्टि से निबन्ध के निम्नलिखित भेद माने जाते हैं—विवरणात्मक, वर्णनात्मक, विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक, आलोचनात्मक, साहित्य और ललित निबन्ध। विवरणात्मक निबन्धों में घटना की प्रधानता होती है। वर्णनात्मक निबन्धों में किन्हीं प्राकृतिक वस्तुओं, उत्सवों, मेलों, नगरों, संस्थाओं आदि का वर्णन होता है। विवेचनात्मक निबन्धों में विचारों की प्रधानता होती है। व्याख्यात्मक निबन्ध में व्याख्या पर पूरा ध्यान रहता है और आलोचनात्मक निबन्धों में आलोचना पर। इसी प्रकार साहित्यिक निबन्धों में साहित्य की एवं ललित निबन्धों में रोचकता एवं सुन्दरता की प्रधानता रहती है।

निबन्ध में दो तत्व होते हैं—विषय-वस्तु और शैली। जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है कि निबन्ध गद्य रचना है जिसमें सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता के साथ किया जाता है। अतः विचार की स्पष्टता के साथ प्रतिपादन की शैली का भी निबन्ध में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान होता है। निबन्ध में विचारों को क्रम से तथा एक दूसरे से अच्छी तरह बाँध कर रखा जाता है ताकि विचार बिखरे-बिखरे या विशृंखल प्रतीत न हों। उसमें स्वाभाविक रूप से एक वाक्य से दूसरा वाक्य और एक पैराग्राफ से दूसरा पैराग्राफ निकलना चाहिये। बहुत से निबन्ध लेखक, निबन्ध का आरम्भ भूमिका से तथा अन्त उपसंहार से करते हैं। किन्तु आजकल ऐसे भी निबन्ध लिखे जा रहे हैं जिनमें न भूमिका होती है न उपसंहार। व्यर्थ की भूमिका निबन्ध की रचना को नष्ट कर देती है।

यह आवश्यक नहीं है कि निबन्ध में किसी विषय का सम्यक् विश्लेषण हो। सम्यक् विश्लेषणपूर्ण निबन्ध प्रबन्ध कहे जाते हैं। उसमें कुछ लेखक तो केवल एक विचार लेकर ही [illegible] लिखते हैं।

प्रतापनारायण मिश्र ने इसी प्रकार के कुछ निबन्ध लिखे थे। इस प्रकार के निबन्धों में विषय का सम्यक् विवेचन नहीं होता। रोचकता ही उनका एकमात्र गुण होता है। जिस प्रकार किसी वस्तु की उत्पत्ति, विकास, गुण, दोष आदि पर प्रकाश डालना कविता का कार्य नहीं है, वह तो इन में से किसी एक पक्ष को लेकर ही लिखी जा सकती है, उसी प्रकार निबन्ध भी किसी विषय के एक पक्ष को लेकर लिखे जा सकते हैं। कविता की भांति निबन्ध में भी रोचकता, मार्मिकता आदि गुण होने चाहिये, फिर चाहे विषय का सम्यक् प्रतिपादन हो या न हो। निबन्ध कलात्मक साहित्य का एक भाग है अत: कलात्मकता ही उसका सबसे बड़ा गुण माना जाने लगा है।

(६) साहित्य-समालोचना

किसी रचना के गुण-दोषों पर प्रकाश डालना समालोचना का प्रमुख कार्य है। वह साहित्य को परिष्कृत रूप प्रदान करती है। समालोचना एक ओर कवि की रचना की व्याख्या सहानुभूति के साथ करती है और दूसरी ओर पाठक के विश्वास को भी अभिव्यक्त करती है। समालोचना के छह प्रमुख भेद माने जाते हैं—निर्णयात्मक, व्याख्यात्मक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, तुलनात्मक और प्रभावात्मक।

समालोचना भी आजकल कलात्मक साहित्य का ही एक अङ्ग मानी जाने लगी है। उसका प्रमुख कार्य है किसी नाटक, कहानी, उपन्यास, कविता या निबन्ध के गुण-दोष का विवेचन करना। इस विवेचन के द्वारा वह पाठक को उस रचना की गहराई तक पहुँचा देना चाहती है। आलोचक को [illegible] सम्बन्ध में सावधानी रखनी होती है कि वह अपने को निर्णाय[illegible] । यदि [illegible] अपने को निर्णायक मानकर निर्णय देना [illegible] । तो [illegible] क नहीं रह जायगा। अत: [illegible]मालोचना [illegible] होती है [illegible] समालोचक [illegible]विता, [illegible] [illegible]तापूर्ण [illegible] विचार करना [illegible] है यदि [illegible] रा [illegible] ने [illegible] गई तो [illegible]चना क [illegible] गा

हिन्दी साहित्य का इतिहास

हिन्दी भाषा और साहित्य का श्रीगणेश लगभग १००० ई० में हुआ। इस समय हिन्दी भाषा में जो साहित्य लिखा गया है उसके बारे में हमें बहुत कम जानकारी है। आधुनिक खोजों के अनुसार हिन्दी का आदि-कवि चन्दबरदाई माना जाता है। उसने दिल्ली-नरेश पृथ्वीराज चौहान की प्रशंसा में 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की। पृथ्वीराज का समय ग्यारहवीं शताब्दी है। इसीलिए हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास का काल भी ग्यारहवीं शताब्दी में माना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उस समय से अब-तक के समय को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किया है—

(१) आदिकाल या वीरगाथा-काल सं०-१००० से सं० १३७५ तक
(२) पूर्व-मध्यकाल या भक्ति-काल-सं० १३७५ से सं० १७०० तक
(३) उत्तर-मध्यकाल या रीति-काल-सं० १७०० से सं० १९०० तक
(४) आधुनिक काल सं० १९०० से अब तक

इन चारों कालों में यद्यपि सभी प्रकार की कविताएं हुई हैं तथापि प्रत्येक काल में किसी एक ही प्रवृत्ति की प्रधानता रही है। इसी दृष्टि से मुख्य प्रवृत्तियों के आधार पर उपर्युक्त काल-विभाजन किया गया है। हिन्दी साहित्य के विकास के इसी वर्गीकरण के सम्बन्ध में याद रखना चाहिये कि साहित्य का इतिहास भाषा का इतिहास मात्र नहीं होता। साहित्य विचारों और भावों का बहुत बड़ा भण्डार है, भाषा तो उसकी अभिव्यक्ति का साधन-मात्र है। यही कारण है कि साहित्य के इतिहास की रूपरेखा अंकित करते समय उन विचार-धाराओं पर ही विशेष ध्यान देना पड़ता है जिन्होंने समय और परिस्थितियों की भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न रूपों से परिणित होकर हिन्दी साहित्य की धारा को एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर मोड़ दिया है। साहित्य के इतिहास में इसी दृष्टि के कारण हमें यह भी देखना होता है कि साहित्य की धारा

के व कौन किन कारणों के परिणामस्वरूप हुए हैं तथा उनका तत्कालीन समाज पर क्या प्रभाव पड़ा है।

इस वर्गीकरण के सम्बन्ध में हमको ध्यान रखने योग्य बात यह है कि साहित्य के काल विभाग का वर्गीकरण ठीक नहीं होता जैसा कि ऐतिहासिक दृष्टि से किया जाता है। साहित्य के विकास का इतिहास लिखते समय किसी काल का नाम-करण उस काल की मुख्य प्रवृत्ति के अनुसार किया जाता है। इसका यह मतलब नहीं कि किसी काल में मुख्य प्रवृत्ति का समान रूप ही रहता है। हिन्दी साहित्य का अध्ययन हमें यह बताता है कि जिस वीरगाथा-काल में घोर वीर रस के ग्रन्थ लिखे गये उसी में विद्यापति आदि ने भक्तिरस की कविताएँ भी लिखी हैं। इसी प्रकार जिस रीतिकाल में देव, बिहारी आदि कवियों ने शृंगार-रस की कविताएँ लिखीं, उसी में भूषण ने वीर-रस पूर्ण कविताएँ भी लिखीं।

वीर गाथा-काल

हिन्दी साहित्य के विकास का आदिकाल वीरगाथा-काल के नाम से विख्यात है। सं० १००० से १३७५ तक अर्थात् लगभग ४०० वर्षों के समय में जो साहित्य लिखा गया उसमें वीर रस की ही प्रधानता रही। बात यह थी कि इस समय की राजनैतिक स्थिति डाँवाडोल थी। हर्षवर्धन के बाद से देश में किसी एक सम्राट् का अखण्ड राज्य स्थापित नहीं हो सका था। दिल्ली, अजमेर, कन्नौज, अनहिलवाड़ा इस समय की राजनीति के प्रमुख केन्द्र बने हुए थे। सारे देश में छोटे-छोटे राज्य बने हुए थे। कहीं चन्देलों का राज्य था तो कहीं चौहानों का, और कहीं तोमरों का राज्य था, तो कहीं परिहारों का। सबको अपनी स्वतन्त्र सत्ता की और सभी अपनी-अपनी शान और शक्ति के आगे देश का हित और एकता की परवाह नहीं करते थे। अपनी उच्चता या वीरता के प्रदर्शन के लिए वे सदैव आपस में लड़ा करते थे। किन्तु इस समय परिस्थिति ने गम्भीर करवट बदली और भारतीय राजनीति में विदेशी आक्रमण के परिणामस्वरूप परिवर्तन होने लगे। मुसलमान

आक्रमणकारी धन के लोभ से आक्रमण करते थे और रुपया लूट कर चले जाते थे। वे लगभग दो सौ वर्ष तक निरन्तर आक्रमण करते रहे। लेकिन इधर भारतीय राजाओं में पारस्परिक वैमनस्य इस सीमा तक बढ़ गया था कि आपस में मिल-जुल कर मुसलमान आक्रमणकारियों का मुकाबला करना तो दूर, वे एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए आक्रमणकारियों को निमन्त्रण देकर बुलाने में भी कोई हिचकिचाहट अनुभव नहीं करते थे। उस समय के लगभग सभी राज्यों में स्वेच्छाचारी शासन था। राजा जो चाहता खुशी से करता था और कर-वसूली के अतिरिक्त उसका प्रजा से सीधा सम्बन्ध नहीं था। इधर प्रजा अपने हाल में मस्त थी। उसे जैसे राजनीति से कोई मतलब नहीं था। इन दिनों धीरे-धीरे मुसलमानी साम्राज्य का श्रीगणेश भी हुआ किन्तु सौभाग्य से न तो वह विदेश के इशारे पर चलता था, और न देश का या ही विदेश को ले जाया जा रहा था। अतः यद्यपि देश के आत्म-सम्मान को ठेस लग रही थी, तथापि कोई विशेष परिवर्तन का विचार जड़ नहीं पकड़ रहा था।

इस काल की राजनैतिक स्थिति के परिवर्तन के परिणामस्वरूप सामाजिक स्थिति में भी कुछ परिवर्तन हुआ किन्तु विशेष नहीं। धार्मिक स्थिति तो बहुत अंशों में स्थिर ही बनी रही। बौद्ध-धर्म का प्रभाव कम होते-होते अब इस स्थिति में आ गया था कि हिन्दू-धर्म के साथ कोई समझौता करले। इस समय हिन्दू-धर्म दो भागों में बँटा हुआ था। पहिला था वैदिक धर्म, जो वेद-पुराण सम्मत था। दूसरा था ब्राह्म-धर्म जो वेद-पुराण सम्मत नहीं था। ब्राह्म धर्म में जादू-टोने और काली-पूजा की प्रधानता थी। बौद्ध-धर्म पर इस ब्राह्म-धर्म का प्रभाव पड़ा और उसमें भी जादू-टोने तथा तन्त्र-मन्त्र का प्रवेश हो गया। अब हिन्दू-धर्म-प्रभावित बौद्ध अपने को सिद्ध कहने लगे। इस प्रकार के सिद्धों में गोरखनाथ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने अपना एक सम्प्रदाय चलाया जो गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वैदिक धर्म के अनुयायी शिव के उपासक थे और राम-कृष्ण की उपासना भी दक्षिण भारत से धीरे-धीरे उत्तर भारत में आ रही थी।

वीरगाथा-काल का हिन्दी साहित्य तीन भागों में बाँटा जा सकता है—(१) चारणों द्वारा लिखा गया काव्य, (२) धार्मिक साहित्य और (३) मनोरंजक साहित्य। चारणों द्वारा लिखे हुए काव्य में जहाँ 'पृथ्वीराज रासो' जैसे बड़े-बड़े प्रबन्ध-काव्य हैं, वहाँ 'बीसलदेव रासो' जैसे छोटे प्रबन्ध-काव्य भी हैं। यह काव्य उन चारणों द्वारा लिखा गया था जो अपने आश्रयदाता नरेशों का गुणगान खूब बढ़ा-चढ़ा कर करते थे। चारण कवियों की कविता में यद्यपि काफी अत्युक्ति है तथापि उसमें ऐतिहासिकता का अंश भी है। यह काव्य अधिकतर डिंगल भाषा में है। डिंगल राजस्थानी हिन्दी का एक रूप है। इस युग में राजाओं के दो प्रमुख कार्य थे—आपस में लड़ना और दूसरे राजाओं की कन्याओं का अपहरण करना। अतः जहाँ युद्ध के कारण इस युग की कविता में वीर रस की प्रधानता थी; वहाँ कन्याओं के अपहरण के कारण उसमें मूल भावना शृंगार की थी। इस कारण से इस समय कविता में शृंगार के साथ वीर रस का जैसा सुन्दर समावेश हुआ है वैसा अन्यत्र मुश्किल से ही मिलेगा। इस युग के चारण कवियों में प्रमुख हैं—दलपत विजय, नरपत नाल्ह, चन्दबरदाई, भट्ट केदार, मधुकर, जगनिक और श्रीधर। इन कवियों में केवल श्रीधर और नरपत नाल्ह की कविताएँ ही प्रामाणिक रूप में मिलती हैं। भट्ट केदार और मधुकर के ग्रन्थ तो बिल्कुल ही नहीं मिलते। जगनिक का आल्हा और दलपत विजय का खुमाण-रासो आज जिस रूप में प्राप्त हैं वह संदेह का विषय ही बना हुआ है पृथ्वीराज रासो इस युग का बहुत बड़ा प्रबन्ध-काव्य है। कहा जाता है कि उसका रचयिता चन्द-बरदाई पृथ्वीराज का साथी और मित्र था किन्तु इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता भी संदिग्ध ही बनी हुई है। श्रीधर के 'रणमल्ल छन्द' नामक ग्रन्थ में ईडर के राजा रणमल्ल की उस विजय का वर्णन है जो उसने पाटन के सूबेदार जफरखाँ पर प्राप्त की थी। 'बीसलदेव-रासो' में राजा बीसलदेव के विवाह, प्रवास एवं पुनरागमन की कहानी है।

इस काल का धार्मिक साहित्य दो प्रकार का है—भक्ति-मूलक और नीति-मूलक। विद्यापति भक्ति-मूलक साहित्य के मुख्य प्रणेता हैं। वे शिव और गंगा के साथ-साथ दुर्गा के उपासक थे। उनके भक्तिसम्बन्धी

अपनी मार्मिकता के लिये प्रसिद्ध हैं। उनकी भाषा मैथिली-हिन्दी
। उनके गीत आज तक मिथिला में गाये जाते हैं। योग-मूलक
ाहित्य के प्रमुख रचयिता हैं गोरखनाथ। गोरखनाथ की भाषा सधुक्कड़ी
। सधुक्कड़ी भाषा से हमारा आशय उस भाषा से है जो उस समय के
ाधु बोलते थे। ये साधु सारे देश में घूमते रहते थे। अतः इनकी
ाषा पर सभी प्रान्तों की भाषाओं का प्रभाव रहता था।

इस काल का मनोरंजक साहित्य भी दो प्रकार का है—(१) शृंगार-मूलक और (२) पहेली, मुकरी आदि के रूप में। शृङ्गार-मूलक साहित्य में गीत-गोविन्द की छाया पर विद्यापति द्वारा लिखा हुआ राधा-कृष्ण की प्रेम-क्रीड़ा का वर्णन प्रमुख है। विद्यापति की कोमलकान्त पदावली प्रसिद्ध है। कोमल भाषा के कारण इस शृङ्गार-मूलक काव्य में बड़ी ...णीयता आगई है। पहेली-मुकरी-साहित्य के प्रमुख रचयिता हैं ...र खुसरो। अमीर खुसरो की पहेलियाँ आज तक प्रसिद्ध हैं। उनकी ...ा-खड़ी बोली थी। वे खड़ी-बोली के सबसे पहिले कवि हैं। कह नहीं सकते कि अमीर खुसरो के नाम से आज जितना साहित्य मिलता है वह सब उन्हीं का है या और किसी कवि का। ऐसा अनुमान है कि पीछे से कुछ और कवियों ने भी जो कुछ लिखा उसे अमीर खुसरो का ही लिखा हुआ बताने का यत्न किया गया। इस प्रकार उस काल की राजनैतिक सामाजिक और धार्मिक स्थिति का प्रतिबिम्ब पूरी तरह उस समय के काव्य में दिखाई दे जाता है।

भक्ति-काल

भक्ति-काल सं० १३७५ से आरम्भ होकर सं० १७०० तक चल जाता है। यद्यपि इस काल में भी सभी प्रकार का काव्य लिखा गय... तथापि इस काल में भक्त-कवि पर्याप्त संख्या में हुए। इसी कारण इ... भक्ति-काल कहा जाता है। वीर-गाथा-काल की अपेक्षा इस काल क... राजनैतिक स्थिति कुछ अधिक स्थिर हो गई थी। मुसलमानी राज्य अ... देश के प्रमुख भागों में फैल गया था और अब उसे पराजित कर ह... देना हिन्दू राजाओं के वश की बात नहीं थी। हिन्दू राजा अब ...

आपस में लड़ते थे, किन्तु पहिले से कम। जनता ने मुसलमानी राज्य के विरुद्ध कोई विद्रोह नहीं किया। वह उससे कोई विशेष रूप से असन्तुष्ट नहीं थी। जनता में राष्ट्रीयता का अभाव-सा था। राज्य का गाँवों से कर देने का ही सम्बन्ध था। कर देने के बाद ग्रामवासी पूर्णतः स्वतन्त्र थे।

इस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में यद्यपि स्थिरता थी, तथापि सामाजिक क्षेत्र में विद्रोह के चिह्न दिखाई दे रहे थे। शूद्र अब अधिक अत्याचार सहने के लिये तैयार नहीं थे और स्त्रियाँ भी अपने सम्मान को और ज्यादा गिरने देना नहीं चाहती थीं। ब्राह्मणों के निर्वाह का साधन पुरोहित कार्य ही था तथापि उनका प्रभाव उत्तरोत्तर घटता जा रहा था। हिन्दू-मुसलमानों में मेल-मिलाप बढ़ रहा था लेकिन पारस्परिक विवाह अच्छे नहीं समझे जाते थे। आर्थिक दृष्टि से समाज में यद्यपि धनी और गरीब वर्ग था तथापि उनके पारस्परिक सम्बन्धों में कटुता नहीं थी। धनी लोग गरीबों की सहायता करते थे और उनके प्रति सहानुभूति रखते थे। तक्षशिला और नालन्दा के शिक्षा-केन्द्र टूट गये थे। अब काशी ही शिक्षा का केन्द्र था। शिक्षा बहुत अंशों में धार्मिक होती थी और पुरोहित ही शिक्षा देने का कार्य करता था। लोगों का नैतिक स्तर साधारणतः सन्तोषजनक था।

किन्तु देश की धार्मिक स्थिति डाँवाडोल थी। इस्लाम भूमि-विजय की लालसा के साथ-साथ धर्म विजय की लालसा भी लाया था और भूमि विजय के बाद मुसलमानी सन्त, जिनमें चिश्ती, सुहरावर्दी एवं नक्शाबन्दी तीनों सम्प्रदाय के लोग शामिल थे अपना आदर्श जीवन तथा सच्चे-मीठे प्रचार के द्वारा हिन्दुओं को प्रभावित कर रहे थे। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ा शूद्रों पर। बात यह थी कि शूद्रों को हिन्दू धर्म में कोई आदर का स्थान प्राप्त नहीं था। न तो समाज में उनका आदर होता था न उन्हें मन्दिरों में ही जाने दिया जाता था। वे चाहते थे कि कम से कम धर्म के क्षेत्र में तो उनको बराबरी का दर्जा मिले। किन्तु हिन्दू-धर्म में तो ऐसा हो नहीं सकता, अतः वे मुसलमान बनने लगे। फिर तो कुछ सवर्ण भी उसी मार्ग पर जाते दिखाई देने

लगे। यह सब देख हिन्दू-धर्म चौंका—उसने यह अनुभव किया कि कम से कम धार्मिक बातों का ज्ञान तो जनता को देना ही चाहिये ताकि वह इस्लाम के प्रवाह से बच सके। अतः इस काल में हिन्दी-भाषा में धर्म-ग्रन्थ लिखे गये और संस्कृत का स्थान हिन्दी को मिलने लगा।

वैदिक हिन्दू-धर्म इस समय दो भागों में बंट गया था—शैव और वैष्णव। वैष्णव विष्णु की उपासना करते थे, शैव शिव की। वैष्णव राम-कृष्ण की भी उपासना करने लग गये थे क्योंकि राम और कृष्ण विष्णु के ही अवतार थे। व्रात्य धर्मावलम्बी अधिकतर तान्त्रिक थे और शिव के भैरव स्वरूप एवं दुर्गा, चण्डी आदि की उपासना करते थे। बौद्ध और जैन-धर्म हिन्दू-धर्म के सामने झुक गया था और मुसलमानों के सामने वे भी अपने को हिन्दू कहने लगे थे। अब हिन्दू-धर्म के इन सम्प्रदायों में से निकल गई थी, निकलती जा रही थी। वैष्णव शिव का मान करने लगे थे, शैव विष्णु का।

दर्शन के क्षेत्र में इस काल में कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व आये। शङ्कराचार्य तो वीरगाथा-काल में हो ही चुके थे, पर उनका प्रभाव अब पड़ रहा था। इस युग के दार्शनिकों में निजामुद्दीन चिश्ती, रामानन्द और वल्लभाचार्य प्रमुख थे। निजामुद्दीन चिश्ती सूफी दरवेश थे। उनका कहना था कि खुदा एक है। वह अद्वैत है, निर्गुण निराकार है। मूर्ति पूजा व्यर्थ है। हमें उसके साथ ऐसा ही प्रेम करना चाहिये जैसा स्त्री-पुरुष के साथ करती है या पुरुष स्त्री के साथ करता है। उन्होने कुरान को मानने और नमाज पढ़ने पर काफी जोर दिया। उनके सम्प्रदाय ने इस्लाम के प्रचार में बहुत बड़ा कार्य किया। रामानन्द ने विशिष्टाद्वैत दर्शन का प्रचार किया और राम-भक्ति पर जोर दिया। वल्लभाचार्य के पुष्टि-मार्ग का प्रचार किया और कृष्ण-भक्ति पर जोर दिया।

इस धार्मिक, राजनैतिक, दार्शनिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति के परिणामस्वरूप इस काल में हिन्दी-साहित्य में चार प्रमुख धारा दिखाई देती हैं—(१) धार्मिक, (२) चारण, (३) रीति औ (४) मनोरञ्जक। यद्यपि ये चार अलग-अलग धारायें हैं तथापि इ

का रामायण महानाटक तथा हृदय का हनुमन्नाटक भी प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। रीवांनरेश विश्वनाथसिंह और रघुराजसिंह ने भी राम-भक्ति काव्य की रचना की है और केशवदासजी की रामचन्द्रिका भी राम-भक्ति काव्य के अन्तर्गत ही मानी है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इस काल में यद्यपि धार्मिक साहित्य की धारा ही प्रमुख थी तथापि अन्य प्रकार का साहित्य भी लिखा गया था। चारण काव्य की पुस्तक है, केशवदासजी की 'वीरसिंह देव चरित'। काव्य की दृष्टि से यह कोई ऊँची पुस्तक नहीं है। इस काल में रीतिकाव्य के रचयिता में केशवदास और अब्दुर्रहीम खानखाना प्रमुख हैं। केशवदास की 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' रीतिग्रन्थ हैं किन्तु इनमें मौलिकता का अभाव है। रहीम ने नायिका के भेद पर एक ग्रंथ लिखा जो साधारण ही है। मनोरंजक काव्य में रचयिताओं में सेनापति, केशवदास और नरोत्तमदास प्रमुख हैं।

रीति-काल

रीतिकाल १७०० ई० से प्रारम्भ होकर १८५० तक चला जाता है। रीति शब्द का अर्थ है साहित्य-शास्त्र। इस काल में साहित्य-शास्त्र की रचना पर विशेष ध्यान दिया गया। अतः इसे रीतिकाल कहा जाता है। इस काल के उदय के समय मुगल-साम्राज्य पतन की ओर बढ़ रहा था। किन्तु राजा अपने खोए हुए गौरव को प्राप्त करने का दम भरने लगे थे। दक्षिण में मराठे प्रबल हो रहे थे और पंजाब में सिक्ख। औरंगज़ेब के अत्याचारों से जनता असन्तुष्ट थी और विदेशी व्यापारी इसे उपयुक्त अवसर देखकर अपनी जड़ जमाने में लगे हुए थे। इन विदेशी व्यापारियों में प्रमुख थे—अंग्रेज़, फ्रांसीसी, डच, और पुर्तगीज़। धीरे-धीरे अंग्रेज़ शक्तिशाली सिद्ध होने लगे और अपना शासन स्थापित करने के कार्य में वे सबसे आगे बढ़ गए।

अंग्रेज़ों ने अपने साम्राज्य का विस्तार किया लेकिन उसमें केवल सैनिक शक्ति से ही काम नहीं लिया। अतः लोगों के मन में अंग्रेज़ों के प्रति वह कटुता पैदा नहीं हुई जो मुसलमानों के प्रति पैदा हो गई थी।

इस काव्य-धारा में एक वर्ग ऐसे कवियों का भी था जो रस, अलंकार और नायक-नायिका भेद के शास्त्रीय लक्षण न देकर केवल उदाहरण ही लिखता था। ऐसे कवियों में बिहारी का स्थान सबसे ऊँचा था। बिहारी ने केवल ७०० दोहे लिखे लेकिन वे हिन्दी-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन कवियों की भाषा ब्रज थी। फारसी और अरबी के शब्द भी उसमें जहाँ-तहाँ आ जाते थे। यद्यपि रस के विविध विभावों-अनुभावों का इन्होंने बड़ा सुन्दर चित्रण किया तथापि उनकी कविता का पूरा आनन्द तब तक नहीं आता जब तक कि हमें काव्य-शास्त्र का अच्छा ज्ञान न हो। हाँ, विरह की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण हम अवश्य बिना काव्य-शास्त्र के ज्ञान के समझ सकते हैं; किन्तु इसका आनन्द भी तब तक अधूरा रहता है जब तक कि यह मालूम न हो कि किस अवस्था का अथवा नायिका भेद की किस नायिका का वर्णन इस छन्द में है। बिहारी ने दोहे जैसे छोटे छन्द में बड़े व्यापक विचारों को सरलता-पूर्वक व्यक्त कर दिया है। यह उनकी काव्य-कुशलता का परिचायक है। बिहारी का शब्द चयन और वाक्य में शब्दों का क्रम बड़ा संयत है। उनके दोहों में न तो एक भी शब्द बदला जा सकता है न उनके क्रम में ही हेर-फेर किया जा सकता है।

अन्य कवियों ने अधिकतर कवित्त और सवैया छन्द का प्रयोग किया है। इन कवित्त और सवैयों में उन्होंने भाषा की मधुरता इस प्रकार की है कि अत्यन्त मार्मिक भाव अन्तिम पंक्ति में ही आता है। कभी-कभी तो इस आखिरी पंक्ति को समझे बिना पूरा छन्द ही समझ में नहीं आता। इस काव्य-धारा का अधिकांश काव्य शृङ्गारी है। दरबारों के विलासी वातावरण में शृंगारी रचनाएँ बड़ी उपयुक्त रहती थीं। क्योंकि मुसलमानों से और अंग्रेजों से पराजित हो जाने के कारण इस काल के राजाओं को अपनी वीरता की प्रशंसा सुनने में भला क्या आनन्द आ सकता था, उसे सुनते हुए तो वे लजाते ही। अतः शृङ्गारी कविताएँ ही उनके मनोरंजन का साधन थीं। देव, बिहारी, केशव, भूषण चिन्तामणि आदि इस धारा के प्रमुख कवि थे।

चितरंजनदास, सरदार पटेल और राजेन्द्रबाबू जैसे त्यागी व्यक्तियों ने उसे आजादी के लिए लड़ने वाली संस्था बना दिया। गांधीजी ने राजनीति में अहिंसक प्रतिकार की नई प्रणाली सत्याग्रह और असहयोग को जन्म दिया तथा देश में नई चेतना का संचार कर दिया। इसी काल में प्रथम महायुद्ध के बाद रूस में क्रान्ति हुई और वह साम्यवादी बन गया। उसके साम्यवादी बनने के बाद थोड़े ही समय में इतनी तेजी से प्रगति की कि दुनिया के अन्य देशों को दांतों तले उंगली दबाने के लिये विवश होना पड़ा। इससे दुनिया के सभी देशों में साम्यवादी दलों का संगठन बनने और मजबूत होने लगा। भारत पर भी इसका प्रभाव पड़े बिना न रहा।

इधर अंग्रेजों ने आजादी की मांग को कुचलने के लिये हिन्दू-मुसलमानों के बीच फूट डालने का प्रयत्न किया तथा अछूतों-सवर्णों आदि के प्रश्न पैदा किए। परिणामस्वरूप मुसलमानों की एक अलग संस्था मुस्लिम-लीग के नाम से स्थापित हुई और अछूतों का भी एक संगठन बना जिसके नेता क्रमशः मुहम्मदअली जिन्ना और डाक्टर अम्बेडकर बने। समझौते की बहुत कोशिश हुई, लेकिन जब अंग्रेजों को विवश होकर भारत छोड़ना ही पड़ा तो उन्होंने देश के दो टुकड़े हिन्दुस्तान और पाकिस्तान करवाकर प्रस्थान किया।

धार्मिक क्षेत्र में काफी उथल-पुथल हुई। ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन और थियोसोफिकल सोसाइटी ने अपने-अपने ढंग की धार्मिक चेतना लाने का यत्न किया और प्रचलित धर्म की त्रुटियों को दूर करने की चेष्टा की। धार्मिक कट्टरता मिटती जा रही थी और लोग धर्म के प्रति उदासीन से बनते जा रहे थे। जिनकी धर्म में श्रद्धा बची थी वे भी बाह्याचार से आगे नहीं जा पाते थे। फिर भी धर्म के नाम पर हिन्दू-मुस्लिम झगड़े और शिया-सुन्नी के झगड़े जारी होते रहे। प्रारम्भ में सिक्ख अपने को हिन्दू-धर्म से अलग मानते रहे। लेकिन जब सन् १९४६ में हिन्दू-मुस्लिम दंगे अपनी चरम-सीमा पर पहुंच गये तो वे हिन्दुओं में आ मिले।

प्रशंसा करते थे न भक्तों की तरह स्वांतः सुखाय या उपदेश देने के लिये ही लिखते थे। रीति-काल की भांति राजाओं और उनके सामन्तों की कामनात्मक प्रवृत्ति को जगा कर उन्हें प्रसन्न करना भी अब उनका उद्देश्य नहीं था। अब कविता जनता के बीच थे और उन्हें जनता को ही प्रसन्न करना था। यह इतना बड़ा परिवर्तन था कि इसने कविता के सारे स्वरूप को ही बदल दिया। आधारों के इस परिवर्तन के परिणाम-स्वरूप कविता की विषय-वस्तु बदली। अब ऐसे विषयों पर कविताएँ लिखी जाने लगीं जो जनता के थे। प्रारम्भ में अंग्रेजी शासन की [illegible] से प्रभावित होकर कवियों ने [illegible] शासन की प्रशंसा की और राजभक्ति के गीत भी गाए, [illegible] यह बात समझते देर नहीं लगी कि यह शासन तो हमारे मूल [illegible] कुठाराघात कर रहा है। परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे [illegible] बातें बातें आगे स्पष्ट रूप से अंग्रेजी शासन [illegible] अब कवियों ने शासन [illegible] और जहाँ उन्होंने अंग्रेज सरकार [illegible] वहाँ देशवासियों को अपनी [illegible] दी। राष्ट्रीयता की भावना प्रबल होती गई। [illegible] प्रतापनारायण मिश्र, भारतेन्दु [illegible] बालमुकुन्द गुप्त [illegible] पाठक आदि प्रमुख थे। इस [illegible] रही तथापि इस [illegible] की ब्रजभाषा [illegible] बिल्कुल [illegible] था।

द्वितीयावस्था के प्रमुख कवि [illegible] महावीरप्रसाद द्विवेदी [illegible] [illegible] अब हिन्दी-कविता ने [illegible] की कविता [illegible] दिया और वह नये [illegible] [illegible] कवि कोई अच्छा [illegible] [illegible] कि खड़ी-बोली [illegible] [illegible] महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने [illegible] [illegible]। उन्होंने [illegible] [illegible] उसका [illegible] दी। [illegible] के खड़ी-बोली [illegible] के आसन

चतुर्वेदी की 'कैदी और कोकिल' कविता तथा सुभद्राकुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी' बड़ी प्रसिद्ध कविताएँ हैं। रहस्यवादी कविता तो साधारण जनता की पहुँच के बाहर की चीज थी, अतः राष्ट्रीयतापरक कविताएँ ही बड़ी लोकप्रिय हुईं। कांग्रेस का आन्दोलन इतना बड़े जोर पर रहा अतः इनकी लोकप्रियता स्वाभाविक ही थी। मैथिलीशरण गुप्त ने ऐतिहासिक और पौराणिक काव्य प्रमुख रूप से लिखे। उनके ग्रन्थों में जो इस समय प्रकाशित हुए साकेत, द्वापर, यशोधरा, सिद्धराज प्रमुख थे। गुप्तजी की भाषा खड़ी-बोली है। उस पर न तो छायावादी शैली का प्रभाव है न ब्रजभाषा का। उनके ग्रन्थ प्रबन्धात्मकता और काव्य दोनों दृष्टि से उच्चकोटि के हैं। उन्होंने पौराणिक आख्यानों को अलौकिकता से बचाया। परिणामस्वरूप उनके ग्रन्थ बड़े लोकप्रिय हुए। संक्षेप में, इस युग में पन्त, गुप्त, निराला आदि के प्रयत्न से खड़ी-बोली में कविता पैठने लगी। इतना ही नहीं आधुनिक कविता ने एक [illegible] समाज की ओर यह आदर के स्थान पर प्रतिष्ठित होने योग्य बनने लगी।

सन् १९१९ से १९३६ तक के समय में कांग्रेस ने जो आन्दोलन किया उसके परिणामस्वरूप उसका ध्यान गाँवों की ओर गया। इधर साम्यवाद का प्रभाव भी बढ़ा। अतः चतुर्थावस्था की कविता में दलितवर्ग की आवाज प्रबल होने लगी। अब किसान-मजदूरों के प्रति सहानुभूति से भरी हुई कविताएँ लिखी जाने लगीं। [illegible] कवियों ने इस दिशा में बड़े मनन-पूर्वक विचार किया और [illegible] गया कि अभी तक हम मानवता के प्रति बहुत कम [illegible] आये हैं। उनकी युगान्त, ग्राम्या, युगवाणी इसी [illegible] हैं। इस धारा के अन्य कवियों में [illegible] सुमन, 'अञ्चल', नरेन्द्र शर्मा और नरेन्द्र [illegible] धारा ने हिन्दी को बंगला के प्रभाव से मुक्त [illegible] शैली के अन्दर सरलस्वरूप की स्थापना और [illegible] के निकट से आया। इसके [illegible] छायावादी कवियों की रचना अधिक [illegible] है।

इस समय एक और परिवर्तन यह हुआ कि अब यथार्थवादी विचार का प्रभाव बढ़ने लगा। कुछ तो विश्वविद्यालयों की शिक्षा के प्रभाव से और कुछ विदेशियों के साथ बढ़ते हुए सम्पर्क से इस प्रकार के विचारकों का प्रभाव कुछ-कुछ बढ़ता हुआ प्रतीत होने लगा। इधर कांग्रेस के आन्दोलन के परिणामस्वरूप स्त्रियों को पुरुषों के साथ कंधे से कंधा भिडाकर काम करना पड़ा। अतः पार्थिव प्रेम की कविताएं खुले आम लिखी जाने लगी। इस धारा के प्रमुख कवि हैं बच्चन, नरेन्द्र शर्मा आदि। बच्चन की मधुशाला, मधुबाला, एकान्त संगीत, निशा-निमंत्रण आदि रचनाएं बड़ी मार्मिक हैं। किन्तु उससे भी ज्यादा मार्मिक है नरेन्द्र शर्मा के गीत। इस धारा की कविताएँ बहुत चलती हुई एवं परिष्कृत भाषा में लिखी गई हैं।

रहस्यवादी कवियों की संख्या इस युग में कम हो गई। फिर भी महादेवी वर्मा की 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' नामक पुस्तकें अनुभूति की तीव्रता एवं भावुकता की उच्चता से ओत-प्रोत हैं। उनकी कविता में बड़ी मार्मिकता है। इस युग में राष्ट्रीय कविताएं भी लिखी गईं। गांधीजी और उनके रचनात्मक-कार्यों की प्रशंसा इस युग में काफी हुई। इस राष्ट्रीय-धारा के प्रमुख कवि है सोहनलाल द्विवेदी और रामधारीसिंह 'दिनकर'। स्वतन्त्रता के बाद तो इस राष्ट्रीय-धारा की कविता बड़ी तेजी से बढ़ने लगी। लेकिन इन दिनों इस धारा की कविता में वह तेजस्विता नहीं आ सकी जो सन् १९३२ की कविता में थी। अन्य कविताओं में कामायनी का उल्लेख करना आवश्यक है। यद्यपि इसकी रचना तृतीयावस्था में ही हो चुकी थी तथापि इसका प्रकाशन चतुर्थावस्था में ही हुआ। कामायनी सृष्टि के आदि से आज तक के मानवता के संघर्ष की कहानी है। मनुष्य बुद्धि और हृदय से प्रेरित होकर किस प्रकार काम करता है और अपने कर्मों के परिणाम-स्वरूप किस प्रकार बन्धनों में फंसता है इसका सुन्दर चित्रण इस काव्य में मिलता है। विद्वानों में इस ग्रन्थ का बड़ा आदर हुआ। इस प्रकार हिन्दी-कविता आधुनिक-काल में बड़ी तेजी से आगे बढ़ी। यह प्रगति उसके उज्ज्वल भविष्य की परिचायक है।

(२) गद्य

गद्य का विकास हिन्दी में बहुत देर से प्रारम्भ हुआ। इसका एक बहुत बड़ा कारण तो यह था कि १९ वीं शताब्दी के पहिले हमारे देश में प्रेस की व्यवस्था नहीं हो पाई थी। कविता ज़बानी याद की जा सकती है किन्तु गद्य तो याद नहीं किया जा सकता। उसका आनन्द तो तभी लिया जा सकता है जब कि वह लिखित रूप में पास रखा जा सके अतः जब प्रेस की व्यवस्था हो गई तो १९ वीं शताब्दी से गद्य का प्रारम्भ हुआ। एक और बात यह है कि जब तक सभ्यता का विकास नहीं होता तब तक मनुष्य प्रायः भावुक रहते हैं। वे उस समय तक कविता ही पसन्द करते हैं। किन्तु सभ्यता के विकास होने पर मनुष्य भावुकता छोड़ कर बौद्धिक होने लगता है। अब वह भावनाओं को छोड़कर विचारों से काम लेना प्रारम्भ करता है। विचार गद्य का क्षेत्र है, अतः सभ्यता के साथ ही साथ गद्य का विकास होता है। भारतवर्ष में पहिले भी कुछ न कुछ बौद्धिक सभ्यता थी ही, अतः गद्य-साहित्य तो था, किन्तु प्रेस के अभाव में उसको विकास का पर्याप्त अवसर न मिला था। प्रेस के साथ उसका विकास १९ वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ।

प्रारम्भिक गद्य-साहित्य के रूप में राजस्थान का ऐतिहासिक साहित्य, सूफियों द्वारा लिखा हुआ साहित्य, जैन और नाथ-पंथियों द्वारा लिखा हुआ साहित्य चौरासी वैष्णव की वार्ता, बावन वैष्णव की वार्ता नाभादास का अष्टयाम तथा रामप्रसाद निरंजनी का योगवशिष्ठ प्रमुख हैं। चौरासी वैष्णव की वार्ता, तथा बावन वैष्णव की वार्ता गोकुलदासजी ने लिखी है जो वल्लभदासजी के पौत्र थे। इनकी भाषा बड़ी ही परिष्कृत है। योगवशिष्ठ की भाषा तो बड़ी साफ-सुथरी खड़ी-बोली का नमूना है। यह ग्रन्थ सन् १७४१ में लिखा गया था।

इसके बाद के गद्य साहित्य में मुंशी सदासुखलालजी, इंशा-अल्लाखाँ, लल्लूलालजी और सदलमिश्र का साहित्य प्रमुख है। सदासुखलालजी ने 'सुख-सागर' की रचना की थी जो कि श्रीमद्भागवत

पुराण का अनुवाद-सा है। इसके गद्य में प्रवाह है और भाषा खड़ी-बोली है। इंशाअल्लाखाँ ने रानी केतकी की कहानी लिखी है। यह सारी पुस्तक ठेठ हिन्दी में लिखी हुई है। लल्लूलालजी ने प्रेमसागर की रचना की। इसकी भाषा पर व्रज-भाषा का बड़ा असर है। सदल मिश्र की प्रमुख पुस्तक है नासिकेतोपाख्यान। इनकी भाषा व्रज और पूर्वी हिन्दी के प्रभाव से काफी प्रभावित है।

इनके बाद के लेखकों में बाबू शिवप्रसाद सितारेहिन्द, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट और प्रतापरानायण मिश्र प्रमुख हैं। अब गद्य में से व्रजभाषापन कम होता जा रहा था और खड़ी-बोली अपने परिष्कृत रूप में सामने आ रही थी। हिन्दी-साहित्य गद्य की जो कमी अब रही थी उसे पूरा करने के उद्देश्य से लिखा जाने लगा था। इससे-गद्य की काफ़ी उन्नति होने लगी। इन्हीं दिनों पत्र-पत्रिकाएँ भी निकलीं और उनकी उत्तरोत्तर बढ़ने वाली संख्या ने हिन्दी-गद्य को वैविध्य प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया। इस समय के लेखकों ने बड़ा रोचक साहित्य लिखकर अपने पत्र-पत्रिकाओं की ग्राहक-संख्या बढ़ाने में सफलता प्राप्त की। अब भाषा व्याकरण-सम्मत और परिष्कृत बन रही थी। इसके बाद महावीर प्रसादजी द्विवेदी ने रही-सही कमी पूरी करदी। अब कहानियाँ उपन्यास, निबन्ध, समालोचना, नाटक सभी लिखे जाने लगे। द्विवेदीजी, के बाद बाबू श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द तथा धीरेन्द्र वर्मा जैसे लेखकों ने तो गद्य-साहित्य के भण्डार भरने का बहुत बड़ा कार्य प्रारम्भ कर दिया और अन्त में उसे सफलता मिली। अब गद्य में साफ़ सुथरापन आ गया और भाषा स्थिर बन गई। इस समय हिन्दी-गद्य ने आश्चर्यजनक प्रगति की।

आजकल के लेखकों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, नन्ददुलारे बाजपेयी, बेचैन शर्मा 'उग्र', भगवती प्रसाद बाजपेयी, यशपाल, विष्णु प्रभाकर, जैनेन्द्रकुमार, उपेन्द्रनाथ अश्क, अज्ञेय, मन्मथनाथ गुप्त और डॉ० नगेन्द्र प्रमुख हैं। अब गद्य का प्रचार और तेजी के साथ प्रारम्भ हुआ

रहती है जयशंकर प्रसाद सबसे बड़े नाटककार हैं। उनके प्रधान नाटक हैं—चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, अजात-शत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ तथा ध्रुवस्वामिनी। प्रसाद के सभी नाटकों का कथानक ऐतिहासिक है। इनकी सबसे बड़ी सुन्दरता है चरित्र-चित्रण। परिवर्तनशील पात्रों और आदर्शवादी स्थिर पात्रों के संघर्ष के कारण चरित्रों में बड़ा उभार आ गया हैं। प्रसादजी के नाटक रङ्गमंच के योग्य नहीं हैं।

तृतीयावस्था के प्रमुख नाटककार हैं लक्ष्मीनारायण मिश्र और भुवनेश्वर प्रसाद सिंह। इस काल के नाटकों का कथानक अपेक्षाकृत छोटा हो गया किन्तु संघर्ष बढ़ गया। अब एकांकी नाटकों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इस समय के नाटक बहुत हैं। इनमें स्थिर और परिवर्तनशील पात्रों का जो संघर्ष दिखाया ता है, वह दर्शकों को गम्भीर चिन्तन की प्रेरणा देता है। मुख्य संवेदना ोर ज्यादा दुरूह होती जा रही है जिससे नाटक क्लिष्ट बनते जा रहे हैं।

(आ) उपन्यास

हिन्दी उपन्यासों के विकास की चार स्पष्ट अवस्थायें हमें दिखाई देती हैं। पहली अवस्था सन् १८०० से १९०० तक की है। इस अवस्था के उपन्यासकार हैं इंशाअल्लाखाँ, लाला श्रीनिवासदास और बालकृष्ण भट्ट। इंशाअल्लाखाँ ने रानी केतकी की कहानी लिखी है जो कि लक्षणों की दृष्टि से उपन्यास होने पर भी एक कहानी ही बन गई है। लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरू' उपन्यास में आधुनिक उपन्यास के बीज मिलते हैं। बालकृष्ण भट्ट का 'सौ अजान एक सुजान' भी इसी प्रकार का उपन्यास है। इस काल के उपन्यास कला की दृष्टि से बहुत नीचे स्तर के हैं।

द्वितीयावस्था के प्रमुख उपन्यासकार है देवकीनन्दन खत्री। इनके 'चन्द्रकान्ता सन्तति' और 'भूतनाथ' नामक उपन्यास बड़े लोकप्रिय हुए। इन उपन्यासों में देवकीनन्दनजी ने प्रारम्भ से ही कथावस्तु को बिखरेना प्रारम्भ किया और आगे उसे निरन्तर बिखेरा और बढ़ाया है। एक रहस्या खुलने के पहिले ही दूसरे रहस्य का श्रीगणेश कर दिया है। किन्तु

लेखक में कथा की संगठन की इतनी क्षमता है कि अन्त में सारे रहस्यों का उद्घाटन कर कथा में विस्मय भरता था एक नया मोड़ देता है। कथानक की सूक्ष्मता की इतनी क्षमता बहुत कम उपन्यासकारों में मिलेगी। पात्रों का चरित्र चित्रण बड़ा साधारण कोटि का था। इसी प्रकार शुद्ध कलात्मकता की दृष्टि से भी ये उपन्यास बहुत साधारण हैं।

तृतीय अवस्था १९१८ से १९३३ ई० तक मानी जा सकती है। इस समय के प्रमुख उपन्यासकार हैं प्रेमचन्द, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, तथा जैनेन्द्रकुमार। इस युग में काफी उपन्यास लिखे गये हैं। इन उपन्यासों का कथानक सर्वथा आधुनिक है। कथानकों में आधुनिक समस्यायें आधुनिक ढङ्ग से चित्रित की गई हैं। प्रेमचन्द के सेवासदन में वेश्या-वृत्ति का चित्र है तो कर्मभूमि में अछूतोद्धार आन्दोलन का। उनके अन्य उपन्यासों में निर्मला, गबन, रङ्गभूमि, प्रतिज्ञा, गोदान आदि प्रमुख हैं, आधुनिक समस्याओं को अपनाता है। भगवतीचरण वर्मा के तीन वर्ष नामक उपन्यास में आधुनिक आगरा विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का जीवन अंकित किया गया है। जैनेन्द्रकुमार ने ऐसे कथानक लिये हैं जिनमें घटनाओं का कुछ महत्व नहीं है। महत्व है तो पात्रों के चरित्र-चित्रण और मनोविज्ञान का। वृन्दावनलाल वर्मा ने गढ़कुण्डार और विराटा की पद्मिनी नामक दो उपन्यास ऐतिहासिक लिखे हैं। उनका कथानक ऐतिहासिक है। इस युग के लगभग सभी उपन्यासों में चरित्र चित्रण को अपनाया है। लेखक का ध्यान पात्रों की ओर अधिक रहता है, घटनाओं की ओर कम। इस युग में पात्रों के स्वाभाविकता पर ज़ोर दिया गया है। शुद्ध कलात्मकता की दृष्टि से भी ये उपन्यास बहुत अधिक सम्पन्न हो गये हैं।

प्रेमचन्दजी की मृत्यु के बाद से हिन्दी-उपन्यासों की चतुर्थावस्था प्रारम्भ होती है। इस समय के प्रमुख उपन्यासकार हैं—अज्ञेय, अश्क, यशपाल और इलाचन्द्र जोशी। इस काल के उपन्यासों में घटनाओं का महत्व और भी कम हो गया। अब उपन्यासकार उपन्यासों का गहरा अध्ययन करके रख

बढ़ाया था। अतः उनका कथानक अधिक रोचक और गम्भीर बन गया। अज्ञेय के 'शेखर-एक जीवनी' नामक उपन्यास में इस बात का बहुत ही कम प्रयत्न किया गया है कि उसमें कोई कथानक हो। उसमें शेखर के जीवन के विकास को ही दिखाने का प्रयत्न किया गया है। अश्क की 'गिरती हुई दीवारें' में कथानक अधिक है, किन्तु लेखक का ध्यान समाज की प्रवृत्तियों और पात्रों के चरित्र पर ही अधिक रहा है। यशपाल के दादा कामरेड, देशद्रोही आदि कथानक की दृष्टि से अच्छे हैं। किन्तु लेखक का ध्यान देश की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रवृत्तियों पर इतना अधिक है कि कथावस्तु गौण हो गई है। इलाचन्द जोशी के उपन्यासों में भी कथानक की अपेक्षा मानव मनोविज्ञान को अधिक स्थान मिला है। इस युग में चरित्र-चित्रण के स्थान पर समाज की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति के परिणामस्वरूप व्यक्तियों की जो मनोवृत्ति बनी है उसी का चित्रण अधिक है। तृतीयावस्था से ही पात्र अपने वर्ग के प्रतिनिधि होने लग गये थे। गोदान के होरी में भारतीय किसानवर्ग छिपा हुआ था। अब तो उपन्यास के पात्र अपने वर्ग के प्रतिनिधि और अधिक होने लगे। इस समय के उपन्यासों के पात्र अधिकांश में साधारण-जनता के वर्ग के होने लगे हैं। मुख्य संवेदना की दृष्टि से भी ये उपन्यास अधिक सशक्त हैं। इस प्रकार पिछले ५० वर्षों में उपन्यासों का जो विकास हुआ वह सचमुच बड़ा आश्चर्यजनक है।

(इ) कहानी

कहानी का श्रीगणेश २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही हुआ। हिन्दी-कहानी प्रारम्भ से ही ऊँचे स्तर पर है और अब तक उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। आधुनिक युग के प्रमुख कहानी लेखक हैं—प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, विशम्भर नाथ शर्मा, कौशिक, सुदर्शन, जैनेन्द्रकुमार, विष्णुप्रभाकर, यशपाल, और गुलेरीजी। प्रेमचन्दजी की कहानियाँ सामाजिक आदर्शवादी हैं। उनकी कहानियों में यह रहता है कि हमारा समाज कैसा है। इस प्रकार की कहानियों में समाज-सुधार की भावना रहती है।

बेचैनशर्मा उग्र तथा चन्द्रकिरण सोनरेक्सा की कहानियाँ प्रायः सामाजिक यथार्थवाद लिए हुए हैं। उग्र ने तो यथार्थ के नाम पर नग्न चित्रण ही कर डाला है। चन्द्रकिरण सोनरेक्सा की कहानियाँ कई दृष्टियों से ऊँची हैं। किन्तु यशपाल और मन्मथनाथ गुप्त भी इसी कोटि के कहानीकार हैं। उनकी प्रतिभा भी इसी प्रकार की है। राजनीतिक विषयों और समस्याओं को लेकर भी बहुत सी कहानियाँ लिखी गई हैं। लेकिन कला की दृष्टि से इस प्रकार की कहानियाँ विशेष ऊँची नहीं हैं। आर्थिक विषयों को लेकर ग्राम और नगर दोनों का चित्रण हुआ है। कांग्रेस के आन्दोलन के परिणाम-स्वरूप किसान-मजदूर के प्रति जनता में जो सहानुभूति पैदा हुई वही कहानियों में दिखाई देती है। लेकिन इस प्रकार के कहानी-लेखकों ने बिगड़ी हुई आर्थिक स्थिति के लिए सरकार, जमींदार, जागीरदार आदि को ही उत्तरदायी ठहराया है। उन्होंने यह नहीं बताया कि इसमें किसानों का स्वयं भी कुछ उत्तरदायित्व है। इस प्रकार की बहुत सी कहानियाँ भावुक सहानुभूति के कारण ही लिखी गई हैं।

मनोवैज्ञानिक कहानी के लेखकों में भगवतीप्रसाद वाजपेयी और मन्मथनाथ गुप्त उल्लेखनीय हैं। यद्यपि ये कहानियाँ भी राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक विषय से सम्बन्धित हैं तथापि लेखक का ध्यान इन समस्याओं की ओर न रह कर मनुष्य पात्रों के मनोविज्ञान की ओर ही रहता है। ये कहानियाँ आधुनिक युग की बहुत बड़ी देन हैं। इन कहानियों में यह दिखाया जाता है कि यद्यपि मनुष्य में सद्-प्रवृत्तियाँ हैं और असद् प्रवृत्तियाँ भी हैं किन्तु कौन कब जाग उठेगी और उससे प्रभावित होकर मनुष्य कब क्या करने लग जायगा। प्रेमचन्द की कहानियों में मनोविज्ञान का पूरा ध्यान रखा गया है लेकिन उनका ध्यान मनुष्य की सद्प्रवृत्तियों पर ही अधिक था। इस काल में समाज के पतित और परित्यक्तों पर भी कहानियाँ लिखी गई हैं और उनका भी मनोविश्लेषण किया गया है। इन कहानियों में प्रायः यह बताया जाता है कि ये व्यक्ति कोई बहुत बड़ा दुराचार या अपराध नहीं करते। यदि सद्प्रवृत्तियों वाले हम जैसे लोग भी
में होते तो वैसा ही करते।

इस युग में प्रेम-सम्बन्धी कहानियों की तो जैसे बाढ़ ही आ गई है। ये कहानियाँ कभी-कभी सामाजिक होती हैं, लेकिन अक्सर इनका सामाजिक पहलू बड़ा दबा हुआ रहता है। सारांश यह है कि पिछले ५० वर्षों में ही हिन्दी-कहानी ने काफ़ी प्रगति की है और वह अब किसी भी भाषा के कहानी-साहित्य से पीछे नहीं है।

(ई) निबन्ध

कहानी की भाँति निबन्ध भी एक आधुनिक वस्तु है। उसका आरम्भ कहानी से कुछ पूर्व सन् १८५० से हुआ। उसके विकास की तीन अवस्थाएँ हमें स्पष्ट दिखाई देती हैं। प्रथम अवस्था के निबन्धकार हैं न्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट। इस मय के निबन्ध प्रायः मनोरंजक होते थे। प्रतापनारायण मिश्र ने निबन्ध आँख, नाक, पंचपरमेश्वर आदि विषयों पर लिखे हैं। ये लोग प्रायः किसी न किसी पत्र के सम्पादक होते थे और पत्र की ग्राहक संख्या बढ़ाने के लिये लोगों के मनोरंजन और रुचि का ध्यान रखते थे। मिश्रजी के निबन्धों में अध्ययन की कमी अवश्य है किन्तु विचारों में वे बड़े निर्भीक हैं। इस समय के लेखकों की तरह उनकी भाषा व्याकरण की दृष्टि से दुर्बल है। इस काल के लेखकों के व्यक्तित्व की गहरी छाप उनके लेखों में मिलती है।

द्वितीयावस्था के लेखकों के सामने हिन्दी-साहित्य का भण्डार भरने की भावना रहती थी। इस समय के लेखकों में महावीरप्रसादजी द्विवेदी प्रमुख हैं। वे सरस्वती के सम्पादक थे। उन्होंने एक ओर स्वयं निबन्ध लिखे और दूसरी ओर अन्य लोगों से भी लिखवाये। उनके निबन्धों में कुछ मौलिक हैं, कुछ छायानुवाद हैं। इस युग के निबन्धों की भाषा व्याकरण की दृष्टि से काफ़ी सँभल गई। लेखों में गम्भीरता बढ़ गई और लेख प्रबंध का रूप धारण करने लगे।

तृतीयावस्था के प्रमुख निबन्धकार हैं रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, धीरेन्द्र वर्मा आदि। शुक्लजी के निबन्ध बड़े गम्भीर होते हैं। वे अनुच्छेद के पहले वाक्य में सूत्ररूप में अपना विचार कह कर फिर पूरे

अनुच्छेद में उसकी व्याख्या करते हैं। शुक्लजी के निबन्ध क्रोध, घृणा, भय, लोभ, प्रीति आदि मनोवैज्ञानिक विषयों पर हैं। इन निबन्धों ने हिन्दी-साहित्य के निबन्धों के स्तर को काफी ऊँचा उठा दिया। उनके सब निबन्ध मौलिक और गहरे हैं। भाषा गठी हुई एवं प्रौढ़ है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबन्ध अधिक रोचक हैं। वे निबन्ध का आरम्भ और अन्त दोनों ही बड़े मनोरंजक ढंग से करते हैं। विषय वस्तु की गम्भीरता की दृष्टि से भी ये शुक्लजी से आगे हैं। उनके संस्कृत-साहित्य के ज्ञान ने निबन्धों को अधिक ज्ञानात्मक बना दिया है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के निबन्ध विषय-वस्तु और शैली दोनों ही दृष्टियों से अधिक ऊँचे हैं। उनके प्रत्येक निबन्ध में कुछ मौलिक विचार रहते हैं। कठिन से कठिन विषय पर कठिन से कठिन विचार को ऐसी सरल शैली में रखते हैं कि पढ़ने वाले को कठिनता नहीं लगती। उनके विचार बड़े सुलझे हुए हैं। आजकल पत्र-पत्रिकाओं के बढ़ते हुए प्रचार के कारण प्रतिमास सैकड़ों निबन्ध लिखे जा रहे हैं और निबन्ध साहित्य की प्रगति हो रही है।

(उ) समालोचना

समालोचना हिन्दी में नई वस्तु है। यद्यपि संस्कृत भाषा में और रीति-काल में भी समालोचना के सिद्धान्तों पर पुस्तकें लिखी गई थीं, तथापि उनमें यह नहीं दिखाया गया कि किस कवि ने कैसे अलंकारों का प्रयोग किया और उसकी रचनाओं में रस का परिपाक कितना हुआ। हिन्दी समालोचना का आरम्भ २० वीं शताब्दी से होता है। महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी के सबसे पहले आलोचक कहे जा सकते हैं। उन्होंने समालोचना इस दृष्टि से की कि लेखकों के दोष दूर हों और सुधर सकें। द्विवेदीजी सम्पादक थे और सम्पादक के नाते समालोचना उनका कर्तव्य था। उन्होंने सदैव इस ध्येय को सामने रखकर समालोचना की कि वह साहित्य के विकास में सहायक हो।

द्विवेदीजी के बाद हिन्दी में पण्डित रामचन्द्रजी शुक्ल का आगमन हुआ। शुक्लजी ने प्रमुख रूप से तुलसी, सूर और जायसी की समालोचना की। इन आलोचनाओं में हमें एक ऊँचे आलोचक के दर्शन होते हैं।

उनके जायसी की आलोचना तो बड़ी ही सुन्दर है। भ्रमर-गीत-सार की भूमिका में उन्होंने सूर की आलोचना की है। इस आलोचना में भ्रमर-गीत का आनन्द कई गुना बढ़ जाता है। शुक्लजी के युग में हिन्दी आलोचना-साहित्य में गम्भीरता और गुरुता आई। अब लेखकों के दृष्टिकोण को पूरी तरह समझने के लिए आलोचकों ने उनके धार्मिक और साम्प्रदायिक विचारों का अध्ययन प्रारम्भ किया। इसी प्रकार लेखक के जीवन की घटनाओं और परिस्थितियों को भी जानने का प्रयत्न किया गया।

इस काल में साहित्य की प्रवृत्तियों की भी आलोचना प्रारम्भ हुई। यों की आलोचना में सामाजिक, धार्मिक एवं दार्शनिक प्रवृत्तियों विशद विवेचन किया जाने लगा। डॉ० पीताम्बरदास बड़थ्वाल ने अपने ग्रंथ 'निर्गुण-काव्य-धारा' में संत-साहित्य की समालोचना की। डॉ० केसरीनारायण शुक्ल ने 'आधुनिक-काव्य-धारा' में आधुनिक हिन्दी-कविता का सुन्दर अध्ययन प्रस्तुत किया। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने आधुनिक-हिन्दी-साहित्य नामक ग्रन्थ में सन् १८५० से १९०० ई० तक के लिखे हुए हिन्दी-साहित्य की आलोचना की। इसी प्रकार डॉ० श्रीकृष्ण लाल, परसराम चतुर्वेदी, नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० नगेन्द्र आदि ने भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इस युग में साहित्य-समालोचना के सिद्धान्तों पर भी पुस्तकें लिखी गईं जिनमें श्यामसुन्दर का साहित्यालोचन उल्लेखनीय है। यद्यपि अभी तक शुक्लजी जैसी प्रतिभा किसी अन्य आलोचक में दिखाई नहीं देती, तथापि प्रवृत्तियों और युगों की पृष्ठभूमि के विश्लेषण में कुछ व्यक्ति समर्थ हुए हैं। इनमें हजारीप्रसादजी द्विवेदी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनकी 'हिन्दी-साहित्य की भूमिका' तथा 'कबीर' नामक पुस्तकें इस दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। 'साहित्य-संदेश', 'आलोचना' जैसे कुछ ऐसे पत्र भी आजकल निकलने लगे हैं जिसमें केवल समालोचना ही निकलती है। पूर्व व पश्चिम साहित्य-शास्त्र पर भी ग्रन्थ निकलते जा रहे हैं। तुलसी व सूर पर तो दर्जनो पुस्तकें निकल चुकी हैं।

कवि-परिचय

१—कबीरदास

महात्मा कबीरदास की जन्म-तिथि, माता-पिता, जाति, धर्म आदि के बारे में अभी तक कोई स्पष्ट बात मालूम नहीं हुई। 'भक्तिसिन्धु' के अनुसार उनका जन्म सं० १४५१ में तथा 'कबीर एण्ड दी कबीर पन्थ' के अनुसार १४५७ में माना जाता है। 'कबीर कसौटी' में उनका जन्म-संवत् १४५५ दिया गया है। जन्म-तिथि की ही तरह उनके माता-पिता का पता नहीं मिलता। जनश्रुति यह है कि वे किसी विधवा [illegible]ी के पुत्र थे। लोक-लाज से उसने उन [illegible]शी के लहरतारा [illegible]व के पास छोड़ दिया था। नीरू और नीमा नामक जुलाहा [illegible]त्ति वहाँ से निकले और उन्होंने इस परित्यक्त बालक को उठा लिया तथा अपने बालक की ही भाँति पालन-पोषण किया। जुलाहा-परिवार में पालित-पोषित होने के कारण वे जुलाहा कहलाये—'तू बामन मैं कासी का जुलाहा।'

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे! लेकिन वे अक्षर ज्ञान से बहुत आगे सच्चे अर्थों में ज्ञानी, कर्मठ, और उपासक थे। उनकी कविता में ज्ञान का प्रकाश पर्याप्त है। यह ज्ञान उन्होंने सत्संग और शास्त्र-चर्चा से प्राप्त किया था। उन्होंने विवाह किया था और उनकी पत्नी का नाम लोई था। लोई से उनके एक पुत्र और एक पुत्री हुए थे। उनके नाम थे—कमाल और कमाली।

कबीर रामानन्द के शिष्य थे। यद्यपि तुलसीदासजी और रैदासजी भी उन्हीं रामानन्द के ही शिष्य थे, तथापि कबीरदास ने अपना एक पृथक् पन्थ चलाया था, जिसमें निर्गुण-निराकार की उपासना प्रधान थी। कबीर ने राम-नाम की दीक्षा रामानन्दजी से ली थी किन्तु इनके राम तुलसी और रामानन्द के साकार अवतारी राम से भिन्न निर्गुण-निराकार राम थे। इधर कबीर के मुसलमान अनुयायी उन्हें सूफी फकीर शेख तक़ी के शिष्य मानते हैं और कहते हैं कि उन्होंने शेख तक़ी से दीक्षा ली थी।

कबीरदासजी ने कविता के लिये कविता नहीं लिखी। वे सत्य-शोधक थे। अतः उनकी विचारधारा सत्य की खोज में बही है। उसी का प्रकाश करना उनका ध्येय रहा है। उनकी विचारधारा का प्रवाह जीवन-धारा के प्रवाह से अलग नहीं है। उनकी प्रतिभा हृदय-समन्वित है। अतः उनकी बातों में एक ऐसी शक्ति है जो दूसरों पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। यद्यपि उन्होंने अक्खड़ ढङ्ग से बेलाग बातें कहीं हैं, तथापि उनकी बातों में एक ऐसा मिठास है जो खरी-खरी कहने वालों की ही बात में होता है। इसीलिये उनकी बहुत सी उक्तियाँ लोगों की जबान पर चढ़ गई हैं। हार्दिक उमङ्ग की लपेट में जो सहज विदग्धता उनकी उक्तियों में आ गई है, वह अत्यन्त भावापन्न है। वही उनकी का चमत्कार है।

कबीरदासजी ने अपनी उक्तियों पर बाहर-बाहर से अलङ्कारों का चढ़ाने का प्रयत्न नहीं किया। मानसिक कलाबाजी और कारीगरी वाली कला उनमें ढूँढ़ने से भी नहीं मिलेगी। संत-कवियों में कबीरदासजी का स्थान सर्वोच्च है। उनका काव्य मुक्तक क्षेत्र के अन्तर्गत है। उसमें भी उन्होंने कुछ ज्ञान पर कहा है, कुछ नीति पर। नानक, दादू, सुन्दरदास आदि निर्गुण भक्त-कवियों में सहज ही सबसे बढ़कर है। रहस्यवादी कवियों में भी उनका स्थान सबसे ऊँचा है। शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्हीं की कविताओं में मिलता है। उनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

दिनभर रोजा रहत है, राति हनत है गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुशी खुदाय॥
बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो बकरी को खात है, तिनको कौन हवाल॥
मूड़ मुंडाये हरि मिले, तो हर कोई लेय मुंडाय।
बार-बार के मूँड़ते, भेड़ न बैकुण्ठ जाय॥
जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, यह तत कथो गियानी॥

२—जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी अवध के जायस नामक स्थान पर आकर रहने लग गए थे। इसीलिए ये जायसी कहे जाने लगे। ९०० हिजरी अर्थात् सं० १५५१ इनका जन्म संवत् माना जाता है। अपने पद्मावत नामक ग्रंथ में उन्होंने स्वयं 'भा अवतार मोर नौ सदी' कह कर अपने इस जन्म संवत् की पुष्टि की है। इनका रचना-काल बाबर और शेरशाह का शासन-काल माना जाता है।

जायसी कुरूप और काने थे। उन्होंने स्वयं 'एक नयन कवि मुहमद गुनी' कह कर अपने काने होने का उल्लेख किया है। इसी तरह उन्हें बाँए कान से कम सुनाई भी देता था। कहा जाता है कि वे एक बार शेरशाह के दरबार में गए। शेरशाह उनके भद्दे चेहरे को देख कर हँस पड़े। जायसी ने बड़े शांत भाव से पूछा—'मोहिका हँससि कि कोहरहि ?' अर्थात् तुम मेरे ऊपर हँस रहे हो या मुझे बनाने वाले कुम्हार पर ? इस पर शेरशाह बड़ा लज्जित हुआ और उसने क्षमा माँगी।

जायसी एक किसान गृहस्थ के रूप में जायस में रहते थे। वे बड़े ईश्वर-भक्त और साधु प्रकृति के थे। जब वे खेतों में काम करते थे तब खाना वहीं मँगा लिया करते थे और जो भी आस-पास होता उसे बुलाकर उसके साथ खाते थे। अकेले खाना उन्हें अच्छा ही नहीं लगता था। कहा जाता है कि एक बार जब उन्हें आस पास कोई दिखाई न दिया। बहुत देर तक प्रतीक्षा करते रहे। अन्त में उन्हें एक कोढ़ी दिखाई दिया। जायसी ने उसको अपने पास बिठा लिया और खाना खाने लगे। उस कोढ़ी के कोढ़ चू रहा था और जब खाना [illegible] कोढ़ का [illegible] भी गिर जाता था जायसी ने उसकी चिंता नहीं की और उसे भी खाने लगे। इस पर उस कोढ़ी ने उनका हाथ पकड़ लिया। किन्तु जायसी ने [illegible] और [illegible] खा लिया। इसके बाद वह कोढ़ी [illegible] गया। इस घटना के बाद से ईश्वर-भक्ति की ओर उनका [illegible] बढ़ गया। जायसी के पुत्र थे, किन्तु वे किसी दुर्घटना में [illegible] तब से वे [illegible] में और भी अधिक [illegible] होकर फकीर की तरह रहने लगे।

प्रयत्न नहीं किया है। वे तो स्वाभाविक रूप से उनकी कविता में आ गये हैं और इससे उनके काव्य का सौंदर्य खिला है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार का प्रयोग जायसी ने बड़ी निपुणता से किया है। उनके युद्ध-वर्णन बड़े सजीव हैं। हिन्दी-भाषा का साहित्यिक ज्ञान न होने से उनकी भाषा में व्याकरण की अनेक अशुद्धियाँ पाई जाती हैं। इसी प्रकार हिन्दू-देवी-देवताओं का भी पूरा-पूरा ज्ञान न होने से उन्होंने कैलाश को स्वर्ग तथा इन्द्र का घर बता दिया है तथा हनुमानजी को शिवजी का सेवक कह दिया है। अत साधारण पाठक को य भूल खटकती हैं। फिर भी इस में कोई सन्देह नहीं कि पद्मावत एक उच्चकोटि का साहित्यिक ग्रन्थ है।

जायसी ने पद्मावती में रानी नागमती के विरह का जो वर्णन किया है वह हिन्दी साहित्य म बेजोड है। कवि ने बारहा महीना का वर्णन करके नागमती की विरहावस्था का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है और इस विरह-वर्णन के पीछे आत्मा और परमात्मा के वियोग की जो ध्वनि छिपी हुई है वह तो कहीं ही अलौकिक है। हिन्दी-साहित्य म अन्यत्र एक पतिव्रता का इतना पवित्र, इतना मार्मिक और इतना हृदयस्पर्शी वियोग-वर्णन कठिनाई स ही मिल सकेगा। इस प्रकार के स्थलो पर कवि की भाषा भी बडी सरस, मधुर और आकर्षक हो गई है। प्राकृतिक वस्तुओ के समन्वय से यह वियोग-वर्णन और भी ज्यादा चमत्कारपूर्ण और हृदयग्राही बन गया है। परिचित प्राकृतिक दृश्यो के साहचर्य द्वारा और कविता की वाणी द्वारा जो मर्मस्पर्शी प्रभाव प्राप्त होता है उसका अनुभव उनकी ओर संकेत करने मात्र से ही हो जाता है। इस प्रकार का सुन्दर संकेत इस बारह-मासा म देखिये

चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा। साजा विरह दुन्द दल बाजा॥
धूम, साम, धौरे घन धाए। सेत धजा बग पाँति देखाए॥
खड़ग बीजु, चमके चहुँ ओरा। बुन्द बान बरसहिं घहँ ओरा॥

जायसी ने अपनी भावुकता का बड़ा ही सुन्दर ... यह बना कर दिया है कि नागमती विरह-दशा में अप... जाती है। वह अपने को साधारण स्त्री के रूप ...

सामान्य स्वभाविक वृत्ति के कारण उसके वाक्य छोटे-बड़े सभी के हृदय को स्पर्श करने वाले बन गये हैं :

वाट अमूझ अथाह गंभीरी। जिउ बाउर भा फिरे भँभीरी ॥
जग जल बूढ़ जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक विनु थाकी ॥
जेठ जरे जगा चले लुवारा । उठहि ववण्डर परहि अंगारा ॥
उठे आगि औ आवे आँधी। नैन न सूझ, भरी दुख बाँधी ॥

३—सूरदास

महात्मा सूरदास की जन्म और मृत्यु तिथि के बारे में भिन्न-भिन्न मत हैं। उनका सही जीवन-वृत्त अब-तक भी मालूम नहीं हो सका है। उनका जन्म संवत् १५३५ और मृत्यु संवत् १६४२ के आस-पास माना जाता है। इसी प्रकार उनके जन्म-स्थान, माता-पिता, जाति, कुल, गोत्र आदि के बारे मे भी कोई निश्चित तथ्य प्राप्त नहीं हो सका है। यह सब अभी अनुसंधान का ही विषय बना हुआ है। कहा जाता है कि उन का मूल नाम सूरजदास था और सूरदास उपनाम। जब महात्मा वल्लभाचार्य से उनकी भेट हुई तब वे आगरा-मथुरा के बीचों-बीच यमुना के गऊ घाट पर रहा करते थे। महात्मा वल्लभाचार्य ने सूरदासजी से भगवान् की लीला का वर्णन करने के लिये कहा तो सूरदासजी ने विनय के दो पद गाये। इन पदों मे भक्त का दैन्य था, वल्लभाचार्यजी को वह अच्छा नहीं लगा और उन्होने भगवान् की लीला का वर्णन करने के लिये कहा। वल्लभाचार्यजी के इस प्रबोध से सूरदासजी को नवीन प्रेरणा मिली और उनकी रचना की धारा उसी दिशा में मुड़ गई।

महात्मा वल्लभाचार्यजी ने सूरदासजी को श्रीनाथजी के मन्दिर में कीर्त्तन करने का काम सौंपा। बस, यहीं कीर्त्तन करते-करते उन्होंने हजारों गीतों की रचना कर डाली जो सूरसागर में संग्रहीत किये गये हैं। कहा जाता है कि इन गीतों के कारण सूरदासजी की कीर्ति-पताका दूर दूर तक फहराने लगी। बादशाह अकबर के पास भी उनकी प्रशंसा की बात पहुँची और उसने इन्हें मिलने के लिये बुलाया। सूरदासजी ने उसे दो पद गाकर सुनाये। अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य दोनों से ही यह बात मालूम होती है कि सूरदास अन्धे थे। पता नहीं वे जन्मान्ध थे या

बाद में अन्धे हुए। जनश्रुति के अनुसार वे जन्मान्ध नहीं थे। उनके गीतों मे रूप-सौन्दर्य के जो चित्र हैं उन्हें देखकर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि वे जन्मान्ध रहे होंगे।

सूरदास हिन्दी के जयदेव और विद्यापति हैं। यद्यपि सूरदास का स्वर्गवास हुए शताब्दियाँ बीत चुकी हैं, तथापि उन्होंने जो कुछ गाया उसकी स्वर-लहरी अब-तक वायुमण्डल में व्याप्त है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनके बारे मे लिखा है—"जयदेव की देव-वाणी की स्निग्ध पीयूषधारा जो काल की कठोरता मे दब गई थी, अवकाश पाते ही लोक-भाषा की सरसता में परिणित होकर मिथिला की अमराइयों मे विद्यापति के कोकिल-कण्ठ से प्रकट हुई और आगे चलकर व्रज के करील-कुञ्जो के बीच मुरझाये मनो को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेम-लीला का कीर्तन कर उठीं, जिनमे सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झंकार अन्धे-कवि सूरदास की वीणा की थी।"

कृष्ण-भक्त कवियो के काव्य मे सूरदास के पद अपना सर्वोच्च स्थान रखते हैं। सूरदास पुष्टिमार्ग के प्रतिष्ठाता महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के शिष्य थे और उन्हीं की प्रेरणा से उन्होने भगवान् कृष्ण की लीला का वर्णन किया था। भगवान् कृष्ण के जीवन प्रसङ्गो को गीतों मे ढालकर उन्होंने बड़ा ही सरस और मधुर बना दिया है। सूरदास की दार्शनिक विचारधारा वही है जो महाप्रभु वल्लभाचार्यजी की थी। उन्होंने भगवान् की सगुण लीला के पद लिखे हैं।

उनकी कविता मे भक्ति, वात्सल्य और शृङ्गार की त्रिवेणी के दर्शन होते हैं। वे प्रेम के कवि हैं। उनका प्रेम ही भक्ति, वात्सल्य और शृङ्गार की तीन विभिन्न धाराओ से समान गति के साथ बहा है। प्रारम्भ में सूरदासजी की भक्ति दास्य भाव की थी। भगवान् को महान् और अपने को तुच्छ मानकर उन्होने बड़ी कातर वाणी मे विनय निवेदन किया था। यह भक्ति तुलसीदास की भक्ति से मिलती जुलती है। किन्तु महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क से वे श्रीकृष्ण की प्रेम-लीला के गायक बन गये। उनकी दास्य-भक्ति अब सख्य-भाव मे परिणित हो गई। सूर के विनय के पद एक आत्म-विस्मृत, आत्म-समर्पित, प्रेमोन्मत्त भक्त के हार्दिक

उद्गार हैं। वे अपने को अधम से अधम और पापी से पापी मानकर भगवान् की शरण में गये हैं—

पापी कौन बड़ो है मो ते, सब पतितन में नामी।
सूर पतित को ठौर कहाँ हैं, सुनिये श्रीपति स्वामी॥

सूरदास ने कृष्ण के प्रेममय जीवन के गीत गाए हैं। वे बाल-जीवन के सर्वोत्तम गायक, कवि और चित्रकार हैं। उनके पदों में बाल-भावना, बाल-रूप, बाल क्रीड़ा और बाल-व्यापार का जो मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है वह हिन्दी काव्य में ही नहीं अन्यत्र भी मुश्किल से मिलेगा। तुलसी जैसे महाकवि का बाल-लीला वर्णन भी सूर के आगे निस्तेज प्रतीत होता है। सूर के चित्रण में इतनी स्वाभाविकता है कि वह आँखों में रम जाता है। उन्होने वात्सल्य-भाव के आलम्बन (कृष्ण) और आश्रय (यशोदा) के अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग का जो चित्रण किया है उसे देखकर बरबस यह कहना पड़ता है कि उनमें जहाँ एक बालक के हृदय का स्पन्दन है, वहाँ माता के हृदय का स्पन्दन भी है।

श्रीकृष्ण के बाल्यजीवन के क्रीड़ा-कौतुक के साथ-साथ उनकी युवावस्था के प्रेम-प्रणय का भी उन्होंने मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। यद्यपि इस प्रेम-चित्रण के पीछे वल्लभाचार्य का भक्ति-दर्शन था तथापि उन्होंने इसमें जो तन्मयता दिखाई है उससे वह एक दम नया और निराला बन गया है। कृष्ण-राधा और कृष्ण-गोपियों का प्रेम आध्यात्मिक अर्थ में भगवान् का अपनी शक्ति और अपने भक्तों की आत्माओं से प्रेम है। लेकिन लौकिक अर्थ में वह मानव-हृदयों का ही प्रेम है। उनका चित्रण उन्होंने यथार्थवादी सच्चाई के साथ किया है। उनके वर्णन में शारीरिक स्पर्श अवश्य है लेकिन ग्राम्यता या अश्लीलता नहीं है। उनके विरह-गीत भी हिन्दी-साहित्य में अद्वितीय हैं। उनको देखकर तो हमें मीराँ की याद आ जाती है। जिस प्रकार मीराँ ने अपना हृदय ही पिघाल कर गीतों में उँडेल दिया है, उसी प्रकार सूर ने भी विरहिणी गोपिकाओं से एकरूप होकर अपने हृदय को पिघाल कर गीतों में उँडेल दिया है। सूर का एक विरह-गीत विरह की एक अनूभूति, एक-एक वेदना और एक-एक अनुभव से व्यञ्जित हुआ है। सूर ने विरह की एक-एक

स्थिति को लेकर अनेक पद गाये हैं। तुलसीदास ने भी अच्छे गीत लिखे हैं लेकिन उनमें और सूर में यही अन्तर है कि सूरदास के पास वीणा थी, तुलसीदास के पास लेखनी। सूर गायक थे, तुलसीदास कवि, तुलसीदास के पास जीवन का समूचा चित्र था, सूरदास के पास केवल प्रेम-पक्ष। महान् कवि होते हुए भी तुलसीदास में गीत की वह कोमलता नहीं, जो सूरदास में है। सूरदास के गीत हृदय को तड़पा देते थे। सूर के पदों से रस छलका पड़ता है।

सूरदास के ग्रन्थों में सूरदास, सूर-सारावलि और साहित्य-लहरी प्रमुख हैं। उनके लगभग छह हजार पद ही अब प्राप्त हैं। उनका सारा काव्य मुक्तक है। उनकी भाषा ब्रज है। उसमें सरसता और व्यंजकता के साथ स्निग्धता और धारावाहिकता भी है। उन्होंने साधारण बोलचाल के शब्दों का ही प्रयोग किया है। फिर भी कहीं-कहीं फारसी और पंजाबी आदि के शब्दों का प्रयोग मिल जाता है। अन्त्यानुप्रास के लिये जहाँ-तहाँ सूरदासजी ने शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा और उनका रूप बदल डाला है। फिर भी उनकी भाषा ब्रजभाषा का उज्ज्वलतम नमूना है।

सूर का एक विरह गीत देखिये .

दिखियत कालिन्दी अति कारी।
अहो पथिक कहियो उन हरिसों, भई विरह जुर जारी॥
मनु पर्यंक ते परी धरनि धुकि तरङ्ग तलफ तनु भारी।
तट बारू उपचार चूर जल मनो प्रस्वेद पनारी॥
बिगलित कच कुस कास पुलिन पर पङ्कु जु कज्जल मारी।
मनहुँ भ्रमरि भ्रमति फिरती हैं, दिसि-दिसि दीन दुखारी॥
निसिदिन चकई ब्याज बकति है, प्रेम मनोहर हारी।
'सूरदास' प्रभु जोई जमुन गति सोई गति भई हमारी॥

४—तुलसीदास

सूरदास की भाँति महाकवि तुलसीदासजी का भी प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्राप्त नहीं है। कहा जाता है कि उनका जन्म सवत्

होगा और मृत्यु संवत् १६८० में। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा प्रचलित है :

संवत सोलह सौ असी, असी गङ्ग के तीर।
श्रावण श्यामा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर।।

इसी प्रकार उनके जन्म के सम्बन्ध में यह दोहा प्रचलित है :

पंद्रह सौ चौवन विषे, कलिंदी के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी धरयो शरीर ।।

पता नहीं ये दोनों तिथियाँ कहाँ तक सत्य हैं।

उनके जन्म-स्थान के विषय में भी मत-भेद है। कोई सोरों को उनका जन्म-स्थान बताते हैं और कोई राजापुर को। कोई कहते हैं कि वे पैदा तो सोरों में हुए थे लेकिन बाद में राजापुर रहने चले गये थे। किन्तु इतना सत्य है कि उनका जन्म दरिद्र कुल में हुआ था। अभुक्त नक्षत्र में जन्म होने के कारण माता-पिता ने उन्हें भाग्य के भरोसे छोड़ था। द्वार-द्वार भटकते और माँगते खाते ही उनका बाल्यकाल था। अपने बाल्यकाल के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है :

बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हों चारिफल चारिहिं चनक को।

बाल्यवस्था में उनका नाम तुलाराम था, लेकिन लोग रामबोला भी कहते थे। अनुमान है कि उनके गुरु का नाम 'नरहरिदास' होगा। कहा जाता है कि जब उनका विवाह हो गया तो वे अपनी स्त्री में बहुत अधिक अनुरक्त रहने लगे। एक दिन जब वह बिना कहे-सुने ही अपने पिता के घर चली गई तो ये उससे मिलने के लिये रात में ही चल पड़े और बाढ़ से उन्मत्त नदी को पार कर ससुराल पहुँच गये। इतनी रात गये इनको आया देखकर पत्नी ने भर्त्सना भरे शब्दों में कहा :

अस्थि चर्ममय देह यह, तामहँ ऐसी प्रीति।
होती जो श्रीराम महँ, होति न तो भव भीति।

बस, ये शब्द तुलसीदासजी को चुभ गये और वे विषय-वासना से विरक्त होकर साधु बन गये। तुलसीदासजी ने यद्यपि सारे देश की ही यात्रा की, तथापि उनका अधिक समय काशी और अयोध्या में बीता।

काशी में संवत् १६३१ में उन्होंने रामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की। उनके प्रबन्ध-काव्य में रामचरितमानस, पार्वतीमङ्गल, जानकीमङ्गल बरवै-रामायण प्रमुख हैं; गीति-काव्य में रामगीतावली, कृष्णगीतावली और विनय पत्रिका तथा मुक्तक-काव्य में दोहावली और सतसई प्रमुख हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी एक सच्चे भक्त और कवि थे। वे एक राष्ट्रीय महापुरुष और द्रष्टा थे। उनकी रचनायें भक्ति-भावना से तो ओत-प्रोत हैं ही उनमें समाज, देश और विश्व के कल्याण की भावना भी कूट-कूट कर भरी हुई है। उन्होंने स्वान्तः सुखाय लिखा था। उनका काव्य, काव्य-कला की दृष्टि से खरा होने के साथ-साथ लोक-जीवन को भी ऊंचा उठाने वाला था। उनके रामचरित-मानस की अनेक चौपाइयाँ एवम् दोहे साधारण से साधारण व्यक्ति के मुँह में भी सुनने को मिल जायेंगे। वह एक ऐसा नीति-काव्य है जो हमारे समाज को पिछली तीन-चार शताब्दियों में नैतिक-जीवन की दिशा दिखाता रहा है। आज रामचरित-मानस हमारा प्रमुख धर्मग्रन्थ और राम का नाम हमारा तारक-मन्त्र बन गया है। इन सबके मूल में तुलसीदास का पवित्र जीवन, भक्ति-भावना, कड़ी साधना और लोक-कल्याण की जबरदस्त इच्छा थी। रामचरित-मानस के रूप में उन्होंने आर्य-संस्कृति की ही प्रतिष्ठा की है। इसमें उन्होंने एक ऐसे आदर्श-समाज का चित्र खींचा जो हमारी संस्कृति का सबसे सुन्दर और सबसे ऊँचा स्वरूप है।

परिवार के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों से लेकर राजा-प्रजा तक के सम्बन्धों का एक आदर्श स्वरूप रामचरित मानस में तुलसीदासजी ने खींचा है। एक ओर समाज की बुराइयों को अपने नग्न-रूप से प्रस्तुत कर दूसरी ओर उन्होंने उस मिटाने की जबरदस्त प्रेरणा और बल भरने का भी प्रयत्न किया है। भारतीय संस्कृति के सारक, लोक-नायक और लोक-नीति के प्रतिष्ठाता के रूप में उनकी ख्याति भारत में ही नहीं, विश्व के साहित्यकारों में अजर-अमर रहेगी।

हिन्दी-साहित्य में वे बेजोड़ और बे-मिसाल हैं यदि कोटि में किसी को रखा जा सकता है तो सूरदास को। दोनों पद

कवि और उच्च कोटि के भक्त हैं। दोनों ही सगुण साकार ब्रह्म के उपासक, गायक और कवि हैं। सूरदास कृष्ण काव्य के सर्व-श्रेष्ठ कवि हैं तो तुलसीदास राम-काव्य के। किसी भावुक कवि ने यमक के लोभ से ही 'सूर-सूर तुलसी ससी, उड़गन केशवदास' कहकर सूरदास को सूर्य और तुलसी को चन्द्रमा कह दिया है, किन्तु वास्तव में तो काव्य-जगत् के सूर्य तुलसीदास ही हैं। सूर ने जीवन के प्रेम-पक्ष को ही देखा और कविता में चित्रित किया, लेकिन तुलसीदास ने तो जीवन का एक-एक पक्ष अपनी प्रतिभा से जगमगा दिया है। सूरदास केवल प्रेम के, सौंदर्य के कवि हैं, किन्तु तुलसीदास सौंदर्य के साथ-साथ सत्यं और शिवं के कवि हैं। तुलसी का कवि-कौशल चरम-सीमा पर पहुँचा हुआ दिखाई देता है। उन्होने राम-कथा के माध्यम से एक ऐसे जीवन का इतिहास लिख दिया है जो युगों तक मानव-समाज को आलोकित करता रहेगा।

तुलसीदास ने उस समय प्रचलित् काव्य की तीनों शैलियों को अपनाया। प्रबन्ध-काव्य की शैली में उन्होंने रामचरित-मानस, वरवै-रामायण, जानकी-मङ्गल, पार्वती-मङ्गल आदि की रचना की। गीति-काव्य की शैली में उन्होंने विनय पत्रिका, रामगीतावली, कृष्णगीतावली आदि की रचना की तथा मुक्तक-काव्य की शैली में कवितावली, दोहावली वैराग्य-सन्दीपनी आदि की। इन तीनों शैलियों पर उनका जबरदस्त अधिकार उनकी उच्च-कोटि की प्रतिभा का परिचायक है। उन्होंने सभी रसों के चित्रण में सफलता प्राप्त की है। उनका प्रकृति-वर्णन भी बड़ा सजीव और प्रेरक है। उन्होंने यद्यपि अवधि-भाषा में रामचरितमानस की रचना की है, तथापि व्रज-भाषा पर भी उनका उतना ही अधिकार है। इस प्रकार क्या कला-पक्ष और क्या भाव-पक्ष दोनों ही क्षेत्रों में उनकी समान गति है। दोनों को उन्होंने अपने पावन स्पर्श से जगमगा दिया है। उनका एक गीत देखिए :

हाथ मीजिवो हाथ रह्यो।
लगी न संग चित्रकूटहिं ते, ह्याँ कह जात वह्यो।
पति सुरपुर, सिय राम लखन वन, मुनि व्रत भरत लह्यो॥

हौं रहि घर मसान पावक ज्यों, चाहति मृतक दह्यो ।
मेरोइ हिय कठोर करिबे कहँ, विधि कहुँ कुलिस लह्यो ॥

५—मीराँबाई

मीराँबाई चोरडिया मेडता के राठौड दूदाजी के पुत्र रत्नसिंह की पुत्री थी। इनका जन्म संवत् १५५५ माना जाता है। इनका विवाह मेवाड के वीर सिसोदिया राणा साँगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ था। लेकिन वे तो कृष्ण के रंग में रंग गई थी। उन्हें ही अपना पति, प्रभु, सर्वस्व-मान चुकी थी। अतः कृष्ण-भक्ति में ही तल्लीन रहती थी। राणा ने गृहस्थी के काम-काज में प्रवृत्त करने के लिए काफी प्रयत्न किया, कष्ट भी दिया लेकिन सब निष्फल। राणा के भेजे हुए साँप मीरां के गले में हार बन गये और जहर का प्याला अमृत। कुछ समय बाद जब राणा की मृत्यु हो गई तो रहा सहा बन्धन भी समाप्त हो गया। वे मुक्त रूप से भक्ति-वैराग्य और ज्ञान की त्रिवेणी में स्नान करने लगी। उस युग के सभी महान् भक्तों और सन्तों के सम्पर्क में वे आईं। तुलसीदासजी से वे मिली और कहा जाता है कि भक्त रैदास तो उनके गुरु ही थे। उन्होंने स्वयं भी अपने एक पद में लिखा है

'गुरु मिलिया रैदासजी दीन्ही ज्ञान की गुटकी।'

कहते हैं कि उन्होंने अपनी पारिवारिक समस्या तुलसीदासजी को एक पत्र द्वारा लिख भेजी थी। तुलसीदासजी ने उनके उत्तर में उनको लिखा था :

जाके प्रिय न राम-वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कन्त ब्रज बनितान भये मुद मंगलकारी ॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अञ्जन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित, पूज्य प्राण ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो ।

यह भी कहा जाता है कि मीराँ द्वारका चली गई थीं और अन्तिम समय तक वहीं रहीं। वहाँ वे रणछोड़जी की पुजारिन वन गईं और अन्त में उन्हीं की मूर्ति में समा गईं।

मीराँ वैष्णव-भक्ति सम्प्रदाय के सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास आदि कृष्ण-भक्त कवियों में तो नहीं थीं, तथापि प्रणय-निवेदन में उनसे किसी प्रकार कम नहीं थीं। मीराँ पर कवीर, दादू, रैदास आदि निर्गुण सन्त-कवियों की वाणी का काफी प्रभाव था।

मीराँ कृष्ण की भक्त थीं। यद्यपि उनका विवाह राणा के साथ हुआ था तथापि उन्होंने अपने प्राणों में तो कृष्ण को ही बैठा रखा था। वही ना पति और सर्वस्व था :

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई॥

जब लौकिक दृष्टि से वे विधवा हो गईं तब भी वे अपने को विधवा नहीं मानती थीं। उनकी उपासना माधुर्य-भाव की थी। वे कृष्ण की पति या प्रियतम के रूप में आराधना करती थीं। यही कारण है कि उनके गीतों में विरह की वेदना और प्रेम की पीड़ा बड़ी तीव्र है। वे भगवान् के प्रति अपने प्रेम को लौकिक प्रतीकों के द्वारा ही व्यक्त करती थीं। उनकी विरह-वेदना यद्यपि उस परोक्ष-सत्ता के प्रति ही निवेदित है तथापि उसमें लौकिक-तीव्रता है। मीराँ भक्त अवश्य थीं लेकिन तुलसी और सूर की तरह भगवान् की दास या सखा बनने वाली नहीं थीं। उन्हें तो अपने प्रभु की प्रणयिनी बनकर रहना ही ज्यादा पसन्द था।

मीराँ के विरह-गीतों में ऐसी करुणा है जो पत्थर के प्राणों को भी पिघला देती हैं। उनकी कविता अनुभूति की कविता है, हृदय की कविता है। वह जितनी ही सरल है उतनी ही मर्मस्पर्शी है। उनके प्रेम में जो मर्मस्पर्शी वेदना है, हृदय में जो विकलता है वह अन्यत्र कठिनाई से ही मिलेगी। यह कविता के रूप में गाने वाली गायिका है, विरहणी है, राधा है। राधा उनकी भक्ति का आध्यात्मिक आदर्श है। उनकी भक्ति में प्रणय की सभी अनुभूतियाँ समा गई हैं। उनकी कविता कल्पना का

गिलाम न..। वह तो यथार्थ की अनुभूति से प्रतिध्वनित है। उसमें अन य प्रेमामृत है।

मीरां ने माता की भाषा राजस्थानी है। राजस्थानी भाषा वार का य की भाषा रही है। नारि मीरां की मधुर कोमल भावना ने उस भाषा को भी अपने अनुकूल बना लिया है। वह नारी थी, अन तारा स्वभाव के अनुरूप उनकी कविता में सरसता और सरलता का सागर लहराता हुआ दिखाई देता है। गुजरात में जाकर रहने से उनके गानों पर गुजराती का भी प्रभाव पड़ा है। मीरां का एक पद देखिये

भज मन चरण कँवल अविनाशी।
ज ताई दीस धरणि गगन बिच, त ताइ सब उठि जासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिये करवत कासी ॥१॥
इस देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी।
यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड्याँ उठ जासी ॥२॥
कहा भयो है भगवा पहिर्यां, घर तज भये संन्यासी।
जोगी होय जुगत नहि जाना, उलट जनम फिर आसी ॥३॥
अरज करूँ अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी ॥४॥

६—नरोत्तमदास

नरोत्तमदासजी का जन्म सं० १६ २ में सीतापुर जिले के बाड़ी नामक कस्बे में हुआ था। इनके माता पिता, जाति-पाँति और वंश-परम्परा के संबंध में कुछ विशेष मालूम नहीं हुआ है। उनके दो काव्य ग्रन्थ हैं—सुदामा चरित्र और ध्रुव चरित्र। इनमें से ध्रुव-चरित्र अभी तक अप्राप्य बना हुआ है। फिर भी अकेला सुदामा चरित्र ही इतना सुन्दर प्रबन्ध-काव्य है कि वह हिन्दी के अमूल्य ग्रन्थों में गिना जा सकता है। इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण और सुदामा का आदर्श मित्रता तथा सुदामा की दीन दशा का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है।

नरोत्तमदासजी की भाषा बड़ी परिमार्जित और माधुर्य गुण-सम्पन्न है। उसमें बड़ी सरसता है और सरलता है। कविता में प्रवाह भी इतना

यह भी कहा जाता है कि मीराँ द्वारका चली गई थीं और अन्तिम समय तक वहीं रहीं। वहाँ वे रणछोड़जी की पुजारिन बन गई और अन्त में उन्हीं की मूर्ति में समा गईं।

मीराँ वैष्णव-भक्ति सम्प्रदाय के सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास आदि कृष्ण-भक्त कवियों में तो नहीं थीं, तथापि प्रणय-निवेदन में उनसे किसी प्रकार कम नहीं थीं। मीराँ पर कबीर, दादू, रैदास आदि निर्गुण सन्त-कवियों की वाणी का काफी प्रभाव था।

मीराँ कृष्ण की भक्त थीं। यद्यपि उनका विवाह राणा के साथ हुआ था तथापि उन्होने अपने प्राणों में तो कृष्ण को ही बैठा रखा था। वही का पति और सर्वस्व था :

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई॥

जब लौकिक दृष्टि से वे विधवा हो गईं तब भी वे अपने को विधवा नहीं मानती थीं। उनकी उपासना माधुर्य-भाव की थी। वे कृष्ण की पति या प्रियतम के रूप में आराधना करती थीं। यही कारण है कि उनके गीतों में विरह की वेदना और प्रेम की पीड़ा बड़ी तीव्र है। वे भगवान् के प्रति अपने प्रेम को लौकिक प्रतीकों के द्वारा ही व्यक्त करती थीं। उनकी विरह-वेदना यद्यपि उस परोक्ष-सत्ता के प्रति ही निवेदित है तथापि उसमें लौकिक-तीव्रता है। मीराँ भक्त अवश्य थीं लेकिन तुलसी और सूर की तरह भगवान् की दास या सखा बनने वाली नहीं थीं। उन्हें तो अपने प्रभु की प्रणयिनी बनकर रहना ही ज्यादा पसन्द था।

मीराँ के विरह-गीतों में ऐसी करुणा है जो पत्थर के प्राणों को भी पिघला देती हैं। उनकी कविता अनुभूति की कविता है, हृदय की कविता है। वह जितनी ही सरल है उतनी ही मर्मस्पर्शी है। उनके प्रेम में जो मर्मस्पर्शी वेदना है, हृदय में जो विकलता है वह अन्यत्र कठिनाई से ही मिलेगी। यह कविता के रूप में गाने वाली गायिका है, विरहणी है, राधा है। राधा उनकी भक्ति का आध्यात्मिक आदर्श है। उनकी भक्ति में प्रणय की सभी अनुभूतियाँ समा गई हैं। उनकी कविता कल्पना का

मिलाप नहीं। वह तो यथार्थ की अनुभूति से प्रतिध्वनित है। उसमें अनन्य प्रेमाभक्ति है।

मीरां के गीतों की भाषा राजस्थानी है। राजस्थानी भाषा वीरकाव्य की भाषा रही है। लेकिन मीरां की मधुर कोमल भावना ने उस भाषा को भी अपने अनुरूप बना लिया है। वह नारी थी, अतः नारी स्वभाव के अनुरूप उनकी कविता में सरसता और सरलता का सागर लहराता हुआ दिखाई देता है। गुजरात में जाकर रहने से उनके गीतों पर गुजराती का भी प्रभाव पड़ा है। मीरां का एक पद देखिए :

भज मन चरण कंवल अविनाशी।
जेताई दीसे धरणि गगन बिच, ते ताईं सब उठि जासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हें, कहा लिये करवत कासी ॥१॥
इस देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी।
यो संसार चहर की बाजी, सांझ पड्यां उठ जासी ॥२॥
कहा भयो है भगवा पहरियां, घर तज भए संन्यासी।
जोगी होय जुगत नहिं जानी, उलट जनम फिर आसी ॥३॥
अरज करे अबला कर जोरे श्याम तुम्हारी दासी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फांसी ॥४॥

६—नरोत्तमदास

नरोत्तमदासजी का जन्म सं० १६०२ में सीतापुर जिले के बाड़ी नामक कस्बे में हुआ था। इनके माता-पिता, जाति-पांति और वंश-परम्परा के संबंध में कुछ विशेष मालूम नहीं हुआ है। उनके दो काव्य ग्रन्थ हैं—सुदामा चरित्र और ध्रुव चरित्र। इनमें से भी ध्रुव-चरित्र अभी तक अप्राप्त बना हुआ है। फिर भी अकेला सुदामा-चरित्र ही इतना सुन्दर प्रबन्ध-काव्य है कि वह हिन्दी के अमूल्य ग्रन्थों में गिना जा सकता है। इस ग्रंथ में श्रीकृष्ण और सुदामा की आदर्श मित्रता तथा सुदामा की दीन दशा का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है।

नरोत्तमदासजी की भाषा बड़ी परिमार्जित और प्रसाद-गुण-सम्पन्न है। उसमें बड़ी सरसता है और सरलता है। कविता में प्रवाह तो इतना

सुन्दर है कि एक भी शब्द निरर्थक प्रतीत नहीं होता और मन उस धारा में बहे बिना नहीं रहता । उनकी भाव-व्यञ्जना भी कमाल की है । सुदामा-चरित्र एक खण्ड-काव्य है । कृष्ण-सुदामा की मित्रता की कथा के आधार पर कवि ने प्रबन्ध-काव्य की ऐसी सुन्दर योजना की है कि कोई भी व्यक्ति भाव-धारा में बह बिना नहीं रहता । अलंकारों का प्रयोग बड़ा स्वाभाविक है। उससे कविता के सौन्दर्य की वृद्धि हुई है। उन्होंने दोहा, कविता और सवैया में ही इस ग्रंथ की रचना की है लेकिन इन छंदों पर उनका अधिकार भी आश्चर्यजनक है । उनके एक सवैये में सुदामा की स्त्री द्वारा वर्णित, अपनी दीन दशा का चित्र देखिये :

कोदो सवाँ जुरतो भरि पेट तो चाहति ना दधि दूध मठौती ।
सीत व्यतीत भयो सिसियात ही हौं हठती पै तुम्हें न हठौती ।।
जो जानती न हितू हरि सो तो मैं काहे को द्वारिका पेलि पठौती ।
या घरते कबहूँ न गयो पिय टूटो तवो अरु फूटी कठौती ।।

७—रसखान

रसखान दिल्ली के पठान सरदार थे। वे शाही-परिवार के व्यक्तियों में से थे, लेकिन कृष्ण-भक्ति का उनके ऊपर ऐसा रङ्ग चढ़ा कि शाही-परिवार का वैभव-विलास छोड़ कर स्वामी विठ्ठलनाथ की शरण में गये और उनके शिष्य बनकर कृष्ण-भक्ति में तल्लीन हो गये। कहा जाता है कि वे एक बनिये के लड़के पर आसक्त थे। पीछे से उनका यह प्रेम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेम में बदल गया । कोई यह भी कहते हैं कि वे एक ऐसी स्त्री से प्रेम करते थे जो इनको नहीं चाहती थी । इसी कारण विरक्त होकर ब्रज आ गये थे। कुछ भी हो, इतना तो सत्य है कि वे एक रसिक व्यक्ति थे। इनकी कृतियों का रचना-काल सं० १६८० से माना जाता है। इनके दो ग्रन्थ प्रमुख हैं—'सुजान-रसखान' और 'प्रेम-वाटिका'। प्रेम-वाटिका का रचना-काल सं० १६७१ माना जाता है। रसखान ने मुसलमान होते हुए भी ब्रज-भाषा में कृष्ण-भक्ति की जो माधुरी घोली है, वह अपूर्व है । उनकी भाषा बड़ी सरस, मधुर और प्रवाहपूर्ण है । अलंकारों का प्रयोग भी बड़ा स्वाभाविक है । इनका निम्नलिखित पद तो

साधारण हिन्दी जानने वाले व्यक्ति के मुँह से भी सुनाई दे जायगा :

मानुष हो तो वही रसखान , बसौं ब्रज-गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरन्दर धारन ।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन ॥

प्रेम वाटिका में दोहे हैं । उनका एक दोहा देखिए

प्रेम फाँस सो फँसि मरे, सोई जिये सदाहि ।
प्रेम मरम जाने बिना, मरि कोउ जीवत नाहिं ॥

८—रहीम

रहीम कवि का पूरा नाम है—अब्दुर्रहीम खानखाना । ये प्रसिद्ध मुगल-सरदार बैरमखाँ के पुत्र और अकबर के दरबारी कवि थे । इनका जन्म सं० १६१० में हुआ था । ये अरबी-फारसी के साथ संस्कृत-भाषा के भी बड़े विद्वान् थे । ये हमेशा विद्वानों से घिरे रहते थे और दान-वीरता में तो अपने समय के कर्ण ही बन जाते थे । इतने उदार हृदय और दानी होने पर भी इनकी विनयशीलता कमाल की थी । इन्होंने गङ्ग कवि को एक बार छत्तीस लाख रुपये दान में दिये थे । समय के फेरे से बादशाह जहाँगीर इन पर क्रुद्ध होगया और उसने इन्हें जेल में डाल दिया । इनकी सारी सम्पत्ति भी जब्त करली । जब मुक्त हुए तो बड़ी गरीबी का जीवन बिताना पड़ा । लेकिन फिर भी लोग उनका पीछा नहीं छोड़ते थे । इन माँगने वालों से उन्हें अन्त कहना पड़ा :

ये रहीम दर दर फिरे, माँगि मधुकरी खाहिं ।
यारो यारी छोड़िये, अब रहीम वे नाहिं ॥

रहीम का देहान्त सं० १६८३ में हुआ । इनके लिखे ग्रन्थों में 'रहीम-सतसई', 'बरवै', 'नायिका-भेद', 'शृङ्गार-सोरठा' 'मदनाष्टक' और 'रासपंचाध्यायी' बताये जाते हैं । भाषा पर रहीम का पूरा अधिकार था । उन्होंने ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं में ही काव्य-रचना की है । उसके दोहे साधारण जनता में बड़े लोकप्रिय हुए हैं । उनमें रहीम के हृदय

की पवित्रता, गहरा अनुभव और नैतिक मूल्य समाये हुए हैं। रहीम के कुछ दोहे देखिये :

रहिमन वे नर मर चुके जो कहुँ माँगन जाँहि।
उनते पहिले वे मुए जिन मुख निकसत नाँहि॥
सर सूखे पंछी उड़े औरे सरन समाँहि।
दीन मीन विन पंख के, कहु रहीम कहँ जाँहि॥
रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखो गोय।
सुनि इठले है लोग सव, वाँटि न लें है कोय॥

९— केशवदास

महाकवि केशवदास का जन्म सं० १६१२ में ओरछा के पास किसी ग्राम में हुआ था। वे सनाढ्य जाति के विद्वान् पण्डित काशीनाथ के सुपुत्र थे। काशीनाथजी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे और उन्होंने शीघ्र-वोध की रचना की थी। उनके कुल के सभी लोग संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। अतः हिन्दी वोलना भी उनके वंश में तुच्छ वात मानी जाती थी :

भाषा वोलि न जानही, जिनके कुल के दास।
तिन भाषा कविता करी, जड़मति केशवदास॥

केशवदास ओरछा, (बुन्देल-खण्ड) निवासी थे। मधुकर शाह के पुत्र दूलहराय के भाई राजा इन्द्रजीतसिंह के वे आश्रित राज-कवि थे। राजा इन्द्रजीतसिंह ने इनका वड़ा मान-सम्मान किया था। इन्हें उनसे २२ ग्राम जागीर में मिले थे। समृद्धि की झलक इस छन्द में दिखाई देती है :

भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै जुग जुग,
केशवदास जाके राज राज सो करत है।

केशवदास राजा इन्द्रजीत सिंह के तो राज-कवि थे ही वीरसिंह देव, सम्राट् जहाँगीर और वीरवल के भी कृपापात्र थे। वीरसिंह की प्रशंसा में उन्होंने 'वीरसिंहदेव-चरित' तथा जहाँगीर की प्रशंसा में 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' की रचना की थी। कहते हैं कि इन्हें पुरस्कार

के रूप में अपने आश्रयदाताओं से जितना रुपया मिला था, उतना उस समय के किसी भी कवि को नहीं मिल पाया था। कहा जाता है कि इन्हीं के प्रयत्न से बीरबल ने अकबर द्वारा इन्द्रजीतसिंह पर किये हुए एक करोड़ रुपये के जुर्माने को माफ करवा दिया था। बीरबल ने भी इन्हें विपुल धनराशि दी थी। इन्द्रजीतसिंह तो इन्हें अपना गुरु मानता था। उसी के लिए इन्होंने कविप्रिया लिखी थी। ये बड़े रसिक व्यक्ति थे। बुढ़ापे पर पश्चात्ताप करते हुए इन्होंने लिखा है :

केसव केसनि अस करी, जस अरिहूँ न कराहिं।
चंद्र बदनि मृग-लोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं।

केशवदासजी के लिखे हुए ग्रन्थों में रतन-बावनी, रसिक-प्रिया, कवि प्रिया, राम-चन्द्रिका, बीरसिंह-देव चरित, विज्ञान-गीता और जहाँगीर-जस चन्द्रिका प्रमुख हैं। रतन-बावनी प्रारम्भिक रचना प्रतीत होती है। रसिक-प्रिया और कवि-प्रिया काव्य-शास्त्र की पुस्तकें हैं जो रायप्रवीन नामक वेश्या को काव्य की शिक्षा देने के लिए उन्होंने लिखी थीं। इन ग्रन्थों पर वाल्मीकि रामायण, प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक आदि का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। रामचन्द्रिका में रामचरित-मानस की भाँति रामचन्द्र के जीवन की कथा लिखी गई है। काव्य-रचना और पाण्डित्य की दृष्टि से केशवदास बेजोड़ हैं। उनके संवाद सचमुच बड़े सुन्दर बन पड़े हैं। किन्तु उनमें हृदय-तत्व की प्रधानता नहीं है। बुद्धितत्व की अधिकता से उनके काव्य में अच्छी सरसता नहीं आई है।

उनकी भाषा क्लिष्ट और संस्कृत-गर्भित है कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे पूरा का पूरा वाक्यांश संस्कृत का ही आ गया है। उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। उन्होंने संयुक्ताक्षरों का भी प्रयोग किया है और लघु को दीर्घ तथा दीर्घ को लघु करके शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है। किन्तु कुल मिलाकर उनकी भाषा साहित्यिक, रोचक और माधुर्यपूर्ण है। उनके कथोपकथन तो सचमुच बड़े सुन्दर हैं। वे नाटकीय शैली में लिखे गए हैं। जहाँ तक छन्द और अलंकारों का सम्बन्ध है, केशवदासजी का उन पर पूर्णाधिकार है।

[illegible] के [illegible] छन्द को बार-बार बदला है, इसी प्रका[illegible] अलङ्कारों का भी [illegible] उन्होंने [illegible] किया है इससे उनकी कवित[illegible] अनेक स्थानों पर अलङ्कार और छन्द के बोझ से दबती हुई प्रतीत होती है। यह देखकर [illegible] कहते हैं कि रामचन्द्रिका छन्दों का अजायबघर और अलंकारों की प्रदर्शिनी है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि केशवदासजी कला-पक्ष में आचार्य है[illegible] किन्तु उनकी कविता में प्रकृति-चित्रण तथा मानव-जीवन के अध्ययन का अभाव अवश्यक खटकता है। यदि बुद्धि-तत्त्व के साथ हृदय-तत्त्व का भी मेल बैठता तो उनकी समता करने वाला कठिनाई से ही मिलता। उनकी कविता का एक उदाहरण देखिये :

कुन्तल ललित नील भृकुटी, धनुष, नैन,
कुमुद कटाक्ष बान सबल सदाई है।
सुग्रीव सहित तार अङ्गदादि भूषनन,
मध्यदेश केसरी सुगज गति भाई है।
विग्रहानुकूल सब लक्ष लक्ष ऋच्छ बल,
ऋच्छराज-मुखी मुख केसोदास गाई है।
रामचन्द्रजू की चमू राजश्री विभीषन की,
रावन की मीचु दर कूच चलि आई है॥

१०—बिहारीलाल

महाकवि बिहारीलाल का जन्म ग्वालियर के पास बसुवा-गोविन्दपुर में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये चौबे ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम केशोराय था। इनकी बाल्यावस्था बुन्देलखण्ड में और यौवन मथुरा में, जहाँ कि इनकी ससुराल थी, बीता। इन्होंने अपने सम्बन्ध में लिखा है :

प्रकट भये द्विजराज कुल, सुबस भये ब्रज आय।
मेरो हरो कलेस सब, केसो केसोराय॥
जन्म ग्वालियर जानिये, खण्ड बुन्देले बाल।
तरुनाई आई सुखद, मथुरा बसि ससुराल॥

बिहारी की कर्मभूमि जयपुर थी। वे जयपुर के राजा जयसिंह के

राज-कवि थे। ऐसा प्रतीत होता है कि युवावस्था के बाद ही वे जयपुर आकर रहने लग गये होंगे। कहा जाता है कि उन्हें एक-एक दोहे पर एक-एक स्वर्ण मुद्रा मिलती थी। एक बार राजा जयसिंह अपनी नव परिणीता रानी के अनुराग में राजकाज भूल [illegible] अन्तःपुर में ही रहने लगा। तब बिहारीलाल ने ही यह दोहा उनके [illegible] था

नहिं पराग, नहिं मधुर [illegible] विकास यहि काल।
अली कली ही [illegible] बंध्यो, आगे कवन हवाल॥

उनकी इस उक्ति ने [illegible]। राजा को जैसे इस दोहे ने झकझोर कर जगा दिया। [illegible] ने बाहर आया और पूर्ववत् कार्य करने लग गया।

बिहारी के केवल [illegible] एक संग्रह बिहारी-सतसई के नाम से मिलते हैं [illegible] ने हो उन्हें सदा के लिए हिन्दी साहित्य में अमर [illegible] सम्बन्ध में यह दोहा बड़ा प्रसिद्ध है

११—भूषण

कवि भूषण का जन्म कानपुर जिले के तिकवापुर ग्राम में स० १६६२ में हुआ था। उनके पिता का नाम था रत्नाकर त्रिपाठी। भूषण के प्रथम आश्रयदाता चित्रकूट के राजा रुद्र थे। उन्होंने इनको 'भूषण' की उपाधि से विभूषित किया था। यह उपाधि इतनी प्रचलित हो गई कि आज उनके असली नाम का मालूम करना ही कठिन हो रहा है। अब तक भी यह मालूम नहीं हो सका है कि उनका वास्तविक नाम क्या था। कहा जाता है कि भाभी के व्यंग से व्यथित होकर वे घर छोड़ कर चले गये थे। एक दिन दाल में नमक ज्यादा हो जाने पर भूषणजी ने भाभी से कुछ कहा। इस पर वे बोलीं—'बड़ा कमाकर रख देते हो जो ऐसी बात कहते हो।' भूषणजी को यह बात चुभ गई और वे घर से चल दिये। यह भी कहा जाता है कि जब उन्होंने विपुल सम्पत्ति और प्रसिद्धि प्राप्त कर ली तो भाभी के पास बहुत-सा नमक भिजवाया था।

यह भी कहा जाता है कि अपने भाई चिन्तामणि के साथ बादशाह औरंगजेब के दरबार में जाया करते थे। एक दिन उसने कवियों से कहा, 'आप लोग मेरी प्रशंसा ही करते हैं। क्या मेरे अन्दर कोई बुराई नहीं है? यदि बुराई है तो [illegible] ही [illegible] [illegible] है।' इस पर भूषणजी ने उसे कवित्त सुनाये जिसमें [illegible] था—'[illegible] मार के [illegible] धनी हुए को।'' [illegible] दिया। औरंगजेब को यह [illegible] उठा। लेकिन कोई गिरफ्तार करे इसके [illegible] गए।

जब शिवाजी से उनकी [illegible] हुई तो उन्होंने उन्हें कवित्त सुनाया

> इन्द्र जिमि [illegible] पर,
> [illegible] रघुकुल राज है।
> पौन [illegible] पर,
> [illegible] राम [illegible]
> [illegible] झुण्ड पर

तो लोगों का दिल बाँसों उछलने लग जाता था। राम के गुणगान से तुलसी ने लोगों में उनके प्रति जो श्रद्धा-भक्ति पैदा कर दी थी लगभग वैसी ही श्रद्धा-भावना भूषण ने शिवाजी के प्रति पैदा कर दी थी। छत्रसाल की प्रशंसा भी उन्होंने हिन्दूधर्म-रक्षक होने के कारण ही की थी। यही कारण था कि वे हिन्दू-जाति के प्रतिनिधि राष्ट्रीय-कवि बन गये। उनकी कविता में ऐतिहासिक धर्म का समावेश है। उन्होंने तत्कालीन भारत की जातीय भावनाओं को ही प्रतिबिम्बित किया है।

भूषण का प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ 'शिवराज-भूषण' है। रीति-कालीन काव्य की भाँति वह भी यद्यपि अलंकारों का ही लक्षण ग्रंथ है तथापि रीतिकालीन-काव्य में और भूषण की कविता में यही अंतर है कि उन्होंने कविता को शृंगार की सुरा में न नहलाकर वीर-रस की सुधा में नहलाया है। उनके दूसरे ग्रंथ हैं—'शिवा-बावनी' और 'छत्रसाल-दशक' शिवा-बावनी में शिवाजी की प्रशंसा के ५२ कवित्त हैं और छत्रसाल दशक में छत्रसाल की प्रशंसा के कवित्त।

भूषण की कविता वीरोल्लास, ओज और दर्प से परिपूर्ण है। भूषण ने औरङ्गजेब की निन्दा और शिवाजी का प्रशंसा इसलिये नहीं की है कि औरङ्गजेब मुसलमान था बल्कि इसलिये की है कि वह हिन्दू-धर्म, संस्कृति और सभ्यता का विरोधी था। इस प्रकार जातीय या राष्ट्रीय भावना ही भूषण की कविता की प्रेरणा के स्रोत हैं। उनके वर्ण्य-विषय का जैसा भाव और वातावरण है वैसी ही ओजस्विनी उनकी पदावलि भी है। उनकी कविता में पौरुषवृत्ति की प्रधानता है जो कि ओज गुण की सृष्टि करती है। उनकी भाषा में पौरुष है। उन्होंने अरबी फारसी के भी बहुत से शब्दों का प्रयोग किया है। देखिये, समर-अनन्द्धार का सहारा लेकर उन्होंने औरङ्गजेब के रनवास की दयनीय दशा एवं रानियों के मलिनमुख एवं पलायन का कितना सुन्दर चित्र खींचा है

ऊँचे घोर मन्दिर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दिर के अन्दर रहाती हैं।
कन्द मूल भोग करें, कन्द मूल भोग करें,
तीन बेर खाती ते वे तीन बेर खाती हैं॥

आपने हाथ ते देत महावर, आपहि बार सिंगारत नीके।
आपनही पहिरावत आनि कै, बार सँवारि कै मानिगिरी के॥
हौं सखि लाजन जात मरो, मतिराम सुभाव कहा कहौं पी के।
लोग मिले घर घेरु करौ अबही, ते ये चेरे भये दुलही के॥

इनके इस दोहे में अलङ्कार की छटा भी देखिये:—

पगो प्रेम नन्दलाल के भरन आयु जल जाइ।
घरी घरी घर के तरे धरनि देत ढरकाइ॥

१३—देव

महाकवि देव या देवदत्त कश्यप गोत्रीय कान्यकुब्ज वंश में संवत् १७६० में पैदा हुए थे। इनका जन्म-स्थान उत्तर-प्रदेश के इटावा जिले में था। इन्होंने इस सम्बन्ध में स्वयं एक स्थान पर लिखा है —

द्यौसरिया कविदेव को नगर इटायो वास।
जोबन नवल सुभाव रस, कीन्हो भाव विलास॥
शुभ सत्रह से छपालीस चढ़त सोरही वर्ष।
कढ़ी देवमुख देवता, भाव, विलास सहर्ष॥

महाकवि देव के वंशज अब भी इटावा-मैनपुरी आदि के आसपास रहते हैं। देव के प्रारम्भिक काव्यों में 'भावविलास' और 'अष्टयाम' प्रमुख हैं। कहा जाता है कि इन्होंने ये रचनायें आजमशाह को सुनाई थीं। दिल्ली के बादशाह आजमशाह के पास कुछ दिन रह कर ये दादरी के राजा सीताराम के भतीजे भवानीदत्त वैश्य के पास रहे। इनके तीसरे आश्रयदाता फफूँद के कुशलसिंह थे। इसके बाद इनकी भेंट राजा भोगीलाल से हुई। 'रसविलास' इन्होंने राजा भोगीलाल को ही समर्पित किया। जीवन के अन्तिम वर्षों में ये कुसुमपुरा जाकर रहने लग गये थे। ये उच्च-कोटि के रस-सिद्ध कवि थे।

कहा जाता है कि देव ने ७२ या ५२ ग्रन्थ लिखे। किन्तु आजकल तो इनके १८ ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं। इन ग्रन्थों में 'भावविलास', 'अष्टयाम', 'भवानीविलास', 'रसविलास', 'वैराग्यशतक', 'शब्दरसायन', 'सुखसागर', 'तरङ्ग', 'देवमाया', 'प्रपंच नाटक', 'प्रेम-चन्द्रिका', 'पावस-

गंगाधर पिता गंगाधर के समान जानै,
गंगाधर बसति अनूप जिन पार है ॥
महा जानमनि विद्यादान हू मैं चिन्तामनि,
हीरामनि दीछित ते पाई पण्डिताई है।
सेनापति सोई सीतापति के प्रसाद जाकि,
सब कवि कान दै सुनत कविताई है ॥

सेनापति का जन्म संवत् १६४६ के आसपास हुआ था। वे किसी राजा महाराजा के आश्रित नहीं थे। अन्तिम समय में वे वृन्दावन जाकर रहने लग गये थे। संवत् १७०६ के बाद उनकी मृत्यु हो गई।

सेनापति की कविता भक्ति और रीति का संगम है। वे एक भावुक कवि थे। अतः उनकी कविता भावमयी और हृदयहारिणी है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी, उन्होंने जिस मनोयोग से ऋतु-वर्णन किया है और शृङ्गार के चटकीले चित्र खींचे हैं, उसी मनोयोग से भक्ति की रस धारा भी बहायी है। वे शब्द-शिल्प के साथ-साथ भाव-शिल्प में भी निराले हैं। शृङ्गार में उनकी आसक्ति अधिक थी। बिहारी ने यदि शृङ्गार के संयोग-पक्ष का चित्र खींचने में कुशलता दिखाई है तो सेनापति वियोग-पक्ष की अभिव्यञ्जना करने में बाजी मार ले गए हैं। सेनापति की एक कविता में विरहिणी की मनोदशा का वर्णन देखिये —

नैना नीर बरसत, देखत को तरसत,
लागे काम सरसन, पीर उर अति की।
पाये न संदेसे, तातें अधिक अन्देसे बढ़े,
सोचे सुकुमारि मैं न काहू मन गति की।
ताहि समै काहि आनि औचक ही चीठा दानी,
देखत ही सेनापति पाई प्रीति रति की।
माथे तें चढ़ाई, दोउ दृगन लगाई भूमि,
छाती लपटाती, राखी पाति प्रानपति की ॥

१५—घनानन्द

घनानन्दजी का जन्म संवत् १७४६ में हुआ था। वे का

मन जैसे कछु तुम्हें चाहत है, सुबखानिये वैसे सुजान ही हौं।
इन प्रानिन एक सदा गति रावरे, बावरे लौं लगिये नित लौं॥
बुधि औ सुधि नैननि बैननि मे, करि बास निरन्तर अन्तर गो।
उघरो जग छाय रहे घन आनन्द, चातिक ज्यों तकिये अब तौ॥

१६—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म सं० १६०७ मे काशी के एक प्रसिद्ध सेठ परिवार मे हुआ था। इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द उनके पूर्वज थे। भारतेन्दु के पिता का नाम गोपालचन्द था। गोपालचन्दजी व्रज-भाषा मे कविता करते थे। अत घर का वातावरण काव्यरचना के लिये बड़ा ही अनुकूल था। लेकिन दुर्भाग्य से उनकी माता की मृत्यु बाल्यावस्था म ही हो गई और कुछ समय बाद पिता भी चल बसे। बाल्यावस्था से ही व बडे अध्ययनशील थे। हिन्दी, अंग्रेजी के साथ-साथ व संस्कृत, उर्दू, गुजराती, मराठी और बङ्गला भाषा भी जानते थ। उन्होंने कई स्कूल, क्लब, सभा, वाचनालय तथा इसी प्रकार की सस्थाओं की स्थापना की और अनेक पत्र-पत्रिकाएँ भी निकाली। उनका सारा जीवन साहित्य-सेवा मे व्यतीत हुआ। सं० १६४१ म ३४ वर्ष की आयु मे ही व चल बसे।

भारतेन्दु की रचनाओं की संख्या इतनी है कि उन्हें देखकर आश्चर्य होता है। १६-१७ वर्ष की आयु से ले आजीवन पर्यन्त लिखते रहे। मृत्यु तक इस १६-१७ वर्ष के समय म उन्होंने जो कुछ लिखा वह युगान्तरकारी था। उनके मौलिक नाटक ये है—'सत्य हरिश्चन्द्र', 'चन्द्रावली', 'भारत-दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'अन्धेर-नगरी', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'विषस्य विषमौषधम्', 'सतीप्रताप', और 'प्रेम-योगिनी'। इनमें अन्तिम दो अपूर्ण हैं। उनके अनूदित नाटकों में 'मुद्राराक्षस', 'धनञ्जय-विजय', 'रत्नावली नाटक', 'कर्पूर-मञ्जरी', 'विद्यासुन्दर', 'भारत-जननी', 'पाखण्ड-विडम्बन' और 'दुर्लभ-बन्धु' हैं। नाटकों की भाँति उनका काव्य साहित्य भी विशाल है। उनके भक्ति-काव्य सम्बन्धी ४१ ग्रन्थ हैं। ये सब छोटे-छोटे हैं और भक्ति-भावना से भरे हुए हैं। इनमें 'प्रेम

कविता में प्रेम की सरिता का अजस्र प्रवाह है। उनकी देशभक्ति-प्रधान रचनाएँ भी बड़ी मार्मिक हैं। चाहे जैसा अवसर हो वे देश को नहीं भूलते थे। वे जानते थे कि विदेशी शासन देश के लिए घातक है, अतः उसका अन्त होना चाहिए। उन्होंने अपनी रचनाओं में अनेक स्थलों पर विदेशीपन के विरुद्ध आवाज उठाई है। इसी प्रकार विधवा-विवाह, बाल-विवाह, अन्ध-विश्वास, समुद्र-यात्रा-निषेध आदि उस समय की सभी समस्याओं पर उन्होंने विचार किया था और अपने विचारों के अनुसार उन्हें सुलझाने का प्रयत्न किया था।

यद्यपि भारतेन्दु के पूर्व ही इन्शाअल्लाखाँ, सदलमिश्र, लल्लूलाल और सदासुखलाल ने हिन्दी-गद्य का श्रीगणेश कर दिया था तथापि गद्य की भाषा में जो चुस्ती होनी चाहिये वह इन लोगों के गद्य में नहीं थी। इनमें से किसी में पण्डिताऊपन था तो किसी में ब्रजभाषापन। भारतेन्दुजी ने गद्य के लिए खड़ी-बोली को अपनाया और उसका परिमार्जन और परिष्कार किया। उनकी शैली में न तो उर्दू-फारसी के शब्दों की भरमार रहती थी, न संस्कृत के तत्सम शब्दों की। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी-भाषा के निर्माताओं के निर्माता थे। उस समय जनता में जो शब्द जिस रूप में प्रचलित थे उन्हें उन्होंने उसी रूप में स्वीकार कर लिया। यही उनका भाषा-सम्बन्धी दृष्टिकोण था। उनकी भाषा प्रवाहपूर्ण, सरल, सरस, चुटीली और बोधगम्य होती थी। उन्होंने कोमल शब्दों को अधिक अपनाया है। उनकी कविता में स्वच्छ अलङ्कार की छटा देखिये:—

पल पटुला पै प्रेम डोर की लगाय चाय,
आसा ही के खम्भ दोय गाड़ के धरत हैं।
झुमका ललित काम पूरन उछाह भरयो,
लोक बदनामी झूम झालर झरत है॥
हरिचन्द आंसू दृग नीर बरसाई प्यारे,
पिया गुन गान सो मलार उचरत
मिलन मनोरथ के झोटन बढ़ाई सदा
विरह हिंडोर नैन झूल्योई करत

रत्नाकरजी ने शुद्ध पौराणिक विषयों पर ही लिखा है। यद्यपि उन्होंने सूर, परमानन्द आदि भक्त कवियों की तरह पौराणिक कथाओं को ही अपनाया तथापि अपने उक्ति-चमत्कार और भावों की नवीनता से उसे ओजपूर्ण बना दिया। वे प्राचीन कवियों की तरह भक्त तो नहीं हैं, लेकिन कलाकार अवश्य हैं। उन्होंने भक्तिकालीन भावनाओं को रीतिकालीन अलङ्कारिकता के साथ अभिव्यक्त किया। उनकी रचनाओं में धार्मिक भावना के साथ-साथ राष्ट्रीय भावना भी है। रत्नाकरजी ने प्रबन्धकाव्य और मुक्तककाव्य दोनों ही लिखे हैं। हरिश्चन्द्र, गङ्गावतरण और उद्धव-शतक प्रबन्धकाव्य हैं, शेष मुक्तककाव्य। हरिश्चन्द्र में सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र की कथा है और गङ्गावतरण में गङ्गा के स्वर्ग से आने की कथा, उद्धव-शतक में गोपियों का उद्धव से संवाद है। यह रत्नाकरजी की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें भावों की मौलिकता और उक्तियों की नवीनता देखते ही बनती है। रत्नाकरजी के मुक्तककाव्य में भी उनकी यह कला स्पष्ट रूप में दिखाई देती है। वे भावाकार के चित्रकार थे, उन्होंने भावों का चित्रण फोटोग्राफर की तरह किया है।

वे काव्यकला के पण्डित थे। भाषा के साथ-साथ भाव पर भी उनका अधिकार था। रत्नाकरजी की रस एवं अलङ्कार योजना भी बड़ी सुन्दर थी। उन्होंने रीतिकालीन कवियों की तरह केवल अलङ्कार की छटा दिखाने के लिए भाषा का हनन नहीं किया था। उनकी भाषा ब्रजभाषा थी। यह उन्हें बड़ी प्रिय थी। वे खड़ी-बोली के सामने एक बार फिर ब्रजभाषा का माधुर्य, कोमलता और सरसता को लाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने चुने हुए मुहावरों को अपनाया, लोकोक्तियों को स्थान दिया और भाषा को बोलचाल के शब्दों से सज्जित बनाया। वे भाषा के जौहरी थे, शब्द के शिल्पी थे। उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्द अधिक आये हैं, पर उसमें ब्रजभाषा का सौन्दर्य कम नहीं हुआ है। उर्दू-फारसी के विद्वान् होते हुए भी उन्होंने उसके चलते हुए शब्दों का ही प्रयोग किया है। उनकी भाषा पद्माकरजी की भाषा से मिलती-जुलती है। पद्माकरजी की भाषा में कहीं-कहीं हलकापन है, किन्तु रत्नाकरजी की भाषा गम्भीरता लिए हुए है। उनका वर्णन देखिए—

गुप्तजी अपनी प्रारम्भिक रचनाएं कलकत्ते के एक जातीय पत्र में भेजते रहते थे। बाद में जब वे महावीरप्रसादजी द्विवेदी के सम्पर्क में आये तो अपनी रचनाएं सरस्वती में भेजने लगे। द्विवेदीजी ने उनका उचित मार्ग-दर्शन किया और थोड़े ही समय में वे अच्छे कवियों में गिने जाने लगे। उनके मौलिक काव्य-ग्रन्थों में—'रंग में भंग', 'जयद्रथ-वध', 'पद्यप्रबन्ध', 'भारत-भारती', 'शकुन्तला', 'पत्रावली', 'वैतालिक पद्यावली', 'किसान', 'अनघ', 'पंचवटी', 'स्वदेश-संगीत', 'गुरु तेगबहादुर', 'हिन्दू-शक्ति', 'सैरन्ध्री', 'वन-वैभव', 'बक-संहार', 'साकेत', 'यशोधरा', 'द्वापर', 'सिद्धराज', 'नहुष', 'कुणाल-गीत', 'अर्जन और विसर्जन', 'विश्ववेदना', 'काबा और कर्बला', 'प्रदक्षिणा', 'पृथ्वी-पुत्र', 'हिडिम्बा'' 'अजलि', 'अर्घ्य' आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी-काव्य में गुप्तजी का उदय एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लेकर हुआ है। उन्होंने प्राचीन संस्कृति की महत्त्वपूर्ण सामग्री लेकर केवल जीर्णोद्धार ही नहीं किया वरन् मूर्तियों का जोड़-तोड़ कर उनमें नया रंग भी भर दिया। गुप्तजी की रचनाओं में मानव के लिए एक संदेश है। उनकी प्रत्येक रचना सोद्देश्य है। उनका साहित्य जीवन का साहित्य है। यह जीवन को ऊँचा उठाता है। समाज-सेवा और राष्ट्र-सेवा के द्वारा उन्होंने मानव को मानव बनने की प्रेरणा दी है। उनके साहित्य में अपने समय के समाज की सभी शक्तियाँ, सभी दुर्बलताएं और सभी आकांक्षाएं प्रतिबिम्बित होती रहती है। गुप्तजी की यह विशेषता रही है कि उन्होंने प्राचीन पृष्ठभूमि पर नवीन युग का अंकन किया है। उनके सारे खण्ड-काव्य और महाकाव्यों के कथानक प्राचीन हैं। राम, कृष्ण, सीता अर्जुन, उर्मिला, यशोधरा आदि उस युग के पात्र हैं। हिन्दू होने के नाते गुप्तजी को अपनी प्राचीन संस्कृति पर गर्व है और उसी भाव से उन्होंने अपने काव्य की सामग्री एकत्र की है। उनका विश्वास था कि राम और कृष्ण के समय के भारत की आज भी आवश्यकता है ... उन्होंने बार-बार पीछे देखा और उसी से स्फूर्ति ... । उन्होंने अपनी काव्य-सामग्री के लिए प्राचीन कथानक ...

यदि वह प्रजापालक नहीं तो त्याज्य है।
हम दूसरा राजा चुनें।
जो सब तरह अपनी सुने।
कारण प्रजा का ही असल में राज्य है।

२०—रामनरेश त्रिपाठी

श्री रामनरेश त्रिपाठी का जन्म जौनपुर जिले के कोइरीपुर ग्राम में सं० १९४६ में हुआ था। अयोध्यासिंहजी उपाध्याय की भाँति आपने भी स्कूल में नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त नहीं की। घर पर ही रहकर अपने प्रयत्न से उर्दू, अंग्रेजी, फारसी और संस्कृत भाषा का अच्छा अभ्यास कर लिया।

आपके काव्य-ग्रन्थों में 'पथिक', 'मिलन', 'स्वप्न' तीन खण्ड-काव्य एवं 'मानसी' प्रमुख हैं। आपने 'प्रेम-लोक' नामक एक नाटक की भी रचना की है। उसके अतिरिक्त आपने राम चरित-मानस की टीका लिखी है और कविता कौमुदी छह भाग एवं ग्राम-गीतों के संग्रह का संपादन भी किया है। उनकी अन्य रचनाओं में तरकस, जयन्त, स्वप्न के चित्र और मालवीयजी के साथ तीस दिन भी उल्लेखनीय हैं।

त्रिपाठीजी की भाषा शुद्ध और परिष्कृत है। उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग काफी किया है लेकिन प्रिय-प्रवास की भाँति अपनी रचनाओं को उनसे बोझिल नहीं बनने दिया है। यही कारण है कि उनकी भाषा में प्रवाह के साथ-साथ प्रसाद गुण भी है। उनकी भाषा भावानुकूल है। भावों की व्यञ्जना उन्होंने बड़ी कुशलता से की है। उनकी भाषा व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होती है और सरलता के साथ सरसता और सुन्दरता का गुण भी उसमें होता है।

उनकी रचनाओं में देश-प्रेम, जाति और राष्ट्रीय भावना पर्याप्त-मात्रा में रहती है। उन्होंने गुप्तजी की भाँति अपने खण्ड-काव्यों की कथा-वस्तु पुराणों अथवा प्राचीन इतिहास से ग्रहण नहीं की है बल्कि कल्पना के सहारे नवीन कथावस्तु की ही सृष्टि की है। उनके चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता और शैली में रोचकता है। उनके [illegible]

पर ही आ गई । परन्तु साहित्य-साधना चलती रही ।

उनकी रचनाएँ निम्नप्रकार हैं—

(१) काव्य—चित्राधार, कानन-कुसुम, करुणालय, महाराणा का महत्व, झरना, आँसू, लहर और कामायनी ।

(२) नाटक—राज्यश्री, अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, जनमेजय का नाग-यज्ञ ।

(३) कहानी संग्रह—छाया, प्रतिध्वनि, आकाश-दीप, आँधी और इन्द्रजाल ।

(४) उपन्यास—कङ्काल और तितली ।

(५) निबन्ध—काव्य और कला ।

प्रसादजी के उपन्यास मानव-जीवन से सीधा सम्बन्ध रखते हैं उनके कथानक में मौलिकता और पात्रों में स्पष्टवादिता है । उन्होंने हिन्दी उपन्यास को आश्चर्यजनक घटनाओं के दलदल से निकाल कर उच्च भाव-भूमि पर खड़ा किया । उन्होंने मानव-जीवन के पाप-पुण्य की चर्चा इतने स्पष्ट और खुले हुए रूप में की है कि समाज के पीड़ित, पतित लोगों के प्रति सहज सहानुभूति पैदा होती है । उनके पात्र अपना पाप-पुण्य छिपा कर घृणा के पात्र नहीं बनते, बल्कि पाठक की सहज सहानुभूति प्राप्त कर लेते हैं । दूसरी महत्व की बात उनके उपन्यासों में यह है कि उन्होंने मानसिक-द्वन्द्व के सुन्दर शब्द-चित्र उपस्थित किये हैं । उनके दृश्य-वर्णन भी बड़े सुन्दर हैं ।

ऐतिहासिक दृष्टि से कहानीकारों में उनका पहला स्थान है । उनकी रहस्यवादात्मक और यथार्थवादी कहानियाँ बड़ी सुन्दर बन पड़ी हैं । अपनी कहानियों में से उन्होंने साधारण कोटि के व्यक्तियों के प्रति भी सहानुभूति जाग्रत की है । उनकी कहानियों का कथानक प्रायः एक मनोवृत्ति का, प्रेम की एक लहर का, निष्ठुरता के एक संकेत का अथवा हृदय की भावुकता का एक चित्र मात्र होता है । उनकी कहानियाँ उनकी तन्मयता का परिणाम है । उन्होंने जो कुछ लिखा है वह तन्मयता में, धुन में लिखा है । अपनी कहानियों में उन्होंने कहीं-कहीं वास्तविक चित्र भी उतारे हैं । अपनी अद्भुत व्यंजना-शक्ति, कौशल-कला और

साहित्यिक जीवन का श्रीगणेश काव्य-रचना से प्रारम्भ हुआ था । अतः काव्य-साधना उनके साहित्य में अंग-अंग में रक्त की भांति समाई हुई है और उसे पुष्ट बनाती है । प्रसादजी ने हिन्दी-काव्य में नवीन विषयों का सन्निवेश किया । उन्होंने कविता को सस्ती भावुकता के भंवर से निकाल कर एक स्वस्थ एवं दृढ़ मानसिक धरातल पर खड़ा किया । उनका काव्य मनोवैज्ञानिक भीति पर खड़ा है । वे अशरीरी और अमूर्त भावनाओं के कवि हैं । कामायनी महाकाव्य में उन्होंने शुद्ध मानव-सौन्दर्य का चित्रण किया है । मानव-सौन्दर्य के साथ प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण से भी उनका सारा काव्य ओत-प्रोत है । उनके काव्य में प्रकृति के अनेक रूपों के रहस्यात्मक चित्र हैं । वस्तुतः प्रसादजी यौवन और प्रेम के कवि हैं । उनके काव्य में यौवन के बड़े मार्मिक और सजीव चित्र मिलेंगे । उनके सौंदर्य और प्रेम में ऐहिक भावना के साथ-साथ उदात्त भावनाएं भी हैं जो मानवीय मनोवृत्तियों को उन्नत बनाती हैं ।

प्रारम्भ में प्रसादजी की भाषा सरल थी लेकिन जैसे-जैसे उनका अध्ययन बढ़ता गया और विचारों में परिपक्वता आती गई त्यों-त्यों उनकी भाषा गम्भीर होती गई । संस्कृत की तत्सम शब्दावली अपना लेने से उनकी भाषा क्लिष्ट अवश्य हो गई, लेकिन उन्होंने तत्सम शब्दावली को ऐसा अपना लिया है कि भाषा उनके विचारों के पीछे-पीछे चलती है तथा प्रवाह में कोई बाधा नहीं आती । उनका शब्द चयन सदा अद्वितीय है । उनकी रचनाओं में एक-एक शब्द नगीने की भांति जड़ा हुआ है और गूढ़-वाक्य सूत्र जैसे प्रतीत होते हैं । उनकी भाषा में अन्य भाषाओं के शब्द बहुत कम हैं । यद्यपि उनकी भाषा का उद्देश्य पाण्डित्यप्रदर्शन नहीं है तथापि उसे वे ही लोग समझ सकते हैं जिनकी पहुँच गम्भीर विषयों में है । वस्तुतः उनकी रचनाएं साधारण पाठकों के लिए नहीं हैं । उन्होंने छोटे-छोटे वाक्यों में भी गम्भीर भाव भर दिए हैं और फिर इनमें संगीत और लय का विधान भी कर दिया है उनकी शैली में काव्यात्मक चमत्कार है । विशेषतया उनकी शैली की विशेषता है । इस प्रकार यदि यह कहा जाय कि 'प्रसाद' हिन्दी के रवी[illegible] थे तो

(४) कहानी-संग्रह—पाँच कहानियाँ।

(५) अनुवाद—उमर खय्याम की रुबाइयाँ।

प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण स्थान में जन्म लेने के कारण वे बड़े प्रकृति प्रेमी हैं। यह प्रकृति प्रेम ही उनकी काव्य-प्रेरणा का रहस्य है। इस प्रकृति प्रेम के कारण ही वे बड़े चिन्तनशील, सौम्य और दार्शनिक बन गए हैं। यदि खड़ी-बोली को काव्य की भाषा बना देने का श्रेय किसी को है तो वह पन्तजी को ही है। ब्रज-भाषा ने भक्ति-युग से लेकर द्विवेदी-युग तक के दीर्घ समय में, जो प्रांजलता, कोमलता और चित्र-धारणा प्राप्त की थी, वह पन्तजी ने खड़ी-बोली को अपने २०-२५ वर्ष के काव्य-जीवन में ही प्रदान कर दी। लोग कहते थे कि खड़ी-बोली में खड़-खड़ाहट है। उसमें ब्रजभाषा का माधुर्य नहीं आ सकता। लेकिन पन्तजी ने यह खड़-खड़ाहट दूर करके उसे कोमलकान्त बना दिया। उनकी भाषा में ऐसा कोमल संगीत है जो किसी अन्य कवि की रचना में नहीं मिलता। उन्होंने खड़ी-बोली के नीरस शरीर में रस का संचार किया। उनकी रचनाओं में भाषा के सौन्दर्य के साथ-साथ भावों का माधुर्य भी है। उनके भावों का क्षेत्र बड़ा विशाल और विस्तृत है। भावों के क्षेत्र में कल्पना पन्तजी के आकर्षण का रहस्य है। कल्पना उनकी कविता का मेरुदण्ड है। कल्पना की बाल-सुलभ उड़ानों से लेकर अत्यन्त गम्भीर कल्पना अनुभूतियों में ही उनका विकास निहित है। उनकी कल्पना-शक्ति को सौन्दर्यानुभूति से बड़ा बल मिला है। उनकी एक विशेषता है, उनका स्वतन्त्र चिन्तन। उन्होंने अपने स्वतन्त्र-चिन्तन, काव्य, संगीत, चित्र और शिल्प के द्वारा जीवन की उन्नत मानवी मूर्तियों की स्थापना की है।

पन्तजी हिन्दी-साहित्य के एक आदर्श कलाकार हैं। वे प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। उनकी पहली रचना 'वीणा' में ही हमें प्रकृति के सुन्दर रूपों का आह्लादमयी अनुभूतियों का चित्रण बड़ी स्फुट भाषा में मिलता है। 'ग्रन्थि' उनकी दूसरी रचना है। इसमें प्रेम की अनुभूति का दर्शन दिखाई देता है। 'पल्लव' उनकी प्रौढ़ रचना है। इसमें प्रस्फुटित यौवन का मनोल्लास दर्शन और भाषा का सौ[illegible] यौवन

प्रहार भी किए हैं। उनके निबन्ध उनके आन्तरिक भावों के सच्चे प्रतिनिधि हैं और उनमें उनका जीवन झलकता है। उनकी भाषा और शैली में मधु-रिमता, स्निग्धता और सरसता है। उन्होंने अपने भाव बड़ी स्पष्टता से व्यक्त किए हैं। भट्टजी की शैली का नमूना देखिए —

"हुई को कलियों को विकसित करते कुमुदवतियों के मान को समूल उन्मूलित कर छिटकी हुई चाँदनी से दसों दिशाओं को धवलित करते, अन्धकार को निगलते, सीढ़ी पर सीढ़ी शिखर के समान आकाश रूपी विशाल पर्वत के मध्य भाग में यह चढ़ा चला आ रहा है। श्यामल मसपात्र का हटाने वाला यह चन्द्रमा ऐसा मालूम होता है मानो आकाश महासरोवर में हंस चमक गिर रहा है। उसमें बीचबीच में कलंक की रेखियां हैं सो मानो भौंरे गूंज रहे हैं।"

२—प्रतापनारायण मिश्र

मिश्रजी का जन्म सं० १९१३ में कानपुर में हुआ था। उनके पिता उन्नाव के रहने वाले थे। वे कानपुर आकर बस गये थे। मिश्रजी को शिक्षा के लिए कानपुर के मिशन स्कूल में भेजा गया लेकिन वहाँ इनका मन नहीं लगा और पढ़ना छोड़ दिया। इसके बाद घर पर ही आपने संस्कृत, बंगला, फारसी, उर्दू आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। सं० १९५१ में आपका देहान्त हो गया। मिश्रजी ने अपनी अल्पायु में ही लगभग ४० ग्रन्थों की रचना की। उनकी रचनाओं में 'हठी हमीर' 'कलि-प्रभाव' और 'गो-संकट' नामक तीन निबन्ध गद्य प्रमुख हैं। उनके नाटकों में भारत-दुर्दशा और कलि-कौतुक उल्लेखनीय हैं।

भट्टजी की भांति मिश्रजी को भी खड़ी बोली की भाषा को मार्जित, सरल, चालू और सबल बनाने का श्रेय है। उनके निबन्धों ने हिन्दी की गद्य-शैली को नवीन रूप प्रदान किया। मिश्रजी के निबन्ध न तो अलङ्कारिता के बोझ से दबे हुए हैं न संस्कृत की क्लिष्ट पदावली से। उनमें सरलता के साथ मार्मिकता समाई हुई है। छोटे-छोटे और संयत वाक्यों में ही उन्होंने अपनी बात कहने का प्रयत्न किया। मिश्रजी के निबन्धों में भावुकता, स्वभाव-वैचित्र्य और म [illegible] मुख्य

व्यावहारिक तत्सम शब्दों के साथ उर्दू के शब्दों का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। मुहावरों और कहावतों के प्रयोग से भाषा आकर्षक हो गई है। उनके वाक्य छोटे किन्तु मार्मिक होते हैं। मिश्रजी की तरह उनका व्यंग भी बड़ा तीखा होता है। उनकी भाषा अपेक्षाकृत अधिक सरल और व्यावहारिक होती है। अखबारों में जिस प्रकार की भाषा होती है वैसी ही भाषा उनकी थी। उनकी शैली नाटकीय है। भावों की अभिव्यक्ति विषय के अनुकूल हुई है। बीच-बीच में हास्य और विनोद ने उनकी भाषा को चुटीला बना दिया है। उनके वाक्य छोटे, दृढ़ और सशक्त होते हैं तथा चोट गहरी करने वाले। वे सीधे-सादे शब्दों में अपनी बात कहने की कला में दक्ष हैं। उनकी भाषा का एक नमूना देखिए.—

"हरिश्चंद्रजी ने उत्तर देकर बहुत कुछ समझाया-बुझाया। पर वहाँ यार लोगों ने जो रंग चढ़ा दिया वह न उतरा। यहाँ तक कि बाबू हरिश्चंद्रजी की चलाई हरिश्चंद्र-चन्द्रिका और बाल-बोधनी नामक दो मासिक-पत्रिकाओं की जो १००-१०० कापियाँ प्रान्तीय गवर्नमेण्ट लेती थी, वह भी बंद हो गई।"

४—महावीरप्रसाद द्विवेदी

आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी का जन्म रायबरेली जिले के दौलतपुर नामक गाँव में सं० १९२१ में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में हुई। इसके बाद फतेहपुर तथा उन्नाव में वे अंग्रेजी स्कूल में भी पढ़े। अंग्रेजी की यह शिक्षा पूरी न हो सकी और उन्हें बीच में ही स्कूल छोड़ना पड़ा। स्कूल छोड़कर उन्होंने तार का काम सीखा और तारबाबू बन गए। महावीरप्रसादजी स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे। वहाँ एक [illegible] से अनबन हो गई। आपने तुरन्त नौकरी छोड़ दी। नौकरी के दिनों में भी द्विवेदीजी का अध्ययन चलता रहता था। उन्होंने इन दिनों मराठी, बाङ्ला आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। नौकरी छोड़ने के कुछ समय बाद आप सरस्वती के सम्पादक [illegible] सं० १९९[illegible] में आपका देहावसान हो गया।

हिन्दी भाषा को सुस्थिर रूप देने

वे उसमें एक प्रकार का परोक्ष वातावरण उपस्थित कर देते थे। वे इस प्रकार के संकेत और ध्वनि से काम लेते थे, बात को इस प्रकार घुमा-फिरा कर कहते थे कि पाठक उसे सरलतापूर्वक समझ लेते थे और उसका पूरा आनन्द उठाते थे। देखिए कालिदास के 'मेघदूत' का एक प्रसङ्ग वे अपनी शैली में किस प्रकार समझा रहे हैं —

"ज़रा इस यक्ष की नादानी तो देखिये। आग, पानी, धुएँ और वायु के संयोग से बना हुआ कहाँ जड़ मेघ और कहाँ बड़े ही चतुर मनुष्यों के द्वारा भेजा जाने वाला सन्देसा। परन्तु वियोग-जन्य दुःख से व्याकुल हुए यक्ष ने इस बात का कुछ भी विचार नहीं किया। उत्सुकता और आतुरता के कारण उसे इस बात का ध्यान ही न रहा कि बेचारा मेघ भला किस तरह सन्देसा ले जायगा। बात यह है कि जिस दशा में यक्ष था उस दशा को प्राप्त होने पर लोगों की बुद्धि मारी जाती है। वे चेतन-अचेतन पदार्थों का भेद नहीं जान सकते। अतएव जो काम जिससे करने योग्य नहीं उससे भी करने के लिए वे प्रार्थना करने लगते हैं।"

५—बाबू श्यामसुन्दरदास

बाबू श्यामसुन्दरदास का जन्म सं० १९३२ में बनारस में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा आधुनिक ढङ्ग से हुई। आपने बी० ए० पास किया और उसके बाद सेण्ट्रल-हिन्दू-कालिज में अंग्रेजी के अध्यापक हो गए। वहाँ से नौकरी छोड़ कर कुछ दिन आपने [illegible] तथा काश्मीर-नरेश के दफ्तर में काम किया। इसके बाद [illegible] यह काम छोड़कर लखनऊ के कालीचरण हाई स्कूल में प्रधानाध्यापक हो गए। लेकिन हिन्दी-[illegible] से आपका [illegible] वह सबसे बड़ा महत्त्वपूर्ण है जब कि [illegible] विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष बने। वहाँ आपने [illegible] तक कार्य किया। सं० २००२ में आप परलोकवासी हुए।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा बाबू श्यामसुन्दरदास की [illegible] कीर्ति का [illegible] है। [illegible] लिखित [illegible] सार', '[illegible]', 'कबीर-वचनावली', '[illegible]

पांडित्य स्पष्ट झलकता है। इनके अतिरिक्त 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', 'बुद्धचरित', 'आदर्श जीवन', 'हिंदी काव्य में रहस्यवाद', 'चिन्तामणि', 'रस मीमांसा' आदि आपके बड़े उच्च कोटि के ग्रंथ हैं।

शुक्लजी ने अपने निबंधों में सदैव एक विचार को दूसरे से सम्बंध रखने का प्रयत्न किया है। उनके निबंधों में विचारों की परम्परा कहीं टूटती हुई नहीं दिखाई देती। वे व्यक्ति प्रधान होने के साथ-साथ विषय-प्रधान भी हैं। उन्होंने लोक या समाज की स्थिति एवं रक्षा पर सर्वत्र ध्यान दिया है। उनके निबंधों में बुद्धि-तत्त्व के साथ हृदय-तत्त्व का भी सुन्दर समन्वय हुआ है। यद्यपि शुक्लजी के निबंधों में बुद्धि का उपयोग प्रधान रूप से किया है तथापि हृदय भी बुद्धि के साथ-साथ रहा है। शुक्लजी की शैली पर उनके व्यक्तित्व की जबरदस्त छाप है। उनकी भाषा विशुद्ध-प्रौढ़ और संयत है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है वह इतनी मँजी हुई, गम्भीर एवं परिष्कृत है कि मुश्किल से कहीं अन्यत्र मिलेगी। उनकी भाषा में एक भी शब्द व्यर्थ नहीं मिलेगा। उनके वाक्य यद्यपि लम्बे हैं, तथापि जैसे एक सूत्र में पिरोये हुए हैं। वे पहिले सूत्र रूप में एक बात कहते हैं और पूरे अनुच्छेद में उसे स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। अन्त में श्यामसुन्दरदासजी की ही भाँति 'सारांश यह कि' या 'संक्षेप में' कहकर सार रूप में सारी बात कह देते हैं। उनकी भाषा में व्याकरण के नियमों, विराम-चिह्नों आदि का पूरा-पूरा निर्वाह हुआ है। उनके गद्य का एक उद्धरण देखिये:—

'यह ठीक है कि मनोवेग उत्पन्न होना और बात है, और मनोवेग के अनुसार क्रिया करना और बात। पर अनुसारी परिणाम के निरन्तर अभाव से मनोवेगों का अभ्यास भी घटने लगता है। यदि कोई मनुष्य आवश्यकता-वश कोई निष्ठुर-कार्य अपने ऊपर ले ले तो पहिले दो-चार बार उसे दया उत्पन्न होगी, पर जब बार-बार दया का कोई अनुसारी परिणाम वह उपस्थित न कर सकेगा तब धीरे-धीरे उसका दया का अभ्यास कम होने लगेगा।

जैनेन्द्रजी की भाषा सरल, सरस और स्वाभाविक होती है। लेकिन जहाँ दार्शनिक विचारों को व्यक्त करना होता है वहाँ बड़ी गम्भीर और क्लिष्ट भी हो जाती है। समाज की दीन अवस्था के सुन्दर चित्र आपकी रचनाओं में मिलते हैं। आप एक उच्च-कोटि के विचारक और दार्शनिक भी हैं। पर, आपकी रचनाओं पर उनकी स्पष्ट छाप मिलती है। आपके भाव उच्च-कोटि के होते हैं और भाषा भी उसी के अनुरूप सरल, सालिस, परिष्कृत एवं गौरवशाली। 'अपना अपना भाग्य' नामक कहानी में भारतीय और अंग्रेज जनता का एक चित्र देखिए—

"अधिकार गर्व में तने अंग्रेज उनमें थे और चिथड़ों से सजे घोड़ों की बाग थामे वे पहाड़ी उनमें थे जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को कुचल कर शून्य बना लिया है और जो बड़ी तत्परता से दुम हिलाना सीख गए हैं।

भागते, खेलते, हँसते, शरारत करते लाल लाल अंग्रेज बच्चे थे और पीली पीली आँखें फाड़े पिता की उँगली पकड़कर चलते हुए अपने भारतीय नौनिहाल भी थे।"

११—वृन्दावनलाल वर्मा

वर्तमान युग के उपन्यास सम्राट् बाबू वृन्दावनलालजी वर्मा का जन्म झाँसी जिले के मऊरानीपुर नामक ग्राम में सं० १९४७ में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा झाँसी में ही हुई। आपने बी० ए०, एल-एल बी० पास कर झाँसी में ही वकालत करना प्रारम्भ कर दिया। संगीत और शिकार में आपकी विशेष दिलचस्पी है। आप कहानीकार, उपन्यासकार, और नाटककार हैं। आप हिन्दी-साहित्य के 'स्काट' कहे जाते हैं।

आपके उपन्यासों में गढ़कुण्डार, विराटा की पद्मिनी, सोना, कुण्डली-चक्र, कचनार, मुसाहिबजू, प्रत्यागत, झाँसी की रानी, मृगनयनी आदि प्रमुख हैं।

वर्माजी भारतीय इतिहास के गौरवमय अतीत के बड़े प्रशंसक हैं और उसकी झलक ही उन्होंने अपने उपन्यासों, नाटकों और कहानियों में दिखाई है। उन्होंने भारतीय इतिहास के एक उज्ज्वल अध्याय को

अपने उपन्यासों के कथानक के लिए चुना है जो अतीत के गौरव, शौर्य, राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक उत्थान आदि के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। अपनी कल्पना और कला से आपने इन अतीत खण्डहरों में नवीन जीवन और प्रेरणा का संचार कर दिया है। आपकी भाषा सरल, सरस और व्यावहारिक है। न तो उसमें संस्कृत की क्लिष्ट तत्सम शब्दावली है, न उर्दू-फारसी शब्दों की भरमार। उनकी भाषा सर्वसाधारण की चलती हुई भाषा है। उसी में उन्होंने संगीत, माधुर्य और मार्मिकता का समावेश कर दिया है। उनका चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक होता है और कथानक कौतूहल पूर्ण। मनुष्य स्वभाव और मानव-जीवन को उन्होंने बारीकी से देखा है और उसे यथार्थ रूप में चित्रित किया है। यही कारण है कि उनकी भाषा सुबोध, सरल और प्रवाह-पूर्ण है। उनकी भाषा का एक नमूना देखिये—

ठाकुर ने प्रश्न किया—"कौन लोग हो ?"

"हूँ तो, कसाई" रज्जन ने सीधा उत्तर दिया। चेहरे पर उसके बहुत गिड़गिड़ाहट थी।

ठाकुर की बड़ी आँखों में कठोरता छा गई। बोला—"जानता है यह किसका घर है ? यहाँ तक आने की हिम्मत कैसे की तूने ?"

रज्जन ने आशा भरे स्वर में कहा—"यह राजा का घर है। इसलिये शरण में आया हूँ।"

———

शब्द-शक्ति

शब्द की सार्थकता उसके अर्थ में है वस्तुतः अर्थवान् शब्द ही शब्द कहे जाते हैं। संस्कृत के आचार्यों ने 'शब्दार्थ सम्बन्ध शक्ति' कहकर बताया है कि शब्द की जिस शक्ति के द्वारा उसके अर्थ का बोध होता है उसे 'शब्द-शक्ति' कहते हैं। स्पष्ट है कि जितने प्रकार के अर्थ होते हैं उतनी ही प्रकार की शक्तियाँ होती हैं। अर्थ तीन प्रकार के होते हैं—(१) वाच्यार्थ या अभिधार्थ (२) लक्ष्यार्थ और (३) व्यंग्यार्थ। वाच्यार्थ से हमारा आशय है शब्द के मूल अर्थ से है। जैसे—वारिवाह का अर्थ है बादल और पंकज का अर्थ है कमल। शब्द के ये अर्थ किसी पदार्थ, भाव या क्रिया की ओर संकेत करते हैं। लक्ष्यार्थ से हमारा आशय है शब्द के लाक्षणिक अर्थ से। जैसे—हम कहें कि 'यह आदमी शेर है' तो हमारा आशय यही होता है कि 'यह वीर' है। जब शब्द किसी भौतिक घटना की ओर तो संकेत करता है किन्तु उसका अन्य अर्थ भी ध्वनित होता है तब उसे व्यंग्यार्थ कहा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि कहा जाय कि 'घण्टी बज गई' तो यह एक भौतिक घटना का संकेत है। लेकिन इससे विद्यार्थियों के लिए एक अन्य अर्थ भी ध्वनित होता है अर्थात् पाठशाला प्रारम्भ हो रही है। इसी प्रकार नाटक देखने वालों के लिए इसका अर्थ होगा 'नाटक प्रारम्भ हो रहा है' और टेलीफोन के पास बैठे हुए व्यक्ति के लिए इसी का अर्थ होगा 'यहाँ से कोई व्यक्ति बात करना चाहता है, रिसीवर उठाओ।'

अभिधा—जिस शक्ति के द्वारा शब्द का मूल अर्थ मालूम किया जाता है उसे अभिधा कहते हैं। इसमें शब्द के वाचक अर्थ का बोध होता है अर्थात् इससे उन वस्तुओं, भावों और क्रियाओं का ज्ञान होता है जो उससे द्योतित होती हैं। षड्-दर्शनों में न्याय ने अभिधा में शब्द और अर्थ-सम्बन्ध स्वीकार किया है और इसे ईश्वरेच्छा पर निर्भर रखा है। नव्य-न्याय इच्छा शब्द को व्यापक बनाकर उसका तात्पर्य केवल ईश्वरेच्छा नहीं लेता। वह उसमें मनुष्येच्छा भी सम्मिलित करता है। मनुष्येच्छा से उसका आशय यही है कि मनुष्य भी अपनी इच्छा से नये शब्दों का निर्माण करता है। किन्तु केवल इच्छा को ही शब्द क

एक-मात्र कारण मानना सही नहीं हो सकता, क्योंकि शब्दों का निर्णय मनुष्यों के किसी समझौते पर निर्भर नहीं है। शब्द और अर्थ का मेल स्वाभाविक रूप से ही हो जाता है। शब्द और अर्थ का नित्य मानने का मतलब होगा, भाषा की परिवर्तनशीलता को स्वीकार न करना। आज-कल शब्द की स्वाभाविक अर्थ-बोधता पर ही ध्यान देते हैं। शब्द और अर्थ को इसी अर्थ में हम नित्य कहते हैं कि मनुष्य में शब्द बनाने और उसके अर्थ द्वारा घोषित करने की शक्ति स्वाभाविक है। यह शक्ति कालक्रम में विकसित हो जाती है।

अब प्रश्न यह होता है कि अर्थ-बोध में संकेत किसकी ओर होता है? मीमाँसक लोग अर्थ-बोध जाति का मानते हैं। उनका कहना है कि 'अश्व' कहने से सारी अश्वजाति का बोध होता है। किन्तु उनकी मान्यता पूरी तरह ठीक नहीं है। जब यह कहते हैं कि 'अश्व लाओ' हमारा आशय किसी विशेष अश्व को बुलाने का होता है, सारी जाति को बुलाने का नहीं है। इसलिये न्याय का कहना है कि शब्द जाति के आधार पर व्यक्ति-विशेष की ओर संकेत करता है। इस मत में व्यक्ति और जाति का समन्वय हो जाता है। वैयाकरण लोग साँकेतिक अर्थ, जाति, गुण, क्रिया और इच्छा चारों प्रकार को मानते हैं। उदाहरणार्थ, मोती नामक काला कुत्ता भौंकता है, इस वाक्य में 'मोती' इच्छापूर्वक रखा हुआ नाम है। काला गुण है और 'कुत्ता' जाति। 'भौंकता है' क्रिया है। इस प्रकार इस सम्बन्ध में अन्य मत भी हैं किन्तु वस्तुतः शब्द का संकेत या तो जाति विशिष्ट व्यक्ति में मानना चाहिये अथवा अवसर या प्रसंग के अनुकूल व्यक्ति, जाति, आकृति, क्रिया आदि में।

लक्षणा—शब्द की जिस शक्ति से लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है उसे लक्षणा कहते हैं। अर्थ अनेक बार शब्द में ही सीमित होकर नहीं रह जाता। वह उससे भी आगे जाता है। जहाँ मुख्य अर्थ में बाधा आती है और उस बाधा के कारण उसमें ही सम्बन्धित कोई दूसरा अर्थ रूढ़ि या प्रयोजन के आधार पर लगाया जाता है वहाँ वह अर्थ लक्ष्यार्थ कहा जाता है। यह परिभाषा लक्षणा के व्यापार की बातें स्पष्ट करती हैं—(१) मुख्य अर्थ में बाधा उपस्थित होना, (२) मुख्यार्थ से

पत्र

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में पैदा होता है और समाज में ही उसका विकास होता है। अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे समाज का मुँह देखना पड़ता है। चाहे विवाह, जन्म आदि खुशी के मौके हों, चाहे दुर्घटना, मृत्यु आदि दुःख के, सभी अवसरों पर उसे सामाजिक सहयोग और सहायता की आवश्यकता होती है। समाज की सहायता से उसका हर्ष बढ़ता है और दुःख घटता है। पैदा होते ही माता-पिता, भाई-बहिन, चाचा-चाची आदि से उसका सम्बन्ध जुड़ता है और फिर जैसे-जैसे वह बड़ा होता है वैसे-वैसे पास-पड़ोसी, अध्यापक, दुकानदार, नौकर, स्वामी, मित्र, सहपाठी, सहयोगी आदि के रूप में समाज के अन्य कई लोगों से भी उसका सम्पर्क बढ़ता जाता है। *आयु के साथ परिचितों और मित्रों का क्षेत्र विस्तृत होता जाता है और* वह और लोगों से जान-पहचान और परिचय प्राप्त कर लेता है। अतः जब कभी वह किसी परेशानी में होता है तो उसकी स्वाभाविक इच्छा होती है कि दूसरे उसकी सहायता करें और जब कभी वह आनन्द और सुख की स्थिति में होता है तब भी उसकी यही इच्छा होती है कि दूसरे सहायता करके उसके आनन्द को बढ़ावें। फिर पग-पग पर उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी तो दूसरों का मुँह देखना पड़ता है। दुकानदार से प्रतिदिन की चीज मिलती है, अध्यापक से शिक्षा, मित्र से कई प्रकार के काम निकलते हैं और मालिक की कृपा से नौकरी का धागा नहीं टूटता। अतः अपने दुःख और आनन्द को बटाने के लिए उसे सबसे सम्पर्क रखना होता है, सब के सुख-दुःख में शामिल होना पड़ता है। सब की सहायता प्राप्त करके जो आनन्द उसे मिलता है वही आनन्द सब की सहायता करके भी उसे प्राप्त करना होता है। ये दोनों ही बातें आनन्द-दायक हैं और आवश्यक भी।

आज विज्ञान की प्रगति से जहाँ मनुष्य की सुविधाएँ बढ़ी हैं वहाँ कठिनाइयाँ भी बढ़ी हैं। किसी किसी शहर में प्यारा

पड़ता है कि हमारी भावनायें ठीक तरह व्यक्त हो जायें और वह पाठक पर वही प्रभाव डाले जो हम चाहते हैं। इस दृष्टि से पत्र में सरलता और स्वाभाविकता होनी चाहिये। क्लिष्टता से हमारी बात समझने में पाठक को कठिनाई होगी और अस्वाभाविकता या कृत्रिमता से वह प्रभाव नहीं पड़ सकेगा जो हम डालना चाहते हैं। दूसरी बात यह है कि पत्र में विचारों को क्रमबद्ध रूप में उपस्थित करना चाहिए। एक के बाद दूसरा विचार क्रम के अनुसार रखने से पाठक को हमारी बात समझने में बड़ी सरलता होती है। तीसरी बात है मुहावरे, विरामादि चिह्नों का प्रयोग और आकर्षक शैली। इन सबके द्वारा अपने विचारों को ठीक तरह पहुँचाने में बड़ी सहायता मिलती है।

मोटे रूप से किसी पत्र को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। इस विभाजन से पत्र के सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेना सरल हो जाता है। पत्र के पहले या प्रारम्भिक भाग में भेजने वाले का पता और पत्र भेजने की तिथि होती है। उसके दूसरे या मध्य भाग में पत्र पाने वाले के लिए सम्बोधन तथा पत्र लिखने का प्रयोजन होता है। यह पत्र का प्रधान भाग होता है। तीसरे या अन्तिम भाग में भेजने वाले का नाम आदि होता है।

पत्रों का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया जाता है। [illegible] पत्र तीन प्रकार के ही होते हैं। पहले प्रकार के पत्रों में [illegible] व्यक्तिगत पत्रों का [illegible] है, जिनमें सम्बन्धियों और मित्रों के पत्र आते हैं। दूसरे प्रकार के पत्रों में व्यापारिक पत्र [illegible] व्यवसाय की दृष्टि से व्यापारियों और दुकानदारों [illegible] है। तीसरे प्रकार के पत्र वे हैं जो अधिकारियों को लिखे जाते हैं। [illegible] आवेदन पत्र प्रमुख होते हैं। यहाँ हम तीनों प्रकार के [illegible] रहे हैं, जिनसे उनका अनुकरण करने में सरलता हो।

पत्र में पता बड़ा महत्त्व रखता है, [illegible], हैं[illegible] पत्रों में [illegible] [illegible] [illegible]
स्पष्ट अक्षरों में पता लिखा जाना चाहिये।

यदि पत्र किसी बालक या स्त्री को लिखा गया है तो उसके संरक्षक का नाम दूसरी पंक्ति में देना चाहिये। उसके नाम के पूर्व 'द्वारा' लिखना चाहिए। जैसे—

टिकट

श्रीमती सरला देवी

प्रेषक:—	द्वारा श्री विनय मोहन रस्तोगी एडवोकेट,
डॉ० कन्हैयालाल,	मकान नं० ५८२, किनारी बाजार,
नेहरू हॉस्पिटल,	आगरा।
दोमलगुडा, हैदराबाद। (आन्ध्र)	(उत्तर प्रदेश)

(अ) व्यक्तिगत पत्र

१—पिता को,

साधना-सदन,
चौड़ा रास्ता, जयपुर।
४ जनवरी, १९६५

पूज्य पिताजी,

सादर प्रणाम! परसों प्रातःकाल ही आपका कृपा पत्र मिल गया था लेकिन अर्द्ध-वार्षिक परीक्षा के अन्तिम प्रश्न-पत्रों में व्यस्त होने के कारण उत्तर न दे सका। आशा है इस विलम्ब के लिये क्षमा करेंगे।

गणित को छोड़कर शेष प्रश्न-पत्रों के उत्तर संतोषजनक ढं[illegible] लिखे हैं। अन्य विषयों में प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त कर लेना क[illegible] है। गणित में केवल ३५-४० अंक ही मिल सकेंगे। अब मैं [illegible] श्रम करना प्रारम्भ कर रहा हूँ। आशा है वार्षिक परी[illegible] पूरी कर लूँगा। इस परीक्षा का परीक्षाफल ५-७ दि[illegible] जायगा तब आपको प्राप्तांकों की सूचना दूँगा।

हो गये हैं। अभी परीक्षा का एक महीना बाकी है। यदि तुम मन लगा कर प्रयत्न करो तो गणित में भी प्रथम श्रेणी के अंक लाना कठिन न होगा। लेकिन एक बात की ओर मैं तुम्हारा ध्यान खींचना चाहता हूँ। वह यह कि प्रथम श्रेणी लाने की धुन में अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ न लेना। नियमित रूप से व्यायाम करना और अच्छा समय तक सोना न भूलना। मुझे लिखना कि यह सब नियमित रूप से कर रहे हो या नहीं।

५०) रुपये भिजवा रहा हूँ। परीक्षा समाप्त होने पर ५०) और भिजवा दूँगा। अब तुम इधर-उधर से ध्यान हटाकर पढ़ने में ही पूरी शक्ति लगा दो। कौशल और मुन्नी तुम्हारी याद करते हैं।

शुभैषी,
मदनमोहन जोशी।

४—बड़े भाई को,

मथुरा (कृष्णनगर)
१२ जुलाई १९५४.

मान्यवर भाई साहब,

प्रणाम! आपका पत्र कल मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपका स्थानान्तर आगरा हो गया है। आगरा तो हम दोनों को बड़ा अनुकूल रहेगा। वहाँ सस्ता मकान है और शिक्षा का प्रबंध भी अच्छा ही रहता है। आपका यह सुझाव अच्छा है कि मैं अपने वर्तमान व्यापार के वर्तमान क्षेत्र में ही काम कर लूँ तो खर्च का बोझ कम होने के साथ-साथ शिक्षा की चिन्ता भी कम हो जायगी। मेरी स्वयं की यह इच्छा रहती है कि उन पर कम से कम बोझ डाला जाय। आपके स्थानान्तर से अनायास ही यह प्रश्न हल हो गया।

मेरी शिक्षा ठीक तरह चल रही है। आदरणीय भाभीजी को प्रणाम कहिए। मुन्ना को प्यार। उनके लिए शिक्षा के सम्बन्ध कुछ नई पुस्तकें भेजूँगा। आशा है उन्हें ये पसन्द आएँगी।

हो गये हैं। अभी परीक्षा का एक महीना बाकी है। यदि तुम मन लगा कर प्रयत्न करो तो गणित में भी प्रथम श्रेणी के अङ्क लाना कठिन न होगा। लेकिन एक बात की ओर मैं तुम्हारा ध्यान खींचना चाहता हूँ। वह यह कि प्रथम श्रेणी लाने की धुन में अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ न लेना। नियमित रूप से व्यायाम करना और सन्ध्या समय दूर घूमना न भूलना। मुझे लिखना कि यह सब नियमित रूप से कर रहे हो या नहीं।

५०) रुपये भिजवा रहा हूँ। परीक्षा समाप्त होने तक ५०) और भिजवा दूँगा। अब तुम इधर-उधर से ध्यान हटाकर पढ़ने में ही पूरी शक्ति लगा दो। कौशल और सुधी तुम्हारी याद करते हैं।

शुभैषी,
मदनमोहन जोशी।

४—बड़े भाई को,

मसूदा (विजयनगर)
१२ जुलाई १९५४.

मान्यवर भाई साहब,

प्रणाम! आपका पत्र कल मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपका स्थानान्तर ब्यावर हो गया है। ब्यावर तो हम लोगों को बड़ा अनुकूल रहेगा। वहाँ मामा साहब हैं और पिताजी का आना जाना भी बना ही रहता है। आपका यह सुझाव अच्छा है कि मैं अगले वर्ष ब्यावर के गवर्नमेण्ट कॉलेज में ही प्रवेश प्राप्त कर लूँ तो खर्च का बोझ कम होने के साथ-साथ पिताजी की चिन्ता भी कम हो जायगी। मेरी स्वयं की यह इच्छा रहती है कि उन पर कम से कम बोझ डाला जाय। आपके स्थानान्तर से अनायास ही यह प्रश्न हल हो गया।

मेरी शिक्षा ठीक तरह चल रही है। आदरणीय भाभीजी को प्रणाम कहिए। सुरेश को प्यार। उसके लिये पिताजी के साथ कुछ नई पुस्तकें भेजूँगा। आशा है, उसे वे पसन्द आयेंगी।

हो गये हैं। अभी परीक्षा का एक महीना बाकी है। यदि तुम मन लगा कर प्रयत्न करो तो गणित में भी प्रथम श्रेणी के अङ्क लाना कठिन न होगा। लेकिन एक बात की ओर मैं तुम्हारा ध्यान खींचना चाहता हूँ। वह यह कि प्रथम श्रेणी लाने की धुन में अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ न लेना। नियमित रूप से व्यायाम करना और सन्ध्या समय दूध पीना न भूलना। मुझे लिखना कि यह सब नियमित रूप से कर रहे हो या नहीं।

२०) रुपये भिजवा रहा हूँ। परीक्षा समाप्त होने तक ५०) और भिजवा दूंगा। अब तुम इधर-उधर से ध्यान हटाकर पढ़ने में ही पूरी शक्ति लगा दो। कौशल और मुन्नी तुम्हारी याद करते हैं।

शुभैषी,
सदामोहन जोशी।

४—बड़े भाई को,

मसूदा (विजयनगर)
१२ जुलाई १९६४.

मान्यवर भाई साहब,

प्रणाम! आपका पत्र कल मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपका स्थानान्तर ब्यावर हो गया है। ब्यावर तो हम लोगों को बड़ा अनुकूल रहेगा। वहाँ मामा साहब हैं और पिताजी का आना जाना भी बना ही रहता है। आपका यह सुझाव अच्छा है कि मैं अगले वर्ष ब्यावर के गवर्नमेण्ट कॉलेज में ही प्रवेश प्राप्त कर लूं तो खर्च का बोझ कम होने के साथ-साथ पिताजी की चिन्ता भी कम हो जायगी। मेरी स्वयं की यह इच्छा रहती है कि उन पर कम से कम बोझ डाला जाय। आपके स्थानान्तर से अनायास ही यह प्रश्न हल हो गया।

मेरी शिक्षा ठीक तरह चल रही है। आदरणीय भाभीजी को प्रणाम कहिए। सुरेश को प्यार। उसके लिए पिताजी के साथ कुछ नई पुस्तकें भेजूंगा। आशा है उसे ये पसन्द आएँगी।

विनीत

११—स्वीकृति-पत्र—

अशोक-भवन,
कनाट प्लेस, नई दिल्ली ।

प्रिय भाई सक्सेनाजी,

वन्दे ! चिरंजीव कमलकिशोर की वर्षगांठ के अवसर पर आयोजित प्रीतिभोज और संगीत के कार्य-क्रम का निमन्त्रण पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई । अनेक धन्यवाद । मैं उस दिन अवश्य आने का प्रयत्न करूंगा ।

भवदीय,
इन्द्रसेन ।

१२—खेल का निमन्त्रण-पत्र—

डी० ए० वी० कॉलेज,
अजमेर ।
१२-१२-६०

प्रिय भाई,

हमारे कॉलेज की फुटबाल टीम आपके कॉलेज की टीम से १५ दिसम्बर को सायंकाल साढ़े चार बजे हमारी क्रीड़ा-भूमि (ग्राउण्ड) में एक फुटबाल मैच खेलना चाहती है । आशा है आप इस प्रार्थना को स्वीकार कर उस दिन आने का कष्ट करेंगे । आपके स्वीकृति-पत्र से हमें प्रबन्ध करने में सुविधा रहेगी ।

आपका,
सोहनसिंह ।
(कप्तान)

१३—साहित्यिक-गोष्ठी का निमन्त्रण-पत्र

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन भवन
संयोगिता गंज, इन्दौर ।
१२ दिसम्बर १९६०

श्रीयुत् चन्द्रजी,

मुझे यह सूचित करते हुए प्रसन्नता है कि हमारे नगर में परस तारीख १५ दिसम्बर १९६० को एटा के प्रसिद्ध कवि श्री बलवीरसि

११—स्वीकृति-पत्र—

अशोक-भवन,
कनाट प्लेस, नई दिल्ली।

प्रिय भाई सक्सेनाजी,

वन्दे ! चिरंजीव कमलकिशोर की वर्षगाँठ के अवसर पर आयोजित प्रीतिभोज और संगीत के कार्य-क्रम का नियन्त्रण पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। अनेक धन्यवाद। मैं उस दिन अवश्य आने का प्रयत्न करूँगा।

भवदीय,
इन्द्रसेन।

१२—खेल का निमन्त्रण-पत्र—

डी० ए० वी० कॉलेज,
अजमेर।
१२-१२-६०

प्रिय भाई,

हमारे कॉलेज की फुटवाल टीम आपके कॉलेज की टीम से १५ दिसम्बर को सायंकाल साढ़े चार वजे हमारी क्रीड़ा-भूमि (ग्राउण्ड) में एक फुटवाल मैच खेलना चाहती है। आशा है आप इस प्रार्थना को स्वीकार कर उक्त दिन आने का कष्ट करेंगे। आपके स्वीकृति-पत्र से हमें प्रबन्ध करने मे सुविधा रहेगी।

आपका,
सोहनसिंह।
(कप्तान)

३—साहित्यिक-गोष्ठी का निमन्त्रण-पत्र

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन भवन,
संयोगिता गंज, इन्दौर।
१२ दिसम्बर १९६०

श्रीयुत् चन्द्रजी,

मुझे यह सूचित करते हुए प्रसन्नता है कि हमारे नगर में परसों तारीख १५ सितम्बर १९६० को एटा के प्रसिद्ध कवि श्री बलबीरसिंह

पिताजी की मृत्यु से तुम्हें जो शोक हो रहा होगा उसकी कल्पना ही मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। लेकिन ऐसे अवसर हमारे धर्म की परीक्षा लेने वाले होते हैं। मृत्यु एक ऐसा कठोर सत्य है जिसके ऊपर हमारा किसी का वस नहीं है। इस अवसर पर मैं हार्दिक संवेदना भेजता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको यह असह्य वेदना सहन करने की शक्ति दे तथा दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

शुभेच्छु,
गोवर्द्धन वर्मा।

(आ) व्यावसायिक-पत्र

१—पुस्तक मंगाने के लिये आदेश-पत्र—

नेहरू वाचनालय,
अलवर।
१० जुलाई १९६०

श्री मन्त्री महोदय,
सस्ता साहित्य मण्डल,
कनाट-सर्कस, नई दिल्ली।

प्रिय महोदय,

मुझे निम्नलिखित पुस्तकों की आवश्यकता है। अतः उचित कमीश
छाटकर वी० पी० पार्सल द्वारा भेजने का कष्ट करें।

१	तपोवन विनोबा—(श्री बाबूराव जोशी)		१॥)
२	भारतीय नव जागरण का इतिहास	,,	३)
१	सबके बापू	,,	॥)
१	जनता के जवाहर	,,	॥।)
१	राष्ट्रपति राजेन्द्र	,,	॥।)
१	सन्त विनोबा	,,	॥।)

अपने अन्य प्रकाशनों की एक सूची अवश्य भेजिये।

भवदीय—
जयकृष्ण अ

ापके ता० २ मार्च के पत्र में ही १२ हजार रुपये हार जाने के कारण ात्महत्या कर लेने वाले रामचरणदास के दुखद अन्त का समाचार छपा था। कल इसी प्रश्न को लेकर दो दलों में दङ्गा हो गया जिसमें दोनों ओर से खुलकर लाठी, तलवार और छुरों का प्रयोग हुआ। पुलिस की उपेक्षा से इस प्रकार की घटनाएं बढ़ती ही जा रही हैं। आशा है, पुलिस के अधिकारी इस सन्बन्ध में कड़ाई के काम लेगें और इस सामाजिक अपराध में लगे हुए लोगों के प्रति कड़ाई का व्यवहार करेंगे ताकि लोगों में शान्ति और सुरक्षा की भावना पैदा हो सके। सभी सभ्य नागरिकों में इस बढ़ती हुई जुआ-खोरी से बेचैनी है।

भवदीय,

रामकिशोर व्यास।

४—शिकायत-पत्र,

भोमियों का रास्ता
जयपुर।
१० दिसम्बर १९

पोस्ट मास्टर साहब,
जनरल पोस्ट आफिस,
अजमेर।

प्रिय महोदय,

निवेदन है कि मैंने २७ अक्टूबर १९६० को इलाहाबाद में इ प्रेस के मैनेजर को ७५) का एक मनीआर्डर भेजा था। मनी ापके सब-पोस्ट-आफिस, नयाबाजार से करवाया था। उसकी जिसका नं० ३२४ है, मेरे पास है। लेकिन वह मनीआर्डर इलाहाबाद नहीं पहुँचा है। आशा है, आप इस सम्बन्ध में जाँ मुझे यह सूचना देने का कष्ट करेंगे कि उसमें इतना विलम्ब क्यों ह मनीआर्डर समय पर न मिलने से मेरी किताबों का आदेश-पत्र वै हुआ है और व्यवसाय को क्षति पहुँच रही है।

आपका विश्
रामास्वामी

५—तगादा-पत्र—

चौपाटी बाज़ार,
कानपुर।
५ मार्च १९५०

प्रिय महोदय,

वन्दे! मुझे यह स्मरण दिलाते हुए बड़ा खेद है कि हमारे बिल नं० ४९३ और ५१७ के क्रमशः १५) रुपए, और २७) रुपए, कुल ४२) रुपए आपकी ओर पिछले छः मास से बाकी निकल रहे हैं। इस सम्बन्ध में पहले दो बार भी आपको लिखा जा चुका था और आपने लिखा था कि जनवरी के अन्तिम सप्ताह में आप रुपया भिजवा देंगे। लेकिन दुःख है कि अब तक रुपया नहीं मिला। इस पत्र के द्वारा मैं फिर आपको उन रुपयों का स्मरण दिला रहा हूँ। आशा है आप शीघ्र ही वह रुपया भिजवा देंगे।

भवदीय,
रामस्वरूप शर्मा।

६—पुस्तकादि सम्बन्धी पत्र—

हरि कुटीर,
कानपुर।
२८ मई १९५०

श्री व्यवस्थापक महोदय,
आगरा बुक स्टोर,
आगरा।

प्रिय महोदय,

वन्दे! मुझे निम्नलिखित चार पुस्तकों की आवश्यकता है—[illegible] (डा० अ० [illegible]) [illegible] का इतिहास ([illegible]) [illegible] ([illegible]) तथा हिन्दी शब्द-सागर ([illegible])। कृपया लिखिए कि इनमें से सब पुस्तकें आपके यहाँ से मिल सकेंगी या नहीं, और यदि मिल सकेंगी तो उन

उन पर कितना कमीशन दिया जायगा। आशा है आप लौटती डाक से सूचना देंगे।

भवदीय,

विनोद शङ्कर व्यास।

७—पूछताछ का उत्तर—

आगरा बुक स्टोर,

हॉस्पिटल रोड, आगरा।

प्रिय महोदय,

वन्दे! आपका पत्र मिला। धन्यवाद! उपर्युक्त चारों पुस्तकें हमारे पास हैं। देवदासी का मूल्य २॥), शब्द-कोष का ५) तथा कांग्रेस के इतिहास (दो भागों) का २०) रु० है। मेरी कहानी का मूल्य १०) रु० है। उसका एक संक्षिप्त संस्करण भी अभी निकाला है, जिसका मूल्य २) रु० है। सब पुस्तकों पर कमीशन २५) प्रतिशत दिया जाता है। आपका आदेश-पत्र प्राप्त होते ही पुस्तकें वी० पी० पार्सल से भेज दी जायेंगी।

कृपा बनाये रखिये और हमारे योग्य सेवा लिखिये।

भवदीय,

जयनारायण गुप्त।

(३) अधिकारियों को पत्र

छुट्टी के लिये प्रार्थना पत्र—

श्री प्रधानाध्यापक महोदय,

गवर्नमेंट हायर सेकण्डरी स्कूल,

सरावना।

प्रिय महोदय,

सविनय निवेदन है कि कल रात से मैं ज्वर से पीड़ित हूँ और इसी कारण विद्यालय में उपस्थित होने में असमर्थ हूँ। यदि स्वास्थ्य ठीक हो गया तो जल्दी ही उपस्थित होने का प्रयत्न करूंगा अन्यथा चार दिनों की

(ता० ५ दिसम्बर से ८ दिसम्बर १९५६ तक) छुट्टी स्वीकार करने की कृपा कीजिए।

आपका आज्ञाकारी शिष्य,
महेन्द्र [illegible],
कक्षा ६ अ,

[illegible]
५ दिसम्बर १९५६

३—नौकरी के लिए प्रार्थनापत्र—

श्री सञ्चालक महोदय,
शिक्षा-विभाग,
बीकानेर (राजस्थान)

मान्यवर,

हिन्दुस्तान टाइम्स के १७ मई के अङ्क में प्रकाशित विज्ञापन से ज्ञात हुआ कि आपके कार्यालय में [illegible] लिपिकों के दो स्थान रिक्त हुए हैं। अतः उनमें से एक के लिए मैं यह प्रार्थना-पत्र प्रेषित कर रहा हूँ।

जहाँ तक मेरी योग्यता का प्रश्न है मैंने राजस्थान विश्वविद्यालय से इसी वर्ष एम० कॉम० की परीक्षा पास की है। टाइप का कार्य मैं कुशलता-पूर्वक कर लेता हूँ। इस कार्य में मेरी गति प्रति मिनिट ६० शब्द है। मेरा स्वास्थ्य अच्छा है और विद्यार्थी जीवन में [illegible] में भी दिलचस्पी लेता रहा हूँ। महाराजा कॉलेज जयपुर की हॉकी टीम का एक वर्ष मैं कप्तान रहा था और एक वर्ष विद्यार्थी-परिषद् का मन्त्री भी चुना गया था।

इस समय मेरी आयु २२ वर्ष की है। बी० कॉम० पास करने के बाद मैंने एक वर्ष तक [illegible] के [illegible] में [illegible] लिपिक के स्थान पर काम किया था। अतः मुझे इस कार्य का व्यावहारिक अनुभव भी प्राप्त है।

इस प्रार्थनापत्र के साथ मैं [illegible] बी० कॉम० तक के प्रमाणपत्रों की प्रतिलिपियाँ भेज रहा हूँ। एम० कॉम० का [illegible] अभी [illegible] है उसका [illegible] भी [illegible] है। [illegible] कॉलेज के प्रिंसिपल डॉ० [illegible] और महाराजा कॉलेज के [illegible] के प्रमाणपत्र भी [illegible] हूँ।

अन्त में, मैं श्रीमान् को यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि यदि मुझे का अवसर दिया गया तो मैं अपने कार्य और व्यवहार से अपने कारियों को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करूँगा। आशा है मेरे प्रार्थना-पर सहानुभूति-पूर्वक विचार किया जायगा और मुझे उक्त स्थान पर युक्त किया जायगा। इस कृपा के लिये मैं श्रीमान् का सदैव आभारी हूँगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक—
यादवेन्द्र शर्मा।

राधा निवास,
सी० स्कीम, जयपुर
२२ मई, १९६०

३—चिकित्सालय खोलने के लिए प्रार्थना-पत्र—

श्री चेयरमैन साहब,
डिस्ट्रिक्ट बोर्ड,
अजमेर।

महोदय,

सविनय निवेदन है कि हमारे ग्राम खाजपुरा (अजमेर) में एक चिकित्सालय की अत्यन्त आवश्यकता है। यहाँ आसपास ६-७ मील तक कोई औषधालय नहीं है जिसके कारण बीमारों को समय पर डॉक्टरी सहायता उपलब्ध नहीं हो पाती। पिछले छह महीनों में ए साँप के काटने से, एक कुए में डूब जाने से, दो जलने से, तथा ती याँ प्रसूति-रोग के कारण असमय में ही मर गईं। इस ग्राम की जनसं ागभग डेढ़ हजार है। इसके अतिरिक्त यहाँ से दो-दो, तीन-तीन मील फासले पर अन्य दो ग्राम हैं जिनकी जनसंख्या लगभग दो हजार है। प्रकार यहाँ चिकित्सालय खुलने से लगभग साढ़े तीन हजार व्यक्तिय डाक्टरी सहायता का लाभ मिल सकता है।

आशा है श्रीमान् एक बार इस ग्राम में पधार कर सारी स्वयं देखने का कष्ट करेंगे और शीघ्र ही एक चिकित्सालय खो दान करेंगे। औषधालय के लिए भूमि हम ग्रामीण देने

तैयार हैं तथा ओवरब्रिज के निर्माण में सरकार द्वारा सहायता की कामना चाहते हैं।

हम हैं,
श्रीमान् के आज्ञाकारी सेवक,
ग्राम नारायणपुर के निवासी।

नारायणपुर,
१४ जनवरी १९६०

४—चोरी की सूचना—

श्री कोतवाल साहब
शहर कोतवाली,
जोधपुर,

श्रीमान्,

निवेदन है कि कल रात मेरे मकान में चोरी हो गई। चोरों ने ताला तोड़ दिया और बहुत-सा सामान ले गये। हम सब घर के लोग देवगांव में पण्डित रामकिशोर त्रिपाठी के घर विवाह में सम्मिलित होने गए थे। चोरी में कुल मिलाकर (१८००) रुपए का सामान गया है। सामान का विवरण निम्न प्रकार है—

वस्तुएँ	मूल्य
रेडियो	३५०)
साइकिल	१५०)
कपड़ा सीने की मशीन	२००)
कपड़े	३५०)
नकद रुपए	१५०)
गहने सोने-चाँदी के	४००)
बरतन	२००)
	१८००)

मुझे इस सम्बन्ध में रामलाल और किशन कहार पर सन्देह है। आशा है आप चोरी का पता लगाने में सहायता करेंगे।

रामानन्द, [illegible]
१५ मार्च १९६०

(ई) अन्य प्रकार के पत्र

प्रमाण-पत्र—

वावूराव जोशी एम० ए०, एल० टी०, साहित्यरत्न,
आचार्य, महिला शिक्षा सदन,
हायर सेकिण्डरी स्कूल,

हटूण्डी (अजमेर)
७ जुलाई १९५७

मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता है, कि कुमारी सुशीला पारीख ने इस विद्यालय में लगभग चार वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की। ७ वीं कक्षा में प्रवेश प्राप्त कर उसने इस वर्ष हाई स्कूल परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की है। इसके अतिरिक्त कताई, बुनाई और सिलाई के काम में उसकी विशेष रुचि रही है और इसके लिए समय-समय पर उसे पुरस्कार मिलते रहे हैं। खेल-कूद में भी वह सदैव अग्रणी रही है और तैरने, साइकिल चलाने आदि में भी उसने अच्छी कुशलता प्राप्त करली है। वह एक विनम्र, आज्ञाकारी, परिश्रमी और उत्साही छात्रा है। उसे जो भी कार्य सौंपा जाता है उत्तरदायित्व के साथ पूरा करती है। मैं उसकी हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

वावूराव जोशी।
७-७-५७

सूचना-पत्र

सर्व साधारण को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमारे शहर [illegible] होलिकोत्सव के उपलक्ष्य में दिनांक ८ मार्च १९६० को साहित्यकार सं[illegible] की ओर से एक वृहत् कवि-सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। [illegible] सम्मेलन की अध्यक्षता प्रगतिशील कवि रामधारीसिंहजी 'दिनकर' ने [illegible] स्वीकार कर लिया है। उनके अतिरिक्त सर्वश्री शिवमंगल सिंहजी '[illegible] गोपालदासजी 'नीरज', वीरेन्द्र मिश्र, वलवीरसिंह, 'रंग', भगवतीचरण [illegible] गोपालप्रसाद व्यास, देवराज दिनेश, रामानन्द दोषी, बालस्वरूप '[illegible]

हो और अपरिचित वातावरण में पहुँची हो। वहाँ तुम्हें लगातार पाँच वर्ष तक रहना पड़ेगा अतः कुछ बातें मैं लिख देना चाहता हूँ ताकि उनके प्रकाश में तुम अपने रहन-महन और व्यवहार को ऐसी सही दिशा में मोड़ सको जहाँ से फिर न मुड़ने की आवश्यकता हो न किसी प्रकार का पश्चाताप ही पल्ले पड़ सके।

सबसे पहिली बात यह है कि इस समय हमारा समाज नवीनता और प्राचीनता के सन्धि-स्थल पर खड़ा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही समाज के शैक्षणिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में तेजी से परिवर्तन होता जा रहा है। एक ओर एक बहुत बड़ा समुदाय पुरानी रुढ़ि-रीतियों और विश्वास-परम्परा से ही चिपका हुआ है। दूसरी ओर एक बड़ा समुदाय समय के अनुसार अपने कदम रखने का प्रयत्न कर रहा है। तुम्हारे अपने घर में ही तुम्हारी माताजी चौथी कक्षा से ज्यादा नहीं पढ़ सकी थीं, किन्तु तुम डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त करने जा रहा हो। हमारे समाज में अब भी पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह और दहेज जैसी कुरीतियाँ हैं और शिक्षा की ओर तो १० प्रतिशत लोगों का भी ध्यान नहीं गया है। अतः हम प्राचीनता और नवीनता के सन्धि-स्थल पर खड़े हैं। ऐसे अवसरों पर हम जैसे लोगों के लिए न तो यही उचित होता है कि उसे तिलांजलि देकर एकदम आधुनिक बन जायँ न पुरानी बातों से ही चिपके रहें। हमें दोनों की अच्छाइयों को लेकर दोनों का समन्वय करते हुए आगे बढ़ना है।

आधुनिक युग की अच्छाई—शिक्षा और स्त्रियों के समानाधिकार की बात को—हमने स्वीकार किया है और इसी विचार से तुम्हें मेडिकल कॉलेज में भेजा है, लेकिन हमें यह भी याद रखना है कि कहीं आधुनिकता के अन्धानुकरण में हम न पड़ जायँ। उसकी बुराइयों के प्रति हमें सजग रहना है। आज मैं उसकी सबसे बड़ी बुराई स्वच्छन्दता की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्पित करना चाहता हूँ। आधुनिक नारी समता और स्वतन्त्रता की झक में स्वच्छन्द और उच्छृंखल-सी बनने लग जाती है। वह न नीति-मर्यादा की परवाह करती है न सच्चरित्रता की। चरित्र

५—अभिनन्दन-पत्र—

सेवा में,

श्रद्धेय रामगोपालजी अग्निहोत्री,
आचार्य,
राजकीय हायर सेकण्डरी स्कूल,
विजयनगर।

महोदय,

कोटा जिला के विद्यालय-निरीक्षक के स्थान पर आपकी नियुक्ति के कारण आज इस विदाई-समारोह में हमारे हृदय हर्ष और विषाद से एक साथ उद्वेलित हो रहे हैं। हर्ष इस बात का कि वेतन-वृद्धि और पद-वृद्धि के कारण आप एक उज्ज्वल भविष्य की ओर जा रहे हैं और शोक इस बात का कि आपके स्वस्थ मार्ग-दशन से अपने जीवन के निर्माण और उचित दिशा-दर्शन का सुयोग हमें नहीं मिल सकेगा।

आदरणीय !

आपके मार्ग-दर्शन में शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग हमें पिछले तीन वर्षों से मिल रहा है। यह तीन वर्ष का समय हमारे जीवन में अविस्मरणीय रहेगा। इन दिनों विद्यालय ने जो प्रगति की वह इस नगर की शैक्षणिक प्रगति के इतिहास में अमर रहेगी। इन दिनों विद्यालय में छात्रों की संख्या ३०० से ७०० हो गई और अध्यापको तथा अन्य कर्मचारियों की संख्या भी १२ से २५ हो गई। इसके अतिरिक्त, पिछले दो वर्ष से इस विद्यालय का परीक्षाफल ८० और ९० प्रतिशत रहा तथा दोनों वर्ष इस विद्यालय के ३-३ छात्र प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। इस वर्ष तो एक विद्यार्थी सारे बोर्ड में ही प्रथम रहा।

गुरुवर !

आपके मार्ग-दर्शन में विद्यालय की शैक्षणिक दृष्टि से तो प्रगति हुई है लेकिन उसके साथ-साथ खेल-कूद और अन्य प्रवृत्तियों में भी आश्चर्यजनक प्रगति हुई। गत वर्ष इस विद्यालय की वॉलीवाल टीम जिला टूर्नामेंट में विजय हुई और इस वर्ष हॉकी और फुटबाल की टीमें भी विजय हुईं। इस

ा जाता है। संक्षेप में कहें तो निवन्ध एक गठी हुई रचना है। प्राचीन
चार्य गद्य को कवियों की कसौटी कहा करते थे। आचार्य रामचन्द्रजी
वल कहते थे कि यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की
सौटी है। वस्तुतः निवन्ध में ही गद्य का निजी रूप देखने को मिलता है,
योंकि वैसे तो कहानी, उपन्यास, जीवनी, समालोचना आदि भी गद्य में
ही लिखे जाते हैं लेकिन उनमें गद्य भाषा का माध्यम भर होता है। गद्य का
स्वरूप अपनी सारी साज सज्जा और शक्ति-मत्ता के साथ निवन्ध में ही
प्रकट होता हुआ दिखाई देता है।

हिन्दी निबन्ध शब्द अंग्रेजी के 'ऐसे' (Essay) शब्द के अर्थ
में प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ है प्रयत्न। प्रारम्भ में अंग्रेजी निवन्ध
किसी कल्पनाशील मन का विचरणमात्र होते थे। लेकिन जैसे जैसे
समय बीतता गया निवन्ध में शृंखलाबद्धता और बुद्धि-तत्त्व की प्रधानता
होती गई। आधुनिक निबन्ध की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कहानी
की तरह आकार में छोटा होता है; उसमें एक भी शब्द अनावश्यक
नहीं होता है। दूसरी महत्त्व की बात यह है कि निबन्ध में लेखक का
व्यक्तित्व झलकता रहता है; उसके विचारों में अपनी स्वयं की प्रेरणा
होती है, अपना स्वयं का दृष्टिकोण। जैसा कि ऊपर कहा गया है निबं
ा आकार छोटा होता है, अतः यद्यपि उसमें विचारों के पूर्ण प्रतिपाद
ी अपेक्षा नहीं की जा सकती तथापि उसमें गीतिकाव्य की तरह निजी
और पूर्णता होती है। उसमें लेखक के दृष्टिकोण की एक झाँकी हो
है। निवन्ध साधारण गद्य की अपेक्षा अधिक रोचक और अधिक स
होता है। उसमे लेखक की प्रतिभा की चमक होती है। श्री गुलाबरा
के अनुसार—"निबन्ध उस गद्यरचना को कहते हैं जिसमें
सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन
निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव, सजीवता तथा आवश्यक संगीत
सम्बद्धता के साथ किया हो।" निवन्ध के विषयों की कोई
नहीं होती। चींटी से लेकर आकाश-कुसुम तक सब निबन्ध के
बन सकते हैं। निवन्ध-लेखक की कला इसी में होती है कि वह
भी विषय या वस्तु की ओर आकर्षित होकर उसे अपने स्पर्श से

(४) विचारात्मक निबन्ध—इस प्रकार के निबन्धों में बौद्धिक चिंतन की प्रधानता रहती है। प्रायः इनमें अमूर्त विषयों पर विचार प्रकट किए जाते हैं। इसके अन्तर्गत धर्म, उत्साह, करुणा, सौन्दर्य, क्रोध, घृणा, [illegible], श्रद्धा, भक्ति, ईर्ष्या, लज्जा, आचरण, [illegible] और [illegible] आदि लिए जाते हैं। इनमें इस प्रकार के विषयों पर बुद्धि-तत्त्व विचार करके उनके गुण और दोषों का तर्कपूर्ण विवेचन किया जाता है। [illegible] किसी गुण विशेष पर लिखा हुआ है, लेखक [illegible] बातों को देखकर उनका स्पष्ट [illegible] के सामने प्रकट करता है। लेखक का प्रयत्न रहता है कि कठिन विषयों के सम्बन्ध में उसका अपना जो विचार हो वह [illegible] भी हो जाय। इस प्रकार के [illegible] विचार-[illegible] हो जाता है और विषय का [illegible] करने के लिए [illegible] होता है। [illegible] का [illegible] उदाहरण [illegible] होता है [illegible] का [illegible] बनाना होता है।

इस प्रकार वर्णनात्मक निबन्धों का [illegible] अधिकतर [illegible] होता है, उनमें विषय या वस्तु को [illegible] दिया जाता है। विचारात्मक निबन्ध का [illegible] होता है और [illegible] वस्तु को उसके [illegible] दिया जाता है। विचारात्मक निबन्धों में [illegible] है [illegible] निबन्धों में [illegible] को। एक में बुद्धि-तत्त्व प्रधान रहता है, दूसरे में हृदय-तत्त्व।

(१) कृत्रिम उपग्रह

१—भूमिका
२—[illegible] के भाग
३—[illegible] उपग्रहों का [illegible]
४—इसका वैज्ञानिक [illegible]
५—[illegible]

[illegible] आज [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] रहा है। [illegible] की [illegible]

हँसते हुए देखा और शोक की अवस्था में रोते हुए। कवि के लिये तारे कभी प्रेयसि का रत्नगठित वेणीवन्ध वने तो कभी दुःख-दग्ध हृदय के व्रण। दार्शनिकों ने तर्कों के सहारे उनके पास जाकर उनके रहस्यों को खोलने का प्रयत्न किया तो ज्योतिप और खगोल-शास्त्र के विद्वानों ने उनकी गति, कक्ष आदि की जानकारी प्राप्त करने में शताब्दियाँ विता दीं; किन्तु उनके रहस्य की सही जानकारी आज-तक आकाश-कुसुम ही वनी हुई है। वात यह है कि सारे शोध-कार्य बहुत दूर वैठ कर लाखों मील के फासले से किये हुए सम्पन्न होते हैं। अतः निश्चित समय पर अपने निश्चित स्थान पर उगने वाले तथा चमकदार और आकर्पक दिखाई देने वाले इन आकाश-स्थित पिण्डों के सम्बन्ध में मनुष्य की जिज्ञासा कुछ अंशों में ही तृप्त हो सकी है।

वैज्ञानिक प्रगति और खास कर अणुशक्ति के विकास ने इस जिज्ञासा की तृप्ति में सहायता दी है। उसकी सहायता से अव यह विश्वास किया जाने लगा है कि आधुनिक यन्त्र एवं वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर पृथ्वी से दूर लाखों मील के अन्तर पर स्थित ग्रहों और ...ारों तक पहुँचा जा सकता है और उनकी सही-सही जानकारी भी ...त की जा सकती है। अमेरिका और अफ्रीका की खोज के वाद ...ुष्य ने उत्तरी-ध्रुव, दक्षिणी-ध्रुव तथा एवरेस्ट पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया और उसमें सफलता प्राप्त करने के वाद उसके मन में यह विचार तीव्रता से लहराने लगा कि वह ग्रहों और तारों की भी यात्रा करे और देखे कि वहाँ कोई प्राणी रहते हैं या नहीं। यदि रहते हैं तो वे कैसे हैं। वे हमारी अपेक्षा अधिक बुद्धिमान हैं या कम। इसी विचार से पिछले कुछ वर्षों से चन्द्र, मंगल आदि पास के ग्रहों की यात्रा का प्रयत्न वड़ी तीव्रता के साथ किया जाने लगा है। कहीं वहाँ जाने वाले साहसी लोगों की सूची तैयार की जाने लगी है तो कहीं ऐसी संस्थाओं का संगठन होने लगा जिन्होंने उन ग्रहों की जमीन वेचने का ही श्रीगणेश कर दिया है।

इसी कुतूहल और जिज्ञासा के वातावरण में ५ अक्टूवर सन् १९५७ के दिन दुनियां के लोगों ने वड़े आश्चर्य और प्रसन्नता के

साथ समाचार-पत्रों में यह खबर पढ़ी कि रूस ने एक कृत्रिम उपग्रह बनाकर उसे आकाश में छोड़ दिया है। यह उपग्रह पृथ्वी से ५६० मील के अन्तर पर प्रति घण्टा १६००० मील की गति से पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर रहा है और ७६ मिनिट में पृथ्वी का एक पूरा चक्कर लगा देता है। दुनियाँ के वैज्ञानिकों ने अपनी अपनी दूर्बीनों से उसे देखा और उससे आने वाले बतार के सन्देशों को भी सुना। रूस की इस सफलता पर दुनियाँ प्रसन्नता से नाच उठी। रूस ने भी प्रोत्साहित होकर थोड़े ही दिन बाद एक अन्य उपग्रह आकाश में छोड़ा। यह दूसरा उपग्रह पहले की अपेक्षा अधिक बड़ा था। उसमें एक कुत्ता भी बैठाया गया था ताकि यह मालूम हो सके कि उसके अन्दर मनुष्य जीवित रह सकता है या नहीं। कुत्ता तो ५—७ दिन जीवित रहकर मर गया किन्तु यह उपग्रह भी काफी अर्से तक पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता रहा। इसके बाद अमरीका ने भी इस दिशा में प्रयत्न प्रारम्भ किया। उसका पहला प्रयत्न असफल हुआ किन्तु शीघ्र ही फरवरी १९५८ के प्रारम्भ में उसने भी एक उपग्रह आकाश में उड़ाया जो कुछ समय तक पृथ्वी की प्रदक्षिणा सफलतापूर्वक करता रहा। अब रूस और अमरीका दोनों ही इन उपग्रहों में जिन्दा मनुष्य भेजने में व पृथ्वी के चक्कर लगा कर सकुशल नीचे उतारने में संलग्न हो गये हैं।

इन समाचारों में साधारणतः यह जिज्ञासा होती है कि इस प्रयोग का वैज्ञानिक आधार क्या है? विज्ञान में रुचि रखने वाले सर न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त से भलीभाँति परिचित हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी में ही नहीं, प्रत्येक वस्तु में आकर्षण की शक्ति होती है और वह दूसरी वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करती है। यही कारण है कि पृथ्वी पर स्थित पदार्थ उससे दूर नहीं जा पाते हैं। पृथ्वी से हम जितना दूर जाते हैं उतना ही आकर्षण घटता है। अतः अन्तरिक्ष की यात्रा करने वाले व्यक्ति को सबसे पहले इस गुरुत्वाकर्षण पर विजय प्राप्त करनी होती है। दूसरी बात यह है कि पृथ्वी के आस-पास का वातावरण वायु जैसे पदार्थों से बना हुआ ... कोई वस्तु

पृथ्वी से दूर जाने का प्रयत्न करता हैं तो यह वातावरण पहले ७.८ मील तक उसका जबरदस्त विरोध करता है। उसके आगे यह धीरे-धीरे कम होता जाता है और २०० मील के आगे तो वह करीब-करीब नष्ट ही हो जाता है। अतः जब कोई पदार्थ पृथ्वी से दूर फेंका जाता है तो उसके वेग और पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति में निरन्तर रस्साकशी होती रहती है। यदि वेग कम हुआ तो वह पदार्थ पृथ्वी पर गिर पड़ता है। किन्तु जब वेग ज्यादा होता है तो वह निरन्तर दूर जाता रहता है और आकर्षण की कक्षा से दूर पहुँच जाता है। ऐसी स्थिति में सबसे पहले आवश्यकता यह होती है कि यदि किसी पदार्थ को पृथ्वी से दूर भेजना है तो उसे किसी अत्यन्त वेगवान वाहन के द्वारा पृथ्वी से दूर पहुँचाया जाय। दुनियाँ के वैज्ञानिक पिछले कई वर्षों में इसी प्रकार के निर्माण में अपनी बुद्धि और शक्ति लगा रहे थे। विगत महायुद्ध में जर्मनी ने "व्ही—२" नामक एक राकेट का निर्माण करके इस दिशा में सफलता प्राप्त की और दुनियाँ के वैज्ञानिकों में नवीन आशा का संचार कर दिया। राकेट की तुलना बन्दूक से की जा सकती है। जिस प्रकार न्दूक तेजी से गोली फेंकती है उसी प्रकार राकेट भी अपने अन्दर के को तेजी से बाहर फेंकता है। सन् १९३७ में जो राकेट बने थे वे डेढ़-दो मील ही जा सकते थे। लेकिन १९४७ में ऐसे राकेटों का ाण हो गया जो १२८ मील तक जा सकते थे। और अब तो ऐसे ाकेट बन गये हैं जो २५०-३०० मील तक की दूरी तक पहुँच जाते हैं। स और अमेरिका के उपग्रह इन राकेटों के द्वारा ही पृथ्वी की आकर्षण क्ति से दूर लगभग ३०० मील के अन्तर पर पहुँचाये जाते हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि ३०० मील ऊपर पहुँच कर ये उपग्रह थ्वी के आसपास कैसे घूमते रहते हैं। कल्पना कीजिये कोई बालक गे के एक सिरे में कोई पत्थर का टुकड़ा बाँध कर दूसरा सिरा अपने थ में रखता है और घुमाता है। इस खेल में पत्थर एक गोल घेरा ाते हुए घूमता है। हाथ का धागा एक ओर पत्थर को अपने पास चता है तो घुमाने से प्राप्त होने वाली गति उसे दूर खींचती है। इन ों शक्तियों में जब तक संतुलन रहता है तबतक पत्थर गोल घेरा

बनाता हुआ घूमता रहता है। यदि गति कम होती है तो पत्थर हाथ के पास आ जाता है, और धागा टूट जाता है तो पत्थर दूर चला जाता है। रॉकेट फेंके जाने वाले उपग्रह की लगभग यही स्थिति होती है। उपर्युक्त उदाहरण में हाथ के स्थान पर पृथ्वी, धागे के स्थान पर गुरुत्वाकर्षण तथा पत्थर के स्थान पर उपग्रह की कल्पना करली जाए तो बात स्पष्ट हो जायेगी।

आज के युग को अणुशक्ति का युग कहते हैं। किन्तु जब से रूस ने कृत्रिम उपग्रह का निर्माण किया और उसे आकाश में छोड़ा है तब से इसे कृत्रिम उपग्रह का युग कहा जाने लगा है। हमारे भूतपूर्व प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू अपने भाषणों में बार-बार कहते रहे कि यह कृत्रिम उपग्रहों का युग है। इस सारे युग को ही इस नाम से पुकारना यह बताता है कि उपग्रहों के आविष्कार में नई-नई संभावनाएं छिपी हुई हैं। सबसे अधिक महत्व की बात यह है कि उन उपग्रहों में बैठकर मनुष्य अन्तरिक्ष की सारी जानकारी प्राप्त कर सकेगा और उसके आधार पर आगे की यात्रा सरल हो सकेगी। यह मालूम हो सकेगा कि वहाँ सूर्य के प्रकाश के कारण वस्तु का अधिक से अधिक तापमान कितना रहता है, उस वस्तु के मार्ग में कास्मिक किरण कितनी आती हैं तथा सूक्ष्म उल्काओं की वर्षा उस पर कितनी होती है। इन उपग्रहों में वहाँ के वातावरण के तापमान, दबाव और घनता आदि का भी ज्ञान प्राप्त होगा और इन सब जानकारियों के आधार पर ग्रहों और तारों की यात्रा सरल बनेगा। अभी जो उपग्रह छोड़े गये हैं उनकी गति प्रति सेकिण्ड पाँच मील है। यदि यह गति सात मील हो गई तो चन्द्रमा तक पहुँचने में केवल पाँच दिन का समय लगेगा। इन उपग्रहों का महत्व आज इसी कारण है कि ये उपग्रह एक आधार का काम देंगे। इनमें अणुशक्ति का संचय करके फिर आगे चन्द्र मङ्गल, सूर्य आदि ग्रहों की यात्रा की जा सकेगी। जिस प्रकार हमारे देश के जहाज चीन या जापान जाते हुए सिंगापुर में ठहरते हैं और वहाँ कोयला आदि लेकर आगे बढ़ते हैं उसी प्रकार ग्रहों की यात्रा के लिए जाते इन उपग्रहों में थोड़ी देर ठहरना और आवश्यक वस्तुएं लेकर ... ना

सिनेमा का आविष्कार सन् १८७० में अमेरिका के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिसन ने किया था। अपने जन्म के २०-२५ वर्ष बाद ही सिनेमा भारत में आ गया। पहलेपहल यह मूक चित्रपट के रूप में दिखाया जाता था। लोगों को ठीक प्रकार से कथा समझाने के लिए बीच-बीच में कुछ लिख दिया जाता था अथवा कोई व्यक्ति बोल कर पर्दे पर कहता रहता था। सन् १९२८ में यह कमी दूर हो गई और ऐसे बोलते चित्रपट बनाए जाने लगे जिनमें अभिनय के साथ-साथ बातचीत और संगीत आदि का भी आनन्द आने लगा। अब रूप के साथ शब्द का आनन्द प्राप्त होने लगा। अभी पाँच-सात वर्ष से एक और आविष्कार हुआ है। रंगीन चित्रपट भी तैयार होने लग गए हैं।

सिनेमा-घरों में जो चलचित्र दिखाए जाते हैं उन्हें बनाने का काम बड़ी कम्पनियाँ करती हैं। इन कम्पनियों के पास लाखों-करोड़ों रुपया की पूँजी होती है और चित्र बनाने में ही वे बहुत सा पैसा और समय खर्च करते हैं। जिस स्थान पर ये चित्र बनाए जाते हैं उसे स्टूडियो कहते हैं। वैसे चित्र बनाने का काम यहीं होता है किन्तु पहाड़, नदी, समुद्र, वन के चित्र लेने के लिए बाहर भी जाना पड़ता है। एक ओर अभिनय रहता है और दूसरी ओर शीघ्रगामी कैमरा चित्र लेता रहता है। इस प्र विभिन्न मानवी-चेष्टाओं और भावव्यञ्जनाओं और गतियों के अनेक लिए जाते हैं। एक-एक मानवी-चेष्टा और गतिविधि का प्रदर्शन करने लिए सहस्रों चित्र लेने पड़ते हैं। इस प्रकार एक साधारण-सा फिल्म के लिए करोड़ों चित्रों की आवश्यकता होती है। इन चित्रों का नाम ही फिल्म है। ध्वनि को रिकार्ड लेने के लिए साथ ही दूसरा यन्त्र होता है। फोटोग्राफी की कला के अनेक चमत्कार चलचित्र में देखने को मिलते हैं। ऊँचे पहाड़ से उठाकर मनुष्य समुद्र में फेंक दिया जाता है। ऊँचे ऊँचे मकानों पर आदमी बन्दर की तरह चढ़ता हुआ दिखाया जाता है। प्रकार जब पूरी रील तैयार हो जाती है तो उसे सिनेमा-घरों में प्रदर्शन लिए भेज दिया जाता है। जब ये चित्र शीघ्रगामी मशीनों के द्वारा पर दिखाए जाते हैं तो हम भूल जाते हैं कि हम जो देख रहे हैं वास्तविक नहीं है। यन्त्र इसकी सत्ता से परदा है। पूने

...सर ही नहीं मिलता कि एक के बाद एक अनेक चित्र हम एक साथ देखते ...ा रहे हैं।

सिनेमा की दुनियाँ बड़ी अनोखी है। वहाँ बड़े विचित्र ढंग से बात-चीत होती है; विचित्र तरह की हँसी, हँसी जाती हैं और विचित्र तरह से दुखः प्रकट किया जाता है । सिनेमा के हाव-भाव, बात-चीत और संगीत गली-गली में सुनाई और दिखाई पड़ जाते हैं। क्या बालक और क्या युवा, क्या ताँगे वाला और क्या रिक्षावाला, क्या मजदूर और क्या व्यापारी सभी की जवान पर सिनेमा का संगीत बैठा हुआ प्रतीत होता है । उसने बड़े-बड़े नाटक-घरों में और संगीत-शालाओं के ताले बन्द करवा दिये हैं। वह निरन्तर अधिकाधिक लोकप्रिय बनता जा रहा है। अमेरिका इसमें सबसे आगे है। भारत में भी पिछले १०-१५ वर्षों में ही उसने काफी प्रगति करली है। एक के बाद एक ऐसी अच्छी-अच्छी फिल्में बन रही हैं कि भारतीय फिल्म-व्यवसाय का भविष्य बड़ा उज्ज्वल प्रतीत होता है।

सिनेमा बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। वह मनोरंजन का एक सस्त... और अच्छा साधन है । एक बार फिल्म तैयार हो गई कि वह क... शहरों में एक साथ दिखाई जा सकती है। इससे लाखों व्यक्ति उसका ल... उठा सकते हैं। दिन के काम से थके हुये व्यक्ति सिनेमा में चले ज... हैं और वहाँ एक साथ संगीत, नृत्य, अभिनय और हास्य-विनोद ... आनन्द प्राप्त करते हैं। थकावट दूर करने के साथ-साथ वह रुचि... परिष्कार करती है। वह निम्न कोटि के विनोद और मनोरंजन से ... उठाकर व्यक्ति को सभ्य और संस्कृत बनाती है।

सिनेमा शिक्षा का एक बड़ा अच्छा साधन है । जितनी जा... कक्षा में अध्यापक नहीं दे पाता है उतनी जानकारी सरल... सिनेमा के द्वारा मिल जाती है। ऐतिहासिक, धार्मिक और स... चित्रों में बहुत से ऐसे दृश्य दिखाये जाते हैं जिनसे सहज ही ... इतिहास, राजनीति, विज्ञान, साहित्य, कला आदि का ... आता है। कक्षा में प्रायः भाषण के द्वारा ही बहुत-सी बातें बताई... लेकिन सिनेमा में ये सब प्रत्यक्ष दिखाई जाती हैं । प्रताप की ...

या राजा हरिश्चन्द्र की सत्यप्रियता की कहानी कहने में उतनी प्रभावशाली नहीं होती जितनी अभिनय के द्वारा । महात्मा गांधी पर सत्य हरिश्चन्द्र नाटक देख कर ही उसकी सत्यप्रियता का अमिट प्रभाव पड़ा था, जो अन्त तक उनके जीवन का पथप्रदर्शन करता रहा । इसी प्रकार ऐतिहासिक, भौगोलिक महत्त्व के स्थान प्रत्यक्ष बालक को दिखाना तो कठिन होता है। उन्हें चित्रपट के द्वारा प्रत्यक्ष बालक को दिखाया जा सकता है और इस प्रकार उनके ज्ञान को अधिक तेजस्वी, शक्तिशाली और पूर्ण बनाया जा सकता है । आजकल भारत-सरकार कुछ 'डाक्यूमेण्ट्री फिल्म्स' तैयार करती है जो प्रत्येक खेल के प्रारम्भ में दिखाई जाती है । देश-विदेश की बहुत-सी अच्छी अच्छी बातों का ज्ञान इनसे होता है और जिन समारोहों में हम सम्मिलित नहीं हो पाते उनकी झलक इनमें देखने हैं। सिनेमा के द्वारा खेती तथा कारखानों की विविध प्रक्रियायें बड़ी सरलता से दिखाई जाती हैं और नवयुवकों तथा किसानों के लिए बड़ी लाभदायक सिद्ध होती हैं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न देशों और जातियों की वेषभूषा, रीतिरिवाज एवं रहन-सहन का ज्ञान सहज हो जाता है और वहाँ के पशु-पक्षियों की बोली तथा स्वरूप का परिचय भी प्रत्यक्ष रूप से हो जाता है ।

सिनेमा या चित्रपट मानव-आचरण के संस्कार का एक बहुत अच्छा साधन है । उसके द्वारा मानव भावनाओं और अनुभवों को प्रत्यक्ष रूप देखने व सुनने का अवसर मिलता है । वहाँ मानव-हृदय के उन हर्ष शोक, भय, प्रेम आदि को भी प्रत्यक्ष रूप में देखने और अनुभव करने का अवसर मिलता है जिन्हें हम साधारणतः अनुभव तो करते हैं, किन्तु अभिव्यक्त नहीं कर पाते । सिनेमा में कथानक, संगीत, अभिनय, वातावरण आदि की योजना एक विशिष्ट उद्देश्य से की जाती है और पूरा देखने के बाद उसका उद्देश्य मन पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहता । सिनेमा का यह प्रभाव ही आचरण का संस्कार करता है ।

सिनेमा से जहाँ इतने लाभ हो सकते हैं, वहाँ हानियाँ भी होती हैं । आजकल सिनेमा का व्यवसाय लाभ की मनोवृत्ति से चल रहे हैं उच्च-आदर्शों के प्रसार और प्रचार की दृष्टि से नहीं

थे और बहुत ज्यादा बोझा लादा जा सकता था।

पहले महायुद्ध के साथ वायुयान का विकास प्रारम्भ हुआ। पहले-पहल शत्रु की गति-विधि की जानकारी प्राप्त करने के काम में उसका उपयोग होने लगा और बाद में बम गिराने के काम में। वायुयान के आविष्कार से शत्रु के शहरों पर सरलतापूर्वक बम गिराये जा सकते थे तथा उनकी सारी व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट किया जा सकता था। अतः वायुयान की कीमत बढ़ी। नतीजा यह हुआ कि जहाँ पहले युद्ध के समय ब्रिटेन के पास केवल १२० वायुयान थे वहाँ युद्ध का अन्त होते होते बीस हजार हो गये। अब राजनीतिज्ञों ने अनुभव कर लिया है कि वायुयान की शक्ति के बिना वर्तमान युद्ध में विजय प्राप्त करना कठिन है।

पहले महायुद्ध के समाप्त होते ही वायुयान की उपयोगिता की दिशा बदली। अब वहाँ बम को बरसाना नहीं था। अतः नागरिक उड्डयन की ओर लोगों का ध्यान गया। रेल और बस-सर्विस की भाँति वायुयान भी दुनियाँ के एक देश से दूसरे देश की यात्रा के काम में लिया जाने लगा। दूसरे देशों की यात्रा सुखकर करने की दृष्टि से वायुयान में और कुछ सुधार किया गया और युद्ध के समय बाद वायुयान की यात्रा आनन्ददायक बनने लगी। वायुयान ने समय और दूरी दोनों को ही बहुत घटा दिया। एक तो वायुयान की गति बहुत तीव्र थी, दूसरे रेल, मोटर आदि की तरह उसे किसी बंधे बंधाये मार्ग पर चलना आवश्यक नहीं होता। वायुमण्डल में न कोई पहाड़ है, न नदी। वहाँ तो उसको सीधा रास्ता मिलता है। अतः इस उपयोगिता के कारण वायुमार्ग निश्चित हुए और उन पर वायु-यात्राएँ होने लगीं। वायुयान के ठहरने के लिए एरोड्रम बनाए गए। थोड़े ही दिनों में नागरिक उड्डयन के केन्द्र दुनियाँ के सभी बड़े शहरों में फैल गये। आजकल बहुत से लोग विदेशों की यात्रा हवाई-जहाजों के द्वारा ही करते हैं।

वायु-यात्राओं की लोकप्रियता शीघ्रता से बढ़ती जा रही है। आजकल इतने बड़े वायुयान बन गये हैं जो १०० यात्रियों

वस यही वात ट्रांसमीटर द्वारा फैंकी हुई आवाज की भी होती है। वह भी ध्वनि तरंगों को दूर-दूर तक सारे भूमण्डल में फैला देती है। वस जिस स्थान पर रेडियो लगा रहता है वहाँ ठीक वही आवाज सुनाई देती है जो व्राडकास्टिग स्टेशन पर वोली जा रही है। रेडियो के काम में विजली का वहुत महत्त्व है। यदि वह न हो तो रेडियो वेकार रहता है। मकान की छत पर लगे हुए ऊँचे ऊँचे वाँसों पर जुड़े हुए दो तारों के द्वारा मनुष्य निर्मित विजली से प्राकृतिक विजली का सम्वन्ध स्थापित कर दिया जाता है। विजली आवाज को पकड़ती है और रेडियो में लगा हुआ लाउड-स्पीकर ध्वनि को सुनने योग्य वना देता है। रेडियो में हवा की दिशा वदलने के लिए सुइयाँ लगी रहती हैं। रेडियो का दैनिक कार्यक्रम पहले ही समाचार-पत्रों में छप जाता है। उसे पढ़कर जो प्रोग्राम आप चाहें सुई घुमाकर उसी को सुनिये। कमरे में वैठे-वैठे किसी भी देश की खवर सुन लीजिये। आपको ऐसा लगेगा जैसे कोई व्यक्ति रेडियो के अन्दर ा है और वही वोल रहा है।

रेडियो के आविष्क.र ने समाचार-पत्र, तार और टेलीफोन आदि ाविष्कारों के महत्त्व को कम कर दिया है। समाचार-पत्र हमें हर देशों में घटने वाली वड़ी-छोटी सभी प्रकार की घटनाओं की खवर एक दो दिन वाद ही देते हैं लेकिन रेडियो में इतनी भी देर की जरूरत नहीं है। समाचार-पत्र की तरह उसकी खवरें, रेल, मोटर या हवाई-जहाज के ऊपर वैठकर नहीं आतीं। वह तो वायु के अत्यन्त द्रुतगामी पंखों पर वैठकर आती हैं। उसमें समाचारों को इकट्ठा करके छापने की भी जरूरत नहीं रहती। उधर माइक्रोफोन पर आदमी ने वोलना शुरू किया और इधर आवाज आने लगी। फिर समाचार-पत्र की जड़ता रेडियो में नहीं होती। उसकी खवरें जिन्दा आदमी की आवाज-सी सुनाई देती हैं। अतः उसमें जिन्दादिली होती है। टेलीफोन पर अवश्य जल्दी वात हो सकती है लेकिन वह केवल दो आदमियों की ही वात होती है। दूर देशों के सभी प्रकार के समाचार, अनेक विपयों पर भापण, नृत्य, संगीत, वाद्य आदि सवका आनन्द उसमें फौरन प्राप्त हो सकता है। और तार, वह तो

से ज्यादा योग देकर मानव-जाति के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। टेलीविजन से उसकी उपयोगिता तथा आनन्द और बढ़ जायगा। अब तक सुनने का ही लाभ मिलता था। अब देखने का लाभ मिलने लगेगा। ईश्वर करे, वह दिन जल्दी आए और रेडियो के लाभ साधारण व्यक्ति को प्राप्त होने लगें।

(५) समाचार-पत्र

१—भूमिका—समाचार-पत्र आधुनिक युग की एक आवश्यकता
२—समाचार-पत्र—उनका जन्म तथा विकास
३—समाचार-पत्रों की व्यवस्था
४—समाचार-पत्रों की उपयोगिता एवं कार्य
५—समाचार-पत्रों की कमजोरियाँ
६—समाचार-पत्र तथा रेडियो
७—उनकी सही दिशा

सभ्यता के विकास के साथ समाचार-पत्र मानव-जीवन के लिए ही आवश्यक होते जा रहे हैं जितने कि वायु, जल और भोजन। भोजन हमारी शारीरिक भूख शान्त करता है तो समाचार-पत्र मानसिक भूख शान्त करते हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में पैदा होता है और समाज में ही उसका विकास होता है। आगे चलकर समाज ही उसका कार्यक्षेत्र बनता है। ऐसी स्थिति में हमारी प्रगति दुनियाँ का ज्ञान प्राप्त करने, दूसरों के अनुभव से लाभ उठाने तथा जो कुछ अपने पास है उसका लाभ दूसरों को देने में ही समाई हुई है। हमें दुनियाँ से बहुत कुछ प्राप्त करना है और उसे बदले में बहुत कुछ देना भी है। समाचार-पत्र हमारे इस आदान-प्रदान के माध्यम हैं। यही कारण है कि चाय के साथ-साथ हम अपनी टेबुल पर समाचार-पत्र की भी प्रतीक्षा करते हैं और जिस दिन वह नहीं मिल पाता नाश्ता फीका-फीका लगने लगता है। आज दुनियाँ इतनी तेजी के साथ बदल रही है, घटनाएँ इतनी तीव्रता के साथ घट रही हैं तथा दुनियाँ का प्रभाव हमारे ऊपर इतनी शीघ्रता से पड़ रहा है कि हम उससे अलग-अलग नहीं रह सकते।

हन नहीं करना चाहिए। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हम श्रृंखल बनने दें। दूसरी बात यह है कि समाचार-पत्रों को पैसे से भी मुक्त रखना चाहिए। पैसे के प्रभाव से सत्य कहने की कम हो जाती है और पत्र का उद्देश्य पैसा कमाना या इसी प्रकार छ हो जाता है। इससे समाज का सही हित नहीं हो पाता। ार-पत्र मानव हित के प्रहरी हैं। उन पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व अतः, उन्हें बहुत संयम से काम लेना चाहिये और स्वेच्छा से ही ने ऊपर कुछ प्रतिबन्ध लगाना चाहिए; तभी वे समाज का हित धन कर सकेंगे। यही उनकी सही दिशा होगी।

(६) संयुक्त-राष्ट्र-संघ

१—भूमिका
२—संयुक्त-राष्ट्र-संघ का उद्देश्य
३—उसका संगठन
४—सफलताएँ
५—असफलताएँ
६—उपसंहार

विज्ञान की प्रगति से जहाँ मनुष्य की सुविधाएं बढ़ी हैं वहाँ बहुत खतरे भी पैदा हो गये हैं। इससे जहाँ रेडियो, टेलीफोन, रेलवे, मो जहाज, बिजली, टेलीविजन, अणुशक्ति आदि का आविष्कार हुआ है एटम और हाइड्रोजन बम तथा राकेट्स का आविष्कार भी हुअ लड़ाई की ही बात लें तो पहले जमाने में लड़ाइयाँ बार-बार जगह-जगह होती रहती थीं, उनसे इतनी हानि नहीं होती थी आजकल होती है। पहला महायुद्ध लगभग पाँच वर्ष चला औ दुनियाँ के अधिकांश राष्ट्र सम्मिलित हुए। इस युद्ध में लगभग ए व्यक्ति मारे गये और आर्थिक दृष्टि से तो इतनी हानि हुई कि राष्ट्र वर्षों तक प्रयत्न करके भी अपनी समृद्धि नहीं पा सके। इ में जो क्षति हुई उसने दुनियाँ के राजनीतिज्ञों को यह अनुभ कि यदि आगे भी इस प्रकार के महायुद्ध होते रहे तो दुनियाँ

(४) सभी राष्ट्रों के जीवन मान को ऊँचा करना।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे उद्देश्य बड़े ही अच्छे हैं। यदि ईमानदारी के साथ इनका पालन किया जाय तो विश्व-शान्ति आकाश-कुसुम न बनी रहेगी। अपने इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए संयुक्त-राष्ट्र-संघ का संगठन निम्न प्रकार किया गया है—

साधारण परिषद्—साधारण-परिषद् का निर्माण दुनियाँ के ६० देशों के प्रतिनिधियों से हुआ है। इस परिषद् में प्रत्येक सदस्य राष्ट्र पाँच प्रतिनिधि और पाँच पर्याय-प्रतिनिधि भेज सकता है। किन्तु प्रत्येक राष्ट्र का वोट एक ही माना जाता है। इस परिषद् की वर्ष में एक बैठक अनिवार्य रूप से होती है। यह परिषद् संयुक्त-राष्ट्र-संघ की व्यवस्थापिका सभा ही है। यदि दुनियाँ का कोई सबल राष्ट्र किसी निर्बल राष्ट्र पर आक्रमण करता है तो यह परिषद् उन पर विचार करती है। परिषद् अपनी सिफारसें कार्यकारिणी को भेजती है और सुरक्षा-परिषद् उन्हें कार्य रूप में परिणत करने का प्रयत्न करती है।

सुरक्षा-परिषद्—यह संयुक्त-राष्ट्र-संघ का दूसरा महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। इसमें ११ स्थायी सदस्य होते हैं जिनमें पाँच सदस्य (अमरीका, इङ्गलैंड, फ्रांस, रूस और चीन) स्थायी सदस्य हैं। शेष छह अस्थायी साधारण-परिषद् द्वारा दो वर्षों के लिए चुने जाते हैं। इस परिषद् का प्रमुख कार्य है दुनियाँ में शान्ति और सुरक्षा स्थापित करना। परिषद् में निर्णय बहुमत के द्वारा होते हैं किन्तु किसी भी निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए पाँचों स्थायी सदस्यों की सम्मत्ति आवश्यक है। पाँचों को निषेधाधिकार (वीटो) प्राप्त है और यदि उनमें से एक भी सदस्य असहमत होने के कारण निषेधाधिकार का प्रयोग करता है तो निर्णय कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। सुरक्षा-परिषद् आवश्यकता होने पर सैनिक-शक्ति का भी प्रयोग कर सकता है।

आर्थिक और सामाजिक परिषद्—यह संगठन संयुक्त-राष्ट्र-संघ के सदस्य राष्ट्रों को उनकी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों की उन्नति का उपाय बताती है। इस परिषद्

न्तु इतनी सफलता पर गर्व नहीं किया जा सकता। अभी संयुक्त-घ को बहुत कार्य करना है। वह कुछ समस्याएं तो अब तक भी ही कर सका है। दक्षिण-अफ्रीका में जातीय भेदभाव का प्रश्न वर्षों ष्ट्र-संघ के सामने है और उसके बार-बार कहने के बावजूद दक्षिण-का उसकी बात मानने के लिए तैयार नहीं हुआ है और संयुक्त-राष्ट्र-उस पर दबाव डालने में हिचकिचाहट दिखा रहा है। चीन जैसे महान् ष्ट्र को अपने अस्तित्व में आ जाने के १२-१३ वर्ष बाद तक भी मान्यता हीं मिली है और वह चांगकाई शेक की फारमोसा सरकार को ही चीन की प्रतिनिधि सरकार मानता है। काश्मीर का प्रश्न १४ वर्षों से उसके सामने है और उसका कोई फैसला नहीं हो सका है। इस तरह के और भी कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। इन सबके मूल में संघ के सदस्य राष्ट्रों की गुटबन्दी, पारस्परिक अविश्वास और सत्ता प्राप्ति की चीजें हैं। जब तक वे अपने संकुचित स्वार्थों से ऊपर उठकर शुद्ध विश्व कल्याण और न्याय का दृष्टिकोण नहीं अपनाएँगे, तब तक राष्ट्र संघ एक महान् संस्था होते हुए भी कमजोर बनी रहेगी।

भारत आरम्भ से ही इस संस्था को विश्व की संस्था बनाने के सत्प्रयत्न में कोशिश करता रहा है। २४ दिसम्बर १९५५ तक केवल ६० देश ही इस संस्था के सदस्य थे, पर उसी तारीख की रात्रि को साधारण-परिषद् के एक विशेष अधिवेशन में संसार से सोलह नये देशों को संयुक्त-राष्ट्र-संघ की सदस्यता देने का निर्णय हुआ, ये सोलह देश हैं—अलबानिया, जार्डन आयरलैंड, पुर्तगाल, हंगरी, इटली, आस्ट्रिया, रूमानिया, बल्गेरिया, फिनलैं लंका, नेपाल, लिबिया, कम्बोडिया, लाओस और स्पेन। संसार में एशि व अफ्रीका आदि महाद्वीपों के वे राष्ट्र, जो अब तक साम्राज्यवादी-ता के आधीन रहते आये हैं, धीरे-धीरे स्वतंत्र हो रहे हैं, वे भी संयुक्त-संघ की सदस्यता प्राप्त करते आ रहे हैं। वस्तुतः संयुक्त-राष्ट्र-संघ प्रति-दिन सबल होता जा रहा है।

इस प्रकार यद्यपि राष्ट्र-संघ ने कुछ सफलता प्राप्त की है त असफलता भी उसके पल्ले पड़ी है तथापि वह एक महान् सं उसका उद्देश्य महान् है। वस्तुतः उसकी सफलता एक दो

समितियों ने शान्ति के समय भी बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। चारों ओर उनके कार्य की प्रशंसा हुई और अब तो देश-देश में उनकी समितियाँ संगठित हो गई हैं।

आज संसार में ऐसा कोई सभ्य देश नहीं है जिसमें स्काउट संस्था न हो, चाहें मेले हों, चाहे उत्सव और चाहे बाढ़ आ रही हो, चाहे भूकम्प आया हो, सब जगह उसके स्वयं सेवक पहुँच जाते हैं और नागरिकों की सहायता करते हैं। छोटे-छोटे बालकों में समाज-सेवा की भावना पैदा करने तथा उन्हें प्रत्यक्ष सेवा कार्य में लगाने के कारण यह संस्था-शिक्षा के कार्य में बड़ा जबरदस्त योग देती है। वह बालकों के व्यक्तित्व का विकास करती है और चरित्र-निर्माण का मार्ग प्रशस्त बनाती है। वह नागरिकों की सेवा का एक महान् उद्देश्य लेकर कार्य करती है और बालकों में नई चेतना, नई जागृति पैदा करती है।

भारतीय बालचर-संस्था का जन्म पिछले महायुद्ध के समय हुआ। यहाँ उसको प्रारम्भ करने का श्रेय श्रीमती एनी बीसेन्ट को है। आयु

नु ।८ इस संस्था में तीन प्रकार के स्वयंसेवक होते हैं। आठ से बारह वर्ष तक के बालकों को शेरबच्चा कहा जाता है। १२ से १८ वर्ष तक के बालक स्काउट कहे जाते हैं और १८ से अधिक के 'रोवर'। यद्यपि ये भेद आयु के आधार पर बनाये गए हैं तथापि साधारणतः सभी स्वयंसेवकों को स्काउट कहा जाता है। स्काउटों का समुदाय बालचर-संघ कहा जाता है। यह संघ टोलियों में विभाजित रहता है। एक-एक टोली में आठ-आठ बालचर होते हैं। टोली में एक टोली-नायक और एक सहायक टोली-नायक होता है जो उसे अनुशासन में रखता है। चार-छह टोलियों का पूरा समुदाय एक अधिनायक के आधीन रहता है। स्काउट-मास्टर इस पूरे समुदाय का अध्यक्ष होता है। एक जिले में इस प्रकार के जितने भी समुदाय होते हैं वे सब ज़िला-कमिश्नर की देखरेख में कार्य करते हैं। जिले की सारी संस्थाएँ प्रान्तीय-कमिश्नर की तथा प्रान्तों की सब संस्थायें राष्ट्रीय-कमिश्नर की देखरेख में कार्य करती हैं। प्रान्तीय और राष्ट्रीय कमिश्नर अपनी प्रान्तीय और राष्ट्रीय समितियों की सलाह से कार्य करते हैं। सारे संसार की भी एक समिति

अपनी तीन प्रतिज्ञाओं की याद दिलाती रहती है। उसके स्कार्फ में प्रतिदिन प्रातःकाल एक गाँठ लगाई जाती है जो उसे सेवा कार्य की याद दिलाती है। कोई सेवा कार्य करके वह अपनी गिठान खोल देता है। उसका झण्डा भी उसी प्रकार बनाया गया है कि वह ३ प्रतिज्ञाएँ ग्यारह नियम तथा अन्य आवश्यकीय बातों की याद दिलाता रहता है।

बालचरों का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वह तो लोक-कल्याण की भावना से कार्य करने वाली संस्था होती है। समाज की सेवा करना ही उसका एक मात्र कार्य होता है। बड़ी-बड़ी संस्थाओं, मेलों, तथा इसी प्रकार के अन्य अवसरों पर बालचर सेवा-कार्य करते हैं। जहाँ कहीं आग लग जाती है, महामारी फैल जाती है, बाढ़ से हानि होने लगती है, भूकम्प से कोई प्रदेश क्षतिग्रस्त हो जाता है ता बालचर सेवा-कार्य के लिये टूट पड़ते हैं। जो कार्य पुलिस के सिपाही अपनी डाँट-फटकार और डण्डों से नहीं कर पाते वही काम स्काउट अपनी विनम्रता, सेवा-भावना और ...ह से कर लेते हैं। उनकी उपयोगिता अनेक बार सिद्ध हो चुकी है और उन्होंने देश की अमूल्य सेवाएँ की हैं।

बालचरों को लोक-कल्याण के ये कार्य कर सकने योग्य बनाने के लिये प्रतिदिन नियमित रूप से खेल, कवायद, लाठी चलाना, तैरना, प्राथमिक सहायता आदि की शिक्षा देनी पड़ती हैं। उनको संकेत भेजने, विभिन्न प्रकार की गाँठें लगाने, सीटी के इशारे से अपने साथियों को सूचना भेजने तथा किसी दल को खोजने का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण के द्वारा किसी भी संकट का मुकाबला करने की क्षमता उनमें आ जाती है और वे विशुद्ध सेवा-भावना से उस कार्य में जुट जाते हैं। इससे जहाँ देश में शान्ति और सुख की अभिवृद्धि होती है वहाँ बालकों के व्यक्तित्व का विकास भी होता है। बचपन में ही उनको जीवन की कला सीखने को मिल जाती है जो उनका भावी जीवन सुखी बनाती है।

बालचर-संस्था एक निर्दोष सेवाभावी संस्था है। किसी भी देश की उन्नति के लिये नैतिक गुणों का विकास आवश्यक होता है। बालचर-संस्था नैतिक गुणों का विकास करके देश के नवयुवकों को इतनी अच्छी शिक्षा-

दीक्षा देती है कि उनका भविष्य उज्ज्वल बने बिना नहीं रहता। उसके साध्य और साधन दोनों ही बड़े पवित्र हैं। अत इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसका भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। हमारा देश अभी स्वतन्त्र हुआ है। उसकी प्रगति बालकों के नैतिक विकास में ही समाई हुई है। अत आज बालचर-सस्था का विकास देश का विकास बन गया है। प्रसन्नता की बात है कि इस सस्था का काम धीरे-धीरे प्रगति करता जा रहा है। अब तो लड़कियों को भी इसी प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाने लगा है। उन्हें गर्ल्स गाइड के नाम से पुकारा जाता है। हमें आशा है कि हमारे देश के बालक बालचर-सस्था की शिक्षा के द्वारा अपना विकास करेंगे और देश व जाति की सेवा करके शांति के सच्चे सैनिक बनेंगे। विश्व-शांति के महत्वपूर्ण कार्य में उनका बहुत बड़ा योग रहेगा।

(किसी यात्रा का वर्णन)

१—यात्रा का उद्देश्य
२—आवश्यक तैयारियाँ
३—रेल-यात्रा का वर्णन
४—हरिद्वार और ऋषिकेश के दृश्य
५—बस के द्वारा हिमालय की यात्रा
६—पैदल-यात्रा
७—बद्रीनाथ का दृश्य
८—उपसहार

धार्मिक दृष्टि से किसी भी हिन्दू के लिए तीर्थ-यात्रा का बड़ा महत्त्व है। पुरानी परम्परा और धार्मिक विश्वास के कारण हमारा यह विश्वास बन गया है कि तीर्थ-यात्रा हमारे पापों का क्षय करके धर्म का उदय करती है। धर्मपरायण लोगों के लिए तो तीर्थ-यात्रा जीवन के सबसे बड़े लाभ की प्राप्ति ही है। मेरी माताजी स्वभाव से ही बड़ी धार्मिक वृत्ति [illegible] वृद्धा-वस्था में तो वे भजन-पूजन के अलावा और किसी [illegible] ही नहीं लेती। पिताजी भी धार्मिक वृत्ति के हैं और मात[illegible]

में सदैव सहयोग देते हैं। माताजी को कुछ दिनों से तीर्थ-यात्रा की इच्छा बड़ी उत्कट हो गई हैं। जैसे-जैसे वृद्धावस्था आ रही है वे जल्दी से जल्दी यह कार्य कर लेना चाहती है। वे बनारस, प्रयाग, अयोध्या, चित्रकूट, मथुरा, वृन्दावन, द्वारिका आदि अनेक तीर्थ-स्थानों की यात्रा कर चुकी हैं किन्तु बद्रीनाथ यात्रा की लम्बी दूर और मार्ग की कठिनाई के कारण नहीं हो सकी है। पिछले दो-तीन वर्षो से विचार होता है लेकिन एक न एक बाधा आ जाती हैं और विचार स्थगित करना पड़ता है। बद्रीनाथ की यात्रा गर्मी के दिनों में ही सम्भव होती है। मई का महीना इसके लिये उपयुक्त होता है। उसके पहिले तो भारी वर्षा के कारण रास्ता ही बन्द रहता है और जून-जुलाई में यद्यपि रास्ता खुला रहता है तथापि वर्षा के कारण वहाँ की यात्रा कष्टपूर्ण हो जाती है। अतः इस वर्ष तो पिताजी ने यात्रा का निश्चय ही कर लिया और आवश्यक छुट्टी भी प्राप्त करली। मेरी तो गर्मी की छूट्टियाँ थीं ही अतः यात्रा में मुझे भी सम्मिलित होने का अवसर मिल गया।

बद्रीनाथ की यात्रा बड़ी कठिन है। लगभग ४० मील पैदल जाना पड़ता है। मार्ग पहाड़ी होने के कारण बड़ा दुर्गम है और बद्रीनाथ में तो बड़ी जोर की सर्दी पड़ती है। अतः इसी दृष्टि से हमें तैयारी करनी थी। हमने गरम कपड़े पर्याप्त मात्रा में अपने पास रखे, केनवास के जूते खरीदे और लाठियाँ लीं। लोगों ने कहा था कि वहाँ शुद्ध आटा, घी तथा मिर्च-मसाले नहीं मिल पाते हैं अतः एक स्टोव और ये सामग्रियाँ भी पर्याप्त मात्रा में रख लीं।

यात्रा की पूरी तैयारी करके हम लोग १० मई के दिन रवाना हुए। रेल में अधिक भीड़ नहीं थी। दूसरे दिन प्रातःकाल हम दिल्ली पहुँचे। वहाँ पास की ही एक धर्मशाला में ठहर गये। दिल्ली की धर्मशालाओं में बड़ी भीड़ रहती है। हमें स्थान नहीं मिला। हमने आँगन में ही सामान रख दिया और सामान के पास बारी बारी से एक आदमी को बिठाकर शौच स्नान, भोजन आदि से निवृत्ति पाली। सन्ध्या समय हम लोग राजघाट पर गांधीजी की समाधि देख आये। यमुना के किनारे शान्ति के देवदूत अपने राष्ट्रपति की समाधि देखकर मुझे तो रोमांच ही हो आया। माताजी

ने तो समाधि के सामने खड़े होकर इतनी श्रद्धा से प्रणाम किया जैसे वे कोई देवता ही हो। समय कम था अत हम लोग जल्दी ही वहाँ से लौट आये और गाडी में बैठ गये। दिल्ली से हरिद्वार जाने वाली गाडी मे प्राय बहुत भीड रहती है, फिर वह तो यात्रा का समय था। अत पहिले से ही सेकिण्ड क्लास का टिकट ले लिया था। रात भर यात्रा करके प्रात काल हम हरिद्वार पहुँच गये।

पहाडो से घिरा हुआ गगा के किनारे पर स्थित हरिद्वार छोटा-सा किन्तु सुन्दर स्थान है। हजारो यात्री यहाँ भारत के कोने-कोने से तीर्थ-यात्रा के लिये आते रहते हैं। बङ्गाली, मद्रासी, असमी, बिहारी, गुजराती, महाराष्ट्री, राजस्थानी, पजाबी सभी प्रकार के लोग यहाँ अपनी-अपनी वेशभूषा मे मिल जाते हैं। उन दिनो हरिद्वार मानो भारत का एक छोटा सा प्रतिरूप ही बन जाता है। ऐसी अनुभूति होती है कि हम सब भारतवासी एक ही हैं। प्रान्त और भाषा के भेद ऊपरी हैं, हम सबमे एक ही भारतीय आत्मा है, हम सब एक ही भारत माता की सन्तान हैं।

हरिद्वार कोई बडा शहर नही है लेकिन प्राकृतिक शोभा ने उसे सुन्दर बना दिया है। गङ्गा के किनारे लोगो की भीड बनी रहती है। लोग श्रद्धा-भक्ति से स्नान-दर्शन करते हैं। घण्टो उसके किनारे बैठकर जल के प्रवाह को देखते रहते हैं। गङ्गा का पानी बहुत ठण्डा रहता है। हिमालय बर्फ का पहाड है। बर्फ के पिघलने के कारण ही इस जल में इतनी शीतलता है। किसी भी फल को कपडे में बाँध कर थोडी देर जल मे पडा रहने दीजिये, बस वह इतना ठण्डा हो जायेगा कि रेफ्रीजरेटर मे रखकर ही ठण्डा किया गया हो। ठण्डा किया हुआ वह फल बडा स्वादिष्ट हो जाता है। कई लोग इस प्रकार फल ठण्डा करते हुए दिखाई देते हैं। कहीं कथाएं होती हैं, कही कीर्तन। कहीं मालिश हो रही है, कही मुण्डन। कही पूजा-पाठ होता है, तो कहीं पिण्डदान। सन्ध्या समय तो यहाँ की शोभा और भी बढ़ जाती है। रङ्ग-बिरङ्गी पोशाक पहने हुए भारत के कोने-कोने से आये हुए नर-नारी किनारों पर बैठ जाते हैं और दो-दो चार-चार पैसा मे पत्तों से बनी हुए [illegible] खरीदते हैं। इन दोनों मे फूल होते हैं और एक दीपक। दीपक [illegible]

में सदैव सहयोग देते हैं। माताजी को कुछ दिनों से तीर्थ-यात्रा की इच्छा बड़ी उत्कट हो गई हैं। जैसे-जैसे वृद्धावस्था आ रही है वे जल्दी से जल्दी यह कार्य कर लेना चाहती है। वे बनारस, प्रयाग, अयोध्या, चित्रकूट, मथुरा, वृन्दावन, द्वारिका आदि अनेक तीर्थ-स्थानों की यात्रा कर चुकीं हैं किन्तु बद्रीनाथ यात्रा की लम्बी दूर और मार्ग की कठिनाई के कारण नहीं हो सकी है। पिछले दो-तीन वर्षों से विचार होता है लेकिन एक न एक बाधा आ जाती हैं और विचार स्थगित करना पड़ता है। बद्रीनाथ की यात्रा गर्मी के दिनों में ही सम्भव होती है। मई का महीना इसके लिये उपयुक्त होता है। उसके पहिले तो भारी वर्षा के कारण रास्ता ही बन्द रहता है और जून-जुलाई में यद्यपि रास्ता खुला रहता है तथापि वर्षा के कारण वहाँ की यात्रा कष्टपूर्ण हो जाती है। अतः इस वर्ष तो पिताजी ने यात्रा का निश्चय ही कर लिया और आवश्यक छुट्टी भी प्राप्त करली। मेरी तो गर्मी की छुट्टियाँ थीं ही अतः यात्रा में मुझे भी सम्मिलित होने का अवसर मिल गया।

बद्रीनाथ की यात्रा बड़ी कठिन है। लगभग ४० मील पैदल जाना पड़ता है। मार्ग पहाड़ी होने के कारण बड़ा दुर्गम है और बद्रीनाथ में तो बड़ी जोर की सर्दी पड़ती है। अतः इसी दृष्टि से हमें तैयारी करनी थी। हमने गरम कपड़े पर्याप्त मात्रा में अपने पास रखे, केनवास के जूते खरीदे और लाठियाँ लीं। लोगों ने कहा था कि वहाँ शुद्ध आटा, घी तथा मिर्च-मसाले नहीं मिल पाते हैं अतः एक स्टोव और ये सामग्रियाँ भी पर्याप्त मात्रा में रख लीं।

यात्रा की पूरी तैयारी करके हम लोग १० मई के दिन रवाना हुए। रेल में अधिक भीड़ नहीं थी। दूसरे दिन प्रातःकाल हम दिल्ली पहुँचे। वहाँ पास की ही एक धर्मशाला में ठहर गये। दिल्ली की धर्मशालाओं में बड़ी भीड़ रहती है। हमें स्थान नहीं मिला। हमने आँगन में ही सामान रख दिया और सामान के पास बारी बारी से एक आदमी को बिठाकर शौच स्नान, भोजन आदि से निवृत्ति पाली। सन्ध्या समय हम लोग राजघाट पर गांधीजी की समाधि देख आये। यमुना के किनारे शान्ति के देवदूत अपने राष्ट्रपति की समाधि देखकर मुझे तो रोमांच ही हो आया। माताजी

ने सो समाधि के सामने खडे होकर इतनी श्रद्धा से प्रणाम किया जैसे वे कोई देवता ही हो। समय कम था अतः हम लोग जल्दी ही वहाँ से लौट आये और गाडी में बैठ गये। दिल्ली से हरिद्वार जाने वाली गाडी मे प्रायः बहुत भीड रहती है, फिर वह तो यात्रा का समय था। अतः पहिले से ही सेकिण्ड क्लास का टिकट ले लिया था। रात भर यात्रा करके प्रात:काल हम हरिद्वार पहुँच गये।

पहाडो से घिरा हुआ गंगा के किनारे पर स्थित हरिद्वार छोटा-सा किन्तु सुन्दर स्थान है। हजारो यात्री यहाँ भारत के कोने-कोने से तीर्थ-यात्रा के लिये आते रहते हैं। बङ्गाली, मद्रासी, असमी, विहारी, गुजराती, महाराष्ट्री, राजस्थानी, पंजाबी सभी प्रकार के लोग यहाँ अपनी-अपनी वेशभूषा मे मिल जाते हैं। उन दिनो हरिद्वार मानो भारत का एक छोटा सा प्रतिरूप ही बन जाता है। ऐसी अनुभूति होती है कि हम सब भारतवासी एक ही हैं। प्रान्त और भाषा के भेद ऊपरी हैं, हम सबमे एक ही भारतीय आत्मा है, हम सब एक ही भारत माता की सन्तान हैं।

हरिद्वार कोई बडा शहर नही है लेकिन प्राकृतिक शोभा ने उसे सुन्दर बना दिया है। गङ्गा के किनारे लोगो की भीड बनी रहती है। लोग श्रद्धा-भक्ति से स्नान-दर्शन करते हैं। घण्टो उसके किनारे बैठकर जल के प्रवाह को देखते रहते हैं। गङ्गा का पानी बहुत ठण्डा रहता है। हिमालय वर्फ का पहाड है। बर्फ के पिघलने के कारण ही इस जल में इतनी शीतलता है। किसी भी फल को कपडे में बाँध कर थोडी देर जल मे पडा रहने दीजिये, बस वह इतना ठण्डा हो जायेगा कि रेफ्रीजरेटर मे रखकर ही ठण्डा किया गया हो। ठण्डा किया हुआ यह फल बडा स्वादिष्ट हो जाता है। कई लोग इस प्रकार फल ठण्डा करते हुए दिखाई देते हैं। कही कथाएँ होती हैं, कही कीर्तन। कही मालिश हो रही है, कहीं मुण्डन। कही पूजा-पाठ होता है, तो कही पिण्डदान। संध्या समय तो यहाँ की शोभा और भी बढ़ जाती है। रङ्ग-बिरङ्गी पोशाक पहने हुए भारत के कोने-कोने से आये हुए नर-नारी किनारों पर बैठ जाते हैं और दो-दो चार-चार पैसा मे पत्तों से बनी हुए [illegible] खरीदते हैं। इन नावो मे फूल होते हैं और एक दीपक। दीपक [illegible]र

नाव को नदी में छोड़ देते हैं और गङ्गा के प्रवाह में उसे बहते हुए दूर तक देखते रहते हैं। आकाश में तारे और नदी में ये अगणित दीप जैसे एक दूसरे से होड़ करते हुए प्रतीत होते हैं। बड़ा ही सुन्दर दृश्य होता है।

हरिद्वार में हम तीन दिन रहे। इस बीच हमने कनखल के मन्दिर और गुरुकुल काँगड़ी का विद्यालय भी देखा। चौथे दिन हम ऋषिकेश पहुँचे। ऋषिकेश भी धार्मिक स्थान है। वहाँ से लगभग दो मील के ऊपर लक्ष्मण-झूला और स्वर्गाश्रम हैं। यद्यपि हमने वहाँ के दूसरे सब स्थान भी देखे तथापि हमें स्वर्गाश्रम ही सबसे अधिक पसन्द आया। यहाँ ठहरने की अच्छी इमारतें तो हैं ही बिजली व नल आदि की भी व्यवस्था है। बड़े व्यापारी और मध्यम-वर्ग के बहुत से धार्मिक व्यक्ति गर्मी के दिनों में यहाँ आते हैं और दो तीन महीने तक अच्छा सत्संग होता रहता है। 'कल्याण' मासिक का सम्पादक-मण्डल इस सारे आयोजन का संचालन करता है। बड़े-बड़े विद्वानों के भाषण, सुमधुर कीर्तन तथा धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन सुबह से शाम तक चलता रहता है। एक दिन ने स्वर्गाश्रम में ही बिताया। यहाँ जितना आनन्द मिला उतना अभी क और कहीं नहीं मिल पाया था।

ऋषिकेश में भी तीन दिन रह कर हम लोग आगे रवाना हुए। आगे रेल नहीं जाती। लगभग १५० मील की यात्रा पहाड़ों में बस के द्वारा ही करनी पड़ती है। मार्ग बहुत सँकड़ा होता है और नदी के किनारे किनारे बनाया गया है। नीचे ३००—४०० फुट पर नदी और ऊपर ५००-७०० फुट ऊँचा पहाड़ तथा बीचों-बीच पहाड़ काट कर बनाई हुई सँकड़ी सड़क। सड़क इतनी सँकड़ी कि एक ही बस चल सकती है। यदि सामने से कोई दूसरी बस या बैलगाड़ी आ जाय तो मार्ग नहीं। अतः यहाँ गेट की प्रणाली है। निर्धारित समय पर किसी स्थान के लिए पुलिस बसों को जाने देती है और उसके बाद वह मार्ग बन्द कर दिया जाता है। पहाड़ पर एक के पीछे एक चलती हुई ये बसें एक लम्बे काफिले जैसी लगती हैं। जब ये आगामी स्थान पर पहुँच जाती हैं तो वहाँ रेल के क्रासिंग की तरह दोनों ओर

की बसों का मार्शलिंग होता है और फिर वे झुण्ड के झुण्ड बना कर एक के पीछे एक चल पड़ती हैं। एक बस में खराबी हुई कि पीछे की सब बसें रुक जाती हैं। बड़ा ही भयानक दृश्य है। एक तो बस का रास्ता बहुत घुमावदार है, दूसरे इतना सँकरा है कि यदि ड्राइवर थोड़ा भी चूका कि नीचे नदी में। यहाँ बहुत सावधानी रखने के बाद भी प्रतिवर्ष २-३ दुर्घटनायें हो ही जाती हैं। अतः मैदान में रहने वाले लोगों को इन मार्गों से बहुत डर लगता है। नीचे नदी का एक फर्लांग की दूरी पर बहते हुए देखकर चक्कर से आने लगते हैं। ७० प्रतिशत यात्रियों को कै आने लगती है और रास्ते भर जी घबराता रहता है। मार्ग में एक-एक दिन देव-प्रयाग, श्रीनगर और रुद्र-प्रयाग ठहरते हुए पाँच-छः दिन बाद हम लोग पीपल-कोटी पहुँचे। बस यहीं से पैदल-यात्रा प्रारम्भ होती है। पीपलकोटी से आगे मोटर की सड़क नहीं है।

पीपल-कोटी पहुँच कर हमने एक कुली किया। यहाँ सामान ले जाने के लिये बहुत से कुली मिल जाते हैं। कुली पहाड़ी लोग हैं और ये पहाड़ों पर एक घर ही होता करते हैं। ज्यादा जमीन तो यहाँ है नहीं, अतः कुछ अधिक उत्पादन नहीं हो पाता है। यही कारण है कि वे लोग बड़े गरीब होते हैं। किन्तु गरीबी इनको बेईमान, चोर या कपटी नहीं बना सकी है। सीधा-सादापन सरलता और ईमानदारी इनकी विशेषता होती है। ५० रुपये प्रति मन के हिसाब से ये आसानी से जाते हैं। हमारा बोझ-लगभग एक मन का था। अतः हमने अपने साथ एक कुली ले लिया। कुली मार्गदर्शक, नौकर और सहायक तीनों रूप में काम आता है। लगभग ३ बजे हम लोग पीपलकोटी से चले। चार मील पैदल चलकर हम लोग गरुड़-गंगा नामक चट्टी पर सन्ध्या-समय पहुँचे। धर्मशाला में सामान रखकर मैंने माताजी और पिताजी को बैठाया। मैं कुली के साथ बरतन तथा अन्य सामान लेने गया। सब चीज इकट्ठी करके हमने भोजन बनाया। भोजन करके रात भर विश्राम किया। प्रातःकाल उठे और शौच आदि से निवृत्त होकर चल पड़े। यहाँ मार्ग में चढ़ाई-उतार २-३ मील का। के लिखी

हैं। चट्टियां एक प्रकार से छोटे-छोटे गाँव ही होते हैं जहाँ दुकानें, धर्मशालाएं, अस्पताल, पोस्ट-आफिस आदि होते हैं। ७ बजे तक हम लगभग ६ मील चले और एक चट्टी पर ठहरे। स्नान-भोजन और विश्राम के बाद लगभग तीन बजे फिर चल दिये। हमने हरिद्वार में ही एक पुस्तक ले ली थी जिसमें यात्रा के स्थानों की जानकारी, नक्शा आदि थे। अतः कोई कठिनाई नहीं हुई। मार्ग में साथी भी वहुत मिल जाते हैं। उत्तर-प्रदेश की सरकार ने सफाई, डाक्टरी सहायता, व पुलिस आदि की अच्छी व्यवस्था की है ताकि यात्रियों को कष्ट न हो। हैजे के टीके लगाना अनिवार्य होता है। इसके विना हरिद्वार से ही आगे नहीं वढ़ने दिया जाता। प्रतिदिन १०-१२ मील चलते हुए हम लोग चौथे दिन सन्ध्या समय वद्रीनाथ पहुँचे। हम जैसे-जैसे आगे वढ़ रहे थे मार्ग कठिन होता जा रहा था। ऊंची चढ़ाई ज्यादा थी। थोड़ा ही चलने से साँस फूल जाता था। पिताजी तो जैसे-तैसे चल रहे थे लेकिन ऊँची चढ़ाई और वर्फ ढके पहाड़ों की सर्द हवा के कारण माताजी का चलना कठिन हो [illegible]। मार्ग भी वड़ा कठिन था। कहीं-कहीं तो दो सौ गज वर्फ पर [illegible]। पड़ता था। ऐसी स्थिति में एक कण्डी वाले को वुलाया और माता जी को कण्डी में वैठाया। हम संध्या समय वद्रीनाथ पहुँचे।

वद्रीनाथ नर-नारायण नामक दो वर्फ से ढके पहाड़ों के वीच में अलकनन्दा के किनारे वसा हुआ है। यह स्थान समुद्र-तल से ११००० फुट की ऊँचाई पर है। अतः इन दिनों भी यहाँ बड़ी सर्दी रहती है। काफी गर्म कपड़ों के विना यहाँ रहना कठिन होता है। हमारे कपड़े इस सर्दी के लिये अपर्याप्त रहे। अतः पण्डेजी से भी कपड़े लेने पड़े। दूसरे दिन हम प्रातःकाल पण्डेजी के साथ स्नान-दर्शन के लिए निकले। पहिले गरम कुण्ड में स्नान किया। इस सर्द वातावरण में यह कुण्ड एक आश्चर्य की ही वात है। पानी इतना गरम है कि शरीर जलने लगता है। लेकिन स्नान करने के वाद तो जैसे यात्रा की थकावट हो चली जाती है। जी होता है कि घण्टों इसमें वैठे रहें। स्नान के बाद पिताजी [illegible] पिण्ड-दान किया और माताजी ने वस्त्र, बरतन आदि का दान किया। [illegible] मन्दिर में दर्शन [illegible]। कोई बड़ी इमारत मन्दिर की

नही है। लेकिन वातावरण बड़ा पवित्र और प्रभावशाली है। हम तीन दिन तक यहाँ ठहरे। चौथे दिन वापिस लौटे।

उत्तर भारत के और विशेषकर हिमालय के दर्शन के लिये यह यात्रा बड़ी महत्वपूर्ण है। आध्यात्मिक शान्ति और आनन्द भी इस यात्रा में मिलता है। जीवन को पवित्र बनाने की प्रेरणा मिलती है लेकिन पण्डों की छीना-झपटी, चट्टी में दुकानदारों के अनाप-सनाप भाव, तथा पहाड़ी लोगों की गन्दगी मन में क्षोभ भी पैदा करते हैं। यदि इनमें सुधार हो सके और मार्ग कुछ और ठीक हो सके तो यात्रा आनन्दमय हो जाय।

(६) प्रजातन्त्र दिवस

१—प्रस्तावना।
२—प्रजातन्त्र-दिवस की पृष्ठ-भूमि।
३—इस दिन के विशेष आयोजन।
४—प्रजातन्त्र-दिवस और नवीन विधान।
५—उपसंहार।

किसी कवि ने कहा है—'पराधीनता दुःख महा; सुख जग में स्वाधीन'

दुनियाँ मे सबसे बड़ा सुख यदि कोई है तो वह स्वतन्त्रता और यदि कोई सबसे बड़ा दुःख है तो वह है परतन्त्रता। तुलसीदासजी ने भी कहा था—'करि विचार देखहु मन माही, पराधीन सपने सुख नाही।' जब तक व्यक्ति पराधीन है, तब तक वह किसी सुख की कल्पना नहीं कर सकता। अतः सुखेच्छु मानव ने जब-जब भी मौका पाया परतन्त्रता की बेड़ियों को काटने का प्रयत्न अपनी पूरी ताकत लगाकर किया। प्रजातन्त्र-दिवस उस दिन की ही वर्षगांठ है, जब हमारे देश के व्यक्ति स्वतन्त्र हुए। १५ अगस्त १६४७ को हमारा देश अंग्रेजी शासन से मुक्त हुआ। अतः हम उसे स्वतन्त्रता दिवस के नाम से पुकारते हैं। वह बड़ा खुशी का दिन है किन्तु इससे भी ज्यादा खुशी का दिन है २६ जनवरी १६५० जबकि हमारे प्रतिनिधियों ने अपना विधान बनाया और ... प्रजातन्त्र

की स्थापना की। उस दिन किसी एक व्यक्ति या किसी एक वर्ग का शासन समाप्त हुआ तथा जनता का जनता के द्वारा, जनता के हित के लिये शासन प्रारम्भ हुआ। प्रतिवर्ष २६ जनवरी के दिन उत्सव मनाकर हम उसी की वर्षगाँठ मनाते हैं। हम उसे अपना मुक्ति-पर्व कह सकते हैं।

प्रजातन्त्र-दिवस वहुत बड़े त्याग, वहुत बड़े वलिदान और एक लम्वी साधना का परिणाम है। एक सुन्दर इमारत देखते समय हमारा ध्यान उन नींव के पत्थरों पर नहीं जाता जो दूसरों को ऊँचा उठाने, मान-सम्मान पाने और सिर ऊँचा कर गौरव देने के लिए अपने को नींव के गहरे अन्धेरे में हमेशा के लिये छिपा लेते हैं। किन्तु यदि वे नींव के पत्थर इतना त्याग न करते तो शायद यह इमारत तैयार न हो पाती। अतः हमारे प्रजातन्त्र के जिस भव्य-भवन को आज हम देखते और खुशी से फूल उठते हैं उनकी नींव के उन पत्थरों का इतिहास भी हमें जान लेना चाहिये जो विशुद्ध देशभक्ति के उद्देश्य से अपने जीवन को स्वतन्त्रता-देवी के चरणों में चढ़ा गये।

जव हमारे देश पर अंग्रेजों का शासन हो गया तो सवसे पहले उसे उखाड़ फेंकने का एक मजवूत प्रयत्न सन् १८५७ के विद्रोह के रूप में हुआ। उत्तरी एवं मध्य-भारत के एक वहुत वड़े भाग में विद्रोह की लपटें उठीं और विदेशी शासक और सैनिकों के एक वहुत वड़े भाग को निगल गईं। अंग्रेजी सत्ता हिलने लग गई लेकिन दुर्भाग्य से संगठन के अभाव, कुछ देशवासियों की उदासीनता और कुछ की गद्दारी के कारण वह प्रयास सफल न हो सका। इसके वाद, धार्मिक जागरण के रूप में स्वतन्त्रता का आन्दोलन फिर जन्म लेने लगा। राजा राम मोहनराय, रामकृष्ण परमहंस, श्रीमती एनीवीसेन्ट तथा स्वामी दयानन्द जैसे धार्मिक वृत्ति के महापुरुषों ने धार्मिक जागरण का ऐसा शंख फूँका जिसमें राजनीतिक जागरण के शक्तिशाली वीज मौजूद थे। ये वीज उगे और स्वतन्त्रता का स्पष्ट उद्देश्य अपने सामने रख कर कांग्रेस का जन्म और विकास प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ में उनमें नरम विचार के लोगों का आधिपत्य रहा, लेकिन जैसे-जैसे समय वीता गरम दल के लोग उसमें घुसते गये और उसका कार्यक्रम क्रान्तिकारी वनता गया। वीसवीं

शताब्दी के प्रारम्भ में ही दादाभाई नौरोजी, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय तथा विपिनचन्द्रपाल जैसे नेताओं ने आजादी की लड़ाई खुले-आम प्रारम्भ करदी। अंग्रेजी सरकार ने जी भर कर दमन किया लेकिन स्वतन्त्रता की आग तोप-तलवार से बुझ न सकी। वह तो और प्रज्ज्वलित हुई और आगे चल कर गांधीजी के नेतृत्व ने उसे इतना शक्तिशाली रूप दे दिया कि सन् १९४७ में अंग्रेजो को विवश होकर भारत छोडना ही पड़ा। गणेशशंकर विद्यार्थी, मालवीयजी, नेताजी, मोतीलाल नेहरु, देशबन्धु दास, चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह आदि कितने ही व्यक्तियो ने लडते-लडते अपने प्राण होम दिये। उनके बलिदान का ही परिणाम १५ अगस्त १९४७ का दिन है।

इस दिन हम आजाद अवश्य हो गये लेकिन हमारी आजादी अभी अधूरी थी। हमारे देशवासियो ने इतना बडा बलिदान केवल दो-चार आदमियो को कुर्सी पर बिठाने के लिये नहीं किया था। वे प्रत्येक व्यक्ति की आजादी चाहते थे। अत उसके लिये विधान-परिषद् बैठाई गई। उसने कठिन परिश्रम से दो-ढाई वर्ष के समय में विधान तैयार किया। २६ जनवरी १९५० को यह विधान लागू हुआ। बस, उस विधान के अनुसार इस दिन से जनता का राज्य प्रारम्भ हुआ। प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार और समान कर्त्तव्य प्रदान किये गये और समता, स्वतन्त्रता एवं बन्धुत्व के सिद्धान्तों को साकार रूप देने की घोषणा की गई। इसलिए तो प्रजातन्त्र-दिवस जनता की स्वतन्त्रता का पर्व है, जनता के आनन्द-उल्लास का दिन है। यह वही दिन है जब हमारे देशवासियो ने परतन्त्रता, वैषम्य और वैमनस्य की सदियो पुरानी बेड़ियों को काट फेंका था। यही कारण है कि प्रजातन्त्र-दिवस सारे देशवासियों के लिये बहुत बडी खुशी का दिन है।

हमारे देशवासी अपने हृदय के इस उल्लास और आनन्द को इस दिन उत्सव मना कर प्रकट करते हैं। इस वर्ष भी २६ जनवरी को हमेशा की तरह देश के कोने-कोने में उत्सव मनाये गये। प्रातःकाल ही सारी राजकीय इमारतों पर झण्डे फहराये गये। हमा[illegible]र शहर में ७ बजे पटेल मैदान के विशाल प्रांगण में सैनिकों

।, फौज, वायुसेना, जलसेना, एन० सी० सी० व ए० सी० सी० वानों ने झण्डे को सलामी दी और जिलाधीश ने झण्डा फहराया। ाधीश ने इस अवसर पर सामयिक भाषण भी दिया। अपने षण में उन्होंने प्रजातन्त्र के महत्व पर प्रकाश डालते हुए सही अर्थों उसकी स्थापना करने की अपील की। इसके बाद विभिन्न सरकारी हकमों, विद्यालयों तथा संस्थाओं की ओर से तैयार की हुई सांस्कृतिक झाँकियाँ निकलीं। किसी ने वीरांगना लक्ष्मीबाई की तो किसी ने प्रेम-दिवानी मीरां की, किसी ने एवरेस्ट की विजय की, तो किसी ने राम के वनवास की झाँकी प्रस्तुत की। एक से एक सुन्दर २०—२० झाँकियाँ जिलाधीश के सामने से गुजरीं और सैनिक, विद्यार्थी, नागरिक सभी उन झाँकियों के साथ जुलूस बनाकर नगर के मुख्य बाजारों में से गुजरे। लगभग सभी स्कूलों में मिठाई बाँटी गई। रात्रि को नृत्य, अभिनय, संगीत आदि के कार्यक्रम हुए और प्रत्येक इमारत पर दीपक व बिजली की रोशनी की गई। नगर में सभी लोगों ने अपने घरों बाजारों को सजाया था। कहीं पताकाएँ लगाई गई थीं, कहीं झण्डे। कई जगह दरवाजे बनाये गये थे और अनेक स्थानों पर सभाओं, चायपार्टियों और भोजों का आयोजन किया गया था। सर्वत्र लाउड-स्पीकरों की ध्वनि से आकाश गूँज रहा था और प्रत्येक बालक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष और युवक-युवतियों के चेहरे पर प्रसन्नता नाच रही थी।

रात्रि के समय जब घर-घर रोशनी से चमक उठा तो जैसे दूसरी दीपावली ही आगई। कोई इमारत ऐसी नहीं थी जो दीपक के प्रकाश से जगमगा न रही हो। सरकारी इमारतों पर खूब ही रोश हो रही थी। सार्वजनिक इमारतों पर भी जी भरकर दीपक जल गये थे। कहीं संगीत-सम्मेलन हो रहा था तो कहीं कवि-सम्मेल कहीं प्रदर्शिनी हो रही थी तो कहीं नाटक-सिनेमा। ऐसा प्रतीत था जैसे आनन्द-उल्लास का समुद्र ही उमड़ पड़ा हो।

प्रजातन्त्र-दिवस के साथ हमारी कई स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं। दिन नया विधान लागू हुआ था। यह विधान जनतन्त्रीय आद आधार पर बना था। इस विधान ने पुरानी व्यवस्था को मिटा

व्यवस्था का निर्माण किया था। अब बड़े-बड़े कर्मचारी, पुलिस, फौज तथा मन्त्रीगण मालिक नहीं जनता के सेवक बन गये थे। एक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन हुआ था। दिल्ली में ब्रिटिश मुकुट के स्थान पर अशोक की सिंह-प्रतिमा को राजचिह्न का गौरव प्राप्त हुआ था। नये प्रकार के नोट, नय प्रकार के टिकिट तथा नय प्रकार के सिक्के प्रचलित हुए थे। पार्कों, बाजारों, सड़कों, स्कूल-कालेजों और सार्वजनिक संस्थाओं के अंग्रेजी नाम हटा कर भारतीय नेताओं और हुतात्माओं के नाम से उन्हें विभूषित किया गया था। प्रजातन्त्र के दिन इस सारे परिवर्तन का स्मरण किये नहीं होता ?

इस विधान से भारतीय जनता को नये-नये अधिकार प्राप्त हुए थे। हमारे देश का दर्जा दूसरे सब राष्ट्रों की बराबरी का बन गया था। हमारी विदेश-नीति स्वतन्त्र हो गई थी। हम दुनियाँ के सारे राष्ट्रों के आगे मैत्री का हाथ बढ़ाने के लिये मुक्त थे। हमारे प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को मताधिकार प्राप्त हो गया था और प्रत्येक नागरिक को समानता के अधिकार मिल गये थे। अब न हिन्दू-मुसलमान का भेद शेष रह गया था न अवर्ण-सवर्ण का। राष्ट्रपति से लेकर पंचायत के मुखिया तक का चुनाव जनता के मत से होने की घोषणा हो गई थी। यह जनता की विजय थी। इस उत्सव के रूप में हम जनता या या कहें कि अपनी स्वयं की ही जयजयकार करते हैं।

जनतन्त्र की स्थापना के साथ हमारे सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में जबरदस्त क्रान्ति हो गई। अब पुरानी परम्पराएँ, पुरानी व्यवस्थाएं, पुरानी मान्यताएँ और पुरानी रूढ़ि रीतियाँ छिन्न-भिन्न हो गई हैं तथा उनका स्थान नई व्यवस्था ने लेना प्रारम्भ कर दिया है। अब प्रति पाँचवें वर्ष चुनाव होते हैं और जनता की स्वीकृति से कोई दल या व्यक्ति शासन की कुर्सी पर बैठता है। शासक अपने अच्छे बुरे काम के लिये जनता के प्रति उत्तरदायी है और उसी को अपना स्वामी मानकर कार्य करता है।

सामाजिक क्षेत्र में स्त्री-पुरुष, अवर्ण-सवर्ण, ... को समानता का दर्जा मिल गया है। अब न कोई ...

र सकता है न कोई किसी को दबा सकता है। सबको आगे बढ़ने और उन्नति करने के समान अवसर दिये जाते हैं। न जाति-पाँति के कारण किसी से कोई भेद किया जाता है न धर्म-पन्थ के कारण। आर्थिक क्षेत्र में अभी विषमता है किन्तु पिछले १०-१२ वर्षो में वह कम हुई है और हमारी सरकार का रुख उसे और ज्यादा कम करने की ओर है। सांस्कृतिक क्षेत्र में तो बहुत अधिक प्रगति हुई। सदियों से उपेक्षित कलाओं को प्रोत्साहन मिल रहा है और क्या साहित्य, क्या संगीत, क्या नृत्य और क्या अभिनय सभी का समुचित विकास हो रहा है। शिक्षा की ओर भी लोगों एवं सरकार दोनों का ध्यान गया है। यद्यपि अभी इस क्षेत्र में बहुत-सा काम करना बाकी है तथापि पिछले कुछ वर्षों में सन्तोष-जनक कार्य हुआ है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जनतन्त्र की प्रगति हमारी प्रगति है। ईश्वर हमारे जनतन्त्र को चिरायु करे।

(१०) दीपावली—एक त्यौहार

१—भूमिका
२—दीपावली का दृश्य
३—उसका पौराणिक और मौसम सम्बन्धी आधार
४—उत्साह-पूर्ण आयोजन
५—वैश्य जाति का प्रमुख त्यौहार और उसके आनन्द
६—दीपावली के साथ जुड़ी हुई अप्रिय बातें
७—उपसंहार

दार्शनिकों का कहना है कि जीवन दुखःमय है। कभी बीमारी, कभी अभाव और कभी कलह उसके ऊपर इतनी तीव्रता से चोट करते हैं कि सुख की साँस लेना ही कठिन हो जाता है। यदि वह शरीर से स्वस्थ, पैसे से सम्पन्न और कलह से ऊपर उठ भी जाय तो सगे-सम्बन्धियों और पास-पड़ौसियों का कष्ट परेशानी का विषय बन जाता है। मानव-हृदय ही ऐसा है कि वह मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षियों की पीड़ा भी सहन नही कर पाता है। यदि इन सब परेशानियों से भी कोई आँख मूंद ले तो दैनिक जीवन की परेशानी भी कम नहीं होती। अध्यापक प्रति-दिन पढ़ाते

पढ़ाते थक जाता है और विद्यार्थी पढ़ते-पढ़ते व्यापारी व्यापार करते करते और श्रमिक मशक्कत करते करते। सभी नई शक्ति, नई स्फूर्ति और नवीन चेतना के लिए परिवर्तन चाहते हैं, आनन्द चाहते हैं। यह संसार दुःखमय है, शायद इसीलिए यहाँ सुख और आनन्द का बहुत बड़ा महत्त्व है। हममें ऐसा कौन है जो सुख और आनन्द नहीं चाहता ? कदाचित् इस सुख और आनन्द की इच्छा ने ही मनुष्य को त्योहार मनाने की प्रेरणा दी है। त्योहार के दिन वह स्वयं तो जी भर आनन्द मनाता ही है अपने पास-पड़ोसियों और समाज के सब लोगों को भी उसकी धारा में स्नान करता हुआ देखता है। इससे उसका आनन्द परिपूर्ण बनता है। उसमें जैसे चार चाँद लग जाते हैं। दुःख से भरे हुए संसार में अपनी सुखेच्छा की तृप्ति के लिए वह वर्ष में दो चार दिन तो इसे मना ही लेता है, जब वह आनन्दमय बने, समाज आनन्दमय और प्रकृति भी उसके आनन्द में सहायक बने।

दीपावली का त्योहार ऐसे आनन्द का ही त्योहार है। दीपावली शब्द 'दीप' और 'अवली' से बना है। दीप का अर्थ है दीपक और अवली का अर्थ है पंक्ति। दीपावली त्योहार की सबसे बड़ी विशेषता या पहिचान यही है कि उस दिन रात के समय घर-घर अनेक दीप जलाए जाते हैं। जिधर देखो उधर दीपमालिकाएँ ही दिखाई देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अमावस्या की इस रात्रि में आकाश के तारे पृथ्वी पर ही उतर आये हैं। दीपावली के दिन प्रत्येक हिन्दू नये कपड़े पहिनता है, अच्छा भोजन करता है और रात्रि को लक्ष्मीजी की पूजा कर उसके प्रसाद के रूप में मिठाई बाँटता है। धनी व्यक्ति यदि बिजली के अनेक बल्ब जलाकर अपने मकान को जगमगा देता है तो गरीब भी तेल के १०-२० दीपक अवश्य जलाता है। धनी व्यक्ति के मकान में यदि सफाई और चाँदनी का काम महीने भर पहिले से प्रारम्भ हो जाता है तो गरीब के घर भी यह काम ४-५ दिन तो होता ही है। धनवान के घर यदि १०-२० तरह की मिठाई बनती हैं और कई लोगों को बाँटी जाती है तो गरीब के घर भी १-२ अवश्य बनती हैं और इष्ट-मित्रों को बाँटी जाती है। ... ली
लक्ष्मी-पूजा का त्योहार है सम्पन्नता की उपासना का उत्
इस दिन ग्राम-ग्राम नगर-नगर में सफाई, चमक-दमक के

की धूम रहती है। अपने-अपने घरों को सब अनेक तरह से सजाते हैं और सम्पन्नता की देवी का आह्वान करते हैं। इस दिन रात्रि का दृश्य तो देखते ही बनता है। कुछ मकानों की सजावट तो देखते ही बनती है। पत्रकार इन स्थानों का चित्र लेते हैं और पत्रों में छापते हैं। लोगों की मान्यता है कि इस दिन रोशनी जितनी तेज होती है, आगामी वर्ष उतनी ही सम्पन्नता लेकर आता है।

दीपावली की इस हँसी-खुशी और आनन्द के दो प्रमुख आधार हैं। एक पौराणिक कथा इस प्रकार है कि नरकासुर के अत्याचार से जब लोग परेशान हो गये तो उन्होंने श्रीकृष्णजी से उसका वध करने को कहा। भगवान् ने सबके सहयोग से उसका वध किया और लोगों को उसके अत्याचारों से मुक्त किया। पता नहीं पहले कोई नरकासुर नाम का राक्षस हुआ या नहीं और भगवान् श्रीकृष्ण ने उसका वध किया या नहीं; लेकिन इतना तो सत्य है ही कि दीपावली का त्यौहार वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर मनाया जाता है। उन दिनों वर्षा ऋतु के कारण गड्ढे भर जाते हैं और उनका पानी सड़ता रहता है। घर भी धूप के अभाव में खराब होने लगता है। गन्दगी सड़ने लगती है और वायुमण्डल दूषित करके अनेक बीमारियाँ पैदा करती है। नरकासुर नाम का राक्षस किसी युग में एक बार पैदा हुआ होगा। लेकिन गन्दगी का नरकासुर प्रत्येक वर्षा ऋतु के बाद जन्म लेता है और यदि समय पर उसका वध न किया जाय तो वह नरकासुर की ही भाँति विनाशक सिद्ध हो सकता है। अतः यह आवश्यक है कि वर्षा के समाप्त होते ही इस गन्दगी को समाप्त किया जाय। एक और महत्त्व की बात इस त्यौहार के सम्बन्ध में यह होती है कि वर्षा ऋतु की फसल इस समय तक तैयार हो जाती है और उसकी शोभा मन में प्रसन्नता पैदा करती है। अन्न पर हमारा जीवन निर्भर है। नहीं तो जीवन की सुरक्षा कैसे सम्भव हो सकती है। अतः खेतों में पका हुआ अनाज देखकर किसका मन-मयूर प्रसन्नता से नहीं नाच उठेगा। दीपावली का आनन्द इसी प्रसन्नता का प्रतीक है। यही इस त्यौहार का प्रमुख आधार है।

इन्ही कारणो से दीपावली का त्योहार बडे आनन्द और उत्साह से मनाया जाता है। खेतो की हरियाली और शस्य श्यामला मन मे प्रसन्नता का सचार किये बिना नही रहती। लोग १०-१० १५-१५ दिन पहले से दीपावली की तैयारी प्रारम्भ कर देते हैं। मकानो में सफेदी होने लगती है। नया रंग-रोगन किया जाता है। खिडकी, दरवाजे वारनिश लगाकर चमकाये जाते हैं। घर का कूडा-कचरा साफ किया जाता है और इस प्रकार चारा तरफ की गन्दगी को समाप्त करने का सामूहिक प्रयत्न भी अपने आप ही हो जाता है। धनी लोग इस काम मे ज्यादा पैसा खर्च करते हैं, गरीब अपने हाथ से ही सारा काम कर लेता है। लेकिन उत्साह की मात्रा किसी मे भी कम नही होती है। उत्साह के वातावरण मे मकाना की मरम्मत हो जाती है और उनकी आयु बढ़ जाती है तथा बरसात के कारण पैदा हुए कीटाणुओ का भी नाश हो जाता है।

दीपावली के दिन नये कपडे तो पहने ही जाते हैं और मिठाइयाँ भी बनती ही है लेकिन मन की खुशी अन्य तरीका से भी अभिव्यक्त होती है। इस दिन नये बर्तन खरीदना बडा शुभ माना जाता है। बहुत से लोग इस दिन कोई न कोई नया बर्तन खरीदते हैं। बच्चा के लिए नये-नये खिलौने खरीदे जाते हैं और आतिशबाजी तो इस दिन की प्रमुख विशेषता ही है। इस दिन प्रत्येक बालक पटाखे खरीदता और चलाता है। उनकी रंग-बिरंगी रोशनी और आवाज़ से सारा वातावरण आनन्दमय हो जाता है। बच्चे, बूढे, स्त्री, पुरुष, धनी, गरीब युवक, युवतियाँ सबके चेहरे पर प्रसन्नता दिखाई देती है। सब सजे हुए, सभी प्रसन्न मन प्रतीत होते हैं। मिठाईवाला, खिलौनेवाला और पटाखेवालो की इस त्योहार पर खूब बन आती है। दो-चार दिन मे ही वे सैकडो रुपयों की चीजे बेच लेते हैं। गरीब से गरीब व्यक्ति भी कुछ न कुछ मिठाई, खिलौने और पटाखे खरीदता ही है।

यद्यपि हिन्दुओं के चारा बडे त्योहार दिवाली, दशहरा, रक्षा-बन्धन और होली राष्ट्रीय त्योहार हैं तथा प्राचीन वर्ण-व्यवस्था के अनुसार एक-एक वर्ण का एक-एक प्रमुख त्योहार है। रक्षा-बन्धन ब्राह्मणो

का त्यौहार है तो दशहरा क्षत्रियों का। होली शूद्रों का त्यौहार है तो दीपावली वैश्यों का। रक्षा-बन्धन में यज्ञोपवीत धारण करने की बात मुख्य है तो दशहरे में शस्त्र-पूजा की। इसी प्रकार होली में हँसी-खुशी और विनोद की प्रमुखता है तो दीपावली में लक्ष्मी-पूजा की। वैश्यजाति व्यापारी है और उनकी आराध्य-देवी लक्ष्मी ही है। अतः यह जाति इस अवसर पर खूब पैसा खर्च करती है और बड़े उत्साह से मनाती है। इस दिन वे वर्ष का हिसाब तैयार करते हैं और देखते हैं कि उन्हें लाभ रहा है या हानि। इस दिन से नया बही-खाता रखा जाता है और नवीन वर्ष का नया हिसाब आरम्भ किया जाता है। लक्ष्मी जी की पूजा बड़ी धूमधाम से होती है। अपनी सब सम्पत्ति लक्ष्मी जी के चित्र के पास रखकर पूजी जाती है और मित्रों को प्रसाद के रूप में मिठाइयाँ भेजी जाती हैं। कहीं-कहीं तो लक्ष्मीजी के सामने का दीपक तीन दिन और तीन रात लगातार जलता हुआ रखा जाता है।

दीपावली के त्यौहार की इसी खुशी और उत्सव के साथ कुछ अप्रिय बातें भी जुड़ी हुई हैं। इसमें सबसे पहिली बात है जुए की प्रथा। दीपावली की रात को जुआ खेल लेना बुरी बात नहीं मानी जाती है। इस दिन सब कोई अपनी अपनी तकदीर आजमा लेना चाहता है और इस दिन की हार वर्ष भर की हार तथा इस दिन की जीत वर्ष भर की जीत मानी जाती है। अभी कुछ वर्षों पहले तक तो सरकार भी इन दिनों जुआ खेलना बुरा नहीं मानती थी। तीन दिनों तक खूब जुआ चलता था। देशी राज्यों में तो यह बुराई और भी भयङ्कर रूप में विद्यमान थी। जो वर्ष में एक दिन भी जुआ नहीं खेलता था वह भी इस दिन जुआ खेलना बुरा नहीं मानता था। जुआ कोई अच्छी बात तो है नहीं, अतः उसका बड़ा दुष्परिणाम सामने आता था। हजारों लाखों रुपये की हार-जीत एक ही बैठक में हो जाती थी। कुछ लोग तो अपना अमूल्य धन गवाँकर अनेक दिनों तक कष्ट का जीवन व्यतीत करने के लिये विवश हो जाते थे और बदमाश-गुण्डे लोगों लो लूट-खसोट और मारपीट का अच्छा अवसर मिल जाता था। दूसरी बात है आतिशबाजी। आतिशबाजी में एक तो कुछ ही समय में बहुत-सा पैसा बर्बाद हो जाता है, दूसरे हर शहर में २-४ जगह आग लगने या

जल्ने के समाचार भी मिल जाते हैं। बच्चे खुशी से आतिशबाजी छोड़ते हैं लेकिन थोड़ी-सी असावधानी से दुर्घटना घट जाती है और कोई न कोई जख्मी हुए बिना नहीं रहता।

इस प्रकार दिवाली का त्यौहार बहुत कुछ खुशी और आनन्द के साथ कुछ अप्रिय बातों के साथ जुड़ा हुआ है। यदि ये बुराइयाँ न रहे तो त्यौहार सर्वाङ्ग सुन्दर बन जाय। होली के त्यौहार मे भी इतनी ही खुशी रहती है लेकिन यह काम-भावना को जाग्रत करता है। किन्तु दीपावली सौन्दर्य भावना को ही जाग्रत करती है और इस प्रकार उनमे कोई विशेष बुराई नहीं रह जाती। दशहरा भी हमारा एक बडा त्यौहार है लेकिन उसमे इतनी चमक-दमक नहीं होती जितनी दीपावली मे। ऐसी स्थिति मे यदि हम सच्चे अर्थों मे उसकी चमक-दमक बढाना चाहते हैं तो उसमे से जुए, आतिशबाजी की बुराई हटानी चाहिए।

(११) विद्यालय का वार्षिकोत्सव

१—वार्षिकोत्सव की तैयारी।
२—खेलकूद प्रतियोगिताएं।
३—वाद-विवाद, निबन्ध एव कविता सम्बन्धी प्रतियोगिताएँ।
४—मुख्य समारोह (नाटक, सभा पुरस्कार-वितरण आदि)।
५—उपसंहार।

हमारे विद्यालय की स्थापना गाधी-जयन्ती के अवसर पर २० वर्ष पूर्व हुई थी। अत. प्रतिवर्ष गाधी-जयन्ती के अवसर पर ही हम उसका वार्षिकोत्सव मनाया करते हैं। वार्षिकोत्सव का कार्य-क्रम प्राय. तीन दिन तक चलता है। पहिले दिन खेल-कूद की प्रतियोगिताएँ होती है, दूसरे दिन निबन्ध, वाद-विवाद, गान, कविता, सुलेख आदि की प्रतियोगिताएँ होती हैं। तीसरे दिन मुख्य समारोह होता है जिसमे प्रधानाध्यापक अपनी रिपोर्ट सुनाते हैं, अध्यक्ष भाषण देते हैं, पुरस्कार-वितरण होता है तथा रात्रि के समय नाटक-संगीत आदि का कार्य-क्रम होता है। अतः सभी विद्यार्थियों को उसकी जानकारी रहती है और अगस्त माह से ही उत्सव की तैयारी प्रारम्भ हो जाती है। इस वर्ष के वार्षिकोत्सव

के लिये भी तैयारी आरम्भ हो गई थी। कोई दौड़ने का अभ्यास कर रहा था तो कोई कूदने का। कोई गोला फेंकने का अभ्यास कर रहा था, तो कोई साइकिल दौड़ का। कोई निबन्ध-प्रतियोगिता की तैयारी में व्यस्त था, कोई नाटक में।

इस प्रकार जहाँ विद्यार्थी लोग प्रतियोगिता के कार्यों में व्यस्त थे वहाँ स्कूल के अधिकारीगण सफाई तथा व्यवस्था के कार्य में जुटे हुए थे। दीवारों पर सफ़ेदी की जा रही थी। फर्नीचर पर वारनिश हो रहा था और जगह-जगह सिद्धान्त-वाक्य नये सिरे से लिखे जा रहे थे। दीपावली के अवसर पर ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में जिस प्रकार की तैयारी होती है, उसी प्रकार की तैयारी इस समय हो रही थी। कहीं से फ़र्श मंगवाई जा रही थी, कहीं से क्रॉकरी। कहीं स्कूल के सामान की प्रदर्शिनी लगाने की व्यवस्था हो रही थी, तो कहीं सजावट के लिये कागज के फूल-झण्डियाँ, वन्दनवार आदि तैयार किये जा रहे थे। सब अपने-अपने कार्य में जुटे हुए थे।

हमारे विद्यालय की ड्रेस खाकी नेकर और सफ़ेद कमीज है। अतः विद्यालय के वार्षिकोत्सव के पहिले दिन प्रधानाध्यापकजी के आदेशानुसार सब लोग वही ड्रेस पहिन कर आये। चारों ओर उत्साह था। सबसे पहले प्रातःकाल झण्डाभिवादन हुआ। हमारे बालचर-ग्रुप ने झण्डे को सलामी दी और झण्डाभिवादन के अवसर पर प्रधानाध्यापक महोदय ने एक प्रेरणादायक भाषण दिया। झण्डाभिवादन के बाद सब क्रीड़ास्थल पर पहुँचे और प्रतियोगिताएँ प्रारम्भ हो गईं। १०० गज की दौड़, ४४० गज की दौड़, आध मील की दौड़, मीलभर की दौड़, ऊँची कूद, लम्बी कूद, बाधा दौड़, गोला फेंकना, गेंद फेंकना आदि की प्रतियोगिताएँ हुईं। दूसरी ओर छोटे बालकों की तीन टाँग की दौड़, चम्मच दौड़, अमरूद दौड़, कुर्सी की दौड़, कबड्डी आदि होने लगे। संध्या समय हॉकी, फुटबाल, वॉलीबाल आदि के फायनल मैच प्रारम्भ हुए। सारा कार्यक्रम बड़े, उत्साह के वातावरण में हो रहा था। मैं अपनी कक्षा की हॉकी टीम का कप्तान था। हमारी क्लास की टीम विजयी हुई। इसके साथ साइकिल की दौड़ में मैं प्रथम तथा ४४० गज की दौड़ में द्वितीय आया। सन्ध्या

समय लगभग ७ बजे खेलों का कार्यक्रम समाप्त हुआ। एक बार फिर से सब प्रतियोगिताओं के विजेताओं की घोषणा की गई।

दूसरे दिन का कार्यक्रम विद्यालय के हाल मे प्रातःकाल साढे सात बजे से ही प्रारम्भ हो गया। आज भी विद्यार्थियो मे बडा उत्साह था। सबसे पहले निबन्ध प्रतियोगिताएँ प्रारम्भ हुईं। विषय था 'कृत्रिम उपग्रह' या 'पंचशील'। समय १ घण्टा रखा गया। लगभग पचास विद्यार्थियो ने इसमे भाग लिया। निबन्ध-प्रतियोगिता साढे आठ बजे समाप्त हो गई। अब वाद-विवाद की प्रतियोगिता प्रारम्भ हुई। वाद-विवाद का विषय था—"विज्ञान की प्रगति मानव-जाति के लिए कल्याणकारक सिद्ध होगी।" विषय पक्ष मे बहुत से विद्यार्थियों ने बडे ओजपूर्ण भाषण दिये। वाद-विवाद इतना आकर्षक हुआ कि अन्त मे हमारे विज्ञान के अध्यापक और प्रधानाध्यापकजी को भी अपने विचार प्रकट करने पडे। उनके भाषणो से वाद-विवाद का आनन्द दूना हो गया। वाद-विवद दस बजे समाप्त हुआ। उसके बाद कविताओं की प्रतियोगिता हुई। लगभग बारह विद्यार्थियो ने अपनी-अपनी रचनाएँ सुनाईं। अपराह्न मे ३ बजे गल्प-प्रतियोगिता प्रारम्भ हुई। इसमें केवल सात विद्यार्थी ही सम्मिलित हुए। सध्या समय सङ्गीत और अभिनय की प्रतियोगिता हुई, इसमे कुछ विद्यार्थियो ने तो कमाल कर दिया। श्री राधाकृष्ण शर्मा का मूक-अभिनय और रेवतीशरण का नृत्य सबने बहुत पसन्द किया।

वार्षिकोत्सव का अन्तिम और सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम तीसरे दिन प्रारम्भ हुआ। अध्यक्ष-पद के लिये प्रान्त के शिक्षा-मन्त्रीजी से प्रार्थना की गई थी और उन्होंने स्वीकार भी कर लिया था। वे प्रातःकाल दस बजे आने वाले थे। अत सुबह आठ बजे से ही स्कूल को झण्डियां, पत्तियों, फूलों, सुभाषितों आदि से सजाने का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया। हम लोगों ने अपने-अपने काम बांट लिये थे और सब अपने काम मे जी जान से लगे हुए थे। कोई दरियाँ बिछा रहा था तो कोई गुलदस्ते तैयार करने मे व्यस्त था। कोई सुभाषित लगा रहा था तो कोई पानी की व्यवस्था कर रहा था। लगभग दो घ

तक यह कार्य चलता रहा। साढ़े नौ वजे घण्टी वजी और हम सव लोग अपनी-अपनी ड्रेस पहन कर मन्त्री-महोदय के स्वागत के लिए विद्यालय के द्वार पर आ गये। ठीक दस वजे मन्त्री-महोदय आये। एन० सी० सी० के विद्यार्थियों ने 'गार्ड-ऑफ-ऑनर' दिया। उसके वाद उन्होंने विद्यालय की प्रदर्शनी का उद्घाटन किया और कताई, बुनाई, हस्तकला, चित्रकला, विज्ञान एवं कृषि के कमरों का निरीक्षण किया। सब कमरे अच्छी तरह सजाये गये थे और उनमें हम विद्यार्थियों के हाथ से बनाई हुई चीजें रखी गई थीं। हमारा एक संग्रहालय भी था जिसमें हमारे द्वारा संग्रह किये हुए चित्र, पुस्तकें सिक्के, टिकट, शंख, घोंघे तथा इसी प्रकार की अन्य चीजें थीं। इन सवको देखने में लगभग एक घण्टे का समय वीत गया। प्रदर्शनी देखकर मन्त्रीजी डाक-वंगले पर चले गये और हम में से कुछ विद्यार्थी प्रदर्शनी की चीजें नागरिकों को दिखाते रहे। बारह वजे प्रदर्शनी बन्द कर दी गई।

वार्षिकोत्सव की मुख्य-सभा तीन वजे प्रारम्भ हुई। सबसे पहले गीत गाया गया। फिर हमारे प्रधानाध्यापक महोदय ने मन्त्रीजी का स्वागत करते हुए उन्हें फूल-माला पहनाई। अव पिछले कार्य की रिपोर्ट पढ़ी गई। रिपोर्ट में गत वर्ष पास होने वाले विद्यार्थियों की संख्या, नई-नई प्रवृत्तियाँ, उनकी प्रगति विद्यालय की भावी योजनाएं आदि के ऊपर प्रकाश डाला गया था। इसके बाद पुरस्कार वितरण हुआ और अन्त में अध्यक्ष महोदय का भाषण हुआ। रात्रि के समय हमारे प्रधान अध्यापकजी के द्वारा लिखा हुआ 'मझधार और किनारा' नामक नाटक खेला गया। नाटक सब लोगों ने वड़ा पसन्द किया।

इस प्रकार विद्यालय का वार्षिकोत्सव वड़ी धूमधाम के साथ सम्पन्न हुआ। चौथे दिन हमारे प्रधानाध्यापकजी ने सव अध्यापकों और विद्यार्थियों की एक सभा की जिसमें वार्षिकोत्सव के ऊपर सबके विचार मालूम करने का प्रयत्न किया गया। सवने अपने विचार प्रकट किये और वताया कि उनकी दृष्टि से उत्सव की व्यवस्था में क्या कमी रह गई। एक कमी हम सव लोगों ने यह अनुभव की कि यदि तीसरे दिन की कार्यवाही के वाद व्यायाम के प्रदर्शन रखे जाते, सामूहिक ड्रिल

रखी जाती अथवा चाय-पान का कार्यक्रम होता तो ज्यादा अच्छा रहता। किन्तु कुल मिलाकर कार्यक्रम सन्तोषजनक रहा, उससे सभी लोगों को प्रसन्नता हुई।

(१०) मेरे जीवन का सबसे अधिक आनन्दमय दिन

१—प्रस्तावना
२—पिताजी द्वारा डाकुओं के मारे जाने का समाचार
३—मैच में खेलने का निमन्त्रण
४—परीक्षा में प्रथम आने की सूचना
५—हॉकी मैच में विजय
६—उपसंहार

मैं जीवन में परिश्रम को ही सदैव महत्व प्रदान करता आया हूँ। मेरी मान्यता है कि परिश्रम या अध्यवसाय में कठिन से कठिन समस्या को हल कर देने की शक्ति है। अत: कोई विशेष प्रतिभा न होने हुए भी मैंने जीवन के अनेक कठिन कार्यों को परिश्रम के बल-बूते पर ही पूरा करने का प्रयत्न किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुझसे कम परिश्रम करके भी बहुत से विद्यार्थी मुझसे ज्यादा अंक प्राप्त करते हैं। मुझसे कम खिलाड़ी होते हुए भी प्रथम ११ खिलाड़ियों में नाम लिखाकर स्कूल की तरफ से बाहर में और बाहर के बाहर मैच खेलने जाते रहते हैं और मुझसे बहुत कम परिश्रम करके चुनाव में जीतते रहे हैं। इससे मुझे कभी-कभी निराशा और उदासीनता के अन्धकार में भी बहना पड़ा है, लेकिन मैंने अपने विश्वास को अडिग बनाये रखा है। यद्यपि कभी मेरा परिश्रम बिल्कुल व्यर्थ नहीं गया तथापि ४ जनवरी १९५७ का दिन मेरे जीवन में ऐसा आया जब कि परिश्रम ने भाग्य का रूप धारण कर लिया और चारों ओर से सफलता, आनन्द और हर्ष की वर्षा हो उठी।

मेरे पिता जैसलमेर में सब इन्सपेक्टर-पुलिस हैं। व
डाकुओं का बड़ा ज़ोर है। परसों पिताजी का पत्र आया,

स्कूल का समय बड़ा आनन्द में बीता। सन्ध्या समय मैच खेलने जाना था। टूर्नामेंट का फाइनल-मैच था अतः अच्छी से अच्छी तैयारी की जा रही थी। आज प्रान्त के राज्यपालजी आने वाले थे और उनके हाथ से पुरस्कार वितरण किया जाने वाला था। चारों ओर उत्साह था। मैच साढ़े चार बजे प्रारम्भ होने वाला था, किन्तु साढ़े तीन बजे से ही भीड़ बढ़ती जा रही थी। मैदान के चारों ओर अपार जन-समूह जमा हो गया था। मैदान के बीचों-बीच पश्चिम दिशा में जिले के कलक्टर, राज्यपाल, एक मन्त्री और अन्य अतिथि लोग बैठे हुए थे। ठीक साढ़े चार बजे खेल प्रारम्भ हुआ। कभी सिन्धिया स्कूल की टीम आगे बढ़ती और कभी हमारी। दोनों ओर से शक्ति-भर प्रयत्न हो रहा था। आधा समय पूरा होने आया और किसी भी ओर से गोल नहीं हो सका। जब केवल पाँच मिनिट ही रह गये तो मैं गेंद लेकर आगे बढ़ा। मैंने विपक्षियों से बचाकर अपने साथी को पास दिया। वह सरलता से गोल कर सकता था लेकिन विपक्ष के बैक ने बाधा दी और जानबूझ कर गेंद रोकने के स्थान पर हमारे खिलाड़ी के पैर को चोट दी। हमारे खिलाड़ी उत्तेजित हो गये। दर्शकों ने भी हो हल्ला मचाया। रेफ्री ने पेनेल्टी दी और शाट लगाने का काम कप्तान मोहन सिंह ने अपने ऊपर लिया पेनल्टी के बाद प्रायः गोल निश्चित रूप से हो ही जाता है। लेकिन मोहनसिंह ने कुछ इतनी असावधानी का परिचय दिया कि गोलकीपर ने शाट बचा दिया। कप्तान की असावधानी से एक अच्छा अवसर खो दिया गया। पाँच मिनिट के विश्राम के बाद फिर खेल प्रारम्भ हुआ। खेल प्रारम्भ होने के १० मिनिट बाद ही सिन्धिया स्कूल ने हमारी तरफ एक गोल कर दिया। चारों ओर से हर्ष-ध्वनि हुई। हमारे खिलाड़ी निराश होने लगे। कप्तान ने हमारे २-३ खिलाड़ियों को कुछ कड़े शब्द कह दिये, जिससे उनका दिल टूट गया। सिंधया स्कूल का साहस बढ़ गया। ३-४ मिनिट बाद उन्होंने दूसरा गोल कर दिया। अब तो हमारी बड़ी बुरी हालत हो रही थी, जीतने की कोई आशा नहीं रही। मैंने भगवान् का नाम लेकर साहस के साथ आगे बढ़ने का इरादा किया और दो तीन खिलाड़ियों से

बचाता हुआ गेंद को आगे ले गया। मैंने पास दिया और सेण्टर-फॉरवार्ड ने उसे गोल दिया। एक अच्छा अवसर चला गया। उपस्थित जन-समूह ने सेण्टर-फारवार्ड की बड़ी भर्त्सना की। मैंने फिर साहस किया और अब की बार मैं अकेला ही उसे विरोधियों से बचाता हुआ ले गया और गोल कर दिया। जन-समूह ने जोर से हर्षध्वनि की। हमारे खिलाड़ियों में उत्साह आ गया। फिर तो ४ मिनिट बाद ही मैंने दूसरा गोल कर दिया और दोनों पक्ष बराबरी की स्थिति में आ गये। जन-समूह ने मुझे प्रोत्साहित किया। मैंने पूरी ताकत लगाकर फिर गेंद बढ़ाई और खेल समाप्त होने में तीन मिनिट पूर्व एक गोल और कर दिया। अब तो सारा पासा ही पलट गया। खेल समाप्त होने पर राज्यपाल ने मुझे पास बुलाया और मुझे शाबाशी दी। हमारे हैड-मास्टर साहब ने कहा—इस लड़के के पिता ने ही राजस्थान के कुख्यात डाकू हजारसिंह को मारा है; अब तो मन्त्री-महोदय भी प्रसन्न हो गये और उन्होंने अपने पास बुलाकर मुझे २५) रुपये अपनी ओर से पुरस्कार के रूप में दिये। अब अपने स्कूल की टीम का पुरस्कार लेने के लिये कप्तान के स्थान पर मुझे ही बुलाया गया और पुरस्कार दिया गया। फिर तो स्कूल के लड़कों ने मुझे फूल-मालाओं से लाद दिया और जुलूस बनाकर स्कूल तक ले गये। एक ही दिन में मैं अपने स्कूल ही नहीं नगर और प्रांत में प्रसिद्ध हो गया। मुझे प्रान्त के हॉकी के खिलाड़ियों में चुन लिया गया और शहर के पत्रकार मेरा चित्र लेने आ पहुँचे। समझ नहीं पड़ता था कि इसे मैं भाग्य कहूँ या अपने परिश्रम का फल।

(१२) महात्मा गाधी

१—भूमिका
२—जन्म और बाल्यकाल
३—विदेश यात्रा
४—दक्षिण अफ्रीका में
—भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन

—गांधीजी का सन्देश

७—उपसंहार

तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा है :—

जब जब होय धर्म के हानि, बाढ़हि असुर महा अभिमानी ।
तब तब प्रभु धरि मनुज शरीरा, हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

श्रीमद्भगवद् गीता में भी लगभग यही बात "यदा यदाहि धर्मस्य" कह कर कही गई है । इसका आशय यह है कि जबजब संसार में धर्म की हानि होने लगती है और अधर्म बढ़ने लगता है, तबतब भगवान् मनुष्य का शरीर धारण करके सज्जनों की पीर हरते हैं । पता नहीं गांधीजी ईश्वर का अवतार थे या साधारण मानव ! लेकिन इतना निश्चित है कि उन्होंने अधर्म को मिटाने और धर्म की स्थापना में अपना पूरा जीवन, अपनी पूरी लगा दी थी । वे भगवान् का अवतार हों या न हों यह इतना महत्व ीं रखता, जितना यह कि उन्होंने गीता और रामायण के उपर्युक्त वाक्यों के अनुसार ही कर्म किया ।

गांधीजी का जन्म २ अक्टूबर सन् १८६९ में काठियावाड़ प्रदेश के पोरबन्दर नामक स्थान में एक उच्च घराने में हुआ था । उस समय कौन जानता था कि यह बालक भारत की चालीस करोड़ जनता का भाग्य-विधाता बनेगा और दुनियाँ के ऐसे महापुरुषों में गिना जाएगा जो हमेशा के लिए इतिहास में अमर हो जाते हैं । उनका नाम था मोहनदास । उनके पिता कर्मचन्द गांधी पोरबन्दर के दीवान थे और माता पुतली बाई ब धार्मिक प्रवृत्ति की स्त्री थी । बाल्यावस्था में गांधीजी में ऐसी कोई बात न लगती थी जिससे यह प्रकट हो सके कि वह आगे महापुरुष बनेंगे । न तो प लिखने में बहुत आगे रहते थे, न खेलने-कूदने में । चोरी, मांस खाने बड़ी-बड़ी भूलें भी उनसे हो गई थीं । लेकिन एक बात उनमें विशेष सद्प्रवृत्ति । उन्होंने भूलें अवश्य कीं लेकिन उस चिनगारी को भयङ्ग ग्रहण न करने दिया । एक बार भूल करके उसी क्षण उसके गहरा पश्चाताप किया और आगे उसे न होने देने का दृढ़ निश्चय

१३ वर्ष की आयु में ही उनका विवाह कस्तूरबा से हो गया। इस समय वे बड़े संकोचशील और लजालु वृत्ति के थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा राजकोट में हुई। यहीं से उन्होंने हाई स्कूल परीक्षा पास की। उस समय वे १७ वर्ष के थे। पिता की मृत्यु हो चुकी थी। बड़े भाई ने यह निश्चय किया कि उन्हें बैरिस्ट्री की शिक्षा प्राप्त करने के लिये इङ्गलैंड भेजा जाय। लेकिन माँ इसके लिए तैयार नहीं थी। उनको भय था कि मोहनदास विदेश के स्वच्छन्द एवं अधार्मिक वातावरण में भ्रष्ट हो जायेंगे। मोहनदास ने साहस करके माँ को यह विश्वास दिलाया कि वे ऐसा नहीं होने देंगे। उन्होंने शराब न पीने, मांस न खाने तथा पर-स्त्रियों से दूर रहने की शपथ ली और बहुत कष्ट उठाकर भी उसे पूरा किया। बैरिस्ट्री की शिक्षा प्राप्त कर सन् १८८८ में वे भारत लौट आये।

जब शिक्षा प्राप्त करके लौटे तो उन्हें यह जानकर बहुत बड़ा आघात लगा कि उनकी स्नेहमयी 'माँ' अब नहीं रहीं। वे माँ को बताना चाहते थे कि उन्होंने तीनों प्रतिज्ञाओं का पालन किया है। बड़े उदास मन से उन्होंने वकालत प्रारम्भ की। दुर्भाग्य से उनके लजालु स्वभाव के कारण यह चल न सकी। इसी समय उन्हें दक्षिण-अफ्रीका में कुछ मुकदमों की पैरवी करने का काम मिला और उसे स्वीकार करके वे वहाँ चले गये। वे गये तो थे मुकदमों की पैरवी करने, लेकिन उन दिनों दक्षिण-अफ्रीका में काले आदमियों के प्रति बड़ा विद्वेष और घृणा का वातावरण बना हुआ था। वहाँ के गोरे यूरोपियन अपने को श्रेष्ठ समझते थे और काले भारतवासी एवं अफ्रीका निवासियों के साथ बड़ा ही बुरा व्यवहार करते थे। वे उन्हें न तो अपनी गाड़ियों में बैठने देते थे, न अपने होटलों में खाना खाने देते थे। अंग्रेजों के मुहल्ले और सड़कों तक में काले आदमियों का जाना मना था और उन्हें वहाँ जाते हुए देख लिया जाता था तो मारपीट जैसा दुर्व्यवहार करने में संकोच न किया जाता था। गांधीजी को यह सहन नहीं हुआ। यह तो मनुष्यता का अपमान था—जबरदस्त अन्याय और अत्याचार था। गांधीजी ने इसके विरुद्ध अपनी पूरी ताकत लगाई। उन्होंने वहाँ रहने वाले भारतवासियों को संगठित करके इस अन्याय का विरोध किया और लगभग २० वर्षों तक वे इसके विरुद्ध लड़ते रहे। यद्यपि

अन्याय आज भी वहाँ चल रहा है, तथापि गांधीजी के प्रयत्नों से अंग्रेजों को अपना बहुत कुछ रवैया बदलना पड़ा। गांधीजी ने जेल कर, कष्ट सहन करके और लोगों को यह समझाकर कि यह न्याय हीं है—इस दिशा में बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

दक्षिण-अफ्रीका में सफलता प्राप्त करके नवीन उत्साह और प्रेरणा के साथ गांधीजी सन् १९१४ में भारत लौटे। अपने राजनीतिक गुरु महामना गोपाल कृष्ण गोखले की इच्छानुसार उन्होंने एक वर्ष तक सारे देश की स्थिति का अध्ययन किया और देखा कि किस प्रकार भारत की सेवा की जा सकती थी। इन्ही दिनो प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। अंग्रेजों ने भारत-सियों को बड़े सब्ज-बाग दिखाये और कहा कि इस युद्ध में विजय प्राप्त ते ही भारतवासियो को उनकी इच्छानुसार शासन करने का अधिकार दे। गांधीजी ने उनकी बातों पर विश्वास करके महायुद्ध के दिनों अंग्रेजों की बड़ी सहायता की। वे स्वयं युद्ध-स्थल में गये और घायलों की मरहम-पट्टी करते रहे लेकिन जब महायुद्ध समाप्त हुआ तो अंग्रेज एकदम बदल गये। उन्होंने अपने छोटे से छोटे वायदे को पूरा करने से भी इन्कार कर दिया। गांधीजी को बड़ी वेदना हुई। उन्होंने निश्चय किया कि अब अंग्रेजों से लड़ना ही चाहिये। बस, सन् १९२१ में उन्होंने असहयोग आन्दोलन का बिगुल बजा दिया।

सन् १९२१ से सन् १९४७ तक का भारतीय आन्दोलन इतिहास गांधीजी की नीति, कार्य और संघर्ष का ही इतिहास इन दिनों सारा राष्ट्र गांधीजी के इशारों पर खड़ा होकर अंग्रेजो जबरदस्त शक्ति से जूझा और उन्हें बता दिया कि वे जनत इच्छा के विरुद्ध शासन नहीं कर सकेंगे। अंग्रेजों के पास शक्ति सेना थी। अच्छे से अच्छे शस्त्रास्त्र थे। अपार धनराशि थी वि भी बल था। जबकि भारतवासी निहत्थे, निर्बल और गरीब थे गांधीजी ने अपने अहिंसा और सत्य के अस्त्र से देश भर में जीवन फूंक दिया। नवयुवक ही नहीं बालक, वृद्ध और स्त्रियाँ में आ खड़े हुए और गांधीजी के इशारों पर अपना सब कु

करते रहे। गांधीजी का अस्त्र था असहयोग। उन्होंने भारतवासियों से कहा कि अंग्रेजों के अन्याय और अत्याचार की गाड़ी आपके ही सहयोग से चल रही है। आप लोग ही बैलों की तरह उसमें जुत कर उसे चला रहे हैं। यदि आप अपना सहयोग बन्द कर देते हैं तो उसका चलना असम्भव हो जाएगा। लोगों ने गांधीजी की बात मानी और विदेशी चीजों का बहिष्कार किया। सरकारी नौकरी, सरकारी स्कूल, कॉलेज तथा सरकारी अदालतों से अपना सम्बन्ध तोड़ा और रचनात्मक कार्यों के द्वारा देश का नया निर्माण प्रारम्भ किया। भारत की आजादी की लड़ाई में अनेक ज्वार-भाटे आये। असहयोग आन्दोलन तेजी से छिड़ा और बन्द हुआ, हजारों लोग जेल गये और मुक्त हुए, कांग्रेस ने प्रान्तों की बागडोर सम्हाली और अंग्रेजों को त्यागपत्र दिया, सैकड़ों नवयुवकों ने अपना सर्वस्व बलिदान किया और हजारों-लाखों लोगों ने जीवन-भर देश का कार्य करने की प्रतिज्ञा ली। तब कहीं सन् १९४७ में अंग्रेज गये। यह सब लाखों-करोड़ों देशवासियों के सहयोग और बलिदान से हुआ। किन्तु गांधीजी सब की प्रेरणा के स्रोत थे—सबके मार्ग-दर्शक और अगुवा थे। इसीलिए हम उन्हें राष्ट्र-पिता कहते हैं।

गांधीजी एक व्यक्ति तो थे लेकिन इससे भी अधिक वे कुछ आदर्शों और सिद्धान्तों के प्रतीक थे। उन्हीं आदर्शों के लिये जिये और उन्हीं के लिये मरे। वे आदर्श थे सत्य, अहिंसा, त्याग और बलिदान। उनका सारा जीवन सत्य एवं अहिंसा के प्रकाश से जगमग था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से उन्होंने सत्य और अहिंसा के प्रयोग किये और दुनियां को दिखा दिया कि हिंसा, असत्याचरण, प्रतिद्वन्द्विता और केन्द्रीकरण दुनियां को विनाश की ओर ही ले जायेंगे। चाहे राजनीति हो, चाहे अर्थनीति और चाहे समाजनीति हो, चाहे धर्मनीति। सब ओर सत्य और अहिंसा का प्रकाश लेकर चलिये आप कभी पथ-भ्रष्ट या गुमराह नहीं हो सकेंगे। उन्होंने दुश्मन से भी प्रेम करने की बात कही और कहा कि उसके शरीर को जीतने के बजाय मन को जीतिये। फिर उसमें आपका भी कल्याण होगा और उसका भी। उन्होंने खादी-ग्रामोद्योग, हरिजन-सेवा, [illegible]-सुधार, आर्थिक-समता, गौ-सेवा, कुष्ट-सेवा, विद्यार्थी-संगठन का

श के सामने रखे और लोगों को उनमें लगाकर देश की उन्नति करने के लिये कहा था। जब तक वे जीवित रहे अपना एक एक क्षण इसी कार्य में खर्च करते रहे।

सन् १९४८ की ३० जनवरी को एक पथभ्रष्ट युवक की गोली से उनका अन्त हो गया। वे भौतिक दृष्टि से हमारे बीच नहीं रहे किन्तु उनके सिद्धान्त, उनके आदर्श, उनका दिखाया हुआ मार्ग हमारे सामने है। वह युगों तक हमें, हमारे देशवासियों को और दुनियाँ के लोगों को सुख और शान्ति का राजमार्ग दिखाता रहेगा।

(१४) जवाहरलाल नेहरू

१—भूमिका
२—बाल्यकाल और शिक्षा-दीक्षा
३—राजनीति में प्रवेश
४—राष्ट्र-सेवा
५—प्रधान-मन्त्रित्व काल के कार्य
६—उनकी विशेषताएं
७—उपसंहार

पण्डित जवाहलाल नेहरू को कौन नहीं जानता? वे हमारे देश के प्रथम प्रधानमन्त्री तो थे ही किन्तु इससे भी ज्यादा वे जनता के हृदय-सम्राट् थे। बच्चों के 'चाचा नेहरू' थे और दुनियां के लोगों के लिए शान्ति एवं प्रेम के सन्देश-वाहक थे। हमारे देश में ही नहीं, विदेशों में भी उन्हें इतना ही सम्मान, प्रेम और आदर प्राप्त हुआ था। हमारे देश में गांधीजी के बाद यदि कोई सबसे बड़ा देश-भक्त, सबसे बड़ा राजनीतिज्ञ और सबसे बड़ा नेता हुआ है तो वह जवाहरलाल ही था।

पं० नेहरू का जन्म १४ नवम्बर सन् १८८९ को इलाहाबाद में हुआ। उसके पिता पं० मोतीलाल नेहरू बहुत बड़े वकील और नेता थे। वे बड़ी शान और ठाटबाट से रहते थे। इकलौते बेटे होने के कारण वे बड़े लाड़-प्यार से पाले-पोसे गये। बाल्यावस्था में एक अंग्रेज धाय ने

उनका पालन किया और एक आयरलैंड-निवासी शिक्षक की देख-रेख में उनकी शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में वे अपने पिताजी के साथ इंग्लैंड गये और वहाँ हैरो के प्रसिद्ध स्कूल में भर्ती हुए। इसके बाद वे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कालेज में भर्ती हुए और वहीं से उन्होंने विज्ञान में आनर्स की डिग्री प्राप्त की। अब उन्होंने कानून अध्ययन प्रारम्भ किया और बैरिस्ट्री पास करके भारत आगये।

भारत आकर अपने पिता की इच्छानुसार उन्होंने वकालत प्रारम्भ की लेकिन वकालत के काम में उनकी रुचि नहीं थी। देश की राजनीतिक स्थिति से प्रभावित होकर वे श्रीमती एनीबिसेण्ट और गोपालकृष्ण गोखले द्वारा संचालित होमरूल आन्दोलन की ओर आकर्षित हुए। सन् १९१४ में पहला महायुद्ध प्रारम्भ हुआ और लोकमान्य तिलक जेल से मुक्त हुए। नेहरूजी राजनीति क्षेत्र में कूद पड़े। सन् १९१६ में लखनऊ कांग्रेस के समय गांधीजी से उनकी भेंट हुई। गांधीजी दक्षिण-अफरीका में प्रवासी भारतीयों के आन्दोलन का संचालन सफलतापूर्वक कर कुछ दिनों पहले ही आये और भारतीय राजनीति में भी अपना महत्वपूर्ण स्थान बना रहे थे। वे गांधीजी से प्रभावित होकर उनके अनुयायी बन गये। इसके बाद ही वे जीवन-भर गांधीजी के आदर्शों के अनुसार कार्य करते रहे। वे अनेक बार जेल गये और उन्होंने और भी कई कष्ट सहन किये, लेकिन एक अच्छे सैनिक की तरह एक भी कदम पीछे हटाये बिना वे निरन्तर आजादी की लड़ाई में जुटे रहे।

सन् १९१८ में वे होमरूल लीग के मन्त्री बनाये गये। सन् १९२२ में इस आन्दोलन के सिलसिले में वे पहली बार जेल गये। पण्डितजी की देशभक्ति उच्च-कोटि की है। उन्होंने सदैव देशहित को सब में ऊंचा स्थान दिया है। पहले असहयोग-आन्दोलन के समय जब कौंसिल-प्रवेश के प्रश्न को लेकर देश में दो दल हो गये, तो नेहरूजी ने एकता कराने के लिये शक्ति भर [illegible] किया। उनका सारा जीवन ही एक देशभक्त और तपस्वी [illegible]

है। उनके जीवन का इतिहास राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास-सा बन गया है। उन्होंने जीवन का एकएक क्षण देशहित के कार्यों में ही व्यतीत किया। एक ओर जहाँ वे कांग्रेस और राष्ट्रीय आन्दोलन के कार्य में निरन्तर जुटे रहे वहाँ दूसरी ओर वे समय-समय पर इलाहाबाद तथा अन्य स्थानों के ग्रामों में जाकर ग्रामीणों के बीच रहे और उनकी ही तरह रूखा-सूखा खाकर उन्हें देशभक्ति का पाठ पढ़ाते रहे। नेहरूजी दीन, हीन-पीड़ित और पददलित लोगों के मसीहा थे। वे उनके लिये सदैव लड़े हैं। वे इस बात का भेद नहीं करते थे कि ऐसे लोग देश में हैं या विदेश में, हिन्दू हैं या मुसलमान अथवा गोरे हैं या काले। यही कारण है कि देश-विदेश की पीड़ित, पददलित जनता उनको अपना हृदय-सम्राट् मानती रही। वे ही नहीं उनका सारा परिवार इस प्रकार के त्याग और बलिदान से ओत-प्रोत है। उनकी पत्नी कमला नेहरू और उनके पिता मोतीलाल नेहरू कष्टमय जीवन से दूर रहते थे लेकिन नेहरूजी के कारण उन्होंने बड़ेबड़े कष्ट उठाए और देश के लिये बलिदान हो गये। उनकी बहिन विजयालक्ष्मी पण्डित तो आधुनिक काल के स्त्री-रत्नों में गिनी जाती हैं। स्वतन्त्रता-संग्राम में पूरी शक्ति से जुट जाने वाला नेहरू-परिवार अपने इन गुणों के कारण भारत की जनता को प्राणों से भी ज्यादा प्यारा है।

नेहरूजी की राष्ट्रीय सेवायें हमारे इतिहास में सदैव अमर रहेंगी। राजनीतिक कार्यों में संलग्न रहते हुए भी वे इलाहाबाद नगरपालिका के चेयरमैन बने और बड़े ही सुचारू रूप से उसका संचालन किया। कांग्रेस के सभापति तो वे अनेक वार रहे। लाहौर कांग्रेस में सन् १९२९ में रावी नदी के किनारे उन्हीं के सभापतित्व में आधी रात के समय देशभक्तों ने सबसे पहिले स्वतन्त्रता प्राप्ति का लक्ष्य घोषित किया और उसके लिये प्रतिज्ञा ली थी। कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य तो वे एक लम्बे अर्से तक रहे। गांधीजी के निकटतम साथियों और शिष्यों में रहे तथा आज़ादी की लड़ाई में वे हमेशा एक अच्छे सेनापति की भाँति आगे रहे। जब सन् १९४७ में देश स्वतन्त्र हो गया तो पहले प्रधान-

मन्त्री बनाये गये। पहले जहाँ वे विदेशी-शासन से देश को मुक्त कराने में अपनी पूरी ताकत लगा रहे थे वहाँ स्वतन्त्रता के बाद वे उसके निर्माण और समृद्धि के कार्यों में जुट गये।

सन् १९४६ में जब नेहरूजी प्रधानमन्त्री बने, देश की हालत बहुत बुरी थी। चारों ओर हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो रहे थे, लोग एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने के लिए बाध्य हो रहे थे और बड़ी ही अस्थिरता फैली हुई थी। बड़ा ही कठिन समय था। नेहरूजी ने इस परिस्थिति का सामना बड़ी ही कुशलता से किया। धीरे-धीरे देश में शान्ति स्थापना शरणार्थियों के पुनर्वास तथा अन्न-समस्या को हल कर लिया। इन्हीं दिनों गांधीजी की मृत्यु हुई। देश की विषम स्थिति अथवा चरम-सीमा पर पहुँची हुई प्रतीत हुई। लेकिन नेहरूजी ने उस समय भी ... उस अवसर पर उन्होंने जिस आत्म-संयम, धैर्य और साहस का परिचय दिया वह अद्वितीय है। उनके ही नेतृत्व में देश के नव-निर्माण का कार्य नाना क्षेत्रों में बड़ी तेजी के साथ आरम्भ हुआ। वे भ्रष्टाचार समाप्त करने, देश की आर्थिक स्थिति मजबूत बनाने तथा देश को सुखी, महान् और उन्नत बनाने के कार्य में तन-मन से जुटे। अपने प्रधान मन्त्रित्व के काल में उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का स्थान बनाया और दुनिया के लोगों का आदर और स्नेह प्राप्त किया। अपने उदार दृष्टिकोण के कारण उन्होंने एक ऐसी विदेश-नीति अपनाई जिसके कारण भारत का गौरव बढ़ा। उन्होंने सहअस्तित्व की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित किया और अमरीका तथा रूस के बीच चलते आ रहे शीतयुद्ध को कम करने में महत्वपूर्ण भाग दिया। कोरिया, इण्डोनेशिया, तथा स्वेज-नहर के प्रश्न पर उन्होंने जो दृष्टिकोण अपनाया उससे भारत की प्रतिष्ठा बढ़ने के साथ दुनिया में शान्ति भी बढ़ी। पंचशील को जन्म देकर तथा उसका प्रचार करके तो वह एशिया ही नहीं दुनिया के महापुरुष बन गए।

नेहरूजी कोई बड़े कूटनीतिज्ञ नहीं थे। उनकी सफलता का मुख्य कारण यही है कि वे एक सच्चे देशभक्त ... र दृष्टिकोण के व्यक्ति थे तथा सत्य और अहिंसा के ... थे। वे गांधीजी के पक्के शिष्य थे और उन्हीं के ... नुसार

(१५) महात्मा सूरदास

१—जीवन वृत्त।
२—रचनाएँ और शैली।
३—सूर और वात्सल्य।
४—सूर का शृङ्गार वर्णन।
५—सूर की भाषा।
६—उपसंहार।

सूरदास जैसे महात्मा को जन्म देने का श्रेय व्रज-भूमि को है। उनका जन्म स्थान सीही नामक एक ग्राम है जो आगरा-मथुरा-रोड पर स्थित है। दुःख की बात है कि उनके जन्म स्थान से लेकर माता-पिता, जाति, परिवार आदि तक के बारे में बहुत-सी बात अब-तक विवादास्पद बनी हुई हैं।
यह है कि महात्मा सूरदास ने अपने बारे में कहीं कुछ नहीं लिखा।
भी उनके बारे में बहुत कम लिखा और जो कुछ लिखा वह विवाद
बना हुआ है। अत उनका सही जीवन-चरित्र लिखना बडा
उधर से प्राप्त जानकारी के आधार पर बहुत से लोगों की
है कि उनका जन्म सवत् १५४० में हुआ था। वे
जाता है कि वे गऊघाट पर रहा करते थे। वहीं
भेट हुई। सूरदासजी ने उन्हें स्वरचित
ार्यजी ने पसन्द किया और अपने मत की

चरित्र के अभाव में उनके सम्बन्ध में
उन्हें जन्मान्ध मानते हैं और कोई
का य का अध्ययन यह बताता
का कार्य नहीं हो सकता।
सजीव और विशद वर्णन
हो सकता। महाप्रभु
स्थापना की थी।
दासजी इन आठ

(ख) मैया मेरी मैं नही माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पीछे मधुवन मोहि पठायो ।।
(ग) चन्द्र खिलौना ले हो, मैया मेरी, चन्द्र खिलौना ले हो।
धोरी को पय पान न करिये वेनी सिर न गुयें हो ।।
(घ) सिखवत चलन जसोदा मैया।
अरवराय करि पानि गहावत डगमगाय धरे पैंया ।।

शृङ्गार के दो पक्ष हैं—संयोग शृङ्गार और विप्रलंभ शृङ्गार। सूरदासजी ने दोनों ही पक्षों पर खूब कौशल के साथ लिखा है। उनका शृङ्गार वर्णन अन्य कवियों की अपेक्षा बहुत सुन्दर है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में शृङ्गार का रस-राजत्व यदि किसी ने दिखाया है तो सूरदास ने। उनका शृङ्गार-वर्णन सरसता, स्वाभाविकता और मनोहरता से ओत-प्रोत है। एक लम्बे साहचर्य और सौन्दर्य से कृष्ण के मन मे गोपियो और राधा के प्रति सहज ही स्नेह हो जाता है। एक बार उन्होंने *यमुना के तीर पर एक नील-वस्त्र समावृता बालिका को देखा।* नैन से नैन मिले और कृष्ण उसे देखते ही रीझ गये। "सूर स्याम देखत ही रीझे नैन से नैन मिलि परि ठगौरी।" इस ठगौरी में न कही झिझक थी, न संकोच। श्याम ने उससे परिचय पूछा—'क्योंजी तुम कौन हो किसकी लड़की हो? तुम्हे तो कभी ब्रज की गलियो में खेलते ही नही देखा।' राधिका बोली—'हम ब्रज की गलियों मे खेलने क्यों आवे? हम तो अपनी ही पौर मे खेलती रहती हैं। सुना है नन्द का ढोठा बडा चोर है किसी का दही चुरा लेता है तो किसी का मक्खन ले भागता है।" श्याम ने हँसते हुए कहा—"भला मैं तुम्हारा क्या ले भागूँगा? चलो न खेलने चले। तुम्हारी हमारी जोडी अच्छी रहेगी।" बस रसिक-शिरोमणि श्याम की बातो मे राधा भूल-सी गई। उसे पता ही नही रहा कि बातों ही बातों मे इस अजीब चोर ने उसका हृदय ही चुरा लिया है। यह है प्रेम का भोला-भाला और स्वाभाविक श्रीगणेश। राधा के साथ गोपियो से भी कृष्ण की प्रणय-लीला चलती है। रास, कुंज [illegible] दानलीला, मानली[illegible] पनघटलीला, हिंडोला, होली, वसन्त [illegible] के [illegible]
प्रसङ्गो द्वारा सूर ने प्रेममय जीवन का

संयोग शृङ्गार की भाँति सूर का वियोग वर्णन भी बड़ा करुण, मर्मस्पर्शी और हृदय-वेधक है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर सारा वातावरण वियोगमय हो जाता है। सभी गोपियाँ कहती हैं—श्रीकृष्ण के बिछुड़ते ही हमारा हृदय फट क्यों नहीं गया? संयोग में उन्हें जो वस्तुएं आनन्ददायक प्रतीत होती थीं, अब वियोग में वे ही दाहक बन गईं। वृन्दावन के हरेहरे कुंज, यमुना का मनोहर तट, मधुबन की लताएं और पुष्प सब कुछ उन्हें दुःख देने वाले बन गये। रात सर्पिणी-सी लगती है। और दिन भयानक। इधर उद्धव निर्गुण-भक्ति का सन्देश लेकर श्रीकृष्ण के पास से आते हैं। गोपियाँ उनकी बात बड़े ध्यान से सुनती हैं और ऐसी फबतियाँ कसती हैं कि ऊधो को लेने के देने पड़ जाते हैं। उनकी कुछ उक्तियाँ देखिये :—

(क) आयो घोष बड़ौ व्यापारी।
लादि खेप यह ज्ञान जोग को व्रज में आनि उतारि।

(ख) बिन गोपाल वैरिन भई कुंजे।
तब ये लता लगति अति शीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजे।

(ग) निर्गुन कौन देश को वासी?
मधुकर, हँसि समझाय, सौह दे, बूझत बात न हाँसी।

सूरदासजी की भाषा शुद्ध ग्रामीण व्रजभाषा है किन्तु वह साहित्यकता लिए हुए है। उस पर संस्कृत का अधिक प्रभाव नहीं है। सूरदासजी ने अपने पदों में कहीं-कहीं अन्य प्रचलित भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है, किन्तु बहुत कम। उनकी भाषा में कहीं-कहीं अरबी, फारसी और संस्कृत भाषा के शब्द भी मिल जाते हैं। उनकी भाषा ओज, प्रसाद और माधुर्य गुण से पूर्ण है। मुहावरों के सामयिक प्रयोग से तो जैसे उनकी भाषा में जबरदस्त शक्ति और प्रवाह आ गया है। उनकी भाषा सरस सजीव और प्रवाहपूर्ण है। उन्होंने जबरदस्ती अलङ्कार ठूंसने का प्रयत्न कहीं भी नहीं किया। अलङ्कार स्वाभाविक रूप से उनके पदों में आये हैं।

और उन्होंने सुन्दरता बढाई हैं। अलंकारो मे उपमा और रूपक का प्रयोग उन्होंने विशेष रूप से किया है। वे जनता के कवि थे, अतः उनकी भाषा भी जनता की ही भाषा थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदासजी मानव-हृदय की सरल-सरस और कोमल भावनाओ के कवि हैं। वे अपने क्षेत्र के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। उनकी इस महान् सफलता को देखकर ही किसी ने लिखा है—

सूर सूर तुलसी ससी, उडगण केशोदास।
अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकाश॥

(१६) गोस्वामी तुलसीदास

१—तत्कालीन सामाजिक दशा
२—जीवन वृत्त
३—रचनाएँ
४—भाषा, शैली और अलकार-योजना
५—लोकप्रियता
६—उपसंहार

जिस समय गोस्वामी तुलसीदासजी का जन्म हुआ उस [illegible] भारत पर मुसलमानो का आधिपत्य जम चुका था। हिन्दुओ के [illegible] मे 'हार की मनोवृत्ति' घर कर चुकी थी। उनके मन मे न [illegible] गौरव बचा था, न आत्माभिमान। विजयाभिमानी मुसल[illegible] के साथ बुरा व्यवहार करते थे—उन्हे अपमानित और [illegible] थे और दीन-हीन बने हुए हिन्दू कडवी घूँट पीकर [illegible] हिन्दुओ का जीवन निराशामय बन गया था। न [illegible] था, न आशा। तुलसीदास ने इस स्थिति को देख [illegible] से भग्न होते हुए हृदय को सम्भाला और उन्हे [illegible] भगवान् राम की झाँकी दिखाकर आश्वस्त किया। [illegible] नवीन आशा, नवीन विश्वास नवीन आनन्द [illegible] किया। इतना ही नहीं उन्होने हिन्दी [illegible] पर पहुँचा कर उस अपना अलौकिक

उच्च कोटि के ग्रन्थ हैं। रामचरित-मानस मे उन्होने हिन्दू-धर्म का सच्चा स्वरूप व्यक्त किया है। यह एक अलौकिक पुरुष की अलौकिक कृति है। इस पुस्तक मे सम्पूर्ण जीवन का चरित्र अंकित है। भाई का भाई के साथ, माता का पुत्र के साथ, पुत्र का माता के साथ, पिता का पुत्र के साथ, पुत्र का पिता के साथ, राजा का प्रजा के साथ, प्रजा का राजा के साथ, गुरु का शिष्य के साथ और शिष्य का गुरु के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध होना चाहिये इसकी एक बडी ही मनोरम और आदर्श झाँकी रामचरित-मानस मे मिलती है। भारतीय संस्कृति के सभी गुणो से समन्वित, सभी शास्त्र और पुराण सम्मत यह ग्रन्थ हिन्दी-भाषा-भाषी जनता का कण्ठहार ही बन गया है। विनय-पत्रिका भक्ति का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। भक्ति-रस का जैसा पूर्ण परिपाक विनय-पत्रिका मे देखा जाता है वैसा अन्यत्र नही। यह ग्रन्थ तुलसीदासजी की पवित्र अनुभूतियो, आध्यात्मिक विचारो और भक्ति-भावना का भण्डार-सा ही है। उसमे भक्त का दैन्य और भगवान् की महानता की ऐसी पुनीत भागीरथी बही है कि कोई भी पाठक उस धारा मे बहे बिना नही रहता। गीतावली मे राम के जीवन के कोमल, सुन्दर और मधुर भाग का वर्णन है, कवितावली मे उनके शौर्य और वीरता का। कवितावली मे लका-दहन और राम-रावण-युद्ध का बडा ही सजीव वर्णन हुआ है। इधर दोहावली मे चातक की अनन्यता कमाल की है। दोहावली मे भक्त और भगवान् के अनन्य सम्बन्ध की बडी ही विशद व्याख्या मिलती है।

तुलसीदासजी की भाषा अवधी थी। इस समय सूफ़ी कवि जायसी ने अवधि भाषा मे ही पद्मावत नामक ग्रन्थ की रचना की थी, किन्तु पद्मावत मे अवधी का ग्रामीण स्वरूप आ सका था। गोस्वामी तुलसीदासजी संस्कृत भाषा के पण्डित और शास्त्रवेत्ता थे। अत: उनकी भाषा ठेठ अवधी होते हुए भी कही-कही पर सस्कृत मिश्रित बन गई है। उनके रामचरित-मानस मे अवधी भाषा का बडा ही परिमार्जित और साहित्यिक रूप दिखाई देता है। सस्कृत की कोमल-कान्त पदावली समावेश करके उन्होने अवधी मे अपूर्व माधुर्य का सचार कर दिया है।
का जितना अधिकार अवधी-भाषा पर था उतना ही अ

सभी देवी-देवताओं की वन्दना की है। अतः हिन्दू-समाज के सभी अंगों ने उनका आदर किया है। तुलसीदासजी ने समाज में नई चेतना पैदा की है। उन्होंने वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा की, वेद-शास्त्र का महत्व जन-साधारण के सामने रखा और धर्म के वास्तविक स्वरूप को प्रकट किया। उन्होंने दुष्ट-दलनकारी भगवान् का मंगलमय रूप जनता को दिखाकर उसमें नवीन जीवन का संचार किया।

गोस्वामी तुलसीदासजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। वे दार्शनिक थे, कवि थे, समाज-सुधारक थे, विचारक थे, नीतिज्ञ थे। किन्तु इन सबसे अधिक वे एक भक्त थे। उनकी भक्ति-भावना इतनी प्रबल थी कि वही उनके जीवन और ग्रन्थों में उसी प्रकार समाई हुई है जैसे शरीर में प्राण। उन्होंने समाज और देश के विरोधी तत्त्वों का परिहार करके समन्वय की भावना जनता के सामने रखी तथा सच्चे लोक-धर्म की प्रतिष्ठा की। उन्होंने समाज का सही पथ-प्रदर्शन किया और उसे पतन के गर्त में जाने से बचाया। उन्होंने अपनी वाणी का उपयोग जन-कल्याण के पवित्र कार्य में किया। उन्होंने अपनी रचनाओं में भक्ति और ज्ञान का, निर्गुण और सगुण का तथा आदर्श और व्यवहार का बड़ा सुन्दर समन्वय किया है। अपने जीवन का एक-एक क्षण उन्होंने लोक-कल्याण के कार्यों में ही व्यतीत किया है। हमारे समाज पर उनका जबरदस्त ऋण है। वैसे महात्मा हजारों वर्षों में एक बार जन्म लेते हैं, उनके बारे में एक कवि ने ठीक ही लिखा है:—

"भारी भवसागर उतारतौ कवन पार।
जो पै यह रामायण तुलसी न गावतो।"

(१७) ग्राम-सुधार

१—भूमिका:—'भारत की मुक्ति ग्रामों की मुक्ति में ही निहित है।'
२—प्राचीन-काल में ग्रामों की स्थिति।
३—वर्तमान-काल में ग्रामों की दुरावस्था।

४—ग्राम-सुधार की योजना।

५—उपसंहार।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी कहा करते थे कि 'भारत की मुक्ति ग्रामों की मुक्ति में ही निहित है।' यह बात उन्होंने अपने लम्बे अनुभव, दूर-दृष्टि और देशहित की तीव्र भावना के कारण कही थी। वस्तुतः कृषि प्रधान होने के कारण भारतवर्ष ग्रामों का देश है। यहाँ सात लाख गाँव हैं और हमारी कुल आबादी का ८० प्रतिशत भाग ग्रामों में ही रहता है। यही कारण है कि हमारे देश की सच्ची प्रगति ग्रामों की प्रगति के विना संभव नहीं। इस बात को सबसे पहिले गांधीजी और राष्ट्रीय कांग्रेस ने अनुभव किया तथा उन्होंने इनकी उन्नति का नारा लगाया। तभी से देश के अन्य लोगों का ध्यान गांवों की दयनीय स्थिति की ओर गया। उस समय की अंग्रेज सरकार तो शोषण और उत्पीड़न पर ही टिकी हुई थी, वह चाहती ही नहीं थी कि भारतीय ता का कल्याण हो। फिर भी, उसे कांग्रेस और गांधीजी की बात सुनने और मानने के लिए विवश होना पड़ा तथा उसने ग्राम-सुधार नामक एक अलग विभाग खोला। यद्यपि इस विभाग ने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया, तथापि सरकार का भी ध्यान इस ओर आकृष्ट अवश्य हुआ। वस्तुतः ग्रामीण जनता सब प्रकार से शोषण और अत्याचार की शिकार बनी। लोगों के उद्योग-धन्धे चौपट हो गये। विदेशी कपड़ों ने बुनकर और कत्तिनों का धन्धा समाप्त कर दिया। औज़ार बाहर से आने लगे। तेल, साबुन, शक्कर और इसी प्रकार की अन्य चीजें बाहर से आने लगीं। यहाँ तक कि खेती के अलावा कोई धन्धा ही किसानों के पास नहीं बचा। खेती में भी बहुत काम करने पर भी उन्हें कोई लाभ नहीं मिलने लगा। नतीजा यह हुआ कि लोग गाँव छोड़-छोड़ कर शहर की ओर भागने लगे। गाँव में न पढ़ाई-लिखाई का प्रबन्ध रहा, न पंचायतों का। आपसी लड़ाई-झगड़े और लूट-मार होने लगी। गाँव के लोग कई कुरीतियों के दास बन गये। वे कर्जदार रहने लगे और उनकी दुरावस्था का लाभ उठाकर साहूकार उनसे बहुत-सा पैसा वसूल करने लगे। सरकार को तो टैक्स से मतलब था। वह सख्ती के

। सफ़ाई की कोई व्यवस्था ही नहीं। न गाँव वाले मिल-जुल कर
ई का प्रवन्ध करते हैं न कोई मेहतर ही रखते हैं। बरसात के
गाँव के आस-पास कई गड्ढे भर जाते हैं और उनका पानी सड़ता
ता है—गन्दगी के कारण मच्छर और मच्छरों के कारण मलेरिया तो
तिदिन की बात है। लोग न तो इसे समझते हैं न इसका इलाज ही कर
पाते हैं। लोगों में अन्ध-विश्वास और कुरीतियों का इतना जोर होता
है कि पैसा मिलते ही या तो व्याह-शादी और मृत्यु-भोज में उड़ा दिया
जाता है या शराव जुए आदि में। क्या कोई भी देश-भक्त अपने देश की
यह दुरावस्था सहन कर सकता है? इस स्थिति के रहते हुए कोई देश
कैसे प्रगति कर सकता है?

इस स्थिति को सुधारने के लिये हमें बड़ा परिश्रम करना होगा।
पहली बात यह करनी होगी कि शहर के लोगों में गाँव के प्रति
हुई हीनता की भावना मिटानी ही होगी और शहर के लोगों में
उनसे मिलने-जुलने तथा उनके सुधार की इच्छा जागृत करनी होगी।
इस मेल-जोल से ग्रामीणों की हीन भावना तथा शहर के लोगों की
श्रेष्ठता की भावना मिलेगी। इससे हमें शिक्षा-प्रसार में बड़ी सहायता
मिलेगी और ग्राम-सुधार का श्री-गणेश हो सकेगा। आज हमारे नवयुवक
शहरों की चमक-दमक से इतने अभिभूत हो गए हैं कि गाँवों क
दर्शन तक पसन्द नहीं करते। जब पढ़े-लिखे लोग गाँवों में जायेंगे त
लोगों को सफ़ाई, सभ्यता और शिष्ट आचरण और आधुनिक ज्ञान व
तथा परिश्रम, ईमानदारी, सरलता आदि गुण सीखेंगे और
आदान-प्रदान से देश उन्नति की ओर अग्रसर होगा। गाँवों से स
साधने के लिए आवागमन के साधनों का भी सुधार और विस्तार क
होगा। पक्की सड़कों का निर्माण इस कार्य में बड़ा सहायक ह
इनके अभाव में वर्षा के तीन-चार महीनों तक बहुत गाँव शेष व
से कट जाते हैं। आस-पास के गाँवों और शहरों से सम्पर्क व
कारण अपने ही गाँव के लोग बहुत-सी बातें सीखेंगे और अपने सु
ओर अग्रसर होंगे।

ग्राम-सुधार की समस्या में आर्थिक-सुधार सबसे ज्यादा महत्व रखता है। इसके लिए किसानो को जमीन पर स्वामित्व प्रदान करना होगा। हमारे बहुत से किसान आजकल खेतो मे मजदूरी करते हैं और जमीन के मालिक उनके श्रम का लाभ उठाते हैं। यह स्थिति अच्छी नही है। किसानो में परिश्रम और लगन के साथ खेती करने की भावना पैदा करने के लिये भूमि का स्वामित्व उनके हाथ मे सौंपने के बाद इस बात के लिए प्रोत्साहित करना होगा कि गांव के सभी लोग मिल-जुल कर सहकारिता से खेती करें और एक परिवार की तरह से रहें। उनकी सहायता के लिए अच्छे बीज, खाद, बैल तथा सिंचाई का प्रबन्ध करना होगा और इस काम मे जितनी आवश्यकता हो उतनी मदद उन्हे देनी होगी। एक बार स्वावलम्बी बन जाने पर फिर उन्हें बाहर की मदद की जरूरत नहीं रहेगी। यह कार्य करते हुए स्वावलम्बन की दृष्टि प्रमुख होनी चाहिए। लाभ की दृष्टि से यदि खेती और ग्रामोद्योग अपनाए जायेंगे तो उससे लाभ के स्थान पर हानि ही होगी।

केवल खेती से लोगो की आर्थिक स्थिति नही सुधर सकेगी। उसके लिए बहुत से ग्रामोद्योग भी प्रारम्भ करने होंगे। हमारे गांवो मे बहुत से ग्रामोद्योग सरलता से प्रारम्भ किये जा सकते हैं और अवकाश के समय गांव के लोग उन्हे कर सकते हैं। उदाहरण के लिए रस्सी बनाना, तेल निकालना, साबुन बनाना, गुड शक्कर तैयार करना, फल की खेती करना, शहद की मक्खी पालना, रेशम के कीडे पालना, कातना, बुनना, कपडे सीना, मिट्टी के खिलौने बनाना, चमडे का काम आदि ऐसे धन्धे हैं जो थोडे-बहुत हेर-फेर के साथ सब गांवो मे हो सकते हैं। इनसे एक ओर गांव बहुत सी आवश्यकताओं के मामले में स्वावलम्बी बनेंगे तथा दूसरी ओर कला-कौशल की उन्नति होगी। उन्हें पूरे समय काम मिलेगा और गरीबी का कोई कारण ही नही रह जायगा।

शिक्षा खेती तथा ग्रामोद्योग के सुधार के
का कार्यक्रम भी ग्राम-सुधार मे बड़ा महत्व ।

अशिक्षित हैं। चाहे शहरों में जाइये, चाहे गाँवों में सैकड़ों नंगे-मंगे मिल जायेंगे। किसी सरकारी कर्मचारी से मिलिये, चाहे किसी ारी से भ्रष्टाचार की शिकायत करता हुआ ही मिलेगा। और ारियों का प्रकोप अब भी साधारण-सी बात है। यदि इस बेकारी की समस्या लें, तो वह हमारी जनता और सरकार दोनों का ही बहुत बड़ा रदर्द बनी हुई है। आज देश में लाखों व्यक्ति बेकार हैं। और 'बुभुक्षितं क न करोति पापं' अथवा 'Empty mind is devil's workshop' वाली कहावत के अनुसार हमारे देश के बेकार नवयुवक अपनी शक्ति देश के नव-निर्माण और उत्थान में लगाने के स्थान पर अनैतिक कार्यों में लगाते हैं। जो लाखों हाथ और लाखों मस्तिष्क देश का नक्शा बदल सकते हैं आज इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। यह हमारी राष्ट्रीय शक्ति की जबरदस्त हानि है। इसकी अवहेलना बड़ी घातक हो रही है।

बेकारी की समस्या का श्रीगणेश तो तभी से हो गया था जब हमारे में अंग्रेज़ी राज्य की नींव जमीं और उन्होंने हमारे उद्योग-धन्धों को ़ करना प्रारम्भ किया। अंग्रेज़ी शिक्षा ने प्रारम्भिक वर्षों में ऐसी ोई समस्या पैदा नहीं की। किन्तु जब बहुत से नवयुवक पास होकर ़श्वविद्यालयों में से निकलने लगे और देश के उद्योग-धन्धे पूरी तरह ाष्ट हो गये तो यह समस्या तीव्र बनी। दूसरे महायुद्ध के समय हजारों नवयुवक फ़ौज में भर्ती हुए तथा अन्य विभागों में भी उनको काम मिल गया। लेकिन महायुद्ध की समाप्ति, शरणार्थियों के आगमन, आर्थिक संकट आदि के कारण यह समस्या निरन्तर उग्र रूप धारण करती गई। अब सरकार अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी एक वर्ष में एक लाख से अधिक आदमियों को काम नहीं दे पाती है जब कि देश में बेकारों की संख्या लगभग एक करोड़ है।

बेकारी की समस्या के प्रमुख कारण चार हैं—(१) भारतीय उद्योग धन्धों का विनाश (२) बड़े-बड़े कारखानों और उद्योग-धन्धों का श्रीगणे (३) वर्तमान शिक्षा-प्रणाली तथा (४) हमारी बढ़ती हुई जनसंख्य हमारे देश का आर्थिक संगठन प्राचीनकाल से ही बड़ा मजबूत रहा

मध्यकाल मे अनेक राजनीतिक उथल-पुथल और मुसलमानो के आक्रमण के बावजूद भी वह अस्त-व्यस्त नहीं हुआ। उस समय हमारा प्रत्येक ग्राम और प्रत्येक शहर अनेक दृष्टियों से स्वावलम्बी होता था। गाँवों मे एक बडा वर्ग किसानो का होता था खेती का काम करता था। उसके साथ प्रत्येक ग्राम मे एक दो परिवार चमार या रैगर के होते थे जो चमडे का काम जैसे जूते बनाना, चरस बनाना आदि करते थे। एक दो परिवार लुहार के होते थे जो लोहे का काम करते थे। इसी प्रकार कुम्हार का परिवार मिट्टी के बरतन, खिलौने, ईंट आदि तैयार करता था, धोबी कपडा धोता था, तेली तेल निकालता था और खाती लकडी का काम करता था। इस प्रकार गांव अपनी सब इच्छाओं के लिये स्वावलम्बी था। गांव मे न कोई बेकार था न निर्धन। किन्तु अंग्रेजी हुकूमत ने कपडे का धन्धा चौपट कर लाखों-करोडो बुनकरो, सूत कातने वालो, रंगरेजो और छपाई के काम करने वालो को बेकार बना दिया। बाटा जैसी कम्पनियों ने चमारो का धन्धा छीन लिया, बडी-बडी पॉट्रीज ने कुम्हारो के लिये कोई धन्धा नही छोडा और आइल मिल्स ने तेलियो का काम समाप्त कर दिया। इस प्रकार अग्रेजो की साम्राज्यवादी नीति ने भारतीय जनता के उद्योग-धन्धे छीन कर उन्हें बेकार बना दिया।

अब कपडा मिलो में बनने लगा जहाँ कि सौ आदमियो का काम एक ही कर लेता है। तेल मिलो मे निकलने लगा। साबुन, जूते, औजार, फर्नीचर, आटा, खिलौने सब कुछ बडे-बडे कारखाना मे तैयार होने लगे। बडे कारखानो मे यद्यपि काम ज्यादा होता है और वह सस्ता भी पडता है, किन्तु वहाँ सौ-दौ-सौ आदमियो का काम एक ही आदमी कर लेता है। परिणाम यह होता है कि वहा एक आदमी को काम मिलता है शेष ९९ बेकार हो जाते हैं। अतः बडे कारखानो की उन्नति के साथ-साथ बेकार फिरने वाले लोगों की सख्या भी बढती जा रही है।

तीसरा कारण है हमारी दूषित शिक्षा-प्रण ... ी मेकाले इस शिक्षा-प्रणाली के जन्मदाता थे। उद्देश्य ... कार्य मे भारतवासियो से सहायता प्राप्त करने के

और ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे अच्छे क्लर्क मिल सकें। अतः इसी प्रकार की शिक्षा-प्रणाली आरम्भ हुई और आज हम देखते हैं कि हमारे विश्व-विद्यालयों में उत्तीर्ण होकर निकलने वाले नवयुवक प्रार्थनापत्र लेकर आफिसों का चक्कर काटने के अलावा और कोई काम नहीं कर पाते। उन्हें किसी ऐसे उद्योग-धन्धों की शिक्षा नहीं मिलती है कि अपना निर्वाह कर सकें। अतः वे नौकरी के अभाव में घूमते रहते हैं। फिर नौकरियों की संख्या तो निश्चित है। प्रतिवर्ष कुछ थोड़ी-सी जगहें खाली होती हैं जबकि हजारों विद्यार्थी विश्वविद्यालयों से पास होकर निकलते रहते हैं। चौथा कारण है जनसंख्या की वृद्धि। हमारी जनसंख्या तेजी के साथ बढ़ती जा रही है। जनगणना के अङ्क बताते हैं कि एक वर्ष के समय में ही हमारे देश की जनसंख्या एक करोड़ के आसपास बढ़ जाती है। जितनी तेजी से जनसंख्या बढ़ती है उतनी तेजी से उद्योग-धन्धों का ऐसा विकास नहीं हो पाता कि बढ़ती हुई जनसंख्या को काम मिलता रहे। अतः जनसंख्या की वृद्धि से बेकारों की संख्या बढ़ती जाती है।

प्रश्न यह है कि इस समस्या का हल किस प्रकार किया जाय? यदि हम कारणो का बारीकी के साथ अध्ययन करें तो उनमें ही हमें उनके हल भी दिखाई दे जायेंगे। सबसे पहिला और सबसे अच्छा हल तो यही है कि पुराने उद्योग-धन्धों को फिर से जीवित किया जाय। उनमें भी बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों को छोड़कर छोटे-छोटे कुटीर-उद्योग आरम्भ किये जायँ ताकि ग्राम-ग्राम और शहर-शहर में प्रत्येक व्यक्ति को काम मिल सके। हो सकता है कि ग्रामों में कुटीर-उद्योगों के द्वारा बना हुआ माल कारखानों का मुकाबला न कर सके और वह न तो उसके मुकाबले सस्ता पड़ सके न उतना सुन्दर ही बन सके, तथापि उससे प्रत्येक व्यक्ति को काम मिल सकेगा और प्रत्येक व्यक्ति व्यवसायी बन सकेगा। जहाँ तक बड़े कारखानों का प्रश्न है उन्हें उखाड़ फैंकना तो ठीक नहीं है; तथापि उनकी और संख्या बढ़ाना न तो बेकारी की समस्या के हल की दृष्टि से ठीक है न अन्य दृष्टियों से। बड़े-बड़े कारखाने केन्द्रीकरण की ओर ले जाते हैं जो कि एक बहुत बड़ा खतरा है। वे मालिक मजदूर के बीच की खाई को बढ़ाते हैं, पूँजीवाद को प्रश्रय देते हैं और मजदूरों का जीवन भी दुखःमय ही बनाते

हैं। अतः उनको और बढाना ठीक नही। अब तो ग्रामोद्योगों के विकास से ही यह समस्या अच्छी तरह हल की जा सकती है।

जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न है अब क्लर्क बनाने वाली शिक्षा बन्द की जानी चाहिये और उसके स्थान पर इस नये युग की आवश्यकताओं के अनुसार नवीन शिक्षा आरम्भ की जानी चाहिये। हमारे प्राचीन शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा का आदर्श बताते हुए कहा था—"सा विद्या या विमुक्तये"। अर्थात् वही विद्या है जो मुक्त करे। मुक्त बनाना विद्या का सबसे बडा गुण होना चाहिये। अतः अब नवीन शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे बालक उद्योग-धन्धे भी सीखे और स्वावलम्बी बने। हाई स्कूल परीक्षा पास करने के बाद बालक इस योग्य अवश्य हो जाय कि वह किसी भी प्रकार के काम मे लग कर कम से कम अपनी जीविका कमा सके। जहाँ तक बढती हुई जनसंख्या का प्रश्न है उसका उपाय तो यही है कि उसे रोकने का प्रयत्न किया जाय। हाँ, इस बात का ख्याल अवश्य रखना चाहिये कि उसके लिये सन्तति-नियमन के आधुनिक तरीको की ओर जाना अच्छा नही होगा। वे बहुत-सी बुराइयों को जन्म देते हैं। हमारा तो विचार है कि जब उद्योग-धन्धों का समुचित विकास हो जायगा तब जनसंख्या की समस्या, समस्या ही नही रहेगी। इङ्गलैण्ड और जापान का उदाहरण हमारे सामने है। यहाँ हमारे देश की अपेक्षा प्रति वर्गमील जनसंख्या का औसत काफी ज्यादा है। लेकिन उद्योग-धन्धो के विकास के कारण यहाँ यह समस्या ही पैदा नही होती।

प्रसन्नता की बात है कि हमारी राष्ट्रीय-सरकार इस समस्या और इसके दुष्परिणामो से बेखबर नही है। वह तेजी के साथ कुटीर-उद्योगों को प्रोत्साहन दे रही है और पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा उनके विकास मे महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। बडे-बडे उद्योग-धन्धो को भी यद्यपि वह रोक नही रही है, तथापि इस बात का ध्यान अवश्य रख रही है कि छोटे उद्योगों और बड़े उद्योगो मे होड न होने पाये। सहकारी समितियों के द्वारा वह छोटे-छोटे उद्योगो को बडा संरक्षण और प्रोत्साहन दे रही हैं। [illegible] के क्षेत्र मे उसने गांधीजी द्वारा निर्देशित बुनियादी तालीम [illegible] है जिसमे बालको को प्रत्यक्ष रूप से व्यवहारिक शिक्षा दी [illegible]

१५-१६ वर्ष की आयु तक स्वावलम्वी वन सकता है। वहु-उद्देशीय विद्यालय खोलकर भी सरकार ने पुरानी शिक्षा के दोषों से मुक्ति पाने का ही प्रश्न किया है। इस प्रकार सरकार इस दिशा में सचेष्ट है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह कार्य काफी वड़ा है तथापि इस प्रकार के प्रयत्नों से उसके हल होने में वहुत ज्यादा समय नहीं लगेगा।

(१६) सह-शिक्षा

१—भूमिका
२—सहशिक्षा का जन्म और विकास
३—लाभ
४—हानियाँ
५—भारत में सह-शिक्षा की स्थिति
६—उपसंहार

सह-शिक्षा दो शब्दों से मिलकर वना है—सह और शिक्षा। इसका अर्थ है लड़के और लड़कियों को अलग-अलग पाठशालाओं में शिक्षा के स्थान पर एक ही पाठशाला में शिक्षा की व्यवस्था। हमारे देश में सह-शिक्षा वाद-विवाद का विषय वना हुआ है। कोई उसे अच्छा कहता है कोई वुरा। प्रायः रूढ़िवादी लोग उसका विरोध करते हैं और नवीन प्रगतिशील विचार के व्यक्ति उसका समर्थन करते हैं।

हमारे देश में यद्यपि वहुत प्राचीन काल में लड़के-लड़कियों को साथ-साथ शिक्षा दी जाती थी तथापि मध्य-काल में यह व्यवस्था वदली और लड़के-लड़कियों के अलग-अलग स्कूलों की व्यवस्था प्रारम्भ हुई। यूरोप में सवसे पहिले स्विट्जरलैण्ड में उसका जन्म हुआ। फिर तो वह सारे यूरोप में फैल गई और इङ्गलैण्ड जैसे रूढ़िवादी देश के केम्ब्रिज एवं ऑक्सफोर्ड जैसे सुप्रसिद्ध विद्यालयों में अव लड़कों के साथ-साथ पढ़ने वाली लड़कियों की संख्या कम नहीं है। अमेरिका में भी यह प्रणाली इतनी लोकप्रिय हुई है कि वहाँ लड़के और लड़कियों के अलग-अलग स्कूल वहुत कम मिलेंगे। हमारे देश में अभी शिक्षा का प्रचार ठीक तरह नहीं हो पाया है और हमारी जनता भी रूढ़िवादी है। अतः यहाँ

इस दिशा मे कोई उल्लेखनीय प्रगति नही हो सकी। हमारे देश का साधारण व्यक्ति पहले तो स्त्री-शिक्षा को आवश्यक ही नही मानता, फिर लडके और लडकियो को साथ पढ़ाना तो वह बिल्कुल ही अहितकर एव अनर्थकारी ही मानता है। स्त्रियो के प्रति यह दृष्टिकोण मुसलमानो के आगमन के बाद बना। १६वी शताब्दी म तो इसका यह प्रभाव हुआ कि हमारे देश म लडकियो को पढाना ही बुरा समझा जाने लगा, किन्तु अब समय बदल गया है। अब स्त्रियो को पढाना बुरा नही माना जाता। शिक्षित समुदाय इस दिशा म आगे बढ रह रहा है। उसने अपनी लडकियो को कॉलेज स्कूलो म भेजना प्रारम्भ कर दिया है। कहीं यह बात स्वेच्छा से हुई है, कही विवशता से, क्योकि जब उच्च शिक्षा के लिये लडकियो के लिये लडको से अलग विद्यालय नही मिलते तो विवश होकर सम्भवत उन्हें लडको के विद्यालय म भर्ती करवाते हैं। फिर भी इतना निश्चित है कि सह-शिक्षा का प्रचार और प्रसार बढता जा रहा है।

सह-शिक्षा से अनेक लाभ हैं। सबसे बडा और सबसे पहिला लाभ यह है कि वह भारत जैसे गरीब देश के लिए मितव्ययता पूर्ण प्रणाली है। यदि लडके और लडकियो के अलग-अलग स्कूल बनाये जायें तो उसम खर्च बहुत अधिक आता है और हमारा जैसा गरीब देश इतना खर्च उठा नहीं पाता है। परिणाम यह होता है कि शिक्षा के क्षेत्र म प्रगति रुक जाती है। अत स्पष्ट है कि शिक्षा के प्रसार म सह-शिक्षा बहुत बडा योग दे सकती है। वह कम पैसे म ज्यादा काम करके दिखा सकता है। जरा सोचिये तो एक इन्जीनियरिंग या मेडिकल कॉलेज के निर्माण म कितना पैसा लगता है। आज भी हमारे देश में इस प्रकार की शिक्षा देने वाले कॉलेज कुछ बडे-बडे शहरो म ही हैं। यदि स्त्रियो के लिये ये अलग-अलग खोले जायें तो खर्च कितना ज्यादा बढ जायगा? सह-शिक्षा के द्वारा कम पैसे में हमारा काम चल जाता है। अत वह एक सुविधाजनक प्रणाली है। मितव्ययतापूर्ण होने के साथ-साथ वह लडके-लडकियो के बीच स्वस्थ वातावरण का निर्माण करती है। जहाँ लडके-लडकियाँ अलग-अलग पढ़ते हैं वहाँ उनके सम्बन्धों में शालीनता और स्वस्थता नही हो[illegible] एक दूसरे

ुकता की दृष्टि से देखते हैं। आखिर स्त्री-पुरुष परस्पर साधक हैं, ह। बाधक तो है नहीं जो उन्हें एक दूसरे से अलग रखा जाय। पने आगामी जीवन में उन्हें विवाह के बन्धन में बँधकर रहना है तो विवाह के पहले अलग-अलग रखने से क्या लाभ? समाज में ही जब यों और पुरुषों के अलग-अलग हाट, बाजार, दुकानें, कारखाने, घर, ड़क आदि नहीं तो स्कूल ही अलग-अलग क्यों बनाये जाते हैं। अलग-लग स्कूल बनाकर तो मानों हम उसके बीच भेद की दीवार खड़ी करते हैं, जो उचित नहीं कही जा सकती। इससे लड़कियों में लजीलापन बढ़ता है, और लड़कों में शालीनता का अभाव उत्पन्न होता है। एक दूसरे के सम्पर्क में आने से लड़कियाँ निर्भय बनती हैं और लड़के सभ्य एवं सुशील। वे एक दूसरे को समझते हैं तथा एक दूसरे का आदर करते हैं। इसके अतिरिक्त, सह-शिक्षा उनमें स्पर्धा की भावना पैदा करती है। और वे एक-दूसरे से आगे बढ़ने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार की स्पर्धा दोनों के लिए हितकारी होती है।

सह-शिक्षा का एक और लाभ यह होता है कि उन्हें अपना जीवन-साथी चुनने में सरलता होती है। एक दूसरे के साथ रहते-रहते वे एक दूसरे के स्वभाव से परिचित होते हैं और फिर जिसे साथी चुनते हैं वह सच्चे अर्थों में उनका जीवन साथी बन जाता है। इस प्रकार सह-शिक्षा स्त्री-पुरुष के समानाधिकार का नारा है। वह दोनों को समानता की भूमिका में खड़ा करता है जो कि इस युग की माँग है। वर्षों से नारी पीड़ित और पददलित रही है, अब उसे जीवन के सब क्षेत्रों में पुरुष के बराबरी का दर्जा देना है। उसमें आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान पै करना है। सह-शिक्षा इसी दिशा में प्रयत्नशील है।

लेकिन हमारे देश में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जो सह-शिक्ष विरोधी हैं। जो उसे समाज की प्रगति के लिये अहितकर समझते उनका कहना है कि जिन स्कूलों में सह-शिक्षा की व्यवस्था की ज वहाँ व्यवस्था का काम बड़ा कठिन और पेचीदा बन जाता है। की रुचि और आवश्यकता के अनुकूल अलग विषयों की व्यवस्था

पडता है और लडकियों की रुचि और आवश्यकता के अनुसार अलग विषयों की। क्योंकि एक ही पाठ्यक्रम तथा एक ही प्रकार के विषय उनकी रुचि के अनुकूल नहीं होते। उनका कहना है कि तर्कशास्त्र, ग्रीस और रोम का इतिहास तथा इसी प्रकार के अन्य विषय लडकियों को उनके भावी जीवन मे कोई लाभ नही पहुँचाते। उनके लिए बाल-मनोविज्ञान, गृह-विज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान, बाल-संगोपन आदि विषय ही उपयोगी सिद्ध होते हैं। अत. दोनो को एक ही प्रकार के विषय पढाना मानो दोनो का विकास रोकना है जो शिक्षा का सही लक्ष्य नहीं हो सकता।

सह-शिक्षा के विरोधियों का दूसरा बडा तर्क यह है कि वह लडके-लडकियो की नैतिक भावना पर बडा विषैला प्रभाव डालती है। सह शिक्षा उनको स्वतन्त्रता-पूर्वक मिलने-जुलने का अवसर देती है जिससे चारित्रिक पतन का काम सरल हो जाता है। लडको के बीच मे लडकियो की उपस्थिति उन्हे आगे बढ़ने की प्रेरणा देने के बजाय नीचे गिराने की ही प्रेरणा देती है। यह आयु ही एसी होती है जिसम विवेकशीलता कम होती है, आवेग अधिक। अत पतन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। १५-१६ वर्ष से लेकर २०-२२ वर्ष तक की आयु ही ऐसी है, जिसमे उन्हें एक-दूसरे से अलग रखना हितकारी होता है। उनका यह भी कहना है कि सह-शिक्षा के द्वारा लडके-लडकियो को एक दूसरे के सम्पर्क मे आने का जो अवसर मिलता है और उसके परिणामस्वरूप जो प्रेम-विवाह होते हैं वे प्राय असफल होते हुए ही देखे गये हैं। ऐसे विवाह मे निकट सम्पर्क के कारण अधिक आकर्षण और प्रेम की तीव्रता नही होती। नतीजा यह होता है कि वे एक दूसरे स ऊबने लगते हैं और थोडे दिन बाद तलाक देने के लिए तैयार हो जाते हैं।

इस प्रकार सह-शिक्षा के पक्ष और विपक्ष में और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। लेकिन उसके विपक्ष मे जो कुछ कहा जाता है, उसमें केवल एक ही तर्क महत्त्वपूर्ण है और वह यह कि उससे वा[illegible] छात्रों के नैतिक पतन का मार्ग खुल जाता है। इस तर्क में

दिखाई नहीं देता कि जो लोग यूरोप-अमेरिका में स्त्री-पुरुषों को
द-भाव के एक साथ रहते हुए देख चुके हैं, वे बताते हैं कि हमेशा
हने पर काम-भावना पैदा नहीं होती। अतः कुल मिलाकर सह-
का विचार बुरा नहीं है।

हमारे देश में जो कुछ चल रहा है उसको सही अर्थ में सह-शिक्षा
कहा जा सकता। वह तो पश्चिम की अन्धी नकल मात्र है। हमारे
के विद्यालयों में लड़के-लड़कियाँ साथ-साथ पढ़ने अवश्य लगे हैं लेकिन
नके बीच की दूरी बनी ही रहती है। लड़कियाँ अपने निश्चित स्थान पर
ठती हैं और क्लास समाप्त होते ही लाज में सिमटी हुई अपने स्थान पर
चली जाती हैं। इससे लड़के-लड़कियों के बीच विचारों के आदान-प्रदान
और सम्पर्क नहीं हो पाता। परिणाम यह होता है कि उन्हें एक-दूसरे को
समझने का मौका नहीं मिलता और वे एक-दूसरे के प्रति अजनबी बने
रहते हैं। उनमें एक दूसरे के प्रति प्रेम, सहयोग और आदर पैदा होने के
स्थान पर अनुदारता और कठोरता बनी रहती है। यह स्थिति सह-शिक्षा
के हेतु पर ही कुठाराघात करती है। हाँ, सह-शिक्षा की कुछ झलक कल-
कत्ता, बम्बई, दिल्ली आदि शहरों तथा ईसाई-मिशनरियों द्वारा संचालित
स्कूल कॉलेजों में अवश्य दिखाई देती है।

इस प्रकार सह-शिक्षा हमारे देश में अभी प्रयोगावस्था में ही है। आज
यद्यपि हम उसे एकदम अच्छी और ग्राह्य नहीं कह सकते तथापि इतना तो
अवश्य कह सकते हैं कि वह एकदम अग्राह्य और बुरी भी नहीं है। वह
अभिशाप कम, वरदान अधिक है। जब तक उसका पूरा-पूरा विकास न
हो, तब तक बड़ी सावधानी रखने की आवश्यकता है। यह सावधानी एक
ओर अध्यापकों को रखनी होगी, दूसरी ओर विद्यार्थियों को। हमारी दृष्टि
में यदि प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की आयु के बालकों के लिये सह
शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय और इण्टर तथा बी०ए० के छात्रों को अलग
अलग शिक्षा का, तो वह अभी बीच के समय के लिए हितकर होगा
एम०ए० तथा आगे फिर उनको साथ शिक्षा ग्रहण करने का अवसर दि
जाय तो कोई बुराई नहीं होगी। चारित्रिक पतन की सम्भावनाओं क
आयु १६ से २० वर्ष तक है। यदि उस समय सावधानी रखी गई तो,

उसके लिए ज्यादा खतरा नही रहेगा। यह एक मध्यम मार्ग है तथा जब तक हमारा देश सह-शिक्षा के आदर्श को पूरी तरह समझ नही पाता तब तक के लिये यह तरीका हितकर हो सकता है। हमारा देश जनतन्त्र है और जनतन्त्र मे स्त्री-पुरुष का दर्जा समान होता है। सह-शिक्षा लडकियों को समानता के स्तर पर लाना चाहती है। अतः हमें उसका स्वागत करना चाहिए।

(२०) ग्रामोद्योग

१—भूमिका
२—ग्राम-विकास और ग्रामोद्योग
३ – ग्रामो के अलग-अलग उद्योग-धन्धे
४—ग्रामोद्योग ही क्यो ?
५—लाभ
६—उपसंहार

यद्यपि हमारे देश मे जमशेदपुर, कानपुर, अहमदाबाद, बम्बई, कलकत्ता आदि बडे-बडे औद्योगिक शहर हैं, तथापि देश की औद्योगिक स्थिति बडी असन्तुलित है। बात यह है कि हमारा देश कृषि-प्रधान है, अतः उसके उद्योग कृषि से सम्बन्धित होने चाहिये और छोटे-छोटे ग्राम तक उनका प्रसार होना चाहिये। भारत जैसा विशाल देश कुछ शहरो मे बडे कारखाने चलाकर अपने समूचे देश की आर्थिक स्थिति ठीक नही कर सकता। जब ग्रामो मे हमारी जनसंख्या का एक बहुत बडा भाग रहता है और देश के लगभग ८० प्रतिशत व्यक्ति कृषि के उद्योग से ही अपनी जीविका कमाते हैं, तब ग्रामो से दूर कुछ शहरो के उद्योग सारे देश का कोई महत्त्वपूर्ण हित-साधन नही कर सकते। भारत-सरकार की पन्द्रह-वर्षीय-पुनर्निर्माण-योजना, तथा द्वितीय-पंचवर्षीय-योजना की रूप-रेखा तैयार करनेवाले लोगों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है तथा अपनी योजनाओं मे इस बात पर जोर भी दिया है।

हमारी राष्ट्रीय कांग्रेस और उसके एक सबसे बडे नेता महात्मा गांधी ने इस तथ्य को बहुत पहले ही अनुभव कर लिया था कि [illegible] विकास

तब तक नहीं हो सकता जबतक कि ग्रामों का विकास न किया जाय। गांधीजी तो बार-बार कहा करते थे कि भारत की मुक्ति ग्रामों में निहित है, अतः उन्होंने आजादी की लड़ाई के अनेक कार्यक्रमों में व्यस्त रहते हुए भी ग्रामों में चलने वाले उद्योग-धन्धों के विकास की बात बड़ी दृढ़ता से उठाई थी और उसे अपने रचनात्मक कार्यों का एक महत्त्वपूर्ण अंग बनाकर उतना ही महत्त्व प्रदान किया था, जितना स्वतन्त्रता प्राप्ति को। अखिल-भारतीय-चर्खा-संघ और अखिल-भारतीय-ग्रामोद्योग-संघ के कार्यों से कौन परिचित नहीं है? यद्यपि ये दोनों संघ सारे देश के ग्रामों में खादी-ग्रामोद्योग को फैला नहीं पाये हैं तथापि उन्होंने इस दिशा में बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। खादी तो वड़ी तेजी के साथ देश में फैली थी और आज़ादी के दीवानों की पोशाक ही बन गई थी। उन दिनों ग्रामोद्योग भी विकास की दिशा में बढ़े थे।

वर्तमान भारत का आर्थिक ढाँचा बड़े विरोधी तत्त्वों से बना है। एक ओर हमारे यहाँ वायुयान चलते हैं, दूसरी ओर बैलगाड़ी। बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों के साथ यहाँ छोटे-छोटे ग्रामोद्योग भी चलते रहे हैं। हमारी राष्ट्रीय सरकार भी यह तय नहीं कर पा रही है कि देश में बड़े-बड़े उद्योग ही चलें या छोटे-छोटे। वह वायुयान और बैलगाड़ी दोनों को ही साथ-साथ चलाना चाहती है, किन्तु यह बहुत आवश्यक है कि इन दोनों प्रणालियों में से किसी एक को अपनाया जाय। दो घोड़ों की सवारी सदैव खतरनाक ही रहती है। सरकार को इस अनिश्चित् और अस्पष्ट नीति के कारण हमारे ग्रामों का भी शहरीकरण हो रहा है। गाँव उजड़ते जा रहे हैं और अनाज तक हमें बाहर से ही मंगाना पड़ रहा है क्या यह हमारे लिए शर्म की बात नहीं है? जब देश के ८० प्रतिशत लोगों को खेती से जीविका मिलती है तो खेती और ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहित करने से ही देश की उन्नति हो सकती है। हमारे ग्राम पहले स्वावलम्बी थे। कुम्हार गाँव के लिये बरतन बना देता था और बढ़ई लकड़ी की चीजें। लुहार लोहे की चीजें तैयार कर देता था और सुनार सोने-चाँदी की। किसान खाली समय में रस्सी बट लेते थे, गुड़ तैयार कर लेते थे, सागभाजी व फल बो लेते थे तथा सूत कातने,

कपडा बुनने, कम्बल बनाने आदि का कार्य भी कर लेते थे। किन्तु आज कपडा, कम्बल, शक्कर, बरतन सब कुछ बडे-बडे कारखानो में तैयार होकर ग्रामों मे पहुँचते हैं, जिससे गाववाले बेरोजगार बनते हैं और परावलम्बी भी। अतः हमारे गाँवो की परम्परा ग्रामोद्योग ही कायम रख सकते हैं।

ग्रामोद्योग के पक्ष मे एक सबल कारण यह है कि हमारा किसान वर्ष में लगभग छह महीने खाली रहता है। यदि उसे इस अर्से के लिए कोई काम मिल जाय तो वह अपनी आर्थिक स्थिति निश्चय ही ठीक बना सकता है। लेकिन देश के इतने किसानों को काम देने का प्रश्न सरल नही है। उसका एक ही हल हो सकता है और वह है ग्रामोद्योग के द्वारा ऐसी चीजे पैदा की जा सकती हैं जो किसान की दैनिक आवश्यकताओ से सम्बन्ध रखती हैं। जैसे कपडा, ऊन की चीजे, शहद, दूध, घी, मक्खन, फल, सब्जी, गुड, कागज, माचिस, तेल, साबुन आदि। उद्योग उसे स्वावलम्बी बनाने के साथ साथ आलस्य, फिजूलखर्ची, कर्जदारी, तथा चोरी-डकैती आदि बुराइया से दूर रखेंगे।

ग्रामोद्योग का दूसरा बडा लाभ यहहै कि वह बडे-बडे उद्योगो की बहुत-सी बुराइयों से मुक्त है। उदाहरणार्थ—उनमे शोषण के लिए स्थान नही है, वे मालिक-मजदूर की खाई पैदा नही करते, मजदूरो की स्थिति दयनीय नही बनाते और केन्द्रीकरण के अनेक दोषो से बचाते हैं। ग्रामोद्योग ऐसे उद्योग हैं जो सीधे-साधे ढग से ग्रामा मे किये जा सकते हैं। उनके लिए न लम्बी-चौडी जमीन की आवश्यकता है, न बडी-बडी मशीनो की। न लाखो रुपया की आवश्यकता है, न हजारा मजदूरा की। उन्हे तो एक-दो व्यक्ति ही बडी सरलता से बिना कोई विशेष पूँजी लगाये चला सकते हैं। उनमे मुनाफेखोरी के लिए कोई स्थान नही। वे बडे उद्योगा की तरह मालिक को धनी और मजदूर को गरीब नही बनाते। ग्रामोद्योग से बनी हुई चीजें स्वास्थ्य के लिए अच्छी होती हैं। हाथ का पिसा आटा मिल के आटे की अपेक्षा अधिक स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। इसी प्रकार घानी का तेल, मिल के तेल से अच्छा होता है। यही बात हाथ-कुटे चावल, गुड, घी, शहद आदि की होती है। यह ठीक है कि बहुत-सी चीजे मशीन की बनी [illegible] चीजों की

सुन्दर नहीं हो पाएंगी। किन्तु यदि ग्रामोद्योगों को पर्याप्त अवसर तो वह दिन दूर नहीं रहेगा जब हाथ का कपड़ा मिल के कपड़े की वरी करने लगेगा। प्राचीन काल में हमारे देश में इतना ही सुन्दर पड़ा बनता था, अतः इस सम्बन्ध में भी शंका करने की आवश्यकता हीं है।

ग्रामोद्योग ग्रामों की उन्नति का मूल मन्त्र है। उसकी उन्नति में ग्रामों का विकास छिपा हुआ है। वे आर्थिक उन्नति के साथ शैक्षणिक उन्नति में भी योग देंगे। वे ग्रामों की स्थिति सुदृढ़ बना कर हमारे देश को एक स्वावलम्बी और समृद्ध देश बनाएंगे। किन्तु इसके लिए ग्रामोद्योगों को संगठित स्वरूप प्रदान करना होगा। यदि ग्रामोद्योग पंचायतों की देख·रेख में चलें अथवा प्रत्येक ग्रामोद्योग किसी सहकारी-समिति के द्वारा चले तो उसमें उसका अधिक लाभ मिल सकेगा। सहकारिता के द्वारा चलनेवाले ग्रामोद्योग विशृंखलित न रहने पाएंगे। कुछ ज्यादा लोगों के सहयोग के कारण उनका कौशल, संगठन, कला, मूल्य सब कुछ उन्नत और उसका लाभ भी ज्यादा लोगों में वितरित होगा।

(२२) भूदान-यज्ञ

१—भूमिका
२—भूदान-यज्ञ का जन्म
३—उसका विकास
४—भूदान का उद्देश्य
५—उसके लाभ
६—उपसंहार

गांधीजी हमारे देश की ही नहीं, विश्व की एक बहुत बड़ी विभू थे। उन्होंने यद्यपि हमारे देश को विदेशी शासन के बन्धन मुक्त किया, तथापि उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह ही नहीं थी उनकी विशेषता यह भी थी कि उन्होंने अन्याय और अत्या के प्रतिकार का एक नया मार्ग हमें दिखाया और उस पर चला कर यह सिद्ध कर दिया कि वह अवश्य सफल हो सकता

उन्होने सत्य, अहिंसा, त्याग, बलिदान आदि के द्वारा जहाँ व्यक्ति को शुद्ध और पवित्र जीवन की ओर ले जाने का प्रयत्न किया वहाँ इन्ही सब के द्वारा समाज, राष्ट्र और विश्व को भी इस दिशा मे ले जाने का प्रयत्न किया। पाप-ताप से जलती हुई दुनियाँ के लिए यह एक बहुत बडा सन्देश था। उनकी मृत्यु के बाद उनके बहुत से साथी शासन के कार्य मे लग गये और उसमे इस बुरी तरह से उलझ गये कि गाधीजी के बताये हुए मार्ग से देश की अन्य बहुत-सी समस्याओं का हल सोचने और उस दिशा मे कार्य करने का प्रयत्न ही शिथिल-सा हो गया। ऐसे कठिन समय मे गाधीजी के एक निकटतम साथी श्री विनोबा भावे आगे आये उन्होने गाधीजी के ही सिद्धान्तो के अनुसार हमारी आर्थिक, नैतिक, और सामाजिक और राजनीतिक समस्याओ का बडा ही सुन्दर हल बताया।

सन् १९५१ के अप्रैल माह मे विनोबाजी सर्वोदय सम्मेलन के तीसरे अधिवेशन मे सम्मिलित होने शिवरामपल्ली, हैदराबाद गये। उन दिनो साम्यवादियो ने हैदराबाद राज्य के ३-४ जिलो में बडा आतक फैला रखा था। उन्होने बडे-बडे जमीदार, जागीरदार, और धनपतियो को मारकर या लूटकर उनकी सम्पत्ति पर जबरदस्ती अधिकार कर लिया था। सरकार तो दूर, काग्रेस के कार्यकर्ता तक उस क्षेत्र मे जाने से डरते थे। अतः वहाँ के कुछ व्यक्तियो ने विनोबाजी का ध्यान उस ओर आकर्षित किया और कहा कि यदि वे उस प्रदेश का दौरा करके वहाँ शान्ति स्थापित कर सके तो बडा अच्छा रहे। विनोबाजी ने इसे स्वीकार कर लिया और उस प्रदेश की पैदल यात्रा प्रारम्भ की। वे वहाँ के गाँव-गाँव मे घूमकर सारी स्थिति समझने का प्रयत्न कर रहे थे ताकि उसका कोई अच्छा हल निकाला जा सके। १८ अप्रैल के दिन जब वे तेलंगाना के एक ग्राम मे यात्रा कर रहे थे तो उन्होंने ग्रामवासियों से मिलकर वहाँ की सारी स्थिति समझने का प्रयत्न किया। वहाँ के हरिजनो ने अपनी कष्ट-कथा उनके सामने र[illegible]र कहा

यदि हमें कुछ जमीन मिल जाय तो हमारी सारी समस्या हल हो जाय, तव हम लोग मन लगाकर खेती करेंगे और अपनी जीविका कमा लेंगे। लेकिन आज तो हमारे पास जीविका का कोई सावन ही नहीं है। हम ईमानदारी, सच्चाई, न्याय और सहयोग से जीवन विताना चाहते हैं लेकिन हमारे पास उसका कोई सावन ही नहीं है। विनोवाजी को उनकी वात ठीक लगी। उन्होंने सायंकाल प्रार्थना-सभा में उस हरिजन की वात को ठुकराया और कहा कि क्या इस समस्या का हल गाँव के भाई ही आपस में मिलकर ढूँढ नहीं सकते? यहाँ कुछ लोगों के पास अविक जमीन भी होगी। अतः क्या वे अपने गरीव ग्रामवासी भाइयों को सुखी और ईमानदारी का जीवन विताने के लिये कुछ नहीं दे सकेंगे? एक भाई ने जो वकील थे अपनी जमीन में से १०० एकड़ जमीन हरिजन-भाइयों को स्वेच्छापूर्वक देना स्वीकार कर लिया। वस विनोवा को अचानक ही इस समस्या का हल सूझ गया।

अपनी आगे की यात्रा में उन्होंने प्रत्येक ग्राम में ग्रामवासियों से कहा हवा और पानी की तरह जमीन भी ईश्वर से ही हमें प्राप्त हुई है उस पर किसी एक व्यक्ति का अविकार होना और शेष व्यक्तियों को उससे वंचित रखना न्यायसंगत नहीं है। जो खेती करना चाहता है उसके निर्वाह योग्य भूमि देना ही चाहिये। उनकी इन वातों का वड़ा असर हुआ और वे जहाँ-जहाँ गये उन्हें गरीव भूमिहीन लोगों के लिए भूमि मिली। इस यात्रा में उन्हें प्रतिदिन २०० एकड़ भूमि औसतन प्राप्त हुई। हैदरावाद की यात्रा के वाद प्रधान-मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरु के निमन्त्रण पर वे देहली गये। वे मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश आदि में से गुजरते हुए देहली पहुँचे और इस डेढ़-दो मास की यात्रा में उन्हें ग्राम-ग्राम से लगभग ४०० एकड़ भूमि प्रतिदिन के हिसाव से प्राप्त हुई। यह एक अच्छी सफलता थी। अतः वे वर्धा लौटने के वजाय उत्तर-प्रदेश की ओर मुड़ गये और उन्होंने एक ही वर्ष में एक लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का निश्चय किया। यह निश्चय पूरा हुआ और उसके वाद पाँच लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का निश्चय किया गया। ईश्वर की कृपा से वह भी सफल हुआ और उन्होंने विहार में होने वाले

चाण्डिल सम्मेलन तक २५ लाख एकड भूमि प्राप्त करने का निश्चय किया। यह निश्चय भी पूरा हो गया तो उन्होने सन् १९५७ के अन्त तक देश की भूमि-समस्या ही हल करने का संकल्प किया और उसी कार्य मे जुट गये। वे पैदल यात्रा करते हुए विहार से वंगाल, वंगाल से उडीसा, उडीसा से आन्ध्र और आन्ध्र से मद्रास, केरल, महाराष्ट्र, मैसूर आदि का दौरा करते हुए सारे देश मे पैदल घूम रहे हैं और अब तक उन्हे पचास लाख एकड से अधिक भूमि प्राप्त हो गई है। लगभग साढे तीन हजार ग्राम ग्रामदान मे प्राप्त हो गये हैं और तीन हजार निष्ठावान कार्यकर्ताओं ने जीवन-दान देकर इस कार्य मे अपनी पूरी शक्ति लगादी है। सम्पत्तिदान मे बहुत-सी सम्पत्ति भी मिली है जो उन्होने किसानो को हल, बैल, कुंआ तथा कृषि के औजार प्राप्त करवाने मे खर्च की है। इस प्रकार भूदान का आन्दोलन अपने जीवन के ६-७ वर्षों मे ही एक शक्तिशाली आन्दोलन बन गया है और उसने बहुत सफलता प्राप्त करली है।

भूदान एक क्रान्तिकारी आन्दोलन है। वह अहिंसक समाज का निर्माण करना चाहता है। इसका उद्देश्य है—सर्वोदय। वह सबका उदय, सबकी उन्नति करना चाहता है और अपने कार्यक्रम का प्रारम्भ अंत्यजनोदय से करता है। जो सबसे ज्यादा पिछडे हुए है, सबसे ज्यादा दरिद्र, असहाय और पीडित है उन्ही को सबसे पहिले उठाना उसका लक्ष्य है। वह समाज मे आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से समता, सहयोग, भ्रातृत्व और प्रेम का वातावरण पैदा करना चाहता है। वह ऐसे जनतन्त्र की स्थापना करना चाहता है जिसमे केन्द्र की सत्ता कम से कम हो; जिनमे प्रत्येक ग्राम स्वशासित, स्वावलम्बी और स्वयं पूर्ण हो; जहाँ सब व्यक्तियो के समान अधिकार और समान कर्तव्य हो; जहाँ आर्थिक दृष्टि से कोई किसी का शोषण न करता हो और जीवन की आवश्यकतायें सबको प्राप्त हो। सब प्रेम, एकता और सौहार्द्र के सूत्र मे बँधे हुए हों। इसीलिये भूदान-आन्दोलन किसी भी प्रकार की
प्रयोग से दूर है। वह विचार-परिवर्तन के द्वारा
यही उसकी क्रान्ति की प्रक्रिया है। वह
आन्दोलन है। समाज से हिंसा,

आज व्यवहार में वही सब हो रहा है जैसा वे चाहते हैं। आज विद्यालयों में लड़कियों का वही पाठ्यक्रम है जो लड़कों का है। यदि कोई अन्तर है तो केवल इतना ही कि लड़कियों के लिए गृह-विज्ञान, सिलाई, स्वास्थ्य-रक्षा जैसे एक दो विषयों को विशेष रूप से पढ़ाने की व्यवस्था कर दी गई है। कुल मिलाकर आज लड़कों और लड़कियों की शिक्षा में कोई अन्तर नहीं है। यदि हम विचारपूर्वक देखें तो यह बात स्पष्ट हुए बिना नहीं रहती कि लड़के और लड़कियों में बहुत कुछ समानता है। दूसरी ओर यह भी सत्य है कि उनमें पूरी तरह समानता भी नहीं है। लड़के और लड़कियों के जीवन का उद्देश्य, उनके स्वभाव, प्रकृति और रुचि का अध्ययन बताता है कि उनमें बहुत कुछ समानता के साथ कुछ असमानता भी हैं। अतः उनकी शिक्षा में भी बहुत कुछ समानता और थोड़ीसी असमानता अवश्य रखनी होगी। भाषा, गणित, इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य-विज्ञान, साधारण-विज्ञान आदि ऐसे विषय हैं जिनके ज्ञान की जितनी आवश्यकता लड़कों को है उतनी ही लड़कियों को भी है। किन्तु आगे चलकर विश्वविद्यालयों में दर्शन-शास्त्र, भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र आदि का जो ज्ञान दिया जाता है वह लड़कियों के लिए उतना उपयोगी नहीं होता जितना लड़कों के लिए। यदि कोई लड़की इन विषयों की प्रोफेसर बनना चाहे तो बात दूसरी है। अन्यथा साधारण लड़की के लिए इनका ज्ञान अनावश्यक-सा ही है।

बहुत से लोगों की यह धारणा है कि जिस प्रकार अलंकार शरीर को सजाने के लिए पहने जाते हैं, उसी प्रकार शिक्षा भी एक प्रकार का अलंकार है। शिक्षा से लड़की की सुन्दरता और कीमत बढ़ जाती है और अच्छा दूल्हा प्राप्त करना सरल हो जाता है। किन्तु उनकी यह धारणा भ्रान्त है। शिक्षा जीवन का प्रशिक्षण देती है, आचरण का संस्कार करती है, या यों कहें कि वह जीवन की कला सिखाती है। यदि शिक्षा से ये बातें नहीं आती हैं तो वह शिक्षा शिक्षा नहीं है। अतः जहाँ तक आचरण का संस्कार करने या जीवन की कला सिखाने का प्रश्न है, प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा तो प्रत्येक लड़की के लिए अनिवार्य होनी चाहिये। विश्व-विद्यालय की शिक्षा उन्हीं लड़कियों को देना चाहिये जो वकील, डॉक्टर,

प्रोफेसर बनना चाहें या सरकारी नौकरी में प्रविष्ट होना चाहें। हमारे देश में प्राय: कम लड़कियाँ ही इस दिशा में जाना पसन्द करती हैं। अत: सभी लड़कियों को दर्शन, विज्ञान और साहित्य की उच्च-शिक्षा देना व्यर्थ है। अधिकांश लड़कियों को तो एक अच्छी माँ, पत्नी और नागरिक बनना है। ऐसी स्थिति में उन्हें इसी प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए जिससे इस दिशा में उनका मार्ग सुगम बन सके। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे देश में इस प्रकार की शिक्षा की अच्छी व्यवस्था नहीं है।

आजकल विज्ञान एवं उद्योग-धन्धों की प्रगति ने स्त्री-शिक्षा की समस्या को एक नया ही रूप दे दिया है। अब संयुक्त-परिवार-प्रणाली तेजी के साथ समाप्त हो रही है और छोटे-छोटे कुटुम्ब बनते जा रहे हैं। इससे जहाँ व्यक्ति को अपनी आय का पूरा-पूरा लाभ स्वयं उठाने और ज्यादा सुख-सुविधा का जीवन बिताने का अवसर मिल रहा है वहाँ उसका जीवन अरक्षित भी हो रहा है। संयुक्त-परिवार में परिवार के सदस्यों की आय सारे परिवार में बँट जाती थी, किन्तु अन्धे, लूले, लँगड़े, बेकार व्यक्ति अथवा विधवा माँ-बहनों का जीवन सुरक्षित रहता था। किन्तु आजकल एक ओर तो इस अरक्षिता के कारण तथा दूसरी ओर बढ़ती हुई महँगाई तथा बढ़ते हुए जीवनमान के कारण परिवार की स्त्रियों को भी नौकरी या कोई अन्य काम करने के लिये विवश होना पड़ता है। शहरों में बहुत-सी विवाहित स्त्रियाँ क्लर्क, अध्यापिका, नर्स तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य करती हुई दिखाई देती हैं। इधर ग्रामों में भी स्त्रियाँ पति के कार्य में हाथ बँटाती हैं। वे खेती और ग्रामोद्योगों का बहुत-सा कार्य सँभालती हैं। इस प्रकार प्रत्येक स्त्री के लिए कोई न कोई स्वतन्त्र कार्य करना अनिवार्य होता जा रहा है। अब उनके लिए पुराने जमाने की तरह घर की चहार-दीवारी में बन्द रहना सम्भव नहीं रहा है। यही कारण है कि हमारे स्कूल और कॉलेजों में लड़कियों की संख्या बढ़ती जा रही है। अब समय ही कुछ इस प्रकार का बन गया है कि बिना कोई काम किये जीवन बिता देना सम्भव नहीं रहा है। आज हमारे देश में सैकड़ों-हजारों स्त्रियाँ डॉक [illegible], प्रोफेसर, अध्यापक, सिपाही, विधान-सभा की सदस्य, मन्त्री [illegible] री हैं। जैसे-जैसे समय बीतेगा इन क्षेत्रों में उनकी संख्या [illegible] यह

परिवर्तन भले ही हमें पसन्द नहीं हो, किन्तु वह आ रहा है और आकर रहेगा। अतः यह आवश्यक है कि हमारे देश की स्त्रियाँ उसके योग्य बनें। शिक्षा को ही यह कार्य करना है।

दूसरे देशों की भाँति हमारे देश में भी स्त्रियों की शिक्षा का काम पिछड़ा हुआ है। बड़े-बड़े शहरों में लड़कियाँ अवश्य पढ़ती हैं। किन्तु ग्रामों और कस्बों में तो प्रायः लड़कियों की शिक्षा का अभाव-सा ही है। लड़कियों के नये-नये स्कूल, कॉलेज प्रत्येक नगर और ग्राम में खोलना वस्तुतः बड़ा खर्चीला होगा। अतः सह-शिक्षा ही इस प्रश्न का एक मात्र हल हो सकता है। यदि लड़के-लड़कियाँ प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा एक ही स्कूल में प्राप्त करते हैं तो उसमें कुछ बुराई भी नहीं है। ऐंसी स्थिति में लड़कियों की शिक्षा की बढ़ती हुई माँग को देखते हुए सह-शिक्षा प्रारम्भ करना लाभदायक होगा। जहाँ तक उच्च शिक्षा का प्रश्न है स्त्रियों को कुछ विषयों की शिक्षा विशेष रूप से दी जा सकती है, जैसे—परिवार-नियोजन, शिशु-कल्याण, सामाजिक स्वास्थ्य और सफाई, बाल-शिक्षा आदि। इस प्रकार के विषयों की शिक्षा से स्त्रियाँ समाज की उपयोगी सेवा करने के साथ-साथ स्वतन्त्र रूप से जीविका कमाने का साधन भी प्राप्त कर सकेंगी।

स्त्री-शिक्षा का काम हमारे देश में बहुत पिछड़ा हुआ है। उसे आगे बढ़ाने के लिए अभी बहुत-बहुत काम करना है। सरकार को भी उस पर पैसा खर्च करना पड़ेगा। हमारी दोनों पंचवर्षीय योजनाओं में उसके लिए पर्याप्त पैसा खर्च करने की व्यवस्था नहीं है। अभी सरकार के सामने उत्पादन बढ़ाने की समस्या प्रमुख है। यह महत्त्वपूर्ण भी है किन्तु उसके हल होते ही इस प्रश्न पर सबसे ज्यादा ध्यान देना होगा। अन्यथा इसके अभाव में हमारा देश पूरी-पूरी प्रगति नहीं कर सकेगा।

(२३) श्रमदान

१—श्रमदान का अर्थ।

२—श्रम-आधारित व्यवस्था का उद्देश्य—समता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व।

३ श्रमदान का महत्व।

४—लाभ।

५—श्रमदान और गांधीजी।

६—उपसंहार।

श्रमदान दो शब्दों से मिलकर बना है—श्रम और दान। श्रम का अर्थ है परिश्रम या मेहनत और दान का अर्थ है देना। अतः साधारणतः श्रमदान का अर्थ है 'परिश्रम देना'। जिस प्रकार हम किसी दीन, दुखी या अभाव-ग्रस्त व्यक्ति को रुपये पैसे या अनाज कपडे दान के रूप में देते हैं उसी प्रकार जहाँ आवश्यकता हो वहाँ बिना कुछ पारिश्रमिक लिए हुए श्रम करें और उसका लाभ समाज या किसी व्यक्ति को दे यही श्रमदान का प्रचलित अर्थ है। किन्तु वस्तुतः श्रमदान का इतना ही अर्थ नहीं है। श्रमदान एकदम नया शब्द है। इसका जन्म विनोबाजी के भूदान-आन्दोलन के साथ हुआ है। विनोबाजी ने भूदान के बाद सम्पत्तिदान, बुद्धिदान, हलदान, बैलदान, कूपदान, जीवनदान, श्रमदान आदि नये नये शब्द दिये और उन्हे नये-नये अर्थों से प्रतिष्ठित किया। वे दान की उस भावना को अच्छा नही समझते जिसमें दानदाता को महान् और दान लेने वाले को हीन माना जाता है। दान में जो उपकार की भावना छिपी हुई है, वह भी उन्हे पसन्द नही है। उन्होंने प्राचीन शास्त्रों में दिये हुए "दान संविभाग" के अनुसार दान को सम-विभाग कहा है। अर्थात् जिसके पास ज्यादा है वे बराबर हिस्सा करने के लिए अपने धन सम्पत्ति या श्रम को उन लोगों को देते हैं जिनके पास या तो बिल्कुल नहीं है या कम है। इस प्रकार विनोबाजी के अनुसार दान में कर्त्तव्य की भावना छिपी हुई है। हमारे एक कवि ने लिखा है—

जो जल बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यहु सज्जन को काम।

जिस प्रकार नाव में पानी बढ़ जाने पर उसे उलीच कर फेंकना ही लाभदायक होता है, उसी प्रकार घर में पैसा बढ़ जाने पर उसे अभाव-ग्रस्त लोगों को देना लाभदायक होता है। यहाँ पैसा देने के पीछे अपने स्वयं के कल्याण की भावना है। बस इसी प्रकार की भावना विनोबाजी द्वारा प्रयुक्त दान शब्द में है। ऊपर बताये हुए अनेक दान ये चीजें किसी पर उपकार करने के लिए नहीं अपितु अपने स्वयं ... लिये

दी जाती है। अतः उसमें दान लेने वाले के प्रति तुच्छता की भावना बिलकुल नहीं होती।

श्रमदान विनोबाजी के मुँह से निकला हुआ शब्द है, अतः उसमें विनोबाजी के जीवन-दर्शन की झलक है। विनोबाजी चाहते हैं कि एक नये समाज की रचना की जाय जिसमें सबको समानता का दर्जा प्राप्त हो। जिसमें न कोई धनी हो न कोई गरीब, न कोई ऊँचा हो न नीचा। अतः श्रमदान अन्य दानों की तरह ही इस समता को लाने का एक महत्वपूर्ण साधन है। हम देखते हैं कि किसी भी प्रकार का उत्पादन श्रम, पूँजी और प्रकृति-साधनों के योग से होता है। यद्यपि उत्पादन में इन तीनों का ही लगभग बराबरी का महत्व है तथापि पूँजी सर्वोपरि होगई है। पूँजी से श्रम खरीद लिया जाता है और प्राकृतिक साधन भी। जिसके पास आज पूँजी नहीं है उसके सारे रास्ते बन्द हैं। वह न तो उत्पादन कर सकता है न न्यायपूर्ण जीवन ही बिता सकता है। उसे पूँजीपतियों का गुलाम बनना पड़ता है, तब कहीं जीवन की आवश्यक सामग्रियां मिल पाती हैं। विनोबाजी समता का उद्देश्य सामने रखकर इस व्यवस्था को बदलना चाहते हैं। वे श्रम को प्रमुख स्थान देना चाहते हैं। इसी प्रकार प्रकृति के साधन जैसे जमीन, खनिज, जल, वायु आदि भी किसी एक व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं। ये ईश्वर ने सबको समान रूप से दिये हैं। इन पर किसी व्यक्ति को अपना कब्जा जमाकर बैठ जाने का अधिकार नहीं है। जो व्यक्ति श्रम करना चाहता है उसे जमीन, खनिज, जल, वायु, आदि समान रूप से मिलने चाहियें। अब तक उत्पादन पूँजी पर आधारित रहा है किन्तु विनोबाजी उसे श्रम-आधारित बनाना चाहते हैं। श्रम-आधारित उत्पादन के द्वारा समाज में श्रम का महत्व बढ़ेगा और उससे विषमता की भावना मिटेगी, क्योंकि श्रम की शक्ति सब व्यक्तियों में बराबर है।

श्रमाधारित व्यवस्था का दूसरा उद्देश्य है स्वतन्त्रता। जो व्यक्ति श्रम के द्वारा जीवन व्यतीत करेगा वह निश्चितरूप से स्वावलम्बी बनेगा। उसे दूसरों पर आधारित या आश्रित रहने की आवश्यकता नहीं रहेगी। अतः व्यक्ति सच्चे अर्थों में स्वतन्त्र बनेगा। आर्थिक स्वावलम्बन उसकी स्वतंत्रता को मजबूत बनाएगा, फिर न उसे किसी से दबने की आवश्यकता रहेगी न किसी से भय खाने की।

श्रमाधारित व्यवस्था का तीसरा उद्देश्य है बन्धुत्व। जब सब लोग साथ साथ श्रम करेंगे तब उनमें आपसी प्रेम पैदा होगा। क्योंकि प्रेम के मार्ग में बाधा देने वाली ऊंच-नीच की भावना का अन्त हो जायगा। श्रम के द्वारा कार्य करके कभी वैमनस्य या वैर पैदा नहीं होगा। साथ-साथ श्रम करने वालों में स्वभावतः प्रेम पैदा होता है। अतः यह प्रेम की भावना सब लोगों को एकता और स्नेह के मजबूत धागों में बाँधेगी। न किसी व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति से ईर्षा करने की आवश्यकता होगी, न विद्वेष।

इस प्रकार नये समाज के नये जीवन-दर्शन के अनुसार श्रम का हमारे जीवन में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान बनने वाला है। श्रमदान में श्रम का वह अर्थ और वह भावना ही समाई हुई हैं। आज श्रमदान का महत्व इसलिए है कि वह ऊपर बताई हुई भावना की प्रतिष्ठा करता है। वह हममें समता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व की भावना पैदा करता है। यदि श्रमदान के द्वारा किसी ग्राम के निवासी कोई सड़क बनाते हैं या किसी तालाब का निर्माण करते हैं तो उन्हें इन नवीन जीवन-मूल्यों की अनुभूति होती है। वे पुरानी ऊंच-नीच की भावना से ऊपर उठते हैं। सबको यह अनुभव करने का अवसर मिलता है कि वे समान हैं, एक हैं। पैसा या सम्पत्ति का दान ज्यादा देने वाले को बड़ा और थोड़ा देने वाले को छोटा बनाता है किन्तु श्रमदान सबको समान बनाता है। फिर श्रमदान नई-नई योजनाओं को सरल बना देता है। यदि श्रम उपलब्ध हो जाता है तो निर्माण-कार्य में कोई कठिनाई नहीं होती। क्योंकि प्रकृति के साधन तो हमारे पास हैं ही, उसमें लगने वाला पैसा चन्दे से या सरकार से प्राप्त किया जा सकता है। बहुत से कामों में तो पैसों की जरूरत भी प्रायः बहुत थोड़ी ही होती है। अतः स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद देश में नव-निर्माण का जो कार्य हमारे सामने आया है, श्रमदान उसे सरल और मधुर बनाता है। श्रमदान हमारी एक अन्य समस्या उत्पादन की कमी का भी जबरदस्त [illegible] है। आज हमारे देश में अनाज की कमी है और दूसरी अनेक ची[illegible] [illegible]ी है। ये हमें विदेशों से मंगवानी पड़ती हैं। आखिर विदेशों [illegible] पर हमारा जीवन कब तक चलता रहेगा? श्रमदान के [illegible]

में जबरदस्त सहायता का कार्य भी करने लग जायेंगे तो फिर किस चीज की कमी रह जायगी। आज हाथ से काम करने वाले को छोटा और नीचा माना जाता है। इसीलिये उत्पादन करने वालों की संख्या घट रही है। कल जब उनको नीचा नहीं माना जायगा और प्रत्येक व्यक्ति को श्रम करना पड़ेगा, तब किसी भी वस्तु की कमी न रहेगी, देश समृद्ध बनेगा।

श्रमदान से हमारे देश और समाज को बड़ा लाभ मिलेगा। उससे उत्पादन बढ़ेगा—देश का नया-निर्माण होगा। बड़े-बड़े कार्य जो समाज के लिए उपयोगी और हितकारक हैं सीधे और सरल बन जायेंगे—शीघ्रता से पूरे हो जायेंगे। उसके द्वारा लोगों की शारीरिक उन्नति होगी। श्रम करने से बीमारियाँ दूर रहेंगी और देश के सब लोग स्वस्थ और प्रसन्न बनेंगे। श्रमदान लोगों की मानसिक उन्नति भी करेगा। वह लोगों को सच्चे, भले और ईमानदार बनायेगा। वह न्यायपूर्ण जीवन की प्रतिष्ठा करेगा। श्रमदान समाज, व्यक्ति और देश तीनों को स्वावलम्बी बनाएगा, जिससे सबमें बन्धुत्व व स्वतन्त्रता की भावना का उदय होगा। लोगों में आत्मविश्वास पैदा होगा कि वे बड़े-बड़े कार्य कर सकते हैं। श्रमदान एक प्रकार से लोगों की शिक्षा का कार्य करेगा। काम करते-करते लोगों को जो अनुभव होगा, जो शिक्षा मिलेगी, वह पुस्तकें पढ़ने या घर में बैठे रहने से प्राप्त नहीं होती। उससे उनकी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यत्मिक शक्तियों का विकास होगा। श्रमदान व्यक्तियों को उदार बनाएगा। दूसरों के लिए श्रम करके उसके मन में सन्तोष और आनन्द की भावना पैदा होगी। फिर न उसमें संकुचित भावना प्रविष्ट हो सकेगी, न स्वार्थवृत्ति। इस प्रकार श्रमदान के पीछे देश की सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक स्थिति के सुधार का मन्त्र छिपा हुआ है। वह नवीन युग की नई पुकार है। नवीन ऋषि का नया मन्त्र है।

श्रमदान का विचार एक-दम नया नहीं है। गांधीजी के मस्तिष्क में यह बात सबसे पहले आई थी। उन्होंने देख लिया था कि हमारी परतन्त्रता और गरीबी का एक बहुत बड़ा कारण श्रमनिष्ठा का अभाव है। हम श्रम से दूर होते जा रहे हैं, उसे बुरा और नीचा समझते हैं। अतः

उन्होंने खादी और ग्रामोद्योग का श्रीगणेश किया था। उन्होंने स्वयं प्रतिदिन चरखा चलाने का नियम बनाया था और अपने साथियो से भी वैसा ही करने के लिए कहा था। उन्होंने कांग्रेस के प्रत्येक सदस्य की सदस्यता का शुल्क रुपयों मे लेने के बजाय सूत के रूप मे देने का नियम बनाया था। खादी खरीदने के लिए भी सूत देने का नियम उन्होंने इसी दृष्टि से बनाया था। अतः श्रमदान का मन्त्र हमारे राष्ट्र-पिता द्वारा दिया हुआ मन्त्र है। उसमे हमारे देश की उन्नति के सारे तत्त्व समाये हुए हैं।

(१४) अनुशासन

१—अनुशासन का अर्थ
२—अनुशासन के प्रकार
३—अनुशासन का महत्त्व
४—उसके लाभ
५—अनुशासन-प्राप्ति के उपाय
६—उपसंहार

अनुशासन दो शब्दो से मिलकर बनता है 'अनु' और 'शासन' 'अनु' का अर्थ है—'पीछे' और 'शासन' का अर्थ है 'आज्ञा'। इस प्रकार अनुशासन का अर्थ है 'आज्ञा का अनुयाय', 'नियन्त्रण मे रहना, आज्ञा के अनुसार कार्य करना। प्रश्न यह होता है कि आज्ञा किसकी? अपने बडो की, गुरु की, राजा की, सरकार की, सन्त और महात्माओ की। यदि संक्षेप मे कहा जाय तो उन लोगों की जिनकी बात में हमारे कल्याण की भावना समाई हुई है। सामाजिक प्राणी होने के कारण हमे घर मे, स्कूल मे, ग्राम मे, शहर मे, कार्यालय मे, सेना मे, सभा मे रहना और कार्य करना होता है। अत. सभी स्थानो के काम को सुचारु-रूप से चलाने के लिए, उसे नियमानुसार और व्यवस्थित बनाने के लिए कुछ निश्चित नियमो का अनुसरण करना या अपने बडो के नियन्त्रण में रहना आवश्यक होता है। यदि ऐसे नियम न हो और उनका अनुसरण न किया जाय तो समाज मे, देश मे, और विश्व में कोई व्यवस्था नहीं रहेगी। सब मनमानी करेंगे जिससे जीवन विशृंखल होगा, अराजकता

और अव्यवस्था होगी और जीना मुश्किल हो जायगा। अतः अनुशासन की बात जीवन को व्यवस्थित, सुचारु और सुखी बनाने की बात है। उससे व्यक्ति के चरित्र का संस्कार होता है, वह सच्चरित्र और सुसंस्कृत बनता है। व्यक्ति का यह संस्कार समाज और देश का संस्कार करता हैं और उसे भी व्यवस्थित, समृद्ध और उन्नत बनाता है।

अनुशासन दो प्रकार का होता है—एक बाह्य, दूसरा आन्तरिक। पहला भय, आतंक और शक्ति पर आधारित रहता है; दूसरा स्वेच्छा पर। पहिले प्रकार के नियन्त्रण को व्यक्ति भय से मानता है जबकि दूसरे प्रकार के नियन्त्रण को स्वेच्छा से स्वीकार करता है। यद्यपि दूसरों के द्वारा कही हुई अच्छी बात को अनिच्छा से भी पालन करना अहितकर नहीं होता है तथापि यदि कोई अच्छी बात को स्वयं अपनी बुद्धि से समझबूझ कर किया जाय तो वह सबसे अच्छा है। बात यह है कि जो भय से, शक्ति से या जोर-जबरदस्ती से मानी जाती है उसमें उस ..त के महत्त्व पर ज़ोर नहीं होता है। ज़ोर होता है जबरदस्ती, भय या श..ि पर। जब तक भय रहता है तब तक तो अनुशासन का पालन होता है और जब भय नहीं रहता अनुशासन का पालन भी आवश्यक नहीं रह जाता। दूसरी ओर स्वेच्छा से अनुशासन माना जाता है उसमें बात की अच्छाई, उसकी हितकरता का महत्त्व होता है। उसी की प्रेरणा से अनुशासन माना जाता है। अतः अनुशासन का सही रूप वही है जिसमें नियन्त्रण स्वेच्छापूर्वक माना जाता है। भय और आतंक पर आधारित अनुशासन न तो सही होता है न दृढ़। बाह्य अनुशासन उस शेर की तरह है जो मरा हुआ है, किन्तु जैसे मसाला भरकर खड़ा कर दिया गया है। देखने में वह शेर ही दिखाई देता है, दूर से देखने वाले उसे शेर ही समझ लेते हैं; लेकिन उसमें प्राण नहीं होता। वह किसी को मार डालना तो दूर, चलने फिरने या साँस लेने तक की भी समता नहीं रखता है। अतः जिस संस्था में बाह्य अनुशासन होता है, वह खोखली होती है; और जिसमें आन्तरिक अनुशासन होता है, वह स्वस्थ और दृढ़ होता है। उसके विकास, समृद्धि और प्रगति का मार्ग खुला रहता है। वह सदैव उन्नति करता है।

जीवन मे अनुशासन का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्वच्छन्दता तथा उच्छृंखलता जीवन को अवनति एवं पतन की ओर ले जाते हैं। जिस नदी का जल अपने किनारो को छोडकर इधर-उधर बहता है, वह खेती-बाडी और लोगों की जान-माल को क्षति ही पहुँचाता है। किन्तु जिस नदी का जल नहरो के रूप में नियन्त्रित होकर बहता है, वह खेती-बाडी को बहुत लाभ पहुँचाता है और लोगो को शाति और सुरक्षा और समृद्धि का पोषक बनता है। जो व्यक्ति स्वेच्छापूर्वक नियमों से बँधता है, संयमपूर्वक रहता है उसकी प्रगति के मार्ग खुल जाते हैं। वह अपना कल्याण तो करता ही है, समाज के लिए भी कल्याणकारक सिद्ध होता है। अनुशासन एक बुनियादी गुण है। जिस प्रकार बुनियाद अच्छी बनने पर इमारत अच्छी बनती ही है, उसी प्रकार अनुशासन का गुण आ जाने पर दूसरे बहुत से गुण आ ही जाते हैं। जिस व्यक्ति में अनुशासन है वह एक सच्चा मित्र होगा, आज्ञापालक पुत्र होगा, आदर्श नागरिक होगा, वह सैनिक होगा और बुद्धिमान विद्यार्थी होगा। वीरता, धीरता, सन्तोष आज्ञा-पालन कर्तव्यनिष्ठा, परोपकार, सदाचार आदि बहुत अच्छे गुण उसमें अपने-आप आ जायेंगे।

अनुशासन से अनेक लाभ हैं। वह व्यक्ति की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। पिता को वही पुत्र प्यारा होता है जो उसकी आज्ञा का पालन करता है। गुरु को वही शिष्य प्रिय होता है जो उसके बताये हुए मार्ग पर चलता है और राजा को वही नागरिक प्रिय होता है जो राज्य के नियमों का पालन करता है। मतलब यह है कि चाहे परिवार हो चाहे स्कूल और चाहे समाज हो, चाहे राज्य, सब जगह अनुशासन को पसन्द किया जाता है। जो व्यक्ति अनुशासन सीख लेता है उसे मानो अच्छे पुत्र, अच्छे विद्यार्थी और अच्छे नागरिक बनने का राज-मार्ग मिल जाता है। अपने पिता, गुरु और शासक को प्रसन्न रखकर उनके स्नेह, कृपा और आदर का अनायास ही प्राप्त कर लेता है। फिर सब जगह उसका मार्ग सुगम बन जाता है। अनुशासित व्यक्ति का अपना जीवन बड़ा सुखी रहता है उसे चारों ओर से स्नेह मिलने के कारण सदैव आनन्द की अनुभूति होती रहती है। फिर जो व्यक्ति जीत

लेता है—अपने ऊपर नियन्त्रण करना सीख लेता है, उसके लिए दूसरों पर नियन्त्रण करना कठिन नहीं होता। आत्म-नियन्त्रण या अनुशासन से एक प्रकार की शक्ति का उदय होता है। अनुशासित व्यक्ति उच्छृङ्खल या स्वच्छन्द व्यक्ति की अपेक्षा कई गुना ज्यादा शक्तिशाली रहता है। वह जो चाहे कर सकता है तथा जैसा चाहे वैसा दूसरे लोगों से करवा सकता है। क्योंकि जो दूसरों की बात मानता है उसकी बातें दूसरों को भी माननी ही पड़ती हैं। इस प्रकार अनुशासस में रह कर दूसरों को अनुशासन में लाने की एक जवरदस्त शक्ति अपने आप ही प्राप्त हो जाती है। एक और महत्त्व की बात है कि यह सृष्टि ही नियमों से बंधी हुई है, सूर्य नित्य समय पर उदय होता है, समय पर अस्त होता है, समय पर गर्मी पड़ती है, समय पर वर्षा होती है। आग जला देती है, पानी ठंडा कर देता है। सारी सृष्टि नियमों का अनुसरण करती है। सृष्टि में कहीं उच्छृङ्खलता नहीं है अतः सुखी और उन्नत जीवन का मूल मन्त्र अनुशासन ही है। नियमों से बँधी सृष्टि में वही सुखी रह सकता है जो स्वयं नियमों से बँधा हुआ है।

अनुशासन लाने के अनेक उपाय हैं। सवसे पहले और सबसे ज्यादा महत्त्व का उपाय यह है कि अनुशासन के महत्त्व को समझा जाय। यदि उसका महत्त्व समझ में आ जाता है तो फिर उसे मानना कठिन नहीं रहता। अनुशासन के पीछे हमारे कल्याण या हित की भावना छिपी रहती है। जो उसका दर्शन कर लेता है, उसे अनुशासन का पालन करना कठिन नहीं होता। इसी प्रकार जो लोग अनुशासन लाना चाहते हैं या अनुशासन का पालन करवाना चाहते हैं उन्हें भी सवसे ज्यादा प्रयत्न इसी वात का करना चाहिये कि वे अनुशासन के पीछे छिपी हुई कल्याण-भावना को स्पष्ट कर दें। अनुशासन का दूसरा उपाय है वालकों के सामने अनुशासन के अच्छे-अच्छे आदर्श उपस्थित करना। यदि घर में माता-पिता, स्कूल में अध्यापक और समाज में नेता-लोग अच्छे अनुशासन का नमूना पेश करें तो इस आचरण-दृष्टान्त से अनुशासन सीखने में वड़ी मदद मिलेगी। क्योंकि जो चीज आचरण में होती है वह विना कहे ही दूसरे लोग सीख लेते हैं। उसका प्रभाव भी स्थायी होता है। दूसरी ओर जो

चीज व्यक्ति के आचरण मे नही होती यदि वह उसे दूसरों को करने के लिये कहे तो उसका उल्टा प्रभाव पड़ता है। उमसे लोग अनुशासित बनने के स्थान पर उच्छृङ्खल ही बनते हैं। अनुशासन लाने का तीसरा उपाय पुरस्कार देना है। अच्छे अनुशासन का पालन करने वाले को पुरस्कार से प्रोत्साहन मिलता है। चौथा उपाय है सजा। जहाँ अनुशासन का भंग हो वहाँ अनुशासन भंग करने वाले को सजा मिलनी चाहिये ताकि वह आगे के लिये सच्चे हो जांय। पुरस्कार और सजा अनुशासन लाने के तरीके हैं किन्तु उनका उपयोग सोच-विचार के साथ करना चाहिये। पुरस्कार बालकों को लालची और दण्ड डरपोक भी बनाता है जो अच्छा नहीं है।

अनुशासन एक महत्वपूर्ण गुण है, वह आजकल प्रथम कोटि के गुणों मे माना जाता है। रूस, अमेरिका, ब्रिटेन, जापान, जर्मनी आदि उन्नत राष्ट्र अपनी अनुशासन-प्रियता के लिये प्रसिद्ध हैं। उनकी प्रगति के मूल कारणो मे अनुशासन का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत को इस गुण की बहुत आवश्यकता है। स्वतन्त्र भारत इस गुण के अभाव मे कभी भी प्रगति नही कर सकेगा। आइये हम अपने देश मे अनुशासन लाने के लिये जुट जायें।

(२५) पंचशील

१—भूमिका
२—पंचशील अर्थ के सम्बन्ध मे भ्रान्ति
३—अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक नवीन सिद्धान्त
४—नेहरूजी और पंचशील
५—महात्मा बुद्ध के पंचशील
६—डॉ० सुकर्ण के पंचशील
७—पंचशील के पांच नवीन सिद्धान्त
८—उपसंहार

पंचशील को पिछले कुछ वर्षों में ही जो आदर
उसने प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान अपनी ओर .

भारतीय संस्कृति में 'पंच' शब्द बड़ा पवित्र माना जाता रहा है। हमें पंच को परमेश्वर मानते हैं। यह सृष्टि पंच महाभूतों से बनी है। हमारे शास्त्रों में पंच पतिव्रताओं को बड़ा आदर का स्थान प्राप्त है। शक्तिशाली सिंह को पंचानन कहा जाता है। इसके अलावा पाण्डव पाँच थे और हाथ की उंगलियाँ भी तो पाँच ही होती हैं। पंच कुण्ड, पंच द्रव्य, पंच पल्लव आदि अनेक शब्द हमारी संस्कृति में आदर का स्थान प्राप्त किये हुए हैं। फिर नेहरूजी और भारत का नाम भी इस विचार के साथ जुड़ गया है और इसलिए भी यह शब्द हमारे लिये बड़ा गौरव का कारण बन गया है।

अंग्रेजी समाचार-पत्रों में पंचशील को जिस प्रकार लिखा जाता है उससे एक भ्रम पैदा हो गया है और कुछ लोग उसे 'पंचशिला' बोलने लगे हैं। वे समझते हैं कि पंचशील का अर्थ पाँच शिलायें हैं। ये पाँच शिलायें शान्ति की हैं। नेहरूजी इन्हीं पांच शिलाओं के ऊपर शान्ति का महल बनाना चाहते थे। किन्तु उनका यह विचार भ्रांति-मूलक है। पंचशील का अर्थ है—पाँच नीति, नियम। साधारणतः शील का अर्थ है शिष्ट या अच्छा आचरण। वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक मार्गदर्शक सिद्धान्त है। वह बताता है कि दुनियाँ के राष्ट्र शान्ति की दिशा में जाने के लिये एक दूसरे के साथ कैसा व्यवहार करें।

पंचशील अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक नवीन सिद्धान्त है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में समयसमय पर नवीन सिद्धान्त जन्म लेते और पनपते रहे हैं तथा उस समय की समस्याओं को हल करने में सहायता देते रहे हैं। यदि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के पिछले इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमें ऐसे अन्य सिद्धान्त भी दिखाई देंगे। पिछली शताब्दी में अमेरिका ने 'मुनरोडाक्ट्रिन' नामक एक सिद्धान्त की घोषणा की थी। इस सिद्धान्त का आशय यह था कि अमेरिका (उत्तरी तथा दक्षिणी) के मामलों में बाहर का कोई राष्ट्र हस्तक्षेप न करें। अभी दूसरे महायुद्ध के समय हिटलर ने अपने वंशश्रेष्ठत्व का सिद्धान्त लोगों के सामने रखा था। उसका आशय यह था कि जर्मन लोग आर्य-सन्तान हैं। उनका वंश सबसे अच्छा है। अतः उन्हें दुनियाँ पर राज्य करने का अधिकार है। उन्हीं दिनों जापान ने भी 'एशिया, एशिया के लिए' (अर्थात् जापान के लिये) का नारा लगाया

था। कम्युनिस्टों का भी एक सिद्धान्त है। वे कहते हैं कि चारों ओर से पूंजीवादी राष्ट्रों से घिर कर कोई भी कम्युनिस्ट सुख-शान्ति की साँस नहीं ले सकता। अतः आस-पास के पूंजीवादी राष्ट्रों को भी कम्युनिस्ट बनाया जाना चाहिये। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये 'कामिन्फार्म' की स्थापना हुई थी। आज यद्यपि कामिन्फार्म का मार्ग बदल गया है तथापि उसका मूल सिद्धांत तो जैसा का तैसा ही है।

पंचशील के सिद्धान्त को जन्म देने का श्रेय हमारे प्रथम प्रधान-मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू को है। वे पूरे हृदय से विश्व को शान्ति और सुरक्षा की दिशा में ले जाने का प्रयत्न कर रहे थे। पंचशील उनके राजनीतिक विचारों का ही सुन्दर परिणाम है। नेहरूजी ने दुनियाँ की नब्ज टटोली और अनुभव किया कि आज सारा विश्व युद्ध की विभीषिका से तंग आ गया है। सब शान्ति चाहते हैं। लेकिन शान्ति चाहते हुए भी उस दिशा में कोई स्वस्थ प्रयत्न नहीं हो रहा है। प्रत्येक राष्ट्र उसे अपने अपने ढंग से प्राप्त करना चाहता है किन्तु उनके ढंग परम्परा-विरोधी होने के कारण विश्व-शान्ति के लिए कोई ठोस कार्य नहीं हो पा रहा है। नेहरूजी ने एक अच्छे डाक्टर की तरह पंच-शील के रूप में अशान्ति एवं अरक्षा की बीमारी का एक अचूक नुसखा दुनियाँ के लोगों के सामने रखा था। नेहरूजी और उनके साथ भारतीय जनता का भी यह पक्का विश्वास है कि इन सिद्धान्तों से दुनियाँ में शान्ति स्थापित हो सकती है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में यद्यपि पंचशील का सिद्धान्त बिल्कुल नया है तथापि यह एक बहुत बड़ा पुराना शब्द है। जब महात्मा बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हो गया और वे धर्म की शिक्षा देने के लिए निकल पड़े तो उन्होंने सबसे पहिले पंचशील की ही घोषणा की थी। उन्होंने कहा था कि जो व्यक्ति जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त होना चाहता है, उसे निम्नलिखित पाँच नीति नियमों का पालन करना चाहिये—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, सादा जीवन और मादक द्रव्य का निषेध। बाद में उन्होंने इनमें पाँच बातें और जोड़ दीं—निश्चित समय के अलावा कभी भोजन न करना, नाच-गानों में भाग न लेना, फूल, गहने सुगन्ध आदि विलास-सामग्रियाँ

भारतीय संस्कृति में 'पंच' शब्द बड़ा पवित्र माना जाता रहा है। हमें पंच को परमेश्वर मानते हैं। यह सृष्टि पंच महाभूतों से बनी है। हमारें शास्त्रों में पंच पतिव्रताओं को बड़ा आदर का स्थान प्राप्त है। शक्तिशाली सिंह को पंचानन कहा जाता है। इसके अलावा पाण्डव पाँच थे और हाथ की उंगलियाँ भी तो पाँच ही होती हैं। पंच कुण्ड, पंच द्रव्य, पंच पल्लव आदि अनेक शब्द हमारी संस्कृति में आदर का स्थान प्राप्त किये हुए हैं। फिर नेहरूजी और भारत का नाम भी इस विचार के साथ जुड़ गया है और इसलिए भी यह शब्द हमारे लिये बड़ा गौरव का कारण बन गया है।

अंग्रेजी समाचार-पत्रों में पंचशील को जिस प्रकार लिखा जाता हैं उससे एक भ्रम पैदा हो गया है और कुछ लोग उसे 'पँचशिला' बोलने लगे हैं। वे समझते हैं कि पंचशील का अर्थ पाँच शिलायें हैं। ये पाँच शिलायें शान्ति की हैं। नेहरूजी इन्हीं पाँच शिलाओं के ऊपर शान्ति का महल बनाना चाहते थे। किन्तु उनका यह विचार भ्रांति-मूलक है। पंचशील का अर्थ है—पाँच नीति, नियम। साधारणतः शील का अर्थ है शिष्ट या अच्छा आचरण। वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक मार्गदर्शक सिद्धान्त है। वह बताता है कि दुनियाँ के राष्ट्र शान्ति की दिशा में जाने के लिये एक दूसरे के साथ कैसा व्यवहार करें।

पंचशील अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक नवीन सिद्धान्त है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में समयसमय पर नवीन सिद्धान्त जन्म लेते और पनपते रहे हैं तथा उस समय की समस्याओं को हल करने में सहायता देते रहे हैं। यदि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के पिछले इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमें ऐसे अन्य सिद्धान्त भी दिखाई देंगे। पिछली शताब्दी में अमेरिका ने 'मुनरोडाक्ट्रिन' नामक एक सिद्धान्त की घोपणा की थी। इस सिद्धान्त का आशय यह था कि अमेरिका (उत्तरी तथा दक्षिणी) के मामलों में बाहर का कोई राष्ट्र हस्तक्षेप न करें। अभी दूसरे महायुद्ध के समय हिटलर ने अपने वंशश्रेष्ठत्व का सिद्धान्त लोगों के सामने रखा था। उसका आशय यह था कि जर्मन लोग आर्य-सन्तान हैं। उनका वंश सबसे अच्छा है। अतः उन्हें दुनियाँ पर राज्य करने का अधिकार है। उन्हीं दिनों जापान ने भी 'एशिया, एशिया के लिए' (अर्थात् जापान के लिये) का नारा लगाया

था। कम्युनिस्टों का भी एक सिद्धान्त है। वे कहते हैं कि चारों ओर से पूंजीवादी राष्ट्रों से घिर कर कोई भी कम्युनिस्ट सुख-शान्ति की साँस नहीं ले सकता। अतः आस-पास के पूंजीवादी राष्ट्रों को भी कम्युनिस्ट बनाया जाना चाहिये। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये 'कामिन्फार्म' की स्थापना हुई थी। आज यद्यपि कामिन्फार्म का मार्ग बदल गया है तथापि उसका मूल सिद्धांत तो जैसा का तैसा ही है।

पंचशील के सिद्धान्त को जन्म देने का श्रेय हमारे प्रथम प्रधान-मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू को हैं। वे पूरे हृदय से विश्व को शान्ति और सुरक्षा की दिशा में ले जाने का प्रयत्न कर रहे थे। पंचशील उनके राजनीतिक विचारों का ही सुन्दर परिणाम है। नेहरूजी ने दुनियाँ की नब्ज टटोली और अनुभव किया कि आज सारा विश्व युद्ध की विभीषिका से तंग आ गया है। सब शान्ति चाहते हैं। लेकिन शान्ति चाहते हुए भी उस दिशा में कोई स्वस्थ प्रयत्न नहीं हो रहा है। प्रत्येक राष्ट्र उसे अपने अपने ढंग से प्राप्त करना चाहता है किन्तु उनके ढंग परम्परा-विरोधी होने के कारण विश्व-शान्ति के लिए कोई ठोस कार्य नहीं हो पा रहा है। नेहरूजी ने एक अच्छे डाक्टर की तरह पच-शील के रूप में अशान्ति एवं अरक्षा की बीमारी का एक अचूक नुसखा दुनियाँ के लोगों के सामने रखा था। नेहरूजी और उनके साथ भारतीय जनता का भी यह पक्का विश्वास है कि इन सिद्धान्तों से दुनियाँ में शान्ति स्थापित हो सकती है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में यद्यपि पंचशील का सिद्धान्त बिल्कुल नया है तथापि यह एक बहुत बडा पुराना शब्द है। जब महात्मा बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हो गया और वे धर्म की शिक्षा देने के लिए निकल पडे तो उन्होंने सबसे पहिले पंचशील की ही घोषणा की थी। उन्होंने कहा था कि जो व्यक्ति जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त होना चाहता है, उसे निम्नलिखित पाँच नीति-नियमों का पालन करना चाहिये—अहिंसा, सत्य, आस्तेय, सादा जीवन और मादक द्रव्य का निषेध। बाद में उन्होंने इनमें पाँच बातें और जोड दीं—निश्चित समय के अलावा कभी भोजन न करना, नाच-गानों में भाग न लेना, फूल, गहने सुगन्ध आदि कि[illegible]

हना, ऊँचे आसन पर न बैठना तथा सोने चाँदी से दूर रहना। बुद्ध का कहना था कि इन सिद्धान्तों पर आचरण करके कोई भी निर्वाण प्राप्त कर सकता है।

अपनी जन्मभूमि से आगे बढ़कर पंचशील चीन, जापान, इन्डोनेशिया, आदि देशों में फैला और वहाँ के जीवन में भी महात्मा बुद्ध के इन सिद्धान्तों ने अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। दूसरे महायुद्ध के मय इन्डोनेशिया परतन्त्र था। वहाँ डच लोगों का राज्य था। किन्तु ज्यों ही जापान ने इन्डोनेशिया पर आक्रमण किया, डच लोग अपनी जान बचाकर भाग निकले। इन्डोनेशिया पर जापान का अधिकार हो गया। थोड़े दिन बाद युद्ध का पासा पलटा। इन्डोनेशिया के राष्ट्रवादियों ने अमेरिका की मदद से जापान को अपने देश मे निकाल दिया। किन्तु ज्योंही जापानी हटे वैसे ही डच लोग फिर वहाँ अपना कब्जा जमाने का प्रयत्न करने लगे। इन्डोनेशिया की जनता अब डच लोगों के आधीन रहने को तैयार नहीं थी। उसने डॉ० सुकर्ण के नेतृत्व में स्वतन्त्रता संग्राम की तैयारी की। इन्डोनेशिया में १ जून १९४५ को स्वतन्त्रता-संग्राम का शंख फूँकते हुए डॉ० सुकर्ण ने एक ऐतिहासिक भाषण में पंचशील की घोषणा की। अतः पंचशील शब्द को आधुनिक राजनीति में लाने का श्रेय डॉ० सुकर्ण को ही है। कौन जानता था कि दस वर्ष बाद यह शब्द दुनियाँ की राजनीति में इतना ज्यादा महत्त्व का स्थान प्राप्त कर लेगा। अपने भाषण में उन्होंने जिन पाँच नीति-नियमों या सिद्धान्तों की घोष की थी वे इस प्रकार थे—राष्ट्रवाद, मानवता, स्वतन्त्रता, सामा न्याय तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए ईश्वर पर श्रद्धा। राष्ट्रीय दृ उनके ये सिद्धान्त बड़े महत्त्वपूर्ण थे।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पंचशील की घोषणा सन् १९५४ के जून हुई। इन दिनों भारत में चीन के प्रधान-मन्त्री श्री चाऊ-एन-लाई थे और उन्होंने नेहरूजी से अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर दिल खोल की थी। इस चर्चा के बाद नेहरूजी तथा श्री चाऊ-एन-लाई ने वक्तव्य प्रकाशित करवाया। इस वक्तव्य में ही सबसे पहले पं जिक्र किया गया। हमारे पड़ोसी राष्ट्र चीन के द्वारा पंचशील

एक बहुत बडी बात थी। उसके बाद बाडुङ्ग का ऐतिहासिक सम्मेलन हुआ। उसमे सम्मिलित होने वाले राष्ट्रो मे से बहुतसो ने एक स्वर से उसे स्वीकार किया। और अब तो उसे स्वीकार करने वाले राष्ट्रो की संख्या ३० तक पहुँच गई है।

दुनियाँ के जो देश सच्चे हृदय से शान्ति चाहते हैं, जो किसी भी हालत मे युद्ध पसन्द नही करते उन्होंने ही पंचशील को स्वीकार किया है। पचशील के ये पांच सिद्धान्त हैं:—एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और सर्वभौमत्व का आदर। (२) अनाक्रमण। (३) घरेलू मामलो मे स्वतन्त्रता। (४) पारस्परिक समानता तथा (५) शान्तिपूर्ण सहजीवन। इनमे सहजीवन का अन्तिम सिद्धान्त बडा महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि जो देश शान्तिपूर्ण सहजीवन मे विश्वास रखते हैं वे ही इन सिद्धान्तो को स्वीकार कर सकते हैं। यह सिद्धान्त मानो पंचशील की नीव ही है। जो लोग युद्ध या पशुबल मे विश्वास रखते हैं वे इस सिद्धान्त को कैसे मान सकते हैं। अतः पंचशील सद्भावना का आह्वान है। यह हमारा सौभाग्य है कि पचशील को स्वीकार करने वाले राष्ट्रो की संख्या दिन प्रतिदिन बढती जा रही है। हो सकता है कि इनमे मे से सभी राष्ट्र इन सिद्धान्तो का पूरी तरह पालन न कर सकें और समय आने पर इन्हे भंग भी करदे, किन्तु इस बात से कौन इन्कार कर सकता है कि शान्ति के लिये किये जाने वाले कामा मे पंचशील का स्थान आज सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बन गया है। यदि दुनियाँ के अधिकांश राष्ट्र उसे स्वीकार करले, तो सचमुच शान्ति और सुरक्षा का वातावरण बन जायगा।

अभी दुनियाँ के कुछ राष्ट्रो के मन मे पंचशील के सम्बन्ध मे कुछ शंकाएं हैं। 'घरेलू मामलो' 'आक्रमण' तथा 'सहजीवन' जैसे शब्दो की कोई स्पष्ट व्याख्या भी अन्तर्राष्ट्रीय कानून द्वारा नही हो सकी है। किन्तु हमे यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि पचशील कोई पत्थर [illegible] लकीर नहीं है। यह तो विश्वशान्ति की दिशा मे एक शुभ संकल्प है। उसे भारतीय विदेशी नीति की विजय कहने के बजाय उसका एक शुभ लक्षण कहना ज्यादा उपयुक्त होगा।

(२६) सत्संग

१—भूमिका

२—सत्संग का महत्त्व

३—सत्संग के साधन

४—सत्संग के अन्तराय

५—सत्संग के लाभ

६—सत्संग के चमत्कार

मनुष्य समाज में जन्म लेता है और समाज में ही विकास करता है। समाज से उसे अलग रखना एक बहुत बड़ी सज़ा है। समाज से दूर रहकर न मनुष्य विकास कर पाता है न उसे अलग रहना अच्छा ही लगता है। अपने जन्म से लेकर मृत्यु तक वह समाज में रहता है। जन्म के समय वह माता-पिता और परिवार के लोगों के सम्पर्क में आता है और तब से उसके परिचय का क्षेत्र विस्तृत होते-होते मृत्यु के समय तक वह लाखों लोगों से जान-पहचान कर लेता है। अतः समाज से दूर या अलग रहने की कल्पना अत्यन्त घातक है। समाज हमारे अस्तित्व के लिये आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। लेकिन प्रश्न यह है कि समाज तो अच्छे बुरे का मेल है। उसमें चोर, डाकू और दुराचारी लोग हैं; तथा संयमी, सदाचारी और न्यायी भी। ऐसे लोग भी हैं जो अपने आसपास के लोगों का उपकार करने की ही बात सोचते और करते हैं तथा ऐसे भी लोग हैं जो अपने आसपास के लोगों का कल्याण करने की बात सोचते और करते हैं। अतः इस स्थिति में हम क्या करें ? किन्हें चुनें ? उत्तर स्पष्ट है। हम ऐसे ही लोग पसन्द करते हैं जिनसे हमें कुछ सहारा मिले, सहायता मिले। ऐसे आदमियों को पसन्द नहीं करते जो हमें गलत रास्ते पर ले जायँ, हमारा अहित करें।

सत्संगति का अर्थ है अच्छा संग या अच्छी संगति। उसका जीवन में बड़ा महत्त्व है। अच्छे लोगों का साथ मिल जाने पर जिस प्रकार यात्रा आनन्ददायक हो जाती है, उसी प्रकार अच्छे लोगों के साथ से जीवन आनन्ददायक हो जाता है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि रहीम ने इसी बात को इस प्रकार कहा है—

यों रहीम सुख होत है, उपकारी के संग,
बाँटन वाले के लगे ज्यों मेहदी को रंग।

अच्छे आदमियों के साथ से अनायास ही बहुत से लाभ मिल जाते हैं। जिस प्रकार मेंहदी बांटने वाले के हाथ में अनायास ही मेंहदी की लाली रच जाती है अथवा बगीचे में बैठने वाले को सुगन्ध मिल जाती है, उसी प्रकार अच्छी संगत में रहने वाले को अनेक लाभ अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। भला जो आदमी सदैव चोरों की संगति में रहता है वह सदाचारी कैसे हो सकेगा? जो अत्याचारियों की संगति में रहता है वह परोपकारी कैसे हो सकेगा? क्या कभी बबूल के पेड़ में भी आम लग सकते हैं? कहावत है कि जो कुए में नहीं है वह घड़े में कैसे आ सकेगा। अतः बुरे आदमियों में अच्छे गुणों की अच्छाई की आशा नहीं की जा सकती। दूसरी ओर सत्संग उस पारस की तरह है जो अपने स्पर्श से लोहे को सोना बना देता है। तुलसीदासजी ने रामायण में सत्संग के महत्त्व पर कहा है:—

"पुण्य-पुंज बिन मिलहिं न संता, सतसंगति संमृति कर अन्ता।"

अच्छे आदमियों का साथ बड़े पुण्यों का परिणाम है। जब उनका साथ प्राप्त हो जाता है तो जैसे परम-लाभ ही मिल जाता है। और तो और उससे सांसारिक बन्धनों से ही मुक्ति मिल जाती है, आत्मकल्याण या मोक्ष प्राप्त हो जाता है और मोक्ष से बड़ा लाभ क्या हो सकता है? जो बात वर्षों साधना करने पर भी नहीं मिल सकती वह सत्संग के द्वारा क्षण भर में ही मिल जाती है। इसीलिये तुलसीदासजी ने सन्तों के समाज को चलता-फिरता तीर्थराज कहा है। तीर्थराज प्रयाग तो उन थोड़े से लोगों का उद्धार कर पाता है, जो उस तक आते हैं, किन्तु सन्तों का समाज उस चलते-फिरते हुए तीर्थराज की तरह है जो हर स्थान पर जाता है और उसे जो भी मिल जाता है उसका उद्धार कर देता है। तुलसीदासजी ही नहीं अनेक कवियों, विचारकों, विद्वानों, दार्शनिकों और भक्तों ने सत्संग का गुणगान किया है और कहा है कि एक [illegible] भर का सत्संग दुनियां के सारे सुखों से बढ़कर है।

त्संग का महत्त्व निर्विवाद है। किन्तु उसका पूरा-पूरा लाभ
के लिए उसके स्वरूप को समझ लेना आवश्यक है। सबसे
हमें यह जान लेना चाहिए कि सत्संग के साधन क्या हैं? वे
से लोग हैं, कौन-सी वस्तुएँ और कौन से व्यापार हैं जहाँ से
सत्संग प्राप्त होता है। सत्संग के इन स्रोतों की जानकारी उसको
पलब्ध करने में सहायक होगी। सत्संग के इन स्रोतों में प्रमुख
हैं: अच्छे-अच्छे विद्वान् और सदाचारी पुरुष, अच्छी पुस्तकें,
अच्छे सम्मेलन, अच्छे विद्यालय, वाचनालय, मन्दिर, मस्जिद, गिर्जा-
घर आदि और इस प्रकार की अन्य वस्तुएँ। इनका सम्पर्क मनुष्य में
सद्विचार का ही उदय करता है। अच्छे पुरुषों से अच्छी बातें ही मिलती
हैं; और अच्छी पुस्तकें भी सद्विचार को ही प्रोत्साहित करती हैं।
अच्छे सभा-सम्मेलन और वाचनालय, पुस्तकालय भी अच्छाई को ही
जन्म देते हैं और उसे पल्लवित पुष्पित करते हैं। जिस प्रकार निर्मल जल
के सोते से निर्मल जल ही मिलता है, उसी प्रकार सत्संग के इन स्रोतों से
अच्छे विचार, अच्छे उपदेश और कल्याणकारक बातें ही प्राप्त होती हैं।
किन्तु केवल इतना ही मान लेना पर्याप्त न होगा कि इन चीज़ों या व्यक्तियों
से ही उद्धार हो सकता है। अपने उद्धार या कल्याण के लिए हमें एक ऐसा
दृष्टिकोण विकसित करना होगा जो व्यक्तियों, पुस्तकों और इसी प्रका
की अन्य वस्तुओं में से उस अच्छाई को ढूँढ़ लें, जो फूल में सुगन्ध क
तरह या गुड़ में मिठास की तरह समाई रहती है। जिसे यह दृष्टि प्र
हो जाती है वह गुरु दत्तात्रेय की तरह कुत्ते और कौवों को भी अपना
बना लेता है और उनसे भी बहुत कुछ प्राप्त कर लेता है। सत्संग का
ही वह संग है जो हमारे लिए कल्याणकारक सिद्ध हो। यदि हमारी
पैनी है तो हम कौवे की संगति में रहकर भी चौकन्नापन प्राप्त कर
हैं और कुत्ते की संगति में रहकर उसकी वफ़ादारी और निरालसत
सकते हैं। सत्संगति का अर्थ केवल गांधीजी, बुद्ध या अरवि
महापुरुषों के साथ बैठे रहना, उनके भाषण सुनना या उनकी पुस
नहीं है, बल्कि उनके जीवन से अच्छी बातें सीखना है। यदि
ऐसी बातें नहीं सीखते तो उनके सम्पर्क में घण्टों या वर्षों र

होगा जैसे किसी गधे या घोडे के द्वारा धर्म-ग्रन्थों का बोझा उठाये रहना। इस तरह के कार्य से जिस प्रकार कभी कोई गधा या घोडा धर्मात्मा नही बन सकेगा इसी प्रकार बुद्धिहीन सम्पर्क कोई लाभ नही पहुँचा सकेगा।

अब प्रश्न यह होगा कि सत्संग के अन्तराय क्या हैं? ऐसे कौन से लोग हैं, कौनसी पुस्तकें और कौनसी वस्तुएं हैं, जिनके सम्पर्क में रहना खतरनाक होता है। स्पष्ट है कि बुरे व्यक्ति, बुरी पुस्तकें, बुरे स्थान, बुरे कार्य और बुरी वस्तुएं सत्संग के अन्तराय हैं। यदि आप चोर, डाकू, लुटेरे, मद्यपी, व्यभिचारी और दुराचारी व्यक्ति के साथ रहेंगे तो वे बुराइयाँ सीखे बिना न रह सकेंगे। इसी प्रकार यदि आप दुराचार के अड्डों में पहुँच जाते हैं, अश्लील और भद्दी पुस्तकें पढ़ते हैं तो वहाँ से अच्छी बातें नहीं सीख सकेंगे। "काजर की कोठरी में कैसो हू सयानो जाय, एक लीक काजर की लागिहै पै लागिहै" वाली कहावत के अनुसार बुरे स्थानों पर पहुँचने पर आपको उस बुराई का कुछ न कुछ अंश मिले बिना न रहेगा। आप पूछेंगे कि बुराई क्या है? प्रश्न बडा कठिन है लेकिन मैं संक्षेप में यह बता दूं जिसे आपको छिपाना पड़े, जिसे आप ऊँचा सिर करके दूसरों को दिखा न सकें—वह बुराई है। बस इसी बुराई से बचिए। यही सत्संग के मार्ग का रोड़ा है।

सत्संग में अनन्त लाभ हैं। वह हमें वह वस्तु, वह व्यक्ति और ज्ञान प्राप्त करा देता है जिसके द्वारा जीवन बन जाता है। वह डूबतों को सहारा देता है, उबारता है, और गिरतों को खड़ा करता, चलाता है। उसी की कृपा से तुलसीदास को राम प्राप्त करने की जबरदस्त इच्छा हुई थी और दुनियाँ से विराग हुआ था। उसी के प्रसाद से कालिदास कवि बने और बुद्ध महात्मा। इन महापुरुषों के जीवन में इतना जबरदस्त परिवर्तन सत्संग का ही परिणाम था। सत्संग एक चिनगारी है उसके अन्दर ही अज्ञान और अकल्याण भस्म हो जाता है। वह चारों ओर प्रकाश कर देता है। फिर न तो कुछ अप्राप्य रहता है न कुछ अज्ञात। वह अज्ञानी को ज्ञानी, कायर को वीर, दुराचारी को सदाचारी, अन्यायी, पतित को पावन और पापी को धर्मात्मा बना देता है। इसलिए तुलसीदासजी ने कहा है—'बिनु सत्संग विवेक न होई।' और जब विवेक ही नहीं होगा तो

की, उद्धार की दिशा में आगे बढ़ने का कार्य किस प्रकार हो सकता
अतः सत्संग कल्याण का उद्धार का द्वार है। ऐसा कोई अच्छा कार्य
, जो उससे नहीं हो सकता।

सत्सङ्ग में चमत्कार की शक्ति समाई हुई है। डाकू वाल्मीकि एक
रा-सी देर के सत्सङ्ग से आदि-कवि बन गये और नहुष स्वर्ग के राजा
बनकर भी कुसङ्ग के परिणामस्वरूप सर्प बनकर पृथ्वी पर गिरे। सत्सङ्ग
एक क्षण में ही ऐसा चमत्कार कर देता है कि व्यक्ति कहाँ से कहाँ पहुँच
जाता है। शङ्कराचार्य का ज्ञान और महात्मा बुद्ध की साधना सत्सङ्ग का
ही तो परिणाम थे। सत्सङ्ग ने ही शिवाजी को वीर और मीराँ को भक्त
बनाया था। जब तक सत्सङ्ग रूपी पारस का स्पर्श न हो, व्यक्ति भले ही
लोहे की तरह लोगों की उपेक्षा का पात्र बना रहे; लेकिन ज्यों ही उसे
उसका स्पर्श मिल जाता है, वह सोने की तरह चमकने लगता है। दुनियाँ
आश्चर्य से उसको देखने लगती है और वह अपना कल्याण करके दूसरों के
लिए भी एक उदाहरण बन जाता है।

(२७) वर्षा विहार

१—वर्षा के पहिले
२—वर्षा का प्रथम दृश्य
३—जल का विस्तार, बाढ़
४—वर्षा के बाद का दृश्य
५—वर्षा से लाभ
६—उपसंहार

जून का महीना था। तेजी से गर्मी पड़ रही थी। न तालावों
रहा था, न नदी-नालों में। दिन में भगवान् भास्कर की किरणें इत
हो उठती थीं कि शहरों का काम-काज ही जैसे ठप्प हो जाता था
पर मुश्किल से कोई आदमी, नर-नारी किसी पेड़ की छाया
लेते हुए दिखाई देते। कोई लू से परेशान था तो कोई हैजे से।
...लों और जलाशयों पर भीड़ लग जाती थी। पानी का

'जीवन' पूरी तरह सार्थक हो रहा था। पशु-पक्षी और पेड़-पौधे सभी मुरझाए हुए दिखाई देते थे, मानों सभी पानी-पानी पुकार रहे थे। सुबह शाम और रात्रि के समय ही कुछ शान्ति मिलती थी। लेकिन कई बार तो रात में भी लू चलती और गर्म हवा के कारण नींद नहीं आ पाती थी।

ऐसे ही समय में आर्द्रा नक्षत्र आया और आकाश में बादलों की उमड़-घुमड़ प्रारम्भ हुई। सब लोगों की आँखें मेघ की ओर लग गईं। सब उसे आशापूर्ण दृष्टि से देखने लगे। यदि उसकी कृपा न हो तो अनाज कैसे पैदा हो? पानी ही कहाँ से मिले? फिर तो भूख-प्यास से तड़प-तड़प कर सारे जीवधारी ही मर जायँ। अतः उत्सुकता-भरी दृष्टि से देखना स्वाभाविक ही था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे सारा जीवन और आनन्द बादलों में ही सिमिट कर समा गया था। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि बादल ही सब का त्राता बन गया था। बादलों का यह प्रथम आवागमन कितना सुखद था, कितना आनन्दायक! धीरे-धीरे आकाश में बादलों का जमघट-सा लगने लगा और बीच में उनकी घुमड़ भी सुनाई देने लगी। एक दो दिन में ही यह चहल-पहल और तेज हुई और जब पहली बार तवे-सी तपती हुई पृथ्वी पर वर्षा की पहली बूंदें गिरीं तो वह जैसे निहाल हो गई। सारा और वातावरण में मिट्टी की सोंधी बास महक उठी। बच्चे नंगे होकर नाचने लगे और बूढ़े यद्यपि ऐसा नहीं कर सकते थे तथापि अपने मन को शिशुओं की ही तरह नाचने से नहीं रोक पा रहे थे। युवक-युवतियाँ सैर के लिये निकल पड़े और प्रथम वर्षा के आनन्द में खो गये।

अब तो वर्षा का प्रवाह बढ़ने लगा। घण्टे-दो-घण्टे या एक-दो दिन में वर्षा की बूंदें अवश्य गिरतीं और आकाश तो सदैव ही मेघाच्छन्न ही बना रहता। धीरे-धीरे तेज वर्षा का श्रीगणेश हुआ और सारी पृथ्वी पानी में नहाने लगी। दो-तीन बार की तेज वर्षा में ही पृथ्वी की प्यास जैसे शान्त हो गई और पानी सड़कों, नालियों और पगडण्डियों में बहता हुआ तालाबों, नदियों और पोखरों में संचित होने लगा। पाँच दस दिनों में वे भी भर गये और वर्षा का जल बहने लगा। जैसे-जैसे वर्षा तेज होती नदियों में बाढ़ आने लगती और वे अपने कगारों को काटती हुई तीव्र गति से बहने लगतीं।

रों ओर हरियाली छागई । क्या मैदान और क्या पहाड़—सभी दिखाई देने लगे । मोर नाचने लगे और पक्षी अपने कलरव से को गुंजित करने लगे । धीरे-धीरे वर्षा का अतिरेक होने लगा । ार-चार दिन तक सूर्य का दर्शन ही कठिन हो गया और वर्षा ा-सी लगी रहने लगी । नदियों में ज़ोर की बाढ़ आने लगी और ालाब के आसपास के निचले स्थानों को खतरा पैदा होने लगा । तेज आँधी और वर्षा से वृक्ष गिरने लगे तो कहीं मकान ढहने लगे । ीं सड़कें टूटने लगीं तो कहीं रेलवे-लाइन । कभी किसी पुल के टूटने का माचार मिलने लगा, तो कभी बाँध टूटने का । किन्तु ये दुर्घटनाएँ यक्ति को इतना भयभीत नहीं बनातीं जितनी वर्षा के पूर्व की दुर्घटनाएँ ।

वर्षा का आनन्द एक अनोखा आनन्द है । जब चराचर सृष्टि जीवन े उल्लसित होकर प्रफुल्ल बन जाती है तब ऐसा कौनसा व्यक्ति होगा जो प्रसन्न न हो ? कोयल की कूक और मोर का नाच किसका मन न हर लेगा ? कौन व्यक्ति हरे-भरे वृक्षों और मैदानों को देखकर घूमने न निकल पड़ेगा ? वर्षा थोड़ी ही रुकी कि लोग पिकनिक के लिए निकल पड़ते हैं । तालावों और नदियों के किनारे भीड़ लग जाती है । मेले का दृश्य उपस्थित हो जाता है । कोई पिकनिक का आनन्द लेता है, कोई तैरने का । कोई वर्षा की बूँदों में खुशी-खुशी भीगता है और कोई पेड़ों पर या मैदानों में दो-चार साथियों के साथ खेलने-कूदने लगता है । जब चारों ओर जीवन की वर्षा हो रही हो, चारों ओर आनन्द और उल्लास छा रहा हो, तब कौन अभागा निरानन्द और उदास रह सकता है ? बगीचों, झरनों कुंजों तथा इसी प्रकार के अन्य रमणीक स्थानों का सौन्दर्य इस सम चौगुना हो जाता है । हवा के झोकों और वर्षा की बून्दों में नहाते वृक्ष लता-गुल्म इतने सुन्दर लगते हैं कि मन उनकी हरितिमा में रङ्ग जाता पत्तों के ऊपर पड़ी हुई पानी की बूँदें मोती जैसी लगती हैं और ज हवा के झोंके से पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानों मुक्त हस्त से मोती लुटा रही है । जो व्यक्ति वर्षा की बूँदों को ई आशीर्वाद मानकर देखते हैं या उनमें नहाते हैं, वे धन्य हैं । वर्षा क आनन्द वे ही प्राप्त कर पाते हैं ।

वर्षा के लाभों की कोई गिनती नहीं, कोई सीमा नहीं। उसमें सबसे बड़ा लाभ तो यही है कि अनाज पैदा करने का उपक्रम शुरू हो जाता है। किसान खेतों में बीज बोता है, पौधे लहलहाते हैं और फसल तैयार होती है। वर्षा न हो तो हम भूखा मर जायं। इधर पशु-पक्षियों को चारे-दाने के रूप में जो भोजन मिलता है यह सब भी तो वर्षा का ही परिणाम होता है। वर्षा से नदी तालाब और कुए भर जाते हैं तथा पीने का पानी उपलब्ध हो जाता है। हमारी दो बड़ी आवश्यकताएँ अन्न तथा जल उसी से पूरी होती हैं। तीसरी आवश्यकता है शुद्ध वायु। हरे वृक्ष वायु को शुद्ध बनाते हैं और हरे वृक्ष वर्षा के ही कारण तो लहलहाते हैं। इस प्रकार वर्षा हमारे जीवन का सारा सुख और आनन्द अपने अन्दर समेटे हुए आती है। उससे लाभ ही लाभ है कोई हानि नहीं। यदि हानि है तो उसकी अति से जब उसके पूरे वरदान को, पूरे आशीर्वाद को हम ग्रहण नहीं कर पाते तो बाढ़ के रूप में उसके क्रोध का शिकार बनते हैं। यदि वरदान को हम नदियों पर बाँध बाँध कर समेट सकें अथवा बड़े-बड़े तालाब बनाकर उसमें संचित कर सकें तो वर्ष भर चैन से गुजार सकते हैं। बाँधों और तालाबों से नहरें निकाल कर वर्ष भर अपने खेतों को सींच सकते हैं और अभाव एवं गरीबी के जीवन में हमेशा के लिए मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

अंग्रेजों के शासनकाल में हम परतन्त्र थे। सरकार अपने स्वार्थों में सोई हुई थी उसे जनता की कोई परवाह नहीं थी। अतः वह प्रकृति के इस वरदान को प्राप्त करने का क्या प्रयत्न करता? परिणाम यह होता था कि हमें बार-बार प्रकृति के क्रोध का शिकार होना पड़ता था। प्रति वर्ष बाढ़ों में हजारों व्यक्ति बह जाते या बेघरबार हो जाते। सड़कें, रेल्वे लाइन और पुल टूट जाते तथा फसलों और पशुधन की जबरदस्त क्षति होती थी। किन्तु प्रसन्नता की बात है कि अब भारत स्वतन्त्र है। अब जनता की सरकार है और वह वर्षा के इस वरदान को पूरी तरह समेट लेने के लिए प्रयत्नशील है। भाखरा नांगल, दामोदर घाटी, चम्बल आदि बड़े-बड़े बाँधों के द्वारा वह वर्षा का जल संचित कर लेने के कार्य कर रही है। इन बारह वर्षों के समय में इस कार्य में

ौन नहीं जानता कि ईश्वर ने इस वरदान को समेट कर
य में हमारा देश भी दुनियाँ के समृद्ध और उन्नत राष्ट्रों में
लगे। आइये, हम ईश्वर के वरदान रूप में वर्षा का स्वाग
उससे पूरे-पूरे लाभ प्राप्त करें।

(३३) सहकारी खेती

—भूमिका
२—युग की आवश्यकता
३—एक गलतफ़हमी और उसका निराकरण
४—सहकारी खेती के लाभ—(१) उत्पादन की वृद्धि (२) जमीन छोटे टुकड़े होने पर रोक (३) प्रेम और एकता की वृद्धि (४) पूँजीवाद का अन्त
५—उपसंहार

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यही कारण है कि आजकल हमा देश में विकास की जो भी योजनाएँ चल रही हैं उनमें भूमि सुधारों ए अधिक अन्नोत्पादन के कार्यों का प्रमुख स्थान है, किन्तु स्वतन्त्रता के बाद हमारे अनवरत श्रम के बावजूद भी अन्न की समस्या हल नहीं हो सकी है और अब भी हमें अन्न के लिए विदेशों का मुँह ताकना पड़ता है। हमारे देश में ७० प्रतिशत लोग खेती का काम करते हैं। इसलिए देश में किसानों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। किन्तु उनकी स्थिति अच्छी नहीं है। जब तक देश का यह बहुत बड़ा अंग आर्थिक दृष्टि से उन्नत नहीं बनता, तब तक हमारी समस्या हल नहीं हो सकती। पिछले १०० वर्षों में दुनियाँ ने विभिन्न क्षेत्रों में बड़ी तेजी से प्रगति की है किन्तु हमारे देश में खेती करने का वही तरीका अब तक चला आ रहा है जो सदियों पहिले था परिणाम यह हुआ है कि जब हम अमेरिका, रूस, चीन, जापान या इ प्रकार के किसी अन्य उन्नत राष्ट्र से अपने देश की प्रति एकड़ उपज तुलना करते हैं, तो उसमें जमीन-आसमान का अन्तर दिखाई देता है। किसानों को साल भर श्रम करने के बाद भी पर्याप्त अनाज नहीं मिल और यही कारण है कि वे ग्रामों को छोड़कर शहरों की ओर जा रहे

किसानों की इस स्थिति को देखकर ही भारतीय-राष्ट्रीय-कांग्रेस ने पिछले वर्ष अपने नागपुर-अधिवेशन में सहकारी-खेती के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया। इसमें कहा गया कि 'भविष्य में सहकारी सामूहिक खेती का तरीका अपनाया जाना चाहिए इस तरीके के अनुसार भूमि पर यद्यपि किसानों का अपना-अपना स्वामित्व रहेगा तथापि गाँव की सारी भूमि पर वे सब सामूहिक रूप से मिलजुल कर खेती करेंगे और जो कुछ उत्पादन होगा उसे अपनी भूमि के अनुपात से बाँट लेंगे। जो लोग भूमिहीन होंगे उन्हें उनके श्रम के हिसाब से उत्पादन में हिस्सा दिया जायगा। सामूहिक खेती के इस तरीके को प्रचलित करने के लिए पहला कदम यह उठाया जायगा कि सारे देश में सहकारी समितियों का जाल बिछाया जाय। यह काम तीन वर्ष में पूरा कर लिया जायगा और इस बीच जहाँ भी किसान तैयार होंगे सहकारी कृषि प्रारम्भ कर दी जायगी।'

सहकारी कृषि की बात हमारे देश के लिए एकदम नई है। अतः जैसा कि प्रायः होता है इस विचार का भी कुछ लोगों ने विरोध किया। किन्तु इस सब विरोध का मूल गलतफ़हमी ही है। यह गलतफ़हमी कई प्रकार की है। कोई उसके पीछे कम्युनिस्ट प्रणाली को आते हुए देखते हैं, तो कोई उसे अव्यावहारिक और अप्रजातन्त्रिक मानते हैं। सबसे बड़ी गलतफ़हमी यह हुई कि इस प्रस्ताव के द्वारा अब सब लोगों को सहकारी ढंग से खेती करने के लिए विवश किया जायगा। किन्तु वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। विगत १० फरवरी के दिन भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उत्तर-प्रदेश के एक ग्राम में भाषण देते हुए स्पष्टतः कहा था कि सहकारी खेती किसानों पर जबरदस्ती नहीं लादी जायगी। उसे अपनाना या न अपनाना पूरी तरह किसान की मर्जी पर निर्भर रहेगा। वह चाहे तो उसे आज ही अपना सकता है और चाहे तो महीने दो महीने या वर्ष दो वर्ष बाद। उन्होंने फिर यह बात दोहराई थी कि—'सहकारी खेती का यह मतलब नहीं है कि भूमि पर किसान का स्वामित्व नहीं रहेगा। यह प्रयत्न तो केवल इस दृष्टि से है कि देश का उत्पादन बढ़ाने के लिए किसान मिलजुल कर खेती का काम प्रारम्भ करें। जिस प्रकार अकेले सैनिक की कोई विशेष शक्ति नहीं होती किन्तु सेना के अनुशासन में बँध [illegible] बड़ी

उत्पादन बढ़ाने की दिशा में सहकारी

...जाती है, उसी प्रकार उत्पादन
...वशाली कदम सिद्ध होगा।
...देश के सामने जितने भी बड़े-बड़े प्रश्न हैं उन सबमें उत्पादन
...श्न सबसे ज्यादा महत्त्व रखता है। देश में जनसंख्या की वृद्धि
...थ हो रही है और यदि यही स्थिति रही तो आगामी ५५ वर्ष
...ह दुगनी हो जायगी। इस बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए अन्नो-
... वृद्धि करना आवश्यक हो जाता है। किन्तु जहाँ जनसंख्या बढ़ती
...जमीन तो वैसी ही रहती हैं, उसमें कोई वृद्धि नहीं होती। अतः
...न बढ़ाने का एक यही उपाय हो सकता है कि इस प्रकार के नवीन
...ों को अपनाया जाय जिनसे प्रति एकड़ उत्पादन में निरन्तर वृद्धि
...जाय।

हमारे देश में भूमि छोटे-छोटे खेतों में बँटी हुई है। यदि एक पिता
...तीन पुत्र हुए तो पिता की मृत्यु के बाद सारी भूमि तीन टुकड़ो में बंट
...है और जब इन पुत्रों के यहाँ पुत्र होते हैं तो फिर उस भूमि के
...टुकड़े होते हैं। इस प्रकार जमीन निरन्तर छोटे टुकड़ों में बँटती चली
...जा रही है। परिणाम यह होता है कि इन टुकड़ों पर खेती करना बड़ा
मँहगा पड़ने लगता है। न तो उनकी ठीक तरह देख-भाल हो पाती
है, न उनके लिए आधुनिक यन्त्रों का ही उपयोग किया जा सकता
है। आज अमेरिका, चीन, रूस, जापान, आदि जिन देशों में हमारे देश
की अपेक्षा बहुत ज्यादा उत्पादन होता है। वहाँ सर्वत्र आधुनिक यन्त्रों
का उपयोग किया जाता है और जमीन भी बड़े-बड़े प्लॉटों में बँटी रहती
है। सहकारी खेती के द्वारा जहाँ छोटे टुकड़े मिलाकर एक किये जा सकेंगे वहाँ
सब मिलकर आधुनिक यन्त्रों का उपयोग भी सरलता से कर सकेंगे। आज
एक किसान के लिए जिसके पास दस बारह एकड़ जमीन ही है न तो
ट्रैक्टर या पानी का पम्प खरीदना सरल होता है, न उसका ठीक ठीक
प्रयोग कर पाना ही। सामूहिक खेती इस प्रकार की सब कठिनाइयों के
लिए एक अच्छा हल पेश करेगी।

सामूहिक सहकारी खेती किसानों में प्रेम और सहयोग का वातावरण
पैदा करेगी और लोगों की संकुचित मनोवृत्ति को दूर कर उनके दृष्टिको...

अवसर होता और चूँकि अपने श्रम का लाभ भी उसे भूमि त से मिलता है, अतः उत्साह कम होने का कोई कारण ता।

न प्रकार वर्तमान स्थिति में उत्पादन बढ़ाने तथा ग्रामीण जनता के का स्तर ऊँचा करने का एक मात्र उपाय सहकारी खेती ही है। द्वारा जमीन की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के प्रयत्न सरलता-पूर्वक किये सकते हैं—उदाहरणार्थ अच्छे बीज, खाद और सिंचाई का प्रवन्ध किया सकता है तथा ट्रेक्टर जैसे औजार एवं विशेषज्ञों की सलाह प्राप्त की सकती है। सरकार और विज्ञान दोनों की सहायता ग्रामों तक पहुँचना रल हो जाता है। यदि यह हो गया तो देश में समाजवादी व्यवस्था लाना बड़ा सरल हो जाता है।

आज हमारे सामने यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य है कि हम शङ्का-कुशङ्काओं छोड़कर खुले मस्तिष्क से इस पर विचार करें तथा यदि हमें इसमें ई दोष प्रतीत न होता हो तो उसे अपनाने का प्रयत्न करे। यदि कुछ विचारशील किसान साहस के साथ इस दिशा में कदम बढ़ा देते हैं तो फिर उनकी सफलता अनेक किसानों को प्रोत्साहित करेगी और सहकारी खेती प्रारम्भ हो जायगी। इसमें कोई सन्देह नही कि सहकारी खेती का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है।

(३४) सामुदायिक विकास योजनाएँ

१—सामुदायिक विकास योजना का अर्थ
२—उसका उद्देश्य
३—कार्य-क्षेत्र
४—योजनाओं के रूप
६—कार्य-विधि
६—व्यवस्था
७—उपसंहार

भारत ग्रामों का देश है। उसके लगभग तीन चौथाई निवासी में रहते हैं। शहरों में सुखी जीवन के बहुत से साधन उपलब्

ा था। उस समय ५५ केन्द्रों में काम प्रारम्भ किया गया
र ने इस कार्य में कुल १३ करोड़ ४८ लाख रुपया खर्च
जनता ने भी विकास-कार्यों में पूरा-पूरा योग दिया और शरीर,
एवं नकद चन्दे के रूप में ७ करोड़ ४८ लाख रुपये दिये। इस
हले ही वर्ष लगभग २१ करोड़ रुपया कार्यों पर व्यय हुआ जिसमें
हाई भाग जनता का भी था।

न योजनाओं के सुसंचालन के लिए केन्द्र-समिति का निर्माण किया
है। यह समिति केवल नीति निर्धारित करती है। नियोजन समिति के
क्ष प्रधानमन्त्री होते हैं। उसके सदस्य भी इस केन्द्रीय-समिति के
स्य होते हैं। योजना की व्यवस्था के लिए केन्द्र के मन्त्रियों की भी एक
मिति बनाई गई है जो सुयोग्य परामर्शदाताओं की सलाह से योजनाओं
ा संचालन करती है। प्रत्येक राज्य में मुख्य-समिति की देखभाल में
एक राज्य-समिति भी बनाई गई है। प्रत्येक योजना का एक अध्यक्ष
होता है। प्रान्तीय-सरकारों के ब्लॉक उसकी सहायता करते हैं। इसके
अतिरिक्त जिले में एक-एक योजना-परामर्शदात्री-समिति भी होती है
जिसमें विधान-सभा के सदस्य, जिला-परिषद् के सदस्य तथा अन्य योग्य
व्यक्ति होते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ग्रामीण विकास के लिए यह एक मजबूत
ार आगे वढ़ा हुआ कदम है। इस कार्य में ग्रामों का नक्शा वदलने की
ाक्ति है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पिछले वर्षों में इन योजनाओं ने
महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और ग्रामों को पुरानी गिरी हुई स्थिति से काफी
आगे वढ़ाया है। किन्तु जितनी अच्छी तरह इनको कार्यान्वित किया जाना
था उतने ढंग से ये कार्यान्वित की गई होती तो देश का नक्शा ही बदल
गया होता। पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार तक तो इन्हें १९५६
अन्त तक पूरा हो जाना चाहिए था किन्तु वह अभी तक चल रहा है
इनमें होने वाली ढीलढाल और पोलपाल के लिए हमें अपने राष्ट्रीय च
को ही दोषी ठहराना होगा। क्या हम आशा करें कि शीघ्र ही हम अ
इस कमजोरी को निकाल वाहर करेंगे ताकि देश तेजी से प्रगति क
और हमारे देश में फिर सुनहले दिन आ सकें ?

न का कोई अच्छा उपयोग कर सकें तो वह देश के लिए बड़ा हो सकता है। अभी तक हम अपने जल के केवल १० प्रतिशत उपयोग कर पाये हैं। हम उस दिन की प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से कर जबकि शत-प्रतिशत जल का उपयोग हो सकेगा।

जल-शक्ति के उपयोग की वात हमारे देश के लिए नई नहीं हैं। न हिन्दू-काल के राजा लोग नहरों की उपयोगिता जानते थे और ने जगह-जगह कुछ नहरें बनवाई थीं। किन्तु उस समय वे केवल चाई का लाभ ही उससे प्राप्त करते थे। वस्तुतः उस समय जनसंख्या हुत कम थी और थोड़ी सिंचाई से ही देश की आवश्यकताएं पूरी हो ाती थीं। किन्तु जैसे जैसे जन-संख्या बढ़ी, जीविका की समस्या जटिल बनने लगी और यह अनुभव किया जाने लगा कि प्राकृतिक साधनों का अधिकाधिक उपयोग किया जाय। मुस्लिम-काल में नहरों का कुछ विकास और हुआ, अव वे यातायात का साधन भी बनीं और उनके द्वारा माल भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाने लगा। शाहजहाँ और शेरशाह ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया। ब्रिटिश शासन काल में इन नहरा की मरम्मत की गई और कुछ नई नहरें भी खोदी गईं। किन्तु सरकार ने यह कार्य उदार हृदय से नहीं किया। अधूरे मन से किया हुआ उसका प्रयत्न कोई अधिक लाभदायी नही हो सका।

सन् १९१९ मे जिन सुधारों की घोषणा ब्रिटिश सरकार ने की उनके अनुसार सिंचाई को प्रान्तीय विषय वना दिया गया और प्रान्तीय सरकार सिंचाई-कार्य करने लगी। इससे प्रत्येक प्रान्त को अपने साधनों के विकास का सुअवसर मिला। सन् १९३१ में भारत सरकार ने राजकीय कमीशन की सिफारिशों के अनुसार एक 'सिंचाई समिति' की स्थापना की। इस समिति का कार्य था सिंच विषयक कार्यों में समन्वय स्थापित करना तथा विभिन्न राज्यों के वी सूचनाओं की अदला-वदली करना। सारांश यह कि इस समय तक न योजनाएं सिंचाई तथा जल-विद्युत् उत्पादन का ही काम करती थीं अधिक नहीं। सन् १९४५ तक यही स्थिति रही। सन् १९४५ में पहले एक केन्द्रीय जल-मार्ग, सिंचाई तथा जलयान आयोग की स

योजनाएँ	योजनाकाल में प्रस्तावित व्यय (करोड़ रुपयों में)	योजनाकाल में अतिरिक्त सिंचाई की व्यवस्था (लाख एकड़में)	योजनाओं के पूरा हो जाने पर सिंचाई की वृद्धि (लाख एकड़में)
ड़ा नांगल (केन्द्रीय सरकार)	९९.९	१६.६	३६.०
ोदर घाटी (,,)	६२.७	६.०	११.४
रा कुण्ड (,,)	६१.२	[illegible]	१७.८
ाकरा पार (वम्वई)	५.[illegible]	३.	६.५
ुंगभद्रा (मद्रास व हैदरावाद)	३[illegible].१	३.२	७.०
मच्छकुण्ड (मद्रास व उड़ीसा)	११.५	—	—
मयूराक्षी (पश्चिमी वंगाल)	१२.४	६.०	६.०
लोअर भवानी (मद्रास)	४.६	१ ३	२.१
घाट प्रथा (वम्वई)	४.५	०.५	१.०
गंगापुर (वम्वई)	२.३	०.१	०.५
ोसी भाग १			
कोयना भाग १			
कृष्णा	४०.०	——	३८.२
चम्वल भाग १			
रिहन्द			
अन्य	२२३.३	४७.४	७६.१
योग	५५६.४	८७.६	२०१.६

प्रथम पंचवर्षीय योजना के पहले ३ वर्षों में भाखरा नांगल, हरिके
दामोदर घाटी, हीरा कुण्ड, काकरापार वाँध, मयूराक्षी योजना तथा तुंगभ
नदी-घाटी योजना को कार्यान्वित किया गया। वाद में, कोसी नदी योज
को भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया। उसके वाद यह निश्चित कि
गया था कि आर्थिक साधनों की उपलब्धि हो जाने पर कोसी वाँध, कृ
कोयना, चम्वल, और रिहन्द वाँध पर कार्य प्रारम्भ किया जाय।
लिये वह वड़ी प्रसन्नता का विषय है कि ये सव योजनाएँ लगभग पू
चुकी हैं और अव छोटी-छोटी अनेक योजनाएँ हाथ में ली जा र

शासन की वागडोर हाथ में लेते ही हमारे देश के नेताओं ने देश की आर्थिक स्थिति सुधारने और औद्योगिक कार्यक्रमों को आगे वढ़ाने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं को प्रारम्भ करने का निश्चय किया और तदनुसार सन् १९५१ में देश की आर्थिक और औद्योगिक प्रगति के लिए भारतीय योजना-आयोग ने पंचवर्षीय योजनाओं का प्रस्ताव किया। इस प्रस्ताव के अनुसार प्रथम योजना का श्रीगणेश हुआ। प्रथम योजना की कार्यावधि अप्रेल सन् १९५१ से लेकर मार्च सन् १९५६ ई० तक थी। प्रथम योजना के वाद अप्रेल सन् १९५६ से द्वितीय योजना प्रारंभ हुई जो मार्च १९६२ में समाप्त हो गई। इन दोनों योजनाओं के १० वर्ष के समय में हमारे देश ने अभूतपूर्ण उन्नति की है। इस समय में जहाँ हमारी राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई है वहाँ कृषि पदार्थों के उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार प्रथम तथा द्वितीय योजनाओं में एक खरव से कुछ अधिक रुपये खर्च किये गये। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सन् १९५१ से सन् १९५६ तक सरकारी-क्षेत्र में १५६० करोड़ रुपयों का नियोजन हुआ। इस प्रकार कुल व्यय ३३६० करोड़ रुपये हुआ। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कुल व्यय लगभग सात हजार करोड़ रुपया हुआ जो कि पहली योजना से वहुत अधिक है।

इन दस वर्षो के समय में दोनों योजनाओं की उपलब्धि वड़ी आकर्षक और उत्साहवर्धक रही है। सवसे अधिक महत्त्व की वात है—राष्ट्रीय आय में वृद्धि। योजना आयोग का मत था कि दोनों पंचवर्षीय योजनाओं के वाद राष्ट्रीय आय में ४२ प्रतिशत तथा प्रति व्यक्ति औसत आय २० प्रतिशत वढ़ जायगी। कृषि-सम्वन्धी उत्पादनों में वृद्धि होने के कारण पहली योजना के वाद १८ प्रतिशत की वृद्धि राष्ट्रीय आय में हुई थी, द्वितीय योजना में २५ प्रतिशत वृद्धि का अनुमान किया था, जो लगभग पूरा हो गया है।

कृषि सम्वन्धी उपज में भी पर्याप्त सफलता मिलने की आशा है। आयोग का अनुमान है कि दोनों योजनाओं के पूरा होने पर अनाज की उपज ५२४ लाख टन से वढ़कर ७५० लाख टन हो जायगी और तिलहन की उपज ४१ लाख टन से वढ़कर ७२ लाख टन। कपास की उपज २९

कारखानों का समुचित लाभ प्राप्त करना जो जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले माल के उत्पादन में लगे हुए हैं। सारांश यह है कि योजना-आयोग का लक्ष्य था औद्योगिक दृष्टि से सर्वाङ्गीण उन्नति की दिशा में कदम बढ़ाना। अपने इस लक्ष्य की प्राप्ति में उसने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। पिछले १० वर्षों में उसने बुनियादी उद्योगों, मशीन तैयार करने वाले उद्योगों तथा अन्य प्रकार के छोटे उद्योगों में पर्याप्त उन्नति की है। पहली योजना के प्रारम्भ होने के पूर्व हमारे देश में कुल १० लाख टन लोहे का उत्पादन होता था। पहली पंचवर्षीय योजना के बाद १३ लाख टन हो गया और अब दूसरी पंचवर्षीय योजना के बाद वह ४५ लाख टन हो गया है। क्या इतनी बड़ी सफलता अपना कोई उल्लेखनीय महत्त्व नहीं रखती?

किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि ग्रामोद्योगों अथवा कुटीर-उद्योगों की ओर योजना आयोग का ध्यान न गया हो। इन उद्योगों के विकास में भी काफ़ी काम हुआ है। अकेले हाथ-करघा वस्त्र का उत्पादन इन दस [illegible] में तिगुना हो गया है। सन् १९५०-५१ में उसका उत्पादन ७४ करोड़ २० लाख गज था, किन्तु अब वह दो अरब १२ करोड़ ५० लाख हो गया है। खादी का उत्पादन तो पहले से १०-११ गुना बढ़ गया है। सन् १९५० में खादी का उत्पादन ७० लाख गज था, किन्तु अब यह ८ करोड़ हो गया है।

इन योजनाओं का उद्देश्य केवल औद्योगिक विकास कभी नहीं रहा। उन्होंने सामाजिक सेवा के कार्य को भी अपने कार्य का महत्त्वपूर्ण अंग माना और शिक्षा, स्वास्थ्य एवं समाज-कल्याण के क्षेत्र में भी आशातीत सफलता प्राप्त की। जहाँ तक स्वास्थ्य का सम्बन्ध है मलेरिया, इन्फ्लुएन्जा आदि रोगों की रोक-थाम का प्रयत्न किया गया है। पीने के जल का समुचित प्रबन्ध भी इस अवधि में हुआ है और जगह-जगह नये अस्पताल खोलने, जच्चा-खाने बनाने तथा बड़े अस्पतालों में मरीजों के बिस्तर बढ़ाने का काय भी काफ़ी हुआ है। इस कार्य में लगभग ९९ करोड़ रुपया व्यय किया गया। इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी बड़ी प्रगति हुई। सन् १९५०-५१ में ६ से ११ वर्ष तक की

सरकारी व्यय के लिये स्वीकृत व्यय का विवरण निम्न प्रकार है:—

(करोड़ रुपये)

	कुल व्यय				राज्य तथा केन्द्र शासित क्षेत्र	
	प्रस्तावित	प्रतिशत	प्रारम्भिक रूपरेखा	प्रतिशत	प्रस्तावित	प्रतिशत
१. कृषि और सामुदायिक विकास	१०७२	१४	१०२५	१४	९४७	२४
२. सिचाई (छोटी-बड़ी)	६५६	९	६५०	९	६५१	१७
३. बिजली	१०१९	१४	९२५	१३	८९४	२३
४. ग्रामोद्योग और लघु-उद्योग	२५६	३	२५०	३	१३६	४
५. उद्योग और खनिज पदार्थ	१५२६	२०	१५००	२१	७६	२
६. परिवहन और संचार	१४७५	२०	१४५०	२०	२५०	६
७. समाज सेवाएँ और विविध	१२९६	१७	१२५०	१७	९४६	२४
८. सूचियाँ	२००	३	२००	३		
कुल	७५००	१००	७२५०	१००	३९००	१००

मोटा अनुमान है कि सरकारी क्षेत्र के ७५०० करोड़ रुपये के व्यय
में १२०० करोड़ रुपये चालू व्यय की रकम तथा ६३०० करोड़ रुपये
विनियोग व्यय की रकम शामिल होगी। गैर-सरकारी क्षेत्र में पूँजी
विनियोग ४१०० करोड़ रु० का होगा। तीसरी योजना में कुल पूँजी
विनियोग १०४०० करोड़ रुपये का होगा जबकि योजना के प्रारूप
नियोग १०२०० करोड़ रु० का अनुमान था।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में खेती और सामुदायिक विकास के
सार्वजनिक क्षेत्र में १०२५ करोड़ रुपये तथा सिंचाई (बड़ी और मध्
योजनाओं के लिए ६५० करोड़ रुपये रखे गए हैं। इसके अलावा अ
है कि लोग अपनी ओर से भी इन कामों के लिए ८०० करोड़

तृतीय पंचवर्षीय योजना में भारी मशीनें बनाने वाले फाउण्ड्री फोर्ज
ाई और ढलाई) कोयला खोदने की मशीन बनाने वाले और भारी
ानी औजार बनाने वाले कारखाने कायम करने की व्यवस्था की गई है।
ालौर के मशीन टूल्स कारखाने का उत्पादन दुगुना करने, भोपाल में
ारी बिजली के सामान के कारखाने को बढ़ाने, बिजली के भारी सामान
के दो अन्य कारखाने बढ़ाने, ऊँचे दबाव के बायलर और सूक्ष्म यन्त्रों के
कारखानों को भी लगाने की योजना है। कागज, सीमेंट, चीनी, चमड़ा आदि
बनाने की प्रायः सब मशीनें देश में ही तैयार होने लगेंगी। दूसरी योजना
के अन्त तक छह करोड़ टन कोयला निकाला जाता था, अब ६ करोड़ ७०
लाख टन कोयला निकाला जाने लगेगा। नवपाटी और बरोनी में मिट्टी
के तेल को साफ़ करने के कारखाने बनाये जायेगे और जहाँ तेल मिलने की
आशा है वहाँ खोज की जायगी।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में ग्रामोद्योगों के विकास का भी ध्यान रखा
है। इन उद्योगों को इस प्रकार सहायता दी जायगी कि हाथ-करघा
ौर घरेलू-उद्योगों के द्वारा सन् १९६५-६६ में ३५० करोड़ गज कपड़ा
बनाया जा सके। दूसरी योजना के अन्त तक ६० उद्योग-पुरियाँ बनाने
का लक्ष्य था। अब तीसरी योजना के अन्त तक उनकी संख्या ३६० हो
जायगी। इसी प्रकार बिजली के उत्पादन की क्षमता ५८ लाख किलोवा
से बढ़ाकर एक करोड़ १८ लाख किलोवाट कर दी जायगी। अणुशक्ति
३ लाख किलोवाट बिजली तैयार की जायगी। अब १५ हजार गाँवों
बिजली लग जायगी और बिजली लगने वाले ग्रामों की कुल संख्या
हजार हो जायगी। १२०० मील लम्बी नयी रेलवे-लाइन बिछाई ज
और २०,००० मील लम्बी सड़कें तैयार की जायँगी।

तीसरी योजना के अन्त तक ६ से ११ वर्ष तक की आयु
बालकों को अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा दी जाने लगेगी। इन्जी
डाक्टरी आदि की शिक्षा के नये कॉलेज बनाये जायँगे और इन्ज
तथा डाक्टरी पास करने वालों की संख्या काफी बढ़ जायगी।

ऊपर जिन लक्ष्यों का उल्लेख किया गया है उन्हें पूरा क
तीसरी योजना की अवधि में १०२०० करोड़ रु० की कुल

हीं है जितना युवकों का आज स्कूल-कॉलेजों में शिक्षा पाने वाले युवक ही ल देश के कामों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने वाले हैं। अतः देश के व-निर्माण और समृद्धि का प्रश्न युवकों की बुद्धिमता, कार्य-कुशलता, त्साह, लगन, और निष्ठा के साथ घनिष्ठता से जुड़ा हुआ।

कौन नहीं जानता कि आज के विद्यार्थी कल के नागरिक हैं। अपने वेद्यार्थी-जीवन में वे अपने को जितना योग्य बना लेते हैं, जितनी कार्य-कुशलता और बुद्धि प्राप्त कर लेते हैं, देश को उन्नत बनाने की उनकी क्षमता भी उतनी ही बढ़ जाती है। विद्यार्थी-जीवन एक ऐसा समय है जब कि प्रभाव-ग्रहण की क्षमता सबसे अधिक रहती है। इस आयु में वह जो भी प्रभाव ग्रहण करता है वे ही उसके व्यक्तित्व और चरित्र का निर्माण करते हैं। आगे की आयु में इस समय की सीखी बातों को भुलाना कठिन हो जाता है। अतः देश की उन्नति का काम विद्यार्थियों की उन्नति के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता।

सन् १९४७ के पूर्व जब हमें स्वतन्त्रता नहीं मिली थी हमारे नेता सरकार से लड़ रहे थे और उनके आह्वान पर जब तब हमारे नवयुवक भी मैदान में उतर आते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वतंत्रता-संग्राम में युवकों ने बड़ा भाग लिया और उसके लिए बड़ी कीमत भी चुकाई। किन्तु अब समय बदल गया है। जब तक हमारे विद्यार्थी इस बदली हुई स्थिति के प्रति सजग नहीं होते, तब तक न तो वे स्वयं का कोई लाभ कर सकते हैं न अपनी मातृभूमि का ही।

यह दुर्भाग्य है कि पिछले कुछ वर्षों से हमारे विद्यार्थी आलोचना के विषय बने हुए हैं। उनकी अनुशासन-हीनता और कानून को न मानने की प्रवृत्ति इस सीमा तक बढ़ गई है कि चारों ओर से उसके विरुद्ध आवाज उठाई जाने लगी है। लखनऊ, इलाहाबाद, ग्वालियर, कटक, पटना और इन्दौर में कुछ ऐसी स्थिति हो गई कि विद्यार्थियों की हिंसक कार्यवाइयों पर रोक लगाने के लिए लाठी और गोली वर्षा तक करनी पड़ीं। लखनऊ, इलाहाबाद और बनारस तो जैसे इन कार्यवाहियों के केन्द्र ही बन गये हैं। सन् १९५३-५४ के वर्ष में तो यह तूफान इतना प्रबल हुआ कि लखनऊ और इलाहाबाद के विश्वविद्यालय कुछ दिनों तक बन्द कर देने पड़े

किन्तु इस सबसे हमारा आशय यह कदापि नहीं कि हमारे विद्यार्थी डरपोक एवं आवश्यकता से अधिक आज्ञाकारी बन जायँ और अपने अधिकारों व आत्म-सम्मान की कोई चिन्ता ही न करें। अधिकारों के लिए लड़ना चारित्रिक शक्ति का द्योतक है तथा आत्म-सम्मान और विचार-स्वातन्त्र्य ऐसे गुण हैं जिनकी प्रशंसा की जानी चाहिए। अतः जब हम यह कहते हैं कि विद्यार्थियों को अनुशासन में और शान्त रहना चाहिये तो हमारा यही आशय होता है कि अपने अधिकारों तथा राज्य के अधिकारों में संतुलन बनाये रहें। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह कोई सरल काम नहीं किन्तु आज इसी की आवश्यकता है। हमारे विद्यार्थी यदि इस ओर ध्यान दें तो यह असम्भव भी नहीं है।

विद्यार्थियों के सम्बन्ध में दूसरी महत्त्वपूर्ण शिकायत यह है कि उनका ध्यान अध्ययन से हटता जा रहा है और उनका शैक्षणिक स्तर घटता जाता है। इससे भी बुरी बात यह है कि हमारे विद्यार्थी केवल परीक्षा पास करने की धुन में रहते हैं और इसके लिये न नकल करने में चूकते हैं न किसी अनुचित साधन के प्रयोग में। प्रति वर्ष बोर्ड और युनिवर्सिटी की परीक्षाओं में हजारों विद्यार्थी नकल करते हुए पकड़े जाते हैं। इतना ही नहीं हमारी छात्राएँ भी नकल करती हुई पाई जाती हैं। यदि वे केवल नकल ही करते हों तो भी एक बात है किन्तु निरीक्षकों को धमकियाँ भी देते हैं और अनेक बार उन पर हमला भी करने में आगा-पीछा नहीं देखते। आये दिन समाचार-पत्रों में ऐसे समाचार प्रकाशित होते रहते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सब अच्छा नहीं है। इससे भी समझदार व्यक्ति का सिर लज्जा से झुके बिना न रहेगा। यदि जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में ही विद्यार्थियों का यह हाल रहे तो उनके आगे आनेवाले जीवन का क्या हाल होगा। फिर तो उनसे ईमानदारी, आत्म-संयम और चारित्रिक पवित्रता की आशा करना दुराशा-मात्र होगी।

स्वतन्त्र भारत में विद्यार्थियों का स्थान बड़ा गौरवशाली और चमकता हुआ होना चाहिये। उन्हें देश के भविष्य का निर्माण करना है। उनके ऊपर देश और समाज के बहुत बड़े उत्तरदायित्व हैं। उनकी योग्यता-अयोग्यता अथवा चारित्रिक पवित्रता-अपवित्रता पर देश का भविष्य निर्भर

है। अतः इसके लिये उन्हें सबसे पहले चरित्र को ही बनाना होगा। उन्हें आत्म-संयम और दूसरों के अधिकारों का सम्मान करना सीखना होगा। उन्हें साहस और ईमानदारी के गुण भी प्राप्त करने होंगे। इतना ही नहीं उन्हें अपने विषय का अच्छा अध्ययन करना होगा और साम्प्रदायिकता जाति, रङ्ग, वर्ण आदि के संकुचित विचारों से ऊपर उठना पड़ेगा। तभी वे सच्चे अर्थों में देश की आशा और आने वाले गौरवशाली भारत के निर्माता बन सकेंगे।

(३४)—अनिवार्य सैनिक शिक्षा

१—भूमिका
२—*हमारी स्वतन्त्रता के मार्ग के खतरे*
३—*अनिवार्य सैनिक शिक्षा की आवश्यकता*
४—*एन० सी० सी० और ए० सी० सी०*
५—*सैनिक शिक्षा के लाभ*
६—उपसंहार

वर्षों की परतन्त्रता के बाद हमारा देश स्वतन्त्र हुआ और हम लोग अपनी भूमि के मालिक बने। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अब हमारे सामने विकास के अनेक दरवाजे खुल गये हैं और हम विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति करने के लिए मुक्त हो गये हैं। किन्तु विकास की दिशा में बढ़ते हुए हमें यह बात नहीं भूलना है कि आस-पास की कुछ शक्तियाँ हमारी स्वतन्त्रता को अच्छी नजर से नहीं देख रही हैं। वे इस ताक में हैं कि ज्यों ही अवसर मिले हमारे देश की भूमि पर अधिकार करलें। अतः हमारे सामने आज जितने भी प्रमुख प्रश्न हैं उनमें से एक यह भी है कि हम अपनी स्वतन्त्रता को किस प्रकार टिकाये रख सकते हैं। जब हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि हमें इस सम्बन्ध में सतत जागरूक रहना पड़ेगा यदि हम थोड़े भी लापरवाह हुए तो हमें बहुत बड़े खतरे [illegible] करना पड़ेगा। देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के दो ही मार्ग हैं
अहिंसा। हिंसा का मार्ग सारी दुनियाँ में प्रचलित है और स

रक्षा के लिए सैनिक शक्ति बढ़ाते चले जा रहे हैं। दूसरा मार्ग अहिंसा का है जो गांधीजी ने हमें बताया था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अहिंसा का मार्ग ही श्रेष्ठ है किन्तु एक ओर तो उसके लिए गांधीजी जैसा ही मार्ग-दर्शक चाहिये, दूसरी ओर अभी उसमें बहुत बड़े खतरे भी हैं। आज दुनियाँ का कोई राष्ट्र अहिंसा के मार्ग पर बिना पूरी तैयारी किये बिना चल पड़े तो हिंसा की शक्ति में विश्वास करने वाले राष्ट्र हमारे लिए घातक सिद्ध हो सकते हैं। दुनियाँ के बड़े-बड़े राष्ट्र भले ही शान्ति और सद्भावना की बात करते रहें किन्तु तथ्य यह है कि आजकल सारे प्रश्नों का हल सैनिक शक्ति से ही होता है। अतः आज विसैन्यीकरण का मार्ग अपनाना मानो खतरों को न्यौता देना है। दोनों विश्व-युद्धों का यही सबक है।

हमारी स्वतन्त्रता अभी अपनी शैशवावस्था में ही है। जिस प्रकार एक नवजात बालक को रक्षा और पोषण की आवश्यता होती है, उसी प्रकार हमारी स्वतन्त्रता की भी रक्षा और पोषण की आवश्यकता है। यदि हम अपने आस-पास दृष्टि डालें तो हमें स्पष्ट दिखाई देता है कि पश्चिम में पाकिस्तान जब-तब लड़ाई की धमकी देता रहता है। काश्मीर के प्रश्न को लेकर तो वह किस दिन क्या न कर गुज़रेगा कहा नहीं जा सकता। उत्तर-उत्तर और पूर्व में साम्यवाद अपनी शक्ति बढ़ाता हुआ हमारी सीमा के निकट पहुँच गया है। यहाँ तक कि उसने हमारी सीमाओं का अतिक्रमण भी प्रारम्भ कर दिया है। उसने तिब्बत पर कब्जा जमा लेने के बाद नेपाल, भूटान, बर्मा आदि पर अपनी गिद्ध दृष्टि जमाई है और हमारी सैकड़ों मील भूमि पर अधिकार करके हमारे लिये एक संकट का कारण बन गया है। जिस हिमालय-पर्वत को हम अब तक अजेय मानते थे और जिसके कारण हम अपनी उत्तरी सीमा को बिलकुल सुरक्षित मानते थे, वह अब अजेय नहीं रह पाया है, इसमें अब हमारी उत्तरी सीमा को सुरक्षित रखने की क्षमता ही रह गई है। अतः स्पष्ट है कि हमारी स्वतन्त्रता पर खतरों के बादल मँडरा रहे हैं और यदि हम जागरूक न रहें तो किसी भी दिन अपनी स्वतन्त्रता से हाथ धोना पड़ सकता है।

है न टोजो का जापान। यह तो केवल सुरक्षात्मक कार्यवाही है और के समय ही इन युवकों को बुलाया जा सकता है। हमारा देश तिप्रिय है, वह युद्ध नहीं चाहता। किन्तु यदि किसी ओर से हमारे ऊपर थोपा जाता है तो हमको उसका मुकाबला करना ही पड़ेगा। नक शिक्षा किसी भी राष्ट्र को लड़ाकू नहीं बनाती। वह एक शारीरिक नुशासन पैदा करती है। अंग्रेज़ों के समय भी इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता था। वर्तमान एन० सी० सी० उसी का विकसित रूप है।

इस प्रकार की सैनिक शिक्षा से हमें अनेक लाभ होंगे। वह भारतीय जनता में अनुशासन की भावना पैदा करेगी। कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारे देश में इसका बड़ा अभाव है। विशेषकर हमारे विद्यार्थियों में तो अनुशासनहीनता और अनुत्तरदायित्व निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं और जबसे देश स्वतन्त्र हुआ है तब से इसमें और भी वृद्धि हो गई है। अतः सैनिक शिक्षा इस बुराई को दूर करेगी। वह देश में अनुशासन पैदा करेगी और हमें संगठित बनाएगी। हमारी शिक्षा में जो आध्यात्मिकता और बौद्धिकता की अधिकता है और शारीरिक विकास की उपेक्षा है उसका भी इलाज सैनिक शिक्षा ही करेगी। वह युवकों को शक्तिशाली बनाने के साथ-साथ सच्चरित्र बनाएगी इसके अतिरिक्त, वह युवकों में नेतृत्व की शक्ति का भी विकास करेगी और उन्हें सहिष्णु बनाएगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सैनिक शिक्षा समय की सबसे बड़ी आवश्यक[ता] है। यही कारण है कि सरकार ने उसकी आवश्यकता को अनुभव कर इस दिशा में प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया है; फिर भी यह तो स्वीकार क[रना] ही पड़ेगा कि अभी इस दिशा में हमें और भी काम करना है क्योंकि कुछ हुआ है वह पर्याप्त नहीं है। अभी आर्थिक कठिनाइयाँ, जनत[ा का] सहयोग और संगठन सम्बन्धी कठिनाइयाँ उसके मार्ग को प्रशस्त नहीं दे रही हैं। किन्तु शीघ्र ही वह दिन आयेगा जब इन कठिनाइयों [को दूर] किया जा सकेगा और राष्ट्र में अनिवार्य सैनिक-शिक्षा के द्वारा [...] शक्ति, चारित्रिक पवित्रता और पारस्परिक सहिष्णुता जैसे गुण [...] जा सकेंगे।

जाती थी। उनके कप्तान पीटर अलवारिस ने, जो कि एक ऊँचा पूरा नवयुवक था, आगे बढ़कर हमारा स्वागत किया और बारी-बारी से हमारे सब खिलाड़ियों से हाथ मिलाये। खेल का समय निकट था, अतः हम लोग तैयार होकर मैदान में आ गये। अम्पायर और रॉयल क्लब के खिलाड़ी भी हमारे साथ थे। सबसे पहले खेल-रिवाज के अनुसार सिक्का उछाला गया और दुर्भाग्य से हमारा कप्तान उसमें हार गया। यह कोई अच्छा लक्षण नहीं था, अतः हम लोगों को एक चोट-सी लगी; किन्तु इस तरह हिम्मत हारना तो हमारा स्वभाव नहीं था। रॉयल क्लब ने ज्यों ही पहले खेलने की घोषणा की हम लोग मैदान में अपने नियत स्थान पर पहुँच कर खड़े हो गये। मन में बड़ी हलचल थी और अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे। यद्यपि यह सब जल्दी-जल्दी होता जा रहा था, तथापि विचार कहाँ रुकते हैं?

खेल प्रारम्भ हुआ। रॉयल क्लब की ओर से जेकब और जॉन की जोड़ी खेलने आई। दोनों ही उनके अच्छे बल्लेबाज थे। हमारे तेज गेंदबाज साहू गेंद फेंकना प्रारम्भ किया। पहली दो गेंदों ने ही जेकब को घबरा दिया। पहली गेंद पर उसने अच्छा शाट लगाया लेकिन वह हमारे गेंदबाज साहू के पास पहुँची और उसने रोक लिया। दूसरी गेंद वह खेल नहीं सका और वह विकेट के बहुत पास से निकल गई। तीसरी गेंद पर उसने पूरी ताकत से एक शॉट लगाया, किन्तु हमारे खिलाड़ी पाण्डे ने उसे रोक दिया। चौथी और पाँचवीं गेंद जेकब ने अपने पैड से रोकी। छठी गेंद को उसने पूरी ताकत से पीटने का प्रयत्न किया किन्तु हमारे खिलाड़ी मदन ने उसे झेल लिया। दर्शकों ने ताली पीटी और हमारे खिलाड़ियों में नई चेतना आ गई हमने एक भी रन दिये बिना एक विकेट ले लिया था। जेकब जैसे खिलाड़ी का एक भी रन न बना सकना हमारे लिए एक अच्छी शुरूआत थी। हमें ऐसा लगने लगा कि हम रॉयल क्लब के ३५-४० रन से अधिक न बनने देंगे।

शीघ्र ही उनका दूसरा खिलाड़ी मैदान में आया। उसने जम कर खेलना प्रारम्भ किया। साहू की गेंद वह एक के बाद एक पीटता ही गया और रॉयल क्लब की रन-संख्या देखते ही देखते बढ़ने लगी। हमारे कप्तान ने साहू के स्थान पर चन्दू को गेंद फेंकने भेजा। चन्दू हमारा सबसे तेज गेंदबाज था। उसने इस बल्लेबाज की कमजोरी को एक ही ओवर में मालूम

ही गये । सातवाँ खिलाड़ी श्यामू शून्य पर ही आउट हो गया । रन संख्या ६१ थी और यदि खेल की यही गति रहती तो जीत [illegible] थी । अब मेरी वारी आई । पहले दो ओवर में तो मैं एक भी रन [illegible] सका लेकिन इसके वाद मैंने एक के वाद एक उनकी तेज गेदों को पीटना [illegible]म्भ किया । चाय तक मैंने और मेरे साथी राजू ने हमारी रन-संख्या [illegible]१ कर दी । हमारे खिलाड़ियों का उत्साह दुगुना हो गया । खेल बन्द [illegible]ने तक हमने १३५ रन वना लिये । दूसरे दिन लंच तक हमने २४८ रन [illegible]नाये और हमारे कप्तान ने पारी की समाप्ति घोषणा कर दी ।

यह एक त्रिदिवसीय मैच था । लंच के वाद रायल क्लब ने खेलना प्रारंभ किया और सन्ध्या तक उनके बल्लेवाजों ने ५ विकेट पर ११२ रन वनाये । तीसरे दिन लंच तक उन्होंने अपनी रन-संख्या २०१ कर ली और अभी उनके दो खिलाड़ी शेष थे । हम वड़ी विचित्र स्थिति में पड़ गये किन्तु हमारे कप्तान ने हिम्मत न हारी । लंच के वाद ज्यों ही खेल प्रारम्भ हुआ हमने पाँच ही मिनिट में शेष दोनों विकेट ले लिये और खेलना प्रारम्भ किया ।

अब हमें विजय प्राप्त करने के लिए १२६ रन वनाने थे जो असम्भव-सा प्रतीत होता था । किशोर ने मुझे और राजू को ही सवसे पहले खेलने को कहा । उसने हमसे कहा कि हम आउट होने की चिन्ता किये विना तेजी के साथ खेलें और अपने अधिक से अधिक रन वनाने का प्रयत्न करें । वह जानता था कि मेरा खेल जमा हुआ अवश्य होता है किन्तु रन-संख्या प्रायः धीमी रहती है । यदि मैं तेजी से खेलूँ तो रन-संख्या वढ़ सकती है । मैंने खेलना प्रारम्भ किया । मैं एक के बाद दूसरी उनकी तेज गेंदों को पीटने लग[illegible] और पहले दो ओवर में ही मैंने एक छक्का और पाँच चौके लगा दिये [illegible] चाय तक हमारी रन-संख्या ६४ हो गई । अब हमें कुछ सन्तोष हुआ । चा[illegible] के वाद मैंने फिर धुआँधार खेल प्रारम्भ किया और खेल के अन्त तक वि[illegible] कोई विकेट दिये अपनी रन-संख्या १४८ कर दी । जब खेल समाप्त [illegible] तो साथियों ने मुझे सिर पर विठा लिया और सब वड़े प्रसन्न हुए । द[illegible] की भी एक वड़ी भीड़ मेरे आस-पास जमा हो गई और वे मेरे खे[illegible] भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे । अशोकनगर की गली-गली में हमा[illegible] एक चर्चा का विषय वन गया ।

नई समस्याएं खड़ी हो जाती हैं और एकता एवं सद्भावना के सारे प्रयत्नों को हवा में उड़ा देती हैं।

ऐसा लगता है कि यदि यही स्थिति रही तो मद्रास के विश्वविद्यालय में उत्तर-भारत तो दूर आन्ध्र का भी कोई प्रोफेसर दिखाई न देगा और फिर बनारस के विश्वविद्यालय में उत्तर-प्रदेश तो दूर किसी विशेष जाति और विशेष कुल के ही लोग रखे जायेंगे। इस संकुचित मनोवृत्ति के कुछ उदाहरण हमारे सामने आने भी लगे हैं। अब धीरे-धीरे सभी प्रदेशों में यह भय भी घर करता जा रहा है कि कहीं हमारे यहाँ दूसरी भाषा या सम्प्रदाय के लोग बड़ी संख्या में न आ बसें। क्या देश में सभी विचारशील व्यक्तियों के सामने यह एक प्रश्न चिह्न नहीं है? विज्ञान के प्रभाव से आज जबकि देश और काल की दूरी निरन्तर कम होती जा रही है और 'एक विश्व' की चर्चा चलने लगी है, तब यह संकुचित मनोवृत्ति, यह भाषाई सम्प्रदायवाद, यह प्रान्तवाद और इसके पीछे छिपा हुआ सत्तावाद चिन्ता का कारण नहीं है? क्या यह हमारी राष्ट्रीय-एकता के लिए चुनौती नहीं है?

यदि मैं कहूँ कि इस सबसे उदासीन होकर चुप बैठे रहना जीवन और जगत् के प्रति ही उदासीनता का द्योतक है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। अतः हम सबको इस चुनौती को स्वीकार करना चाहिये। सौभाग्य से कबीर, गांधी और अकबर की बहाई हुई धारा अभी जीवित है। देश के अनेक गणमान्य नेता, विचारक और समाज-सेवी हमारे सामने खड़े हुए इस खतरे को देख रहे हैं और इसके विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द कर रहे हैं। भारतवर्ष एक अखण्ड देश है और यह हमें अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में मिला है जब राष्ट्रीयता का विचार भी नहीं जगा था और लोगों में एकता की प्रतीति भी नहीं थी तब भी कभी एकता के विषय में प्रश्न नहीं उठा। भारत का प्रत्येक साधारण व्यक्ति आज भी स्नान करते समय 'गंगे-यमुनेच' कहकर भारत की सभी नदियों का स्मरण करता है और [illegible] की यात्रा कर अपने को कृत-कृत्य मानता है। ऐसी स्थिति में [illegible] शक्तियों को अपनी वीभत्सता का प्रदर्शन करने के लिए मु[illegible] जघन्य अपराध नहीं होगा?

अव प्रश्न यह होगा कि इन विघटनकारी शक्तियों को कैसे उखाड़ फैंके ? कैसे देश में एकता, सहिष्णुता और पारस्परिक सद्भावना की स्थापना करें ? गहराई से विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चाहे जातिवाद हो, चाहे भाषावाद, चाहे सम्प्रदाय हो, चाहे प्रान्तवाद—इन सवके पीछे जाति, भाषा, प्रांत, परम्परा अथवा संस्कृति के लगाव की भावुक प्रवृत्ति तो होती ही है; किन्तु इसके मूल प्रेरक हैं किसी व्यक्ति अथवा समूह के हित। जव-जव व्यक्तिगत स्वार्थों या महत्वाकांक्षाओं को चोट पहुँचती है, तव-तव वे जातिवाद, भाषावाद आदि का वाना पहन कर उठ खड़े होते है। इसीलिये जिस प्रकार रक्त की अशुद्धि के रोगी का इलाज जगह-जगह उठने वाले फोड़ों पर मरहम लगाकर नहीं किया जा सकता, उसके लिये तो रक्त को शुद्ध वनानेवाली औषधि का ही सेवन करवाना होगा; उसी प्रकार इस विघटनकारी शक्ति का इलाज है एक सशक्त, गतिशील एवं व्यापक आर्थिक प्रणाली की व्यवस्था जिसमें वैषम्य और अभाव के लिये ममात्र का ही स्थान हो। जव ऐसी आर्थिक प्रणाली स्थापित हो जायगी ये विघटनकारी प्रवृत्तियाँ अपना सारा जादू खो वैठेंगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह एक वहुत वड़ा कार्य है किन्तु जव तक वह नहीं होता जनता का तनाव किसी न किमी रूप में फूटता ही रहेगा।

दूसरी वात है सांस्कृति शिक्षा। कवीन्द्र रवीन्द्र ने भारतीय संस्कृति की तुलना एक पूर्ण विकसित कमल से की है। उन्होंने कहा है कि इसकी विभिन्न पंखुड़ियों में विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृतियाँ प्रवाहित होती हैं और इन पंखुड़ियों का समन्वित रूप पूर्ण कमल हमारी अविभाज्य किन्तु अनेक-पत्रीय भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। रवीन्द्र के शव्दों में यदि इसकी एक पंखुड़ी विक्षत हो जाती है अथवा अविकसित या अर्धविकसित रह जाती है तो इसका पूरे फूल के सौंदर्य पर प्रभाव पड़ेगा। स्पष्ट है कि पूर्णता की यह भावना, यह विशाल दृष्टिकोण ही हमारी संकुचित, मनोवृत्ति, स्वार्थपरता और लगाव की भावुक प्रवृत्ति का इलाज कर सकेगी।

पूर्णता की भावना लाने के लिए हम वहुत-सी वातें कर सकते हैं। उदाहरणार्थ पड़ीसी राज्यों के वीच गहरा सम्पर्क स्थापित करना, उनकी भाषा, संस्कृति और साहित्य का अध्ययन करना तथा पारस्परिक सहयोग

है। यह भी हमारा एक बड़ा दुर्भाग्य है कि हमारी भाषा, संस्कृति, इतिहास, लिपि सब कुछ सम्प्रदायों के साथ जुड़ गये हैं। साम्प्रदायिकता का यह दलदल भी हमसे औदार्य, विशाल-हृदयता और मानवी-दृष्टिकोण की माँग कर रहा है। यह हमारे उस सामाजिक और आर्थिक विकास पर भी कुठाराघात कर रहा है जिस पर हमारे समूचे देश का भाग्य निर्भर है।

अन्त में मैं नेहरूजी के शब्दों को दुहराना चाहता हूँ—"भारत के उत्तर और दक्षिण तथा पूर्व और पश्चिम में कोई अन्तर नहीं है। भारत एक है जिसके हम सब उत्तराधिकारी हैं और इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारत के उज्ज्वल भविष्य के भी हमीं उत्तराधिकारी हैं।" सारांश यह कि भारत का उज्ज्वल भविष्य हमसे एकता, सहिष्णुता, विशाल-हृदयता और औदार्य की अथवा यों कहें कि भारत की भावनात्मक एकता की माँग कर रहा है। क्या उसकी आवाज सुनेंगे ?

(३७) मानव के भरत

१—भूमिका
२—भरत का भ्रातृ-प्रेम
३—उनके भ्रातृ प्रेम की प्रमुख विशेषतायें—
(क) सात्विक प्रेम
(ख) निःस्वार्थता
(ग) निष्कपटता
(घ) अनन्यता
४—भरत की आदर्श-भक्ति
५—उपसंहार

कविकुल गुरु गोस्वामीजी का रामचरित-मानस हिन्दुओं का एक पवित्र ग्रन्थ है। उसमें अनेक आदर्श चरित्रों का चित्रण हुआ है जैसे राम, सीता, लक्ष्मण, दशरथ, जनक, विश्वामित्र, वशिष्ठ, कौशल्या आदि। ये सब चरित्र अपनी अपनी विशेषता रखते हैं। हम अपने भाई या

विधि हूं न नारि हृदय गति जानी ।
सकल कपट अघ अवगुन खानी ।।

कौशल्या उन्हें क्रोध-भरी ग्लानि से भरा हुआ देखकर अनेक प्रकार से समझाती-बुझाती हैं । गुरु वशिष्ठ उन्हें कर्त्तव्य-पालन का उपदेश देते हैं । दूसरे लोग भी उनसे राज्य सम्भालने और अशान्त प्रजा को धैर्य बंधाने का आग्रह करते हैं; किन्तु भरत का हृदय भ्रातृ-प्रेम में सरावोर है । उन्हें राज्य की चर्चा ही पसन्द नहीं आती । जिस व्यक्ति पर षड्यन्त्र का सन्देह हो और जिसके कारण कोई वड़ा भारी अन्याय हो रहा हो वह उस समय तक चुप कैसे वैठ सकता है जब तक कि उसका निराकरण न हो जाय । फिर उनके हृदय में भ्रातृ-प्रेम भी तो हिलोरें ले रहा था । राम के वनवास ने प्रेम की उस हिलोर को और अधिक वढ़ा दिया था । फलतः उन्हें राज्य सम्भालने की चर्चा भी अच्छी नहीं लगती । उनका हृदय प्रेम की पीड़ा से व्यथित है । वड़े भाई राम का दर्शन ही उनको शान्ति प्रदान कर सकता है । अतः सव लोग अन्त में इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि राम के पास वन में जाया जाय । वहाँ उनसे प्रार्थना की जाय की वे लौट चलें और यदि वे लौट आयें तो अच्छा अन्यथा जैसा वे कहें वैसा किया जाय । भरत राम के प्रेम में इतने डूवे हुए हैं कि उन्हें सिवाय राम के पास जाने के और कुछ सुहाता ही नहीं । वे कहते हैं:—

एकहि अंक इहै मन माही, प्रातःकाल चलि हों प्रभु पाहीं ।

उनकी उत्सुकता, उनकी वेचैनी और राम से मिलने की आतुरता सभी इतनी सात्विक, इतनी हृदयग्राही और पवित्र है कि आँखों से प्रेमाश्रु वहे विना नहीं रहते ।

भरत के प्रेम में निष्कपटता है । उनका प्रेम निश्छल है । वे सरलता और सत्य के आगार हैं । माता कौशल्या के पास जाते ही उन्हें ऐसा लगता है कि कहीं उनकी दृष्टि में यह वात न आ रही हो कि इस षड्यन्त्र में उनका भी कुछ हाथ है । अतः वे कहते हैं —

जे परिहरि हरि हर चरन भजहि भूतगन घोर ।
तिन्ह के गति मोहि देहु विधिजो जननी मत मोर ।।

चल रहा हूँ। प्रेम की साधना जितनी अविक से अधिक पवित्रता
ठोरता से हो सकती है उतनी करने के लिए उनका मन तैयार है।
ी के पास आते ही उससे भी वे राम-भक्ति का ही वरदान माँगते हैं।
हते हैं—

धर्म न अर्थ व काम रति पद न चहों निर्वान।
जनम-जनम रति राम पद. यह वरदान न आन॥

वे राम को इसी जन्म में नहीं आनेवाले सभी जन्मों में चाहते हैं। राम का उनका केवल इस जन्म का सम्बन्ध नहीं, जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध है।

चित्रकूट पहुँचने पर तो वे अपने आपको भूल ही जाते हैं और राम के प्रेम में वेसुध हो जाते हैं—

याहि नाथ कहि पाहि गुसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं।

यह उनके भ्रातृ-प्रेम की चरम-सीमा है। जो इस स्थिति में पहुँचता है ह धन्य है। इसीलिए तो उनमें राम तक को अपने आधीन कर लेने की शक्ति आ जाती है। भरत के आगमन के समाचार से वे भी विह्वल हो जाते हैं—

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट, कहुँ निषंग धनु तीरा।

यह राम की उदारता का परिणाम भी हो सकता है किन्तु इसके पीछे मुख्य कारण है भरत का प्रेम। उनके प्रेम ने ही राम को मुग्ध कर दिया है। उसका और राम का मिलन विनय का विनय से, शील का शील से और प्रेम का प्रेम से मिलन है।

भरतजी मानो भक्ति के साकार रूप हैं। वे भक्त के आदर्श हैं। स्वयं राम उनकी भक्ति के कायल हैं—

तात भरत तुम सब विधि साधु. राम चरन अनुराग असाधू।

और

भरत सरिस को राम सनेही, जग जपु राम राम जपु लेही।

भरत मानो समुद्र हैं और उनको मथ कर ही प्रेम रूपी अमृत नि
गया है—

द्विवेदी-युग की कविता में उपदेशात्मकता और इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता थी। उसमें कुछ ऐसा अक्खड़पन था जैसा आर्यसमाज में पाया जाता है। शृङ्गार रस का तो जैसे निषेध ही कर दिया गया था। यह निषेध रीतिकालीन अत्यधिक शृङ्गारिकता की प्रतिक्रिया थी। अतः द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता एवं शृङ्गारिकता के निषेध की भी प्रतिक्रिया अवश्यंभावी हो गई। वह राष्ट्रीयता के उन्मेष का युग था। किन्तु राष्ट्रीयता हृदय की कोमल भावनाओं को दबा नहीं सकी। फलतः शृङ्गारिक भावनाएँ एक अनन्त रूप में प्रकाश में आने लगीं। अब शृङ्गार का मानसिक पक्ष प्रबल होने लगा और उसकी कोमलता ने वातावरण को व्याप्त कर दिया। हमारे कवियों को वह कोमलता बाहर की अपेक्षा अन्दर अधिक मिली। उन्हें बाह्य सृष्टि में संघर्ष, कटुता और विपुलता दिखाई दे रहे थे। सरकार साम्राज्यवाद से ग्रस्त थी, समाज रूढ़ियों से। सर्वसाधारण को दोनों ओर से निराशा मिलती थी। उनके लिये यदि कोई शरणस्थल थे तो वे प्राकृतिक सौंदर्य और चराचर में व्याप्त परमसत्ता। कालक्रम की दृष्टि से १९१५ से १९३६ तक छायावादी काव्य का हिन्दी कविता पर बड़ा प्रभाव रहा। इस युग के लगभग सभी कवि अंग्रेजी के वर्डस्वर्थ, शैले, कीट्स, बायरन और बंगला के रवीन्द्रनाथ टैगोर से बहुत प्रभावित थे। इस नवीन प्रवृत्ति के विरोधियों ने बदनाम करने के लिए ही उसका नाम 'छायावाद' रखा। किन्तु बाद में यह नाम ऐसा प्रचलित हुआ कि उसमें निहित व्यङ्ग अदृश्य हो गया।

छायावाद की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने ढंग से अलग-अलग देने का प्रयत्न किया है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ नगेन्द्र के अनुसार 'छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है।' श्रीमती महादेवी वर्मा का मत है कि 'छायावाद का मूलदर्शन सर्वात्मवाद में है।' डॉ० रामकुमार वर्मा का कहना है कि 'आत्मा व परमात्मा का गुप्त वाग्विलास रहस्यवाद है और वही छायावाद है।' प्रसादजी के शब्दों में 'कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुन्दरी के बाह्य-वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभुतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया। प्रगतिशील आलोचक डॉ०

(३) देशप्रेम—देश के प्रति प्रेम भी छायावादी काव्य-धारा की एक प्रमुख प्रवृति है। सभी नवीन कवियों ने देशोत्थान का नारा लगाया और देश की महिमा के गीत गाये। प्रसाद ने कहा है—

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को, मिलता एक किनारा।

(४) विद्रोह—पाश्चात्य विचारों के प्रभाव से छायावादी कवियों में प्राचीन नियमों, रूढ़ि रीतियों, विश्वासों और परम्पराओं के प्रति विद्रोह की भावना जागी। श्री० नवीन ने कहा—

नियम और उपनियमों के ये बन्धन टूक टूक हो जाएँ।
विश्वंभर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जाएँ।

(५) पलायनवाद—जीवन के कठोर सत्यों से, संघर्षों से पलायन की प्रवृत्ति भी छायावादी कविता की विशेषता है। यद्यपि संघर्ष की यह कोई अच्छी प्रवृत्ति नहीं है तथापि दुनियाँ से भाग कर किसी सुन्दर लोक की कल्पना में खो जाने की प्रवृत्ति सभी छायावादी कवियों में दिखाई देती है। मानवता का उद्घोष करने वाले प्रसाद ने स्वयं कहा है—

ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे धीरे।
जिस निर्जन में सागर लहरी, अम्बर के कानों तक गहरी।
निश्चल प्रेम कथा कहती हो तज कोलाहल की अवनीरे।

(६) दुःखवाद—वेदना, करुणा अथवा व्यथा की तीव्रता भी सभी छायावादी कवियों की विशेपता है। प्रसाद का आँसू तो दुःखवाद से पूर्ण ही है। महादेवी वर्मा भी दुख की वदली वनकर वरसने की कल्पना करती हैं—

मैं नीर भरी दुःख की वदली।
जल कण हो रजकण में वरसी, नवजीवन अंकुर हो निकली।

(७) पुरातन के प्रति प्रेम—कुछ छायावादी कवियों में अतीत के प्रति प्रेम भी पाया जाता है। वे वर्तमान से घवरा कर अपने उज्ज्वल अतीत का स्मरण करते हैं। पन्तजी करते हैं—

'कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल।'

(८) नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण—नारी के प्रति सभी नवीन कवियों का एक वदला हुआ दृष्टिकोण दिखाई देता है। जिस नारी को रीतिकालीन

कवियों ने 'क्रीड़ा-कला-पुतली' या विलास-सामग्री बना रखा था उसे नवीन कवियों ने नए दृष्टिकोण से देखा। उन्होंने उसे माता, सहचरी और देवी के रूप में देखा। पन्त ने कहा—

मुक्त करो नारी को मानव, चिर-बन्दिनी नारी को।
युग-युग की निर्मम कारा से, जननी, सखी प्यारी को॥

(९) चित्र मय भाषा पद्धति—छायावादी कवियों ने अपनी कोमल-कान्त-पदावली में भाषा का चित्रोपम रूप खींचा। उन्होंने यह वर्णन इतने सुन्दर ढंग से किया कि हमारी आँखों के सामने चित्र-सा खिंच जाता है—

'जल्द पटल में दिखला मुख चन्द्र।
पलक पल पल चपला के मार॥' —पन्त

(१०) मुक्त छन्द-योजना—छायावादी कवियों ने परम्परागत छन्दों की कठोर नियमबद्धता को त्याग कर नवीन छन्द-योजना अपनाई। निरालाजी ने तो अपनी बहुत-सी कविताओं में छन्द का कोई बन्धन ही स्वीकार नहीं किया। उनकी 'वह तोड़ती पत्थर' 'जुही की कली' आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।

१९३६ के बाद छायावाद आकर्षण का विषय न रह गया। बात यह हुई कि उसके पास भविष्य के लिए न उपयोगी नवीन आदर्श रहे, न नवीन भावना या सौन्दर्य-बोध। वह काव्य न रहकर एक अलंकृत गीत मात्र रह गया। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाव, भाषा, शैली, छन्द आदि की दृष्टि से छायावाद ने हिन्दी कविता को बहुत कुछ दिया है। श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त के शब्दों में—'छायावाद ने आधुनिक हिन्दी कविता को प्रौढ़ शैली प्रदान की और उच्चकोटि का शिल्प सिखाया। छायावाद ने हिन्दी-साहित्य को एक नयी शब्दावली, एक नई भावव्यञ्जना और नई कला दृष्टि दी।'

मनुष्य चिरकाल से जीवन और जगत् के रहस्यों को समझने के लिये व्याकुल रहा है। उसके मन में सदैव यह प्रश्न उठता रहा है कि इस विश्व का संचालक कौन है, वह कैसा है और किस प्रकार अपना काम करता है? मानव-मन की यह जिज्ञासु स्थिति ही रहस्यवाद है। डॉ०

राजकुमार वर्मा के अनुसार 'रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता।' श्रीमती महादेवी वर्मा रहस्यवाद की व्याख्या करते हुए कहती हैं—"अखण्ड चेतना में तादात्म्य का रूप केवल बौद्धिक हो सकता है, पर रहस्यानुभूति में बुद्धि का श्रेय ही हृदय का प्रेम हो जाता है। इस प्रकार रहस्यवादी का आत्म-समर्पण बुद्धि की मुख्य व्यापकता से सौंदर्य की प्रत्यक्ष विविधता तक फैल जाने की क्षमता रखता है। अतः उससे सत् और चित् की एकता में आनन्द सहज सम्भव रहेगा।" श्री जयशंकर 'प्रसाद' का मत है कि—"काव्य में आत्मा की संकलपात्मक अनुभूति की मुख्य धारा का नाम रहस्यवाद है।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना था कि 'साधना के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।' वस्तुतः रहस्यवाद विराट् से एकाकार हो जाने की भावना का प्रकाशन-मात्र है। जब कलाकार की दृष्टि स्थूल दृश्यों से ऊब जाती है तो वह सूक्ष्म जगत् की ओर अग्रसर होती है; तब उसे उन्हीं की अनुभूति होती है और वह उन्हीं के चित्र अंकित करता है। परोक्ष-सत्ता उसे सारे ब्रह्माण्ड से प्रतिबिम्बित दिखाई देती है और वह कबीर के स्वर में कह उठता है—

"लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन में गई, मैं भी हो गई लाल॥

हिन्दी में सबसे पहले रहस्यवाद का दर्शन होता है। कबीर और जायसी की रचनाओं में उस अव्यक्त, अशरीरी परोक्ष-सत्ता के साथ प्रणय-निवेदन करने वाले कबीर हिन्दी के पहले रहस्यवादी कवि हैं। जायसी का रहस्यवाद भावात्मक है। आधुनिक युग के रहस्यवादी कवियों में प्रमुख हैं प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी और रामकुमार वर्मा। वर्तमान हिन्दी कविता का रहस्यवाद पश्चिम से प्रभावित है। उसमें अनुभुति के साथ-साथ चिन्तन भी समाया हुआ है। हिन्दी कविता में जिस रहस्यवाद की अभिव्यक्ति हुई वह निम्नलिखित चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) दार्शनिक रहस्यवाद—इसमें दार्शनिकता की प्रधानता रहती है। दार्शनिक कवि अपनी कल्पनाओं के द्वारा परोक्ष-सत्ता को जानने का प्रयत्न करता है। दर्शन में कोरा तर्क होता है किन्तु दार्शनिक रहस्यवाद में तर्क कम होता है। उसमें आश्चर्यमयी जिज्ञासा, ऐक्य की अभिलाषामयी भावुकता अधिक होती है। उदाहरणार्थ—

हे अनन्त रमणीय, कौन तुम, कैसे मैं यह कह सकता ?
कैसे हो क्या हो इसका तो भार विचार न सह सकता।

—प्रसाद

(२) प्रेम एवं सौंदर्य-मूलक रहस्यवाद—इसमें दाम्पत्य प्रेम तथा सौन्दर्य-सम्बन्धी रहस्यवाद की प्रधानता होती है। आत्मा को पत्नी और परमात्मा को पति मानकर सामीप्य का अनुभव किया जाता है। कबीर ने कहा है—

हरि मेरा पीव भाई हरि मेरा पीव।
हरि बिन रहि न सके मेरा जीव॥

(३) धर्म-आस्था विषयक रहस्यवाद—इसका आविर्भाव धार्मिक आस्था के कारण होता है। कवि भक्ति में इतना तल्लीन हो जाता है कि उसे आराध्य के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता। इसमें योग और कर्म-काण्ड की साधना की प्रधानता होती है। उदाहरणार्थ—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।
जाके सिर पर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥

(४) प्रकृति-मूलक रहस्यवाद—इसमें कवि प्रकृति के विविध रूपों और अङ्गों में उस परोक्ष-सत्ता के दर्शन करता है। जैसे—

"रूपसि तेरा घन केश-पाश।" —महादेवी

आधुनिक रहस्यवाद में जिज्ञासा और कल्पना की अधिकता है। हमारे रहस्यवादी कवियों ने जीवन की बाहरी शुष्कता के अन्तस्थल में बसने वाली सौन्दर्य-सुषमा को बाहर लाकर उसको एक सरस, मधुर वेष्टनमयी कोमलकान्त पदावली में अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया। छायावाद और रहस्यवाद दोनों प्रकार के गीतों में स्थूल दृश्य की उपेक्षा है। ये अन्तर्मुखी अधिक हैं बहिर्मुखी कम छायावादी और रहस्यवादी

गीतों में वाह्य-प्रकृति का चित्रण भी आन्तरिक रूप से ही होता है। प्रकृति को मानवीय किया जाता है और उसे मानवीकरण भावों से अनुप्राणित देखा जाता है। इसमें वस्तु को कटी-छँटी सीमा में न देखकर उसका वायवीकरण कर दिया जाता है। झरना न पानी का प्रवाह रह जाता है, न किरण भौतिक प्रकाश-रेखा। इसमें झरना कोई गहरी वात कहता हुआ सुनाई पड़ता है और किरन मानो विकट विश्व-वंदना की दूती प्रतीत होती है। प्रकृति और मानव का वह एकीकरण भारतीय एकात्मवाद की भावना पर आश्रित है। धीरे-धीरे रहस्यवाद जीवन से दूर हटता गया और उसका स्थान प्रगतिवाद ने लिया।

(३९) साहित्य और समाज

१—साहित्य का अर्थ
२—साहित्य का समाज पर प्रभाव
३—सामाजिक स्थिति और साहित्य
४—साहित्य का महत्व
५—सत्साहित्य से समाज की उन्नति

साहित्य शब्द का अर्थ है सहित होने का भाव—'सहितस्य भाव साहित्य।" सहित शब्द के दो अर्थ हैं सह अर्थात् साथ होना और 'हितेन सह सहितं' अर्थात् हित के साथ होना अथवा जिसमें हित सम्पादन हो। अतः हम कह सकते हैं कि जहाँ शब्द और अर्थ, विचार और भाव का परम्परानुकूलता के साथ सह-भाव हो वही साहित्य है।
कवि-कुल-चूड़ामणि कालिदास के रघुवंश के मंगलाचरण में शब्द और अर्थ को अपने उपास्य पार्वती परमेश्वर के संयोग का उपमान माना है और कवि-कुल-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने वाणी और अर्थ का सम्बन्ध जल और उसकी तरङ्ग की भांति एक दूसरे से अभिन्न माना है। साहित्य का अर्थ "हितेन सह सहितं" लगाते हुए हम कहेंगे कि साहित्य वह है जिससे मानव हित का सम्पादन हो। अंग्रेजी में साहित्य को लिटरेचर (Literature) कहते हैं। यह शब्द अक्षरों (Letters) से बना है, अर्थात्

अक्षरो के सारे विस्तार का ही नाम साहित्य है। अरबी भाषा मे साहित्य को 'अदब' कहा जाता है। अदब का अर्थ है आदर—शिष्टता। अत उसके अनुसार जिसमे शिष्टता हो वही अदब' या साहित्य है।

साहित्य शब्द के शाब्दिक अर्थ से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उसके दो अर्थ हैं—एक व्यापक, दूसरा सकुचित। व्यापक अर्थ मे जितना शब्द भण्डार और वाणी का विस्तार है सब इसके अन्तर्गत आ जाता है। सकुचित अर्थ मे साहित्य का अर्थ है—काव्य। व्यापक अर्थ मे साहित्य एक ऐसी रचना है जिसमे कुछ हित या प्रयोजन हो और सकुचित अर्थ मे काव्य अथवा भावना प्रधान साहित्य। श्री गुलाबरायजी के अनुसार 'साहित्य ससार के प्रति हमारी प्रतिक्रिया अर्थात विचारो, भावो और सकल्पो की शाब्दिक अभिव्यक्ति हैं और वह हमारे किसी न किसी प्रकार के हित का सम्पादन करने के कारण सरक्षणीय हो जाती है।'' डा० श्याम सुन्दरदास के शब्दो मे 'सामाजिक मस्तिष्क अपने पोषण के लिए जो भाव-सामग्री निकाल कर समाज को सौंपता है उसी के सचित भण्डार का नाम साहित्य है।'' आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का कहना था कि ''ज्ञान राशि के सचित कोष का ही नाम साहित्य है।'' अंग्रेज विद्वान् विलियम हडसन का कथन है कि 'साहित्य केवल ऐसी पुस्तको का भण्डार है जो विषय वस्तु और उसकी प्रतिपादन शैली के कारण सर्व साधारण के लिए रुचिकर होता है तथा जिसमे रूप और उसका आस्वाद आवश्यक होते हैं।''

साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। युग की प्रवृत्तियो, भावनाओ और आशा-आकाक्षाओ को ही वह अपनी रचनाओ से मूर्तरूप प्रदान करता है। जिस प्रकार बेतार के तार का रिसीवर आकाश-मण्डल मे विचरती हुई विद्युत् तरङ्गो को पकड कर भाषित शब्द का आकार देता है ठीक उसी प्रकार कवि या लेखक अपने युग के वायुमण्डल मे घूमते हुए विचारो को पकड कर मुखरित कर देता है। साहित्यकार वही बात कहता है जो सब लोगो के अनुभव मे दिन-रात आती है। साहित्यकार और साधारण व्यक्ति मे अन्तर इतना ही होता है कि साधारण व्यक्ति मे अभिव्यक्ति की क्षमता नहीं होती जब कि साहित्यकार मे उसकी कोई कमी

ीं होती। साहित्यकार सहृदय होता है। सबके सुख-दुःख को अपना सुख-
ख म नकर वैसी अनुभूति कर लेता है और जहाँ उसे किसी भावना की
गीण से क्षीण रेखा ही दिखाई देती है वहाँ वह उसके आधार पर पूरा
चित्र खींच देता है।

किन्तु साहित्यकार केवल समाज का मुँह ही नहीं होता, वह समाज
का मस्तिष्क भी होता है। वह समाज के हित की बात सोचता है और
उसके लिए समाज का आह्वान करता है। वह सामाजिक भावों की जो
मूर्ति बनाता है वह समाज की उन्नायिका होती है। साहित्यकार के माध्यम
से हम समाज की भावनाओं को समझ पाते हैं और हमको उन परिस्थितियों
का भी पता लगता है तो समाज को प्रभावित कर वायु-मण्डल में एक
नई लहर पैदा कर देती है। यद्यपि सर्वत्र मानव-हृदय एक-सा ही है तथापि
प्रत्येक जाति के साहित्य की अपनी अलग विशेषता होती है। आत्मा का
जो विस्तार, जो त्याग और तप हमें उपनिषदों में दिखाई देता है वह अन्य
जातियों के साहित्य में नहीं मिलता। उपनिषदों के इस साहित्य में उस
समय के भारत की सामाजिक स्थिति तथा तपोवनों का पवित्र, मुक्त, और
उज्ज्वल जीवन ही प्रतिबिम्बित हुए हैं। इस्लाम मूर्ति-पूजा का निषेध करत
है, यही कारण है कि हमें मुसलमानों के साहित्य में नाटकों का अभा
मिलता है। हिन्दुओं में सम्मिलित कुटुम्ब प्रणाली प्रचलित है। अ
सम्मिलित परिवार का जैसा सुन्दर वर्णन भारतीय-साहित्य में उपलब्ध
वैसा अन्यत्र दिखाई नहीं देता। शेक्सपियर लाख प्रयत्न करने पर
कालिदास की भावनाओं को नहीं पा सकते, और कालिदास शेक्स
की भावनाओं को। इसी प्रकार मर्यादावादी गोस्वामी तुलसीदास
मिल्टन के 'पेराडाइज लॉस्ट' की कल्पना कर सकते थे, न स्वच्छन्द
क्रान्तिकारी मिल्टन रामचरित-मानस की। हिन्दू-जाति सदैव अहि
रही है, अतः उसके साहित्य में त्याग, तप, औदार्य, सहिष्णुता, स
आदि का ही वर्णन है और इन भावनाओं के अनुरूप उसके च
भी हरिश्चन्द्र, राम, कृष्ण, शिवि, दधीचि आदि रहे हैं।

पाश्चात्य देशों में वैज्ञानिक उन्नति के कारण वहां के सा
भौतिकवाद की प्रतिष्ठा हो गई। वहाँ विज्ञान की उन्नति के ही

को स्थिर बनाता है। साहित्य के द्वारा जो परिवर्तन होते हैं के द्वारा किये हुए परिवर्तनों से कहीं अधिक शक्तिशाली होते हैं।

इसके अतिरिक्त, साहित्य हमारा मनोविनोद करता है और हमारे जीवन भार भी हल्का करता है। वह सामाजिक संगठन को दृढ़ बनाता है जातीय जीवन को बल देता है। साहित्य हमें एक संस्कृति और एक तीयता के सूत्र में बाँधता है। जैसा साहित्य होता है वैसी ही हमारी नोवृत्तियाँ भी होती हैं और जैसी मनोवृत्तियाँ होती हैं वैसा ही कार्य हम करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि साहित्य केवल समाज का प्रतिबिम्ब नहीं होता वह समाज का उन्नायक और नियामक भी होता है। साहित्य समाज के अज्ञान-अन्धकार को समाप्त करता है और उसकी एक ही चोट में पाखण्ड, ढोंग, अन्धविश्वास हवा हो जाते हैं। साहित्य में क्रान्ति करने की जबरदस्त शक्ति होती है। जब वैषम्य बढ़ने लगता है, अत्याचार से लोग त्रस्त हो जाते हैं और अनर्थकारी रूढ़ियाँ जड़ जमाने लगती हैं तो साहित्य उसका प्रतिरोध करता है और जनता में प्रतिरोध की शक्ति भर देता है। साहित्य ने किसानों, मजदूरों की आवाज बुलन्द की है और उसीने सोये हुए भारतवासियों, एशियाई और अफ्रीका के निवासियों में जागरण का मन्त्र फूंका है। इस प्रकार साहित्य की शक्ति अपरिमेय है। वह समाज के उत्थान-पतन, विकास-ह्रास, और आरोह-अवरोह की अपार शक्ति अपने अन्दर छिपाये हुए हैं।

किन्तु आजकल साहित्य के नाम पर कुछ ऐसी पुस्तकें भी धड़ा निकल रही हैं जो हमारी कुत्सित वृत्तियों का पोषण करती हैं और अनैतिक जीवन की ओर मोड़ती हैं। ऐसी पुस्तकें कभी भी साहित्य कही जा सकतीं। हम उसी को सद्साहित्य कहेंगे जो हमें सुपथ पर च जो अज्ञान के अन्धकार से हटाकर हमें ज्ञान के प्रकाश में लाए, अ निकाल कर सत्य के दर्शन कराए और विनाश से निकाल कर अमृत वही सच्चा साहित्य है। सच्चा साहित्य समाज में आशा और उत् करता है, साहस और बल भरता है, प्रेरणा और स्फूर्ति जगात ऐसे साहित्य का सृजन होता है, जातियां निहाल हो जाती हैं।

(४०) हिन्दी काव्य में नारी

१—प्रस्तावना
२—वीरगाथा काल और नारी
३—भक्तिकाल और नारी
४—रीतिकाल और नारी
५—आधुनिक काल और नारी
६—उपसंहार

भारतीय संस्कृति में नारी का महत्वपूर्ण स्थान है । मनु ने कहा है—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता', अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं । मनु के अनुसार नारी जाति की उपेक्षा एक जघन्य अपराध है । अपने हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना है । वस्तुतः मनु महाराज के इस कथन में बड़ा तथ्य है । बात यह है कि स्त्री और पुरुष के सहयोग से सृष्टि की रचना हुई है और उन्हीं के सहयोग से उसका पालन पोषण या हित-साधन होता है । वे समाज, देश और जाति की प्रगति की गाड़ी के दो पहिये हैं । यदि उनमें से एक भी कमजोर, उपेक्षित या उदासीन हुआ तो प्रगति की गाड़ी रुक जायगी; इसीलिए नारी को पुरुष की सहचरी, सहगामिनी, सहधर्मिणी, शक्ति-स्वरूपा और जीवन-ज्योति कहा गया है । किन्तु जहाँ उसकी प्रशंसा की गई है वहाँ उसे अत्यन्त अधम और प्रताड़ना की अधिकारिणी भी माना गया है। इस मिले-जुले दृष्टिकोण के पीछे एक विशेष बात है । नारी शारीरिक दृष्टि से कमजोर है । वह पुरुष की शक्ति की आश्रित है । अतः पुरुष प्रारम्भ से ही उसकी कमजोरी का दुरुपयोग करता आया है और उसे अपने बन्धन में रखने के अनेक उपाय सोचता रहा है; नारी के अनेक रूप हैं—वह माता है, प्रेयसि है, भगिनि है, पुत्री है, किन्तु हमारा यह दुर्भाग्य है कि उसके नग्नरूप को ही प्रायः देखा जाता है । कवि मैथिलीशरण गुप्त ने द्वापर में ठीक ही प्रश्न किया है—

"नर के आगे क्या नारी की नग्न मूर्ति ही आ

क्या नारी का कोई अन्य रूप नहीं है ? क्या वह न

पुत्री आदि नहीं है ? आइये, हम अपने हिन्दी-साहित्य में चित्रित उसके स्वरूप की झाँकी देखें।

वीर-गाथा-काल वीरता का युग था। इसमें शौर्य-प्रदर्शन का एक कारण नारी का रूप भी होता है। किसी सुन्दरी के रूप का आकर्षण इतना तीव्र होता था कि राजा अपनी सेना सजा कर चल पड़ता था और उस रूपवती के पिता के राज्य को जीतकर अथवा उसे युद्ध में पराजित कर उसे ले जाता था। वीर-गाथा-काल में उसके लिये लड़े गये अनेक युद्धों का वर्णन मिलता है। उस जमाने में स्त्रियों को हर लेने की प्रथा भी थी और जैसे कोई चोर धन चुरा ले जाता है वैसे योद्धा लोग नारी को भी चुरा ले जाते थे। पृथ्वीराज का संयोगिता को लेजाना हरण ही था।

किन्तु आकर्षण का केन्द्र होते हुए भी वीर-गाथा-काल में नारी के शौर्य का भी चित्रण किया गया है। उसे पतिव्रता, वीराङ्गना, स्वाभिमानी और शक्तिस्वरूपा कहा गया है। उस युग में वह पतिप्राणा होती थी। पति के मानापमान को वह अपना मानापमान समझती थी और उसकी वीरता को एक स्पृहणीय गुण मानती थी। यदि पति वीर नहीं तो उसके तापूर्ण कार्यों से अपने को लज्जित और लांछित मानती है। उस युग की नारी के रूप का वर्णन करते हुए कवि उसी के मुँह से कहलाता है—

'भल्ला हुआ जो मारिया वहिणी महारा कन्त।
लज्जेजंतु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एन्तु॥

अर्थात्—हे वहिन अच्छा हुआ जो मेरा पति युद्धस्थल में ही मारा-गया। यदि वह युद्धस्थल से भागकर आया होता तो मैं अपनी समवयस्काओं में लज्जित होती। वीर-गाथा-काल के कवियों में सर्वत्र यही भावना दिखाई देती है। उस काल की नारी कर्त्तव्य-निष्ठ है और रूपसि भी।

भक्ति-काल में नारी के प्रति कवियों का दृष्टि-कोण वदला। भक्ति-काल प्रवृति मूलक न होकर निवृति-मूलक था। लोग दुनियाँ के झंझटों से मुक्त होकर ईश्वर-भजन, तप और साधन. में लीन रहना तथा इस प्रकार मोक्ष प्राप्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य समझते थे। किन्तु नारी इस कार्य में सबसे अधिक वाधक होती थी। उसका आकर्षण मनुष्य को धर्म-

साधना से विरत कर देता था। वह काम का आलम्बन थी, अतः भक्तिकाल के सभी कवियों ने उसे जी भरकर कोसा। उन्होंने दिल खोल कर उसकी निन्दा की और ठगिनी, कपटी, और 'सकल अघ अवगुन खानि' तक कहा। कबीर उसे मोक्ष मार्ग की बाधा मानते थे और उसके साथ स्पर्श भी खतरे से खाली नहीं समझते थे—

नारी की झांई परे, अंधा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी कौन गति, नित नारी के संग॥

तुलसीदास ने उसे अधम से भी अधम तथा मतिमन्द और गँवारी तक कहा—

अधम ते अधम अधम अति नारी।
तिन महँ मैं मतिमन्द गंवारी॥

वे उसे ताड़ना के योग्य भी मानते थे—

'ढोर गवार सूद्र पसु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी।

सूफी काव्य का दृष्टिकोण कुछ भिन्न है। उसमें एक ओर उसे वासना की मूर्ति और कामातुरा चित्रित किया गया है तो दूसरी ओर ईश्वर का प्रतीक भी। मलिक मुहम्मद जायसी इस धारा के सबसे बड़े कवि हैं। वे पद्मावती के रूप में अनन्त सौन्दर्य के दर्शन करते हैं। पद्मावती के रूप का ऐसा ही वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

सरवर तीर पदमिनी आई। खोपा छोरि केस मुकलाई।
ससिमुख, अंग मलय-गिरिवासा। नागिन झांपि लिन्ह चहुँ-पासा।
ओनई घटा, परी जग छाँहा। ससि कै सरन लीन्ह जनु राहा।
भूलि चकोर दीठि मुख लावा। मेघ घटा महँ चन्द देखावा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन्त कवियों ने नारी का बहिष्कार अवश्य किया है और सूफियों ने उस पर कुछ ध्यान भी दिया था। किन्तु सगुणोपासक भक्त-कवियों का दृष्टिकोण इन दोनों से कुछ भिन्न था। तुलसीदासजी सगुणोपासक कवियों में शिरोमणि थे। उनके रामचरित मानस में एक ओर सीता, कौशल्या, अनसूया और मन्दोदरी जैसे आदर्श नारी-पात्र हैं तो दूसरी ओर कैकेई, मन्थरा जैसे कलुषित[illegible] और हीन-वृत्तिवाले नारी-पात्र। तुलसीदासजी ने जहाँ [illegible]

पात्रों की जो भरसक प्रशंसा की है और उनके चरित्र में अनेक गुणों का विकास बताया है वहाँ उन्होंने इस पद से नीचे गिर जाने वाले नारी-पात्रों की भर्त्सना भी की है। वे सीता को जगदम्बा मानते हैं। वे सीता के रूप का वर्णन कितनी सुन्दरता से करते हैं—

सिय सोभा नहीं जाय बखानी। जगदम्बिका रूप गुण खानी।
सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छवि गह दीपसिखा जनु बरई।
जो छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूप मय कच्छप सोई।

उनके दूसरी प्रकार के नारी-पात्रों का चरित्र-चित्रण भी देखिये—

विधिहुँ न नारी हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुण खानी।

और

नारि स्वभाव सत्य कवि कहही। अवगुण आठ सदा उर रहही।

सूरदास सगुणमार्गी भक्तों में कृष्ण-काव्य के प्रतिनिध-कवि हैं। उन्होने नारी जाति को व्यापक क्षेत्र प्रदान किया। उनकी राधा प्रणय स्नेह की सोगात ही नही, अपितु परा-शक्ति भी है। सूर की गोपियाँ .मित तथा मर्यादित हैं। उनमें भी विरह है किन्तु एक सीमा के भीतर ही। वे चिरन्तन पुरुष की प्रेमिका बनकर उसके दर्शन के लिए व्याकुल हो उठती हैं—

अखियाँ हरि दरसन की प्यासी।
कैसे रहे रूप रस राँची ये बतियाँ सुनि रूखी॥

सूर की यशोदा मानो विश्व की सभी माताओं का प्रतिनिधित्व करतीं हैं। उनका वात्सल्य अपने प्यारे पुत्र श्री कृष्ण के लिए छलकता रहता है। उनके विशाल हृदय में मानो विश्व के सभी बच्चे क्रीड़ा करते, मचलते और रोते हैं।

रीति-काल की कविता में नारी केवल पुरुष के रीति-भाव का आलम्बन बनकर रह गई। उसके सामाजिक अस्तित्व का उद्घाटन नहीं हो पाया। रीति मुक्त कवि घनानन्द के उन्मुक्त प्रेम के गीतों में भी 'सुजान' से मिलने की कटपटाहट भरी हुई है। उनमें 'सुजान' का कोई सामाजिक रूप वर्णित नही है। इसी प्रकार देव, विहारी, मतिराम आदि के काव्य में भी नारी का कोई सामाजिक रूप दिखाई नहीं देता। उनकी कविताओं

में नारी के देह की शोभाओं एवं चेष्टाओं का वर्णन ही मिलता है। नारी के अङ्ग प्रत्यङ्ग की शोभा, हाव-भाव, विलास-चेष्टाएँ इत्यादि प्रमुख विषय बन गये थे। कृष्ण की शृङ्गार-कालीन राधा का केवल नायिका रूप ही उद्घाटित हुआ था। ब्रज-प्रदेश के गाँवों में, समाज के बीच में उसका रूप प्रदर्शित नहीं हुआ। आचार्य हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने श्रृंगारियों के सम्बन्ध में लिखा है—"यहाँ नारी कोई व्यक्ति या समाज के संगठन की इकाई नहीं है। बल्कि सब प्रकार की विशेषताओं के बन्धन से यथासम्भव मुक्त विलास का एक उपकरण-मात्र है। देव ने कहा है :—

कौन गनै पुर बन नगर, कामिनी एकै रीति।
देखत हरै विवेक को, चित हरै करि प्रीति॥

इससे स्पष्ट है कि नारी की विशेषता इनकी दृष्टि में कुछ नहीं है, वह केवल पुरुष के आकर्षण का केन्द्र भर है।

नारी का सामाजिक रूप आधुनिक युग में ही सामने आ सका इस युग के अनेक कवियों ने नारी के प्रति सहानुभूति प्रकट की। इस युग के कवियों ने शताब्दियों से विलासिता के बन्धन में बँधी हुई नारी को मुक्त किया। नारी के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने वाले कवियों में प्रमुख हैं मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय और जयशङ्कर प्रसाद। प्रसादजी ने तो उसे श्रद्धा-रूपिणी माना है :—

नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में॥

गुप्तजी की ये पंक्तियाँ भी बड़ी प्रसिद्ध हैं :—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥

छायावाद के प्रादुर्भाव के समय छायावादी कवि एक बार फिर रीति-काल की शृङ्गारिक धारा में बहते हुए प्रतीत होने लगे तो पन्तजी ने उन्हें फटकारते हुए लिखा :—

मुक्त करो नारी को मानव, चिर-बन्दिनी नारी को।
युग-युग की निर्मम कारा से, जननी, सखी, प

प्रयोगवादी काव्य में नारी को मानवी दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया गया है। अब उसे जीवन की समस्त उपलब्धियों में नर की समभागिनी बन कर आना है। उसे वासना की भूख में ही नहीं, पेट की भूख में भी मानव की सहायिका बनना है। कवि नागार्जुन ने नारी के परिपार्श्व में शोषित अर्थ-नीति का चित्र खींचते हुए कहा है —

पूस मास की धूप सुहावन,
खाना नहीं पका सकती है।
चावल नहीं सिझा सकती है,
रोटी नहीं बना सकती है॥
अतः कहीं से एक अठन्नी लानी होगी।
वर्ना इस चूल्हे के मुख पर मकड़ी का जाल होगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नारी के प्रति समाज का और समाज के प्रतिनिधि गायक और चित्रकार कवि का दृष्टिकोण भी बदलता रहा है। वीर-गाथा-काल हो, चाहे भक्तिकाल और चाहे रीति-काल हो, चाहे आधुनिक काल नारी सदैव नैतिक, मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि के निर्माण में योगदान देती रही है। अब तो उसका सामाजिक रूप सामने आ गया है और उसके प्रति एक स्वस्थ्य दृष्टि का भी निर्माण हो गया है। अतः नारी का भविष्य उज्ज्वल है।

(४१) भारत की विदेश-नीति

१—ब्रिटिश शासन के समय भारत की विदेश-नीति
२—वर्तमान विदेश-नीति
३—वर्तमान विदेश-नीति की मुख्य बातें—
(क) साम्राज्यवाद का विरोध
(ख) अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों में सत्य और न्याय का पक्ष ग्रहण।
(ग) तटस्थता
४—इस विदेश-नीति का सुपरिणाम
५—उपसंहार

सन् १९४७ के पूर्व हमारा भारत परतन्त्र था। उस समय हमारी विदेश-नीति की बागडोर अंग्रेज शासकों के हाथ मे थी। विदेशी-नीति सम्बन्धी मामलो मे न हमारी कोई राय ली जाती थी, न परवाह की जाती थी। वह अंग्रेजी शासको और उनकी नीति के साथ बंधी हुई थी। यद्यपि हमारे नेताओं ने अपनी विदेश-नीति की रूप-रेखा जब तब दुनियां के सामने रखी, किन्तु उस समय उन बातों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। स्वतंत्रता के बाद ही हमारी विदेश-नीति को वास्तविक स्वरूप प्राप्त हो सका।

हमारी विदेश-नीति के प्रमुख प्रवक्ता थे प्रधानमन्त्री और विदेश-मन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू। विदेश-नीति की रूप-रेखा प्रस्तुत करते हुए उन्होंने एक बार कहा था—"भारत दूसरे राष्ट्रों पर अधिकार जमाने का कोई इरादा नहीं रखता। हमारा प्रमुख उद्देश्य है शान्ति के साथ अपनी समस्याओं को सुलझाना और जहाँ आवश्यक हो दूसरों के साथ सहयोग करना। ऐसा करते हुए हम न क्रोध के आवेश मे बहना पसन्द करते हैं न विद्वेष के। हम तो सारी समस्याओं को शान्ति से हल करने की अपनी नीति पर दृढ रहना चाहते हैं। भारत की विदेश-नीति का बुनियादी आधार है दुनियाँ के सारे राष्ट्रों के साथ मित्रता के सम्बन्ध स्थापित करना"।

स्वर्गीय प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने हमारी विदेश-नीति की तीन प्रमुख बाते दुनियां के सामने रखी—(१) आन्तरिक शान्ति की स्थापना (२) तटस्थता और (३) अन्तर्राष्ट्रीय मामलों मे सत्य और न्याय का समर्थन। हमारी विदेश-नीति की यह रूप-रेखा कोई लक्ष्मण-रेखा नहीं है। देश की भावी आवश्यकताओं को देखकर वह कभी भी बदली जा सकती है। हम समय के साथ चलना चाहते हैं, अतः हमारी नीति नम्र, लचीली अथवा गतिशील है, कठोर नहीं।

हमारी हार्दिक इच्छा है कि हम दुनियां के अन्य देशों के साथ मधुर सम्बन्धों की स्थापना करें। हमे किसी देश पर न तो आक्रमण करना है न उसकी भूमि ही हड़पनी है। हमारे मन में किसी के लिये बुरा इरादा नहीं है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि हम अपनी भूमि पर किसी भी देश का आक्रमण सहन कर लेंगे अथवा अपमान या लानत फटकार

रहेंगे। यदि ऐसी स्थिति पैदा हुई तो हम प्रत्येक आक्रमण का जमकर मुकाबला करेंगे। उदाहरणार्थ, भारत बार-बार पाकिस्तान से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने की बात करता है और पाकिस्तान सरकार की विद्वेष-पूर्ण कार्यवाही के बावजूद भारत कोई उत्तेजना प्रदर्शित नहीं करता है; किन्तु जब काश्मीर में विधान-निर्मात्री-सभा बुलाने के अवसर पर पाकिस्तान ने अपनी फ़ौजें सीमा पर भेज दीं तो नेहरूजी ने उसे कड़ी चेतावनी दी और भारत की रक्षा की तैयारी सुदृढ़ कर दी।

हमारी विदेश-नीति का उद्देश्य है साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और रङ्ग-भेद के विरुद्ध मोर्चा खड़ा करना। साम्राज्यवाद के फौलादी पंजे से मुक्त हो जाने के बाद यह स्वाभाविक ही है कि हम उन लोगों की भी सहायता करें जो अब भी साम्राज्यवाद के फौलादी पंजे में जकड़े हुए हैं, और आजादी के लिए छटपटा रहे हैं। अतः जब-जब समय आया भारत ने उन देशों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की जिन्होंने अपने साम्राज्यवादी मालिकों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। जब इण्डोनेशिया में ॅलण्ड वालों ने अपने साम्राज्यवादी पंजों को सख्त करने का प्रयत्न किया त नेहरूजी ने इसका विरोध किया और दुनियाँ का जनमत हॉलेण्ड के विरुद्ध बनाने का पूरापूरा प्रयत्न किया। इण्डोनेशिया के लिये नई दिल्ली में विदेश-मन्त्रियों की बैठक बुलाई गई। इण्डोनेशिया और भारत के बीच के मित्रता-पूर्ण सम्बन्धों का आधार यही है कि दोनों देश साम्राज्यवाद के विरुद्ध हैं और उसे हमेशा के लिए समाप्त कर देना चाहते हैं। यही स्थिति हिन्द-चीन की भी है। साम्राज्यवाद-विरोधी नीति ने ही हिन्द-चीन और भारत के बीच गहरी मित्रता पैदा करदी है। भारत ने समय पर तिब्बत, ट्यूनिशिया और अल्जीरिया के प्रति भी सहानुभूति प्रदर्शित की है और उनका नैतिक समर्थन किया है।

ईरान ने जब अपने तेल-उद्योग का राष्ट्रीयकरण करने की घोषणा की तब भी भारत ने उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की और जब मिश्र ने स्वतन्त्र होने का प्रयत्न किया तब भी भारत का यही रुख रहा। इसी प्रकार भारत ने ही सबसे पहले दक्षिण-अफ्रीका की मलान सरकार की

रङ्ग-भेद नीति के विरुद्ध आवाज उठाई। उसने दक्षिण-अफ्रीका का प्रश्न संयुक्त-राष्ट्र-संघ में भी उठाया और उस पर विश्व जनमत का प्रभाव डलवाने का प्रयत्न किया। नेहरूजी के ही प्रयत्न से दक्षिण-अफ्रीका को कॉमनवेल्थ में स्थान नहीं मिल सका और कुछ राष्ट्रों ने उसका आर्थिक बहिष्कार कर दिया।

भारत की विदेश-नीति का तीसरा प्रमुख तत्त्व है तटस्थता। अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी को देखकर भारत ने यह तय किया कि वह तटस्थ रहेगा। तटस्थता का यह अर्थ नहीं है कि वह किसी का मित्र नहीं होगा। मित्रता तो वह सबसे चाहता है किन्तु वह किसी एक के साथ इस तरह बंधना पसन्द नहीं करता कि उसका मतलब हो दूसरे से दुश्मनी। इस नीति का यह फल हुआ है कि आज अमेरिका भारत का उतना ही मित्र है जितना रूस। भारत अभी एक नवोदित राष्ट्र है। सम्पन्नता की दृष्टि से उसे दुनियाँ के बड़े-बड़े राष्ट्रों की पंक्ति में खड़े होने में अभी पर्याप्त वर्ष लग जायेंगे। वैज्ञानिक और सैनिक दृष्टि से भी वह अन्य देशों की तुलना में बड़ा पिछड़ा हुआ है। किन्तु उसके उच्चादर्शों पर दुनियाँ के बड़े बड़े राष्ट्र भी विश्वास करते हैं। रूस और अमेरिका दोनों एक दूसरे के दुश्मन हैं किन्तु दोनों ही भारत का सम्मान करते हैं। भारत की ओर से अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर जो कुछ कहा जाता है उसे ध्यानपूर्वक सुना जाता है और दुनियाँ में तनाव कम होने के चिह्न दिखाई देते हैं।

तटस्थता की नीति के कारण भारत को दुनियाँ के सभी राष्ट्रों की मित्रता और सहानुभूति प्राप्त है। इससे सभी देशों से सहायता प्राप्त करना भी सरल बन गया है। यह नीति न तो हमारी अकर्मण्यता का द्योतक है न निष्क्रियता की। यह तो विश्व-शांति की दिशा में एक ठोस कदम है। भारत अन्तर्राष्ट्रीय-राजनीति में गांधीवादी सिद्धान्तों का प्रयोग कर रहा है। हमारा विश्वास है कि विभिन्न देश अपने सामाजिक उत्थान के लिए अपना-अपनी आर्थिक एवं राजनीतिक प्रणालियाँ अपनाने के लिए स्वतन्त्र हैं। अतः किसी भी एक देश को अपनी शासन प्रणाली दूसरे देश पर [illegible] का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। पण्डित नेहरू ने सन् १९५४ [illegible]

अधिवेशन में कहा था—"हमने तटस्थता की नीति न केवल इसलिए अपनाई है कि हम विश्व-शांति के लिए उत्सुक हैं बल्कि इसीलिये कि हम अपने देश की पार्श्वभूमि को नहीं भूल सकते। हम उन तत्वों को नहीं छोड़ सकते जिन्हें हमने अब तक अपनाया था। हमें यकीन है कि आजकल की समस्याएं शांतिपूर्ण ढंग से सुलझायी जा सकती हैं..........केवल युद्ध का न होना शांति नहीं है, बल्कि शांति एक मानसिक स्थिति है जो आजकल के शीत-युद्ध-पूर्ण जगत् में नहीं पाई जाती। यदि युद्ध प्रारम्भ हो जाय तो हम उसमें सम्मिलित होना नहीं चाहते—ऐसा हमने घोषित किया है क्योंकि हम शांति के क्षेत्र को विस्तृत करना चाहते हैं।"

भारत की विदेश-नीति का महत्त्व इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश राष्ट्रों ने उसे अपनाना प्रारम्भ कर दिया है। अफ्रीका, एशिया और अरब के बहुत से नवोदित राष्ट्र उसे अपनाते जा रहे हैं। पाकिस्तान और जापान जैसे देश इस नीति को नहीं अपना रहे हैं परिणाम यह हो रहा है कि पाकिस्तान की आय का ६० प्रतिशत सेना पर खर्च हो जाता है और जैसे ही युद्ध प्रारम्भ होगा उसका उपयोग युद्ध के अड्डों के रूप में होगा। अब भी वे कुचक्रों और षड्यन्त्रों के केन्द्र माने जाते हैं और विरोधी राष्ट्र उन पर कड़ी दृष्टि रख रहे हैं। अपनी तटस्थता की नीति के कारण न तो हमारे बजट का अधिकांश रुपया सेना पर खर्च होता है, न हमें अपने देश का युद्धात्मक अड्डा बन जाने की आशङ्का ही है।

आज की लड़ाई विज्ञान तथा अस्त्र-शस्त्र की द्वेष-पूर्ण स्पर्धा के कारण अत्यन्त भयानक रूप धारण कर रही है। इस विनाश से बचने के लिये तटस्थता की नीति ही लाभदायक हो सकती है। हमारी विदेश-नीति स्वतन्त्रता, सार्वभौमता और विश्व-शांति को सुदृढ़ बनाने की नीति है। इससे राजनीतिक, सामाजिक दोनों प्रकार की स्वतन्त्रताओं के अनुकूल वातावरण का सफलतापूर्वक निर्माण किया गया है।

प्रारम्भ हो जाय और दुनियाँ देखते ही देखते मिट जाय। हमारी विज्ञान की सारी प्रगति युद्ध के विनाशकारी खतरे से कुण्ठित हो गई है। हमें ऐसा लगता है कि दुनियाँ विनाश के कगार पर खड़ी है न जाने कब वह किसी झोंके से गिर पड़े और हमेशा के लिए गहरी नींद में सो जाय! आप पूछोगे कि इसका कोई इलाज भी है या नहीं? हाँ, है। वह इलाज है निःशस्त्रीकरण।

निःशस्त्रीकरण का अर्थ है इन विनाशकारी शस्त्रास्त्रों पर नियन्त्रण करना। आज दुनियाँ के सभी शक्तिशाली और उन्नत राष्ट्र शक्ति प्राप्त करने के लिए इन शस्त्रास्त्रों के अन्धाधुन्ध निर्माण में जुटे हुए हैं। सब एक दूसरे से भयभीत हैं और अपनी शक्ति रक्षा और उन्नति का स्रोत इन शस्त्रास्त्रों को ही समझ रहे हैं। किसी में इतना साहस नहीं है कि इन विनाशकारी उपकरणों से अपना पीछा छुड़ाएँ और दुनियाँ से कहें कि हमारा कोई बुरा इरादा नहीं है। यदि कोई हम पर बुरा इरादा रखता है तो हम बिना हथियारों के उसका मुकाबला करेंगे और भले ही मर मिटें पर उसके इरादों को सफल नहीं होने देंगे। इस निश्चय के साथ शस्त्रास्त्रों की इस कुटिल और विनाशकारी होड़ से पीछे हट जाना ही निःशस्त्रीकरण है।

यह बात नहीं है कि निःशस्त्रीकरण के महत्त्व को कोई समझ नहीं रहा है। आज दुनियाँ के सभी बड़े राष्ट्र उसके महत्त्व को समझ रहे हैं। वे उसके लिए प्रयत्नशील भी हैं किन्तु उनके प्रयत्न अधूरे और आधे मन से किये हुए हैं। आइए, हम इन प्रयत्नों के इतिहास पर एक दृष्टि डालें। निःशस्त्रीकरण का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। वह अपने जीवन के केवल २–३ दशक ही बिता सका है। उसका जन्म दूसरे महायुद्ध की विभीषिका के बाद सन् १९४५ में हुआ था। दुनियाँ के बड़े राष्ट्र अपनी आँखों से युद्ध के विनाशकारी कुकृत्यों और उनके दुष्परिणामों को देख चुके थे। उन्होंने अनुभव किया था कि यदि यही स्थिति रही तो दुनियाँ का विनाश दूर नहीं है। अतः सन् १९४५ में उन सभी बड़े राष्ट्रों ने निःशस्त्रीकरण का प्रश्न उठाया। अमेरिका और ब्रिटेन दोनों ने ही न्यू मेक्सिको के प्रथम आणविक विस्फोट के बाद एक सम्मिलित

घोषणा की। उन्होंने कहा कि इन विनाशकारी अस्त्रों की होड को रोकने के लिए शीघ्र ही एक संयुक्त-राष्ट्र-आयोग की स्थापना की जाय। इस घोषणा का अच्छा फल हुआ। अमेरिका, ब्रिटेन और सोवियत-रूस के विदेश-मन्त्रियों ने जनवरी १९४६ में संयुक्त-राष्ट्र-अणुशक्ति-आयोग की स्थापना की। इसी वर्ष जून मास में अमेरिका ने एक योजना प्रस्तुत की जो कि 'बरुच-योजना' के नाम से प्रसिद्ध है। इस योजना के कुछ प्रस्ताव इस प्रकार हैं—

(१) भय पूर्ण संभावनाओं से युक्त सम्पूर्ण आणविक क्रिया-कलापों एवं अन्य कार्य-विधियों की व्यवस्था, नियन्त्रण और अन्य कार्यक्रम एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के आधीन हों।

(२) इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के नियमों का उल्लंघन करने वाले राष्ट्रों को दण्ड दिया जाय। स्थायी सदस्यों का निषेधाधिकार भी इस निर्णय में बाधक न हो।

(३) दण्ड विधान के नियम के साथ ही आणविक शस्त्रास्त्रों के उत्पादन पर भी अंकुश लगाया जाय और इनके उत्पादन में लगने वाली समस्त सामग्री का उपयोग मानव-कल्याण के विविध कार्यों में किया जाय।

सन् १९४६ में यह 'बरुच-योजना' राष्ट्रसंघ में बहुमत से स्वीकार कर ली गई। दुःख है कि इस योजना को सभी सदस्य राष्ट्रों की सर्वसम्मत स्वीकृति नहीं मिल सकी। सोवियत-रूस तथा उसके मित्र राष्ट्रों ने यह आपत्ति की कि सर्वप्रथम आणविक अस्त्रों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाया जाय और नियन्त्रण विधि बाद में कार्यान्वित की जाय। इसके बाद रूस ने यह कहा कि अणुबमों पर नियन्त्रण और प्रतिबन्ध दोनों एक साथ प्रारम्भ किये जायें। इसके बाद रूस बार-बार विरोध करता रहा। परिणाम यह हुआ कि संयुक्त-राष्ट्र-संघ की समिति ने केवल एक ही आयोग में, जिसका नाम निःशस्त्रीकरण आयोग रखा गया, परिवर्तित कर दिया। यद्यपि रूस का रुख निःशस्त्रीकरण विरोधी नहीं है तथापि अमेरिका और रूस के बीच व्याप्त पारस्परिक अविश्वास और वैमनस्य के कारण उनके बीच की खाई कम हो ही नहीं पाती। फलतः संयुक्त
की संयुक्त-समिति ने इस आयोग के सारे कार्य को एक निष्पक्ष ए

उपसमिति को सौंप दिया। इस उपसमिति की बहुत सी बैठकें सन् १९५३—५४ में हुईं। अक्टूबर १९५४ में संयुक्त-राष्ट्र-संघ ने यह प्रस्ताव पास किया कि मुख्य रूप से अस्त्र-निर्माता पांच महान् राष्ट्रों का सम्मिलित निर्णय होगा। तीन-चार वर्षों की अवधि में निःशस्त्रीकरण के समझौते के सम्बन्ध में पाँच महान् राष्ट्रों की अनेक बैठकें हुईं और इनमें पर्याप्त विचार-विनिमय भी हुआ। किन्तु खेद है कि इन सबका कोई सुपरिणाम सामने नहीं आ पाया। पता नहीं वह सुदिन कब उदय होगा जब इन बड़ी-बड़ी शक्तियों में इस प्रश्न पर समझौता होगा और दुनियाँ मुक्ति की साँस ले सकेगी।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि निःशस्त्रीकरण का प्रश्न दुनियाँ के जीवन-मरण का प्रश्न है। यदि इस प्रश्न का समुचित हल निकल आया तो ठीक है अन्यथा कुशल नहीं हो सकती। बात यह है कि जैसे-जैसे विज्ञान की प्रगति हो रही है वैसे-वैसे विनाश के नये शस्त्र-अस्त्र बन रहे हैं। इन शस्त्रास्त्रों की शक्ति चौंका देने वाली है। पहले जहाँ तलवार या बन्दूक एक बार में एक-दो व्यक्तियों को ही मारने की क्षमता रखते थे वहाँ अब आधुनिक शस्त्रास्त्र एक साथ करोड़ों व्यक्तियों को मारने की क्षमता रखने लगे हैं। वे देश के देश नष्ट कर सकते हैं। अब सारी दुनियाँ का विनाश कुछ ही घण्टों का काम हो गया है। अतः दुनियाँ के सामने यह प्रश्न है कि वह विनाश की इस होड़ में आगे बढ़े या इनसे मुक्ति ले। स्पष्ट है कि विनाश कोई नहीं चाहता। किन्तु पारस्परिक अविश्वास और विद्वेष का ऐसा कुटिल जाल बिछा हुआ है कि विश्वास, शान्ति, सद्भावना और सुरक्षा का मार्ग प्रशस्त नहीं हो पाता। वैसे तो दुनियां के सामने आज अनेक समस्याएँ हैं किन्तु निःशस्त्रीकरण की समस्या उससे तत्काल हल की माँग कर रही है। यदि इसकी इसी प्रकार उपेक्षा होती रही तो विनाश निश्चित है। इसीलिए मैं इसे दुनियाँ के जीवन-मरण का प्रश्न कहता हूँ।

प्रसन्नता की बात है कि सन् १९५५ में सोवियत-रूस ने अपनी सेना में सात लाख सैनिकों की कमी करने की घोषणा करके इस दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल की। इसमें कोई सन्देह नहीं कि निःशस्त्रीकरण की दिशा

मे यह एक महत्त्वपूर्ण कदम था किन्तु खेद है कि दूसरे राष्ट्रो ने इसका बिल्कुल उत्तर नही दिया। अगस्त १६५७ मे नि.शस्त्रीकरण की समस्या पर फिर एक बैठक हुई जिसमे कुछ नये सुझाव रखे गये। अमेरिका के भूतपूर्व विदेश-मन्त्री श्री डलेस ने अमेरिका, रूस और 'वारसा-सन्धि' के देशो मे हवाई-निरीक्षण का प्रस्ताव रखा। इधर नाटो-परिषद् ने भी निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी बातो मे अपनी सहमति प्रकट की किन्तु अभी तक दुनियां के बडे-बडे राष्ट्र किसी सर्वसम्मत निर्णय तक पहुँच नही सके हैं। वस्तुत: नि शस्त्रीकरण का प्रश्न हमसे साहस की मांग कर रहा है। हम अपने मनो मे अविश्वास, वैमनस्य और कटुता बनाये रखकर इस प्रश्न को हम हल नहीं कर सकेंगे। अत: इस समस्या की मांग यह है कि बडे राष्ट्र वैमनस्य, अविश्वास और कटुता के संकुचित एवं विनाशकारी घेरे से ऊपर उठे और मुक्त मस्तिष्क से इस प्रश्न पर सोचे-विचारे। यदि दुर्भाग्य से ये लोग उस घेरे से ऊपर न उठ सके तो दुनियां के शान्तिप्रिय लोगो का मत इतना शक्तिशाली बन सके कि उन्हे नि शस्त्रीकरण के लिये विवश करदे। सौभाग्य से ऐसी शक्तियों का उदय हो रहा है। चिन्ता यही है कि इन शक्तियो के मजबूत होने से पहले ही कही विनाशकारी शक्तियां अपने पैर न जमा ले।

(४३) चीन की चुनौती

१—चीन का सपना
२—जीवन मूल्यों का सघर्ष
३—रूढिवादी साम्यवाद मैदान मे
४—हमारा कर्तव्य
  (अ)—सुरक्षा का महत्त्व समझे
  (आ)—सरकार, ससद और प्रधान मन्त्री का समर्थन करे
  (इ)—शान्ति कालीन सुविधाओ को छोडने के लिये तैयार रहे
५—उपसहार

चीन ने हमारी उत्तरी सीमा पर आक्रमण कर हमे एक बहुत बडी चुनौती दी है। चीन का आक्रमण एक साधारण युद्ध नही

यह है कि चीन का आक्रमण उसकी उस महत्वाकांक्षा का पहला अभियान है जो वह सम्पूर्ण दक्षिण-पूर्ण एशिया जिसमें पूर्वी पाकिस्तान और ब्रह्मा भी सम्मिलित हैं, को विजय करके पूरा करना चाहता है यदि किसी दिन चीन को इसमें सफलता मिली तो वह हमारे दुर्भाग्य का दिन होगा। उस दिन आज़ादी ही नहीं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता भी समाप्त हो जायगी। अपनी जिस संस्कृति और नैतिक व आध्यात्मिक जीवन पर हम सदियों से गर्व करते आए हैं समाप्त हो जावेंगे। हमारी पराजय सम्पूर्ण एशिया ही नहीं दुनियाँ की परतन्त्रता और जनतान्त्रिक प्रणाली के लिये एक वहुत वड़ा आघात सिद्ध होगी। चीनी साम्यवादी यही सपना देख रहे हैं कि वे समस्त एशिया ही नहीं दुनियाँ की स्वतन्त्रता, आध्यात्मिक जीवन और जनतांत्रिक प्रणाली का अन्त कर दें।

चीन के आक्रमण को केवल सीमा का झगड़ा समझना एक वहुत वड़ी भूल होगी। वस्तुतः वह भारतीय और चीनी जीवन पद्धतियों, आदर्श एवं दर्शन का संघर्ष है। हम आस्तिक हैं वे नास्तिक। हम भौतिक पदार्थों से अधिक मानवीय मन व संकल्प-शक्ति को प्रधानता देते हैं, वे मानवीय मन और संकल्प को भौतिक परिस्थितियों की उपज मानते हैं। हम साध्य के साथ-साथ साधन की पवित्रता को भी महत्त्वपूर्ण मानते हैं जव कि उनके लिये साधनों की शुद्धता कोई महत्त्व नहीं रखती। उनकी दृष्टि से केवल साध्य ही महत्त्वपूर्ण है। उसके लिये वे निम्न से निम्न साधन अपनाते हुए नहीं हिचकते। हम अहिंसा को वड़ा महत्त्व देते हैं और जीवन ही नहीं जगत् में उसकी प्रतिष्ठा करना चाहते हैं किन्तु उनके सामने अहिंसा न तो नीति-शास्त्र का प्रश्न है न आचार का। वह उनके लिये मात्र व्यावहारिक उपयोगिता का प्रश्न है। हमारा लक्ष्य है 'वहुजन हिताय वहुजन सुखाय।' हमारी निष्ठा सर्वोदय में है किन्तु वे पार्टी या पक्ष के लिये सभी छोटे-वड़े स्वार्थों को वलिदान करना श्रेयस्कर मानते हैं। हमारी मान्यता है कि सद्भावना पैदा करके वातचीत या पंच-फैसले द्वारा सभी झगड़े निपटाये जा सकते हैं। किन्तु वे वर्ग संघर्ष और क्रांति की निरन्तरता में विश्वास करते हैं। माओ का कहना है कि शक्ति 'वन्दूक की नली से आती है' हम सव प्रकार की वैचारिक स्वतन्त्रता को मूल्यवान मानते हैं और

उसके लिये पूरा-पूरा अवसर देना चाहते हैं। किन्तु वे वैचारिक स्वतन्त्रता को खतरनाक मानते हैं। उनके अनुसार वही विचार प्रचलित किया जाना चाहिये जो शासनसत्ता तय करे। आज हमारे सामने अपनी इन्हीं जीवन मूल्यों की रक्षा का प्रश्न उपस्थित हो गया है। साम्यवादियों ने सन् १९२८ को अपने अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम मे यह स्पष्ट कर दिया था कि गांधीवाद जनक्रान्ति का अधिकाधिक विरोधी सिद्ध हो रहा है और साम्यवाद को उसका डटकर मुकाबला करना चाहिये।

यद्यपि युगोस्लाविया और सोवियत रूस भी साम्यवादी राष्ट्र हैं, किन्तु उन्होंने अपनी रीति-नीति से यह सिद्ध कर दिया है कि वे चीन की भांति रूढिवादी साम्यवाद मे विश्वास नही करते। चीन रूढिवादी साम्यवाद के सभी तरीके, नारे और ध्येय अपनाना चाहता है। चीन का नेता माओ स्टेलिनवाद मे *विश्वास* रखता है। चीन के *साम्यवादी* इतने प्रबल आतंकवादी हैं कि उन्होंने सब प्रकार की स्वतन्त्रता को पूर्णतः कुचल दिया है। संसार पर प्रभुत्व स्थापित करने की आकाक्षा उसमे इतनी प्रबल है कि यदि आज स्टेलिन जीवित होता तो वह इन सबको देखकर नाचने लगता। यही कारण है कि हमारी यह लडाई साधारण लडाई नही है। इसमें हमे केवल चीनियो का मुकाबला ही नही करना है, उन सब लोगों का भी मुकाबला करना है जो इस रूढिवादी साम्यवाद मे *विश्वास* करते है। हमारा दुर्भाग्य है कि ऐसे कुछ लोग हमारे देश मे भी *मौजूद* हैं। ऐसे लोग जहाँ-तहाँ हमारे देश की जनता के संकल्पों को *क्षीण करने* मे लगे हुए हैं। वे देश के विभिन्न भागो मे राष्ट्र-विरोधी *विध्वंसक कार्य* कर रहे हैं। अब आप समझ गये होगे कि चीनी *आक्रमण करने वाले हैं* कितना घातक विष छिपाये हुए है, उसकी शक्ति *कितनी प्रबल है और* उसका मुकाबला करना कितना आवश्यक है।

अब प्रश्न यह है कि इस स्थिति मे हमारा
अंग्रेज हमारे देश के शासक थे, उनकी सैनिक
थी। फलतः एक लम्बे अरसे तक हम
और हमने सुरक्षा के प्रश्न की कमी को

सोचा। किन्तु आज सुरक्षा का प्रश्न हमारे जीवन और मरण का प्रश्न वन गया है। यदि हम खतरे की गम्भीरता को नहीं समझते, उसके लिये पूरी तैयारी नहीं करते और मौका आने पर अपना सब कुछ वलिदान करने की तत्परता नहीं दिखाते तो हमारा भविष्य निश्चय ही अन्धकारमय है। सौभाग्य से आज देश में हमारी अपनी सरकार है। हमारे अपने चुने हुए व्यक्ति शासन की कुर्सियों पर वैठे हैं और वे ही हमारे युद्ध प्रयत्नों का संचालन कर रहे हैं। ये वे ही लोग हैं जो आजादी की लड़ाई में अपनी देश-भक्ति का परिचय दे चुके हैं। हम अलग-अलग और असंगठित रहकर इस खतरे का मुकावला नहीं कर सकते। सरकार ही हमारे युद्ध प्रयत्नों का संचालन कर रही है। हमारी विजय-प्राप्ति का वही सवसे वड़ा उपकरण है। अतः आज की सवसे पहली आवश्यकता यह है कि हम अपनी सरकार को मजवूत वनायें, उसे पूरा समर्थन और सहयोग दें। हम से ऐसा कोई काम न करे जिससे वह कमजोर वने। हमारे प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने चीनियों को निकाल वाहर करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की थी अतः हमें उनके नेतृत्व में पूरा विश्वास रखना चाहिये और वह जैसा मार्गदर्शन कर गये हैं हमें उसी प्रकार का कार्य करते रहना चाहिये। इधर हमारी संसद भी प्रजातन्त्रीय प्रणाली का पर्याप्त अनुभव कर चुकी है। वह भी चीनी आक्रमण का मुकावला करने के लिये कटिबद्ध है। अतः हमें उसका भी पूरा समर्थन करना चाहिये। समय की यह आवश्यकता है कि हम दुश्मनों को अपने देश से वाहर निकालने के लिये दृढ़ संकल्प करें और अपने में थोड़े से भी संशय या दुविधा को स्थान न दें इस संकट-काल में हमें उन सव सुविधाओं और नागरिक स्वतन्त्रता की आशा नहीं करनी चाहिये जो शांति के समय हमें प्राप्त रहती हैं। हमें अपने सत्तारूढ़ नेताओं पर पूरा विश्वास रखना चाहिये कि वे अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं करेंगे। ऐसे समय शासकों को अपने पास कुछ विशेष अधिकार रखने आवश्यक होते हैं और राष्ट्र के प्रति कोई भी विरोध सहन नहीं किया जाता। क्या हम अपने इस कर्त्तव्य को पहचानेंगे ?

(४४) हमारी प्रतिरक्षा का प्रश्न

भूमिका—

१—प्रतिरक्षा की आधुनिक आवश्यकताएँ

२—भारत में इन साधनों की सुलभता

३—हमारी कमी—राष्ट्रीय एकता का अभाव

४—आजादी के बाद एकता की ओर प्रगति

५—संकट-कालीन स्थितियों का वरदान

६—उपसंहार

आधुनिक युग में किसी भी राष्ट्र को अपनी प्रतिरक्षा के लिये विपुल साधनों की आवश्यकता होती है। अब वह युग नहीं कि थोड़े साधनों से ही कुछ वीर पुरुषों के बल पर विजय प्राप्त की जा सके। आज सेनाओं को अनेक अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य साधन सामग्रियों की आवश्यकता होती है और इन सब का उत्पादन केवल वही राष्ट्र कर सकते हैं जो औद्योगिक दृष्टि से आगे बढ़ चुके हैं। इतना ही नहीं कच्चे माल का पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना भी आजकल प्रतिरक्षा के लिये बड़ा आवश्यक है। आजकल प्रतिरक्षा के लिये सेना की सभी आवश्यकताओं की जिनमें अस्त्र-शस्त्र से लेकर बूट और बटन तक अनेक वस्तुएँ आती हैं जिन्हें अपने ही देश में तैयार करने की आवश्यकता होती है। उनमें प्रमुख ये हैं—

(१) जनबल अर्थात् शारीरिक दृढ़ता और साहस वाले व्यक्तियों की पर्याप्त संख्या।

(२) इतना लम्बा चौड़ा देश जिसमें आर्थिक और सैनिक दोनों ही दृष्टियों से अपनी व्यवस्था को निरन्तर और गतिशील बनाये रहने का [illegible]

(३) पर्याप्त [illegible] [illegible] उपलब्ध होना।

(४) रेल सड़क [illegible] व्यवस्था [illegible]

जहाँ तक हमारे [illegible]

करने के लिये हमें [illegible]

जहाँ तक उपलब्ध हैं जहाँ तक जनबल का सम्बन्ध है हमारे देश में साहसी योद्धाओं की कमी नहीं है । अंग्रेजों ने हमारे देश के विशाल जनबल का आंशिक प्रयोग ही किया था । और सेना में मराठे, जाट, राजपूत, गोरखे, सिक्ख, मुसलमान आदि को ही प्रमुख स्थान दिया था । यदि आज जनबल का पूरा उपयोग किया जाय तो हमारे सामने जनबल की कोई समस्या नहीं रहेगी । विस्तार और क्षेत्र के मामले में भी हमारा देश सौभाग्यशाली है । मुगलों को दक्षिण पर विजय प्राप्त करने में जो बहुत सा समय लगा और फिर भी सफलता न मिल सकी उसका एक मात्र कारण क्षेत्र का विस्तार ही था अंग्रेजों को भी भारत को जीतने में जो सौ वर्ष का समय लगा उसके पीछे भी क्षेत्र का विस्तार ही एक प्रमुख कारण था । आजकल यह भी आवश्यक है कि हमारी प्रतिरक्षा व्यवस्था किन्हीं एक या दो स्थानों पर केन्द्रित न हो । क्योंकि यदि दुश्मन उन्हीं जगहों पर बम गिरा देता है तो हमारी सारी शक्ति समाप्त हो जाती है । जहाँ क्षेत्र का विस्तार सोवियत होता है वहाँ बम आदि विनाशक अस्त्र-शस्त्र सर्वाधिक विनाश करते हैं । हमारे देश में गङ्गा के मैदान को छोड़कर शेष सभी भागों की आबादी विरल है । हमारे उद्योग-धन्धे सारे देश में फैले हुए हैं । हाँ कुछ उद्योग कच्चे माल की एक विशिष्ट क्षेत्र में बहुतायत होने के कारण उसी क्षेत्र में एकट्ठे जरूर हैं । किन्तु कुल मिलाकर हमारे उद्योग देश भर में फैले हैं । इसी प्रकार प्रतिरक्षा के लिये जिन भौतिक सामग्रियों की आवश्यकता होती है वह भी सारे देश भर में फैली हुई हैं ।

इन साधनों की दृष्टि से समृद्ध होते हुए भी हमारी कुछ कमियाँ हैं । उनमें प्रमुख है मानसिक साधन । किसी भी देश की प्रतिरक्षा के लिये सबसे पहली आवश्यकता है स्वतन्त्र रहने की कामना और उसके लिये सब कुछ बलिदान करने की तैयारी । हमें यह खेद के साथ स्वीका[र] करना पड़ता है कि सदियों से हमारे देश में इस भावना का अभाव र[हा] है । एक ओर क्षेत्रीय दृष्टि से हमारे देश का विस्तार और दूसरी ओ[र] जातियों की अनेकता इस दिशा में बाधक बनती रही है । राष्ट्रीय एक[ता] के अभाव में हमारे यहाँ क्षेत्रीय या स्थानीय भावनाएं प्रबल होती रही जिनसे सदैव राष्ट्रीय एकता को आघात पहुँचा । इतिहास बताता है

अरव के नवाब ने मरहठों के डर से ईस्ट इण्डिया कम्पनी से मेल किया और सिन्धिया के आक्रमण से बचने के लिए राजस्थान के राजाओं ने अंग्रेज़ों की शरण ली। इसी प्रकार ट्रावनकोर के राजा ने भी मैसूर के राज्य की मांग स्वीकार करने की अपेक्षा विदेशियों की आधीनता स्वीकार की। इधर अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सन्धि की। इसमें कोई सन्देह नही कि शुजाउद्दौला बडा कुशल योद्धा था किन्तु हमारा यह दुर्भाग्य था कि उसके मन मे भारत की एकता व स्वतन्त्रता की भावना न थी। वह अवध के लिये चिन्तित था और उसे मरहठो से बचाना चाहता था। १८ वी शताब्दी मे यही भावना हमे सब शासको मे दिखाई दी।

राजा-महाराजा ही नही हमारी जनता भी उस कमजोरी का शिकार रही है उसमे भी अपने प्रादेशिक शासको के प्रति वफादारी का अभाव था। बात यह थी कि न तो उस काल के शासक विधिवत् नियुक्त हुए थे न उनका शासन किसी सिद्धान्त पर आधारित था। जो जिस पर कब्जा कर बैठता उसी का राजा बन बैठता। जैसे हैदराबाद व अर्काट मे नवाब। इसमे कोई सन्देह नही कि महाराष्ट्र व पंजाब मे अपने शासकों के प्रति वफादारी थी किन्तु सारे देश की दृष्टि से यह वफादारी कम ही कही जायगी।

अब प्रश्न यह है कि क्या आज स्थिति मे परिवर्तन हुआ है। बाहर से देखने पर आज भी हमें अनेक विभाजक प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं। भाषाओ की दृष्टि मे हमारे देश में अनेक भाषायें हैं और इन भाषाओं को बोलने वाले लोग अपने-अपने भाषाओं के प्रति जितने वफादार हैं उतने राष्ट्रीय एकता के लिए नहीं हैं। हमारे यहाँ अनेक जातियाँ व उपजातियाँ हैं। और सबको अपनी ऐतिहासिक परम्पराओं पर गर्व है। भारत में ऐसा कोई प्रदेश नहीं जो किसी न किसी बात मे अपने को वडा न मानता हो। किसी बात में अपनी विशिष्टता या श्रेष्ठता मानना बुरा नहीं है। किन्तु हमारी कमी यह है कि हम ऐसा करते हुए भारत की विशिष्टता और श्रेष्ठता को भूलकर आपस में लडने-झगडने लगते हैं। वस्तुतः किसी भी जाति देश या भाषा की विशिष्टता एवं गौरव

पृथकता पर आधारित नहीं हो सकता। सदियों से हमारे यहाँ कोई अपनी केन्द्रीय सरकार नहीं थी। यह पृथकता उसकी भी देन है। किन्तु आज भारत में एक केन्द्रीय सरकार है और वह भी हमारी ही जनता द्वारा चुनी हुई। आज दुनियाँ भी छोटे-छोटे राज्यों का विलय कर बड़े-बड़े देशों की स्थापना की ओर बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में विभाजन व पृथकता की प्रवृत्ति असामयिक एवं अहितकर है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ऐसे बहुत से क म हुए हैं जिन्होंने हमें एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया है। हिन्दू-धर्म के नाते तो हम एक सूत्र में बन्धे हुए हैं ही आर्थिक पुनर्निर्माण ने भी हमें एकता की ओर बढ़ाया है। आज भारत में जो पुनर्निर्माण हो रहा है वह कोई भी एक प्रदेश अलग रहकर नहीं कर सकता। हमारे देश के निवासी अब लोकतन्त्रीय राजनीतिक जीवन में समान रूप से भाग ले रहे हैं। सबको समान अधिकार और समान स्वतन्त्रता प्राप्त है। किसी जाति या किसी क्षेत्र से दूसरों को कोई क्लेश नहीं पहुँचता। यदि यही स्थिति रही तो निश्चय ही एक ऐसा दिन आयेगा जबकि भाषा, जाति और क्षेत्रीयता पर आधारित ईर्ष्या व स्पर्धा की क्षुद्र भावनाएँ ः ।न हो जायेंगी। हमें यह कहते हुए हर्ष है कि चीन द्वारा भारत पर आक्रमण करते ही एकता की भावना प्रबल हुई है। आज हमारी सबसे बड़ी शक्ति है स्वस्थ प्रादेशिक स्पर्धा पर आधारित राष्ट्रीय अखण्डता तथा केन्द्रीय शासन में देश के विविधतापूर्ण जीवन का प्रतिनिधित्व। हमें प्रसन्नता है कि यह शक्ति विकास कर रही है। पाकिस्तान ने जब कश्मीर पर आक्रमण किया तो हमारी एकता मजबूत हुई। हैदराबाद की जनता ने भी यही काम किया और अब चीन के आक्रमण ने तो हमारी एकता को सबसे अधिक बल पहुँचाया है। जो लोग यह सोचते थे कि भारत की राजनीतिक एकता निर्बल है और कोई बड़ा खतरा सामने आते ही वह टुकड़े-टुकड़े हो जायगी उनके विचार अबतक काल्पनिक सिद्ध हो चुके हैं।

किन्तु आज हमारे सामने प्रमुख प्रश्न यही है कि क्या हम अपने प्रतिरक्षात्मक साधनों का इतनी तीव्रगति से विकास कर सकेंगे कि हम दूसरों की सहायता के बिना ही इस संकट का डट कर मुकाबला कर सकें।

इस प्रश्न का यही उत्तर है कि हम जिस परिभाषा मे राष्ट्रीय दक्षता प्राप्त करेंगे, अपनी जनता को शिक्षित बनायेंगे, राजनीतिक स्थिरता और सामाजिक एकता को विकसित करेंगे उसी परिमाण मे हम शक्तिशाली होते चले जायेंगे। चीन की चुनौती का जवाब हमारी इन्हीं प्रतिरक्षात्मक तैयारी पर निर्भर करता है। आइये हम उसमे जुट पड़ें।

(४५) मन के हारे हार है, मन के जीते जीत !

१—भूमिका

२—दुनियां की विपदाओ पर विजय पाने का महत्त्व

३—उसे प्राप्त करने के उपाय—(१) आत्म-निरीक्षण (२) स्वाध्याय (३) गुरु कृपा।

४—उपसंहार

विद्वानो और दार्शनिकों ने इस दुनियां को एक शाश्वत दुःखालय कहा है। यहां हम जो चाहते हैं वह बहुत थोड़ा है और जो नहीं चाहते हैं वही सबसे अधिक है। हम जो कुछ चाहते हैं उसी को प्राप्त करने के लिये करोड़ों व्यक्तियो की दौड़ निरन्तर लगी रहती है परन्तु पहचानने वाले बहुत कम। फलतः जिनके सिर पर सफलता का सेहरा बंधता है ऐसे सौभाग्यशाली बहुत कम निकलते हैं। अधिकांश वे ही हैं जिन्हें बार बार विपत्ति, पराजय और निराशा का मुंह देखना पड़ता है। इस दृष्टि से यदि देखें तो जीवन मानो विपद, असफलता और नैराश्य से संघर्ष की एक लम्बी कहानी है। जीवन में सफलता व आनन्द बहुत थोड़ा है। अतः हमारी सफलता व आनन्द अधिकतर इसी बात पर निर्भर करता है कि हम जीवन की विपदाओं, असफलताओं और निराशाओ का मुकाबला कितने साहस से, कितनी बहादुरी से करते हैं। विपदाओ और निराशाओं से लड़ते हुए जिस एक बात के दर्शन होते हैं और जो सबके अनुभव में समान रूप से आती है वह किसी कवि के शब्दो मे इस प्रकार है—

मन के हारे हार है,

जीवन की कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने का यही एक मूल मन्त्र है। इसमें कहा गया है कि मनुष्य की जीत उसके मन पर निर्भर है और मन ही पर उसकी हार निश्चित है। गीता में इसी बात को कुछ शब्दों के हेरफेर के साथ इस प्रकार कहा गया है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयो

अर्थात् हमारा मन ही बन्धन व मोक्ष का कारण है। मतलब यह कि यदि हम बाधाओं को बाधा समझकर उलझते रहें तो निश्चय ही उन बाधाओं के झंझट में उलझ जायेंगे। किन्तु यदि हम बाधाओं को बाधा समझते ही नहीं। न उनसे डरते या घबराते हैं तो वे देखते ही देखते समाप्त हो जायेंगी। अतः हमारी अपनी सफलता या असफलता, आशा या निराशा विपद् या आनन्द हमारे अपने मन पर ही निर्भर है। यदि हमारा मन जीता हुआ है, आशाओं से भरा है तो दुनियाँ की कोई मुसीबत उसे हरा नहीं सकती, निराश नहीं कर सकती। वह राम का जीता हुआ ही मन था जिसने राज्याभिषेक के तुरन्त बाद वनवास के समाचार सुनकर भी कोई परेशानी अनुभव नहीं की। कैकयी ने वरदान माँगकर मानो दुनियाँ भर की विपत्ति राम के सिर पर डाल दी। किन्तु राम के जीते हुए मनको ये मुसीबतें छू भा नहीं सकीं। उनका मन चाहे सीता हरण का समय आया, चाहे राम-रावण युद्ध का, सदैव अपराजित रहा। कठिनाइयाँ, असफलताएँ और निराशाएँ क्या प्रताप, शिवाजी व नेपोलियन के सामने कम थीं? किन्तु इनके अपराजित मनों ने कठिनाई को कठिनाई कब समझा? उसे देखकर कब ठण्डी साँस ली? यह उनके अपराजित मन का ही प्रभाव था कि बड़ी से बड़ी बाधा भी उनके मार्ग को अवरुद्ध न कर सकी। कटंकाकीर्ण मार्ग उनके लिये राजमार्ग बन गया, पहाड़ नतमस्तक हो गये और सरिताएँ मार्ग देने के लिये विवश हो गईं। यदि गम्भीरतापूर्वक विचार करके सृष्टि के रहस्य को जानने का प्रयत्न किया जाय, तो ऐसा प्रतीत होता है कि आनन्द का श्रोत मनुष्य के अपने अन्दर है। मनुष्य अपनी सारी शक्ति उसे बाहरी दुनिया में ढूँढ़ते हुए खर्च कर देता है। किन्तु जब मन की शक्ति का पता पड़ जाता है तो जैसे कोई खजाना ही हाथ लग जाता है। विद्वानों का कहना है कि सृष्टि के आदि पुरुष मनु थे। आगे मनु की सन्तान ही मानव

कहलाई। मनु शब्द की उत्पत्ति 'मनु' नामक मूल धातु से हुई है। मूल धातु मनु का अर्थ है चिंतन करना, विचार करना। जो चिंतन या विचार करता है वही वस्तुतः मानव है। हम मानव तो हैं परन्तु मानव का प्रमुख गुण चिंतन हममे से कितनो को प्राप्त है ? राम को हम ईश्वर की तरह पूजते हैं। क्या आपने कभी सोचा कि राम में ऐसा कौनसा गुण था जिसने उन्हें ईश्वर की कोटि में लाकर रख दिया ? पंचवटी मे राम के इसी गुण का संकेत लक्ष्मण के मुंह से कराते हुए मैथिलीशरणजी गुप्त ने लिखा है—

मनः प्रसाद चाहिये केवल
क्या कुटीर फिर क्या प्रासाद,
भाभी का अल्हाद अतुल है,
मंझली माँ का विपुल विशाद ?

राम की सहधर्मिणी होने के कारण सीता को मनःप्रसाद प्राप्त हो गया था और जंगल उनके लिए सैकडो स्वर्ग की भाँति आनन्ददायी बन गया था दूसरी ओर कैकयी ने इसी मनःप्रसाद को खो दिया ! फलतः राजप्रासादों मे भी रहकर वह सदैव दुःखी रही।

आप प्रश्न करेंगे कि यह मनःप्रसाद कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? मनःप्रसाद प्राप्त करने के लिये हमे अपने मन को पवित्र बनाना पड़ेगा। उसके ऊपर से स्वार्थ, कलुष, अज्ञान और अविचार का आवरण उठाना पड़ेगा। हमें सतत् जागरूक होकर यह देखते रहना पड़ेगा कि हमारा मन बुराइयों का शिकार तो नही हो रहा है, अपवित्र तो नही बन रहा है। ऐसा करते रहने से हम अपने मन की कमजोरियो, अशुद्धता और अपवित्रता को खोज सकेंगे और उनका अन्त करके उसे विशुद्ध बनाने मे सफलता प्राप्त कर लेंगे। यदि हम जागरूक रहकर अपने दिन भर के क्रिया-कलाप पर विचार करे, यह देखे कि हमारी अपनी त्रुटियाँ क्या हैं तो निश्चय ही इससे बढकर हमारा कोई मार्गदर्शक नही हो सकता। यह आत्मनिरीक्षण हमे सदैव सही रास्ता दिखाता रहेगा। जब हम अपने को देखेंगे अपनी भूलों को पहचानेंगे तो उन्हे दूर करने का प्रयत्न अपने आप प्रारम्भ हो जायगा। उस स्थिति मे हमे अपनी भूल स्वीकार करना आनन्ददायक लगेगा और हमारा मन स्फटिक की भाँति स्वच्छ और पवित्र बन जायगा।

राम के पास मन की पवित्रता की ही तो पूंजी थी। इसी पूंजी ने जंगल के बन्दरों की ही सेना उनके लिये बनादी और ये पशु कहलाये जाने वाले वानर उसी पूंजी के वल पर सोने की लंका में रहने वाले उस युग के वहुत बड़े और शक्तिशाली राजा रावण की सेना का पराभव उसी के नगर में जाकर कर सके। मन की शुद्धता की इसी पूंजी ने गांधी को हमारे राष्ट्र का पिता वना दिया। गांधी ने कभी जेल को जेल समझा ही नहीं। वह तो उसके लिये कृष्ण मन्दिर था। अस्पृश्य जातियों के लोग उसके लिये हरिजन थे और सदियों से शोषित एवं पीड़ित व्यक्ति दरिद्र नारायण। कठिनाइयों की उनके सामने भी कोई कमी नहीं थी। किन्तु जिसे मनः प्रसाद प्राप्त हो जाय उसका रास्ता कौनसी कठिनाई रोक सकती है? कोई भी कठिनाई गांधी का रास्ता न रोक सकी। यही बात महात्मा बुद्ध, पैगम्बर मुहम्मद साहब और ईसा के साथ भी थी।

आप कहेंगे आत्म-निरीक्षण के द्वारा मन की पवित्रता प्राप्त करना कठिन है। इतना जागरूक रहना और अपनी कमियों को निरंतर निकालते रहना महापुरुषों का ही काम है। क्या इसका कोई अन्य सुगम मार्ग नहीं? विद्वानों ने इसके दो अन्य मार्ग भी वताये हैं। एक है स्वाध्याय, दूसरा है गुरु की कृपा। यदि आत्मनिरीक्षण का कार्य हमें कष्ट साध्य प्रतीत होता है, तो या तो अच्छे-अच्छे ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये या किसी योग्य गुरु की शरण जाना चाहिये। वड़े-वड़े ग्रन्थ मानव-समाज की वड़ी मूल्यवान पूंजी है। महापुरुषों के जीवन का सारा ज्ञान व अनुभव इन ग्रन्थों में समाया रहता है। जिसे प्राप्त करने में उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, कड़ी साधना करनी पड़ी वही बात हमें थोड़े से समय में प्राप्त हो जाती है। इन ग्रन्थों का अध्ययन दूसरे शव्दों में कहें तो उन महापुरुषों का सत्संग ही है। उनके ग्रन्थ पढ़ते हुए किसे ऐसा नहीं लगता कि हम उनके पास ही हैं और उनका प्रेम, औदार्य, अनुभव और ज्ञानगरिमा हमें अपनी शीतल छाया प्रदान नहीं कर रहे हैं।

जिन्हें इस मार्ग में भी कठिनाई मालूम होती है उनके लिये सरल मार्ग है किसी गुरु की शरण में जाना। सन्तों ने गुरु की महिमा का

बहुत वर्णन किया है और उसे गोविन्द से भी बडा माना है। जो जीवन-पथ आलोकित करे उसे गोविन्द ही कह दिया जाय तो इसमे क्या बुराई है ?

साराश यह कि यह सृष्टि जैसी है वैसी ही रहेगी। इसकी कठिनाइयो का कोई अन्त नही है और शायद कोई अन्त मिल भी नही पायगा। एक कठिनाई हल होते ही यहां चार नई कठिनाइयां जन्म लेगी और नये-नये आविष्कार, साधन-सम्पन्नता एवं भौतिक समृद्धि शायद इसका कोई हल नही निकाल पायेगी। यहां सफलता का एक ही मार्ग रहेगा और वह होगा मन को विशुद्ध बनाना। मन की शक्ति प्राप्त करके जिस प्रकार अतीत काल के महापुरुषो ने जीवन की बाधाओ और असफलताओ को पराजित किया उसी प्रकार भविष्य मे भी बडे-बडे सिद्ध व महात्मा यही मार्ग दिखाते रहेंगे। मन की यह पवित्रता आत्मनिरीक्षण, स्वाध्याय तथा गुरु की कृपा से प्राप्त की जा सकती है जो वैराग्य; असफलता और विपदाओ के महासागर से पार होना चाहते हैं उन्हे इसी नाव का सहारा लेना चाहिये।



बहुत वर्णन किया है और उसे गोविन्द से भी बडा माना है। जो जीवन-पथ आलोकित करे उसे गोविन्द ही कह दिया जाय तो इसमे क्या बुराई है ?

साराश यह कि यह सृष्टि जैसी है वैसी ही रहेगी। इसकी कठिनाइयों का कोई अन्त नही है और शायद कोई अन्त मिल भी नही पायगा। एक कठिनाई हल होते ही यहाँ चार नई कठिनाइयाँ जन्म लेगी और नये-नये आविष्कार, साधन-सम्पन्नता एवं भौतिक समृद्धि शायद इसका कोई हल नही निकाल पायेगी। यहाँ सफलता का एक ही मार्ग रहेगा और वह होगा मन को विशुद्ध बनाना। मन की शक्ति प्राप्त करके जिस प्रकार अतीत काल के महापुरुषो ने जीवन की बाधाओ और असफलताओ को पराजित किया उसी प्रकार भविष्य मे भी बडे-बडे सिद्ध व महात्मा यही मार्ग दिखाते रहेंगे। मन की यह पवित्रता आत्मनिरीक्षण, स्वाध्याय तथा गुरु की कृपा से प्राप्त की जा सकती है जो वैराग्य; असफलता और विपदाओ के महासागर से पार होना चाहते हैं उन्हें इसी नाव का सहारा लेना चाहिये।



